कही हुई बातको अपनी ओरसे पूरी कर देता है, इस प्रकार व्यवहार करने वाले धर्मस्थ को मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३७ ॥

देयं देशं न पृच्छत्यदेयं देशं पृच्छति कार्यमदेशेनातिवाहयति छलेनातिहरति कालहरणेन श्रान्तमपवाहयति मार्गापन्नं वाक्यमुत्क्रमयति मतिसाहाय्यं साक्षिभ्यो ददाति तारितानुशिष्टं कार्यं पुनरपि गृह्णाति उत्तममस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ३८ ॥

विचारणीय वस्तुके लिये अत्युपयोगी साक्षीसे तो कुछ नहीं पूछता और अनुपयुक्त साक्षीसे पूछता है, बिनाही साक्षीके किसी झगड़ेका निपटारा कर देता है, सत्यवादी साक्षीको भी कपटपूर्ण वाक्योंसे अपराधी बना देता है, व्यर्थ समय बितानेसे साक्षीको थकाकर हटा देता है, साक्षीके क्रमपूर्वक वाक्योंको भी उलटपुलट कहता है, साक्षियोंको बीच २ में सहायता देता है, विचारपूर्वक निर्णीत बातको फिर विचार करनेके लिये उपस्थित करता है, ऐसे न्यायाधीश को उत्तमसाहस दण्ड दिया जावे ॥ ३८ ॥

पुनरपराधे द्विगुणं स्थानाद्व्यपरोहणं च ॥ ३९ ॥ लेखकश्चेदुक्तं न लिखत्यनुक्तं लिखति दुरुक्तमुपलिखति सूक्तमुल्लिखत्यर्थोत्पत्तिं विकल्पयतीति पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात् ॥ ४० ॥ यथापराधं वा ॥ ४१ ॥

दुबारा यही अपराध करनेपर दुगना दण्ड दिया जावे, और पदच्युत कर दिया जावे ॥ ३९ ॥ लेखक (मुहर्रिर) यदि कही हुई बातको नहीं लिखता, न कही हुई को लिख लेता है, बुरी तरह कही हुई को अच्छी तरह करके लिख लेता है, और अच्छी तरह कही हुई को बुरी तरह करके लिखता है, या बातके तात्पर्यको बदल देता है, उसे प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ४० ॥ अथवा अपराधके अनुसार उचित दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

धर्मस्थः प्रदेष्टा वा हैरण्यमदण्ड्यं क्षिपति क्षेपद्विगुणमस्मै दण्डं कुर्यात् ॥ ४२ ॥ हीनातिरिक्ताष्टगुणं वा शरीरदण्डं क्षिपति शारीरमेव दण्डं भजेत ॥ ४३ ॥ निष्क्रयद्विगुणं वा ॥ ४४ ॥

धर्मस्थ अथवा प्रदेष्टा यदि किसी निरपराधीको सुवर्ण दण्ड देवें, तो उससे दुगना दण्ड इनको (धर्मस्थ और प्रदेष्टाको) दिया जावे ॥ ४२ ॥ यदि उचित दण्डसे कम या अधिक दण्ड अपराधीको देवें, तो उन्हें दिये हुए (कम या अधिक) दण्डका आठगुना दण्ड दिया जावे । और शारीरिक दण्ड देनेपर

उनको भी वही शारीरिक दण्ड दिया जावे ॥४३॥ यदि उस शारीरिक दण्डके बदलेमें कोई धनदण्ड देदेवे, तो उसका दुगना दण्ड (धर्मस्थ आदिको) होना चाहिये॥४४॥

यं वा भूतमर्थं नाशयत्यभूतमर्थं करोति तदष्टगुणं दण्डं दद्यात् ॥ ४५ ॥ धर्मस्थीयाच्चारकान्निस्सारयतो बन्धनागाराच्छय्यासनभोजनोच्चारसंचारं रोधबन्धनेषु त्रिपणोत्तरा दण्डाः कर्तुः कारयितुश्च ॥ ४६ ॥

न्याय्य (उचित) अर्थको (धनको) नाश करने, और अन्याय्यको संग्रह करनेपर, उस (नष्ट या संगृहीत) धन राशिसे आठ गुना दण्ड दिया जाय ॥ ४५ ॥ धर्मस्थके द्वारा निर्दिष्ट की हुई हवालातसे यदि कोई (निरीक्षक राजपुरुष) घूंस लेकर अपराधीको बाहर निकलनेकी आज्ञा (घूमने फिरनेके लिये) दे, या जल अथवा हवालातमें सोने, बैठने, खानेपीने और मलमूत्र त्यागका प्रबन्ध करे, या करावे, तो उसे उत्तरोत्तर ३ पण अधिक दण्ड दिया जावे ॥ ४६ ॥

चारकादभियुक्तं मुञ्चतो निष्पातयतो वा मध्यमः साहसदण्डोऽभियोगदानं च ॥ ४७ ॥ बन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च ॥४८॥ बन्धनागाराध्यक्षस्य संरुद्धकमनाख्याय चारयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ४९ ॥ कर्म कारयतो द्विगुणः ॥ ५० ॥

यदि कोई राजपुरुष किसी अपराधीको बन्धनागार (हवालात) से छोड़ देवे, अथवा चले जाने के लिये प्रेरणा करे, तो उसे मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय। और उस अपराधीने जितना देना था, वह भी उसको अदा करना पड़े ॥ ४७ ॥ यदि कोई प्रदेष्टाके बन्धनागार (जेलखाने) से किसी अपराधीको छोड़ देवे, तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त करली जाय, और उसे प्राण दण्ड देदिया जावे ॥ ४८ ॥ कैदीको जेलरकी बिना आज्ञा बाहर घुमानेमें २४ पण दण्ड ॥४९॥ और यह काम करवानेवाले व्यक्तिको दुगना अर्थात् ४८ पण दण्ड दिया जावे ॥ ५० ॥

स्थानान्यत्वं गमयतोऽन्नपानं वा रुन्धतः षण्णवतिर्दण्डः ॥ ५१ ॥ परिक्लेशयत उत्कोटयतो वा मध्यमः साहसदण्डः ॥ ५२ ॥ घ्नतः साहस्रः ॥ ५३ ॥ परिगृहीतां दासीमाहितिकां वा संरुद्धिकामधिचरतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५४ ॥

यदि कैदीकी जगह बदले, या उसके खानेपीनेमें रुकावट डाले, तो उसे ९६ पण दण्ड ॥ ५१ ॥ और उसको कोड़े आदि मारकर दुःख देवे, या रिश्वत

दिलवावे तो उसे मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ५२ ॥ कैदीका वध कर देनेपर १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ ५३ ॥ खरीदी हुई या गिरवी रक्खी हुई दासी यदि किसी अपराधके कारण कैद होजावे, उसके साथ जेलमें दुराचार करनेपर (करनेवाले राजपुरुषको) प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५४ ॥

चोरडामरिकभार्यां मध्यमः ॥ ५५ ॥ संरुद्धिकामार्यामुत्तमः ॥ ५६ ॥ संरुद्धस्य वा तत्रैव घातः ॥ ५७ ॥ तदेवाक्षणगृहीतायामार्यायां विद्यात् ॥ ५८ ॥

चोर और डामरिक (अकस्मात् नष्ट हुआ २ पुरुष) की भार्याके साथ ऐसा करनेपर मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ५५ ॥ कैद हुई २ कुलीन स्त्री (आर्या) के साथ ऐसा करनेपर उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ५६ ॥ यदि जेलमें ही कोई कैदी ऐसा दुराचार करे, तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥५७॥ अध्यक्ष (सुवर्णाध्यक्ष आदि) यदि कुलीन स्त्रीके साथ ऐसा करे तो उसे भी प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ५८ ॥

दास्यां पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५९ ॥ चारकमभित्वा निष्पातयतो मध्यमः ॥ ६० ॥ भित्वावधः ॥ ६१ ॥ बन्धनारागात्सर्वस्वं बधश्च ॥ ६२ ॥

दासीके साथ ऐसा करनेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ५९ ॥ धर्मस्थके बन्धनागार (चारक) को बिनाही तोड़े, यदि कैदीको कोई बाहर निकाल देवे, तो उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ६० ॥ यदि तोड़कर निकाले तो प्राण दण्ड ॥ ६१ ॥ यदि प्रदेष्टाके जेलखाने,से निकाले तो उसकी सारी जायदाद जब्त करके प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ६२ ॥

एवमर्थचरान्पूर्वं राजा दण्डेन शोधयेत् ।
शोधयेयुश्च शुद्धार्थैः पौरजानपदान्दमैः ॥ ६३ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थेऽधिकरणे सर्वाधिकरणरक्षणं नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
आदितः षडशीतिः ॥ ८६ ॥

राजा इस प्रकार पहिले अपने कर्मचारियोंको दण्डके द्वारा ठीक २मार्ग पर चलावे । फिर नियमानुसार व्यवहार करनेवाले राजकीय-कर्मचारी दण्डके द्वारा नगर या प्रान्तमें रहनेवाली सम्पूर्ण प्रजाको ठीक २ रास्तेपर लावें॥६३ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय ।

८९ प्रकरण ।

एकाङ्गवध और उसका निष्क्रय ।

तीर्थघातग्रन्थिभेदोर्ध्वकराणां प्रथमे ऽपराधे संदंशच्छेदनं चतुष्पञ्चाशत्पणो वा दण्डः ॥ १ ॥ द्वितीये छेदनं पणस्य शत्यो दण्डः ॥ २ ॥

तीर्थोंपर वस्त्र आदि चुरानेवाले (उठाईगीर, उचक्के), गंठकटे, और छत फोड़नेवाले पुरुषोंका अंगूठा और कनी (कनिष्ठिका) अंगुली कटवादी जावे, अथवा ५४ पण दण्ड दिया जाय। (अंगुलीच्छेदनका ५४ पण निष्क्रय है, अर्थात् याती अंगुली काटी जावे, या उसके बदलेमें ५४ पण दण्ड दिया जाय, इसी तरह आगे भी सब जगह समझना चाहिये।) ॥ १ ॥ दूसरीवार फिर अपराध करनेपर सब अंगुली काटदीं जावें, अथवा १०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २ ॥

तृतीये दक्षिणहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ ३ ॥ चतुर्थे यथाकामी वधः ॥ ४ ॥ पञ्चविंशतिपणावरेषु कुक्कुटनकुलमार्जारश्वसूकरस्तेयेषु हिंसायां वा चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ५ ॥ नासाग्रच्छेदनं वा ॥ ६ ॥ चण्डालारण्यचराणामर्धदण्डाः ॥ ७ ॥

तीसरीवार अपराध करनेपर दहिना हाथ काट दिया जावे, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥ चौथीवार फिर अपराध करनेपर इच्छानुसार (शुद्ध या चित्र) प्राण दण्ड दिया जावे ॥ ४ ॥ २५ पणसे कम कीमतके मुर्गे, नकुल, बिलाव, कुत्ते और सूअर चुरालेने तथा मार देनेपर ५४ पण दण्ड देना चाहिये, अथवा उसकी नाकका अगला हिस्सा काट देना चाहिये ॥ ५-६ ॥ यदि मुर्गे आदि किसी चण्डालके हों, अथवा जंगली हों, तो उपर्युक्त दण्डसे आधा दण्ड दिया जावे ॥ ७ ॥

पाशजालकूटावपातेषु बद्धानां मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यानामादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ८ ॥ मृगद्रव्यवनान्मृगद्रव्यापहारे शत्यो दण्डः ॥९॥ बिम्बविहारमृगपक्षिस्तेये हिंसायां वा द्विगुणो दण्डः ॥ १० ॥

फंदा, जाल और गढ़े खोदकर उनपर घासफूस आदि बिछाकर उनके द्वारा पकड़े जाने वाले, राजकीय मृग, अन्य पशु, पक्षी, हिंस्रजीव और मछ-

लियोंको जो लेवे पकड़े वह उनकी कीमत भरे और उतनाही दण्ड देवे ॥ ८ ॥ सुरक्षित जंगलके जानवरोंको तथा लकड़ी आदिको जो चुरावे उसे १०० पण दण्ड दिया जावे ॥९॥ विचित्र रंगकी सुन्दर चिड़ियाओं, घरके सुन्दर हरिणों और तोते आदि पक्षियोंको जो चुरावे, या मारडाले उसे २०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १० ॥

कारुशिल्पिकुशीलवतपस्विनां क्षुद्रकद्रव्यापहारे शत्यो दण्डः ॥ ११ ॥ स्थूलकद्रव्यापहारे द्विशतः ॥ १२ ॥ कृषिद्रव्यापहारे च ॥ १३ ॥

बढ़ई आदि मोटा काम करने वालों, होशियार कारीगरों, कत्थकों और तपस्वियोंकी कोई छोटी वस्तु चुरानेपर चोरको १०० पड़ दण्ड दिया जाय ॥ ११ और बड़ी चीजें चुराने पर २०० पण ॥ १२ ॥ खेती करनेके साधन हल आदि चुरानेपर भी २०० पण दण्ड देना चाहिए ॥ १३ ॥

दुर्गमकृतप्रवेशस्य प्रविशतः प्राकारच्छिद्राद्वा निक्षेपं गृहीत्वापसरतः कन्धरावधो द्विशतो वा दण्डः ॥ १४ ॥

जिसको किले में घुसने का अधिकार नहीं है यदि वह वहां प्रवेश करे अथवा परकोटे की दीवार तोड़कर माल लेकर भागे, उसके पैरके पीछेकी दो मुख्य नसें कटवादी जावें, अथवा २०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १४ ॥

चक्रयुक्तं नावं क्षुद्रपशुं वापहरत एकपादवधः त्रिशतो वा दण्डः ॥ १५ ॥ कूटकाकण्यक्षारालाशलाकाहस्तविषमकारिण एकहस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ १६ ॥

चक्रयुक्त (धन शास्त्र अथवा यन्त्र विशेषसे युक्त) नावको, या छोटेसे पशुको जो चुरावे, उसका एकपैर काट दिया जावे, अथवा ३०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १५ ॥ जाली कौड़ी, पासे, अरला (चमड़ेकी बनी हुई चौकड़ी) और शलाका (ये सब चीजें जुआ खेलनेमें काम. आती हैं, द्यूत समाह्वय अध्याय देखो) बनाने वाले, तथा अन्य हाथकी बुराई करने वाले पुरुषका एक हाथ काट दिया जाये, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥

स्तेनपारदारिकयोः साचिव्यकर्माणि स्त्रियाः संगृहीतायाश्च कर्णनासाच्छेदनं पञ्चशतो वा दण्डः ॥ १७ ॥ पुंसो द्विगुणः ॥ १८ ॥ महापशुमेकं दासं दासीं वापहरतः प्रेतभाण्डं वा विक्रीणानस्य द्विपादवधः षट्छतो वा दण्डः ॥ १९ ॥

चोर और व्यभिचारियोंके दूतपनेका काम करनेवाली स्त्रियोंके कान नाक काट लिये जावें, अथवा ५०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥ यदि पुरुष ऐसा करे तो उसे दुगना अर्थात् १००० पण दण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ गाय भैंस आदि बड़े पशुको, एक दास या दासीको जो चुरावे, अथवा मुर्देके वस्त्र आदिको (मृतभाण्ड) बेचे, उसके दोनों पैर काट दिये जांय, अथवा ६०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १९ ॥

वर्णोत्तमानां गुरूणां च हस्तपादलङ्घने राजयानवाहनाद्यारोहणे चैकहस्तपादवधः सप्तशतो वा दण्डः ॥ २० ॥ शूद्रस्य ब्राह्मणवादिनो देवद्रव्यमवस्तृणतो राजद्विष्टमादिशतो द्विनेत्रभेदिनश्च योगाञ्जनेनान्धत्वमष्टशतो वा दण्डः ॥ २१ ॥

अपनेसे उत्तम वर्णके किसी व्यक्तिको तथा गुरुजनोंको जो हाथपैर आदिसे मारे, अथवा राजाकी सवारी या घोड़े आदिपर चढ़े, उसका एक हाथ और एक पैर काट दिया जावे, अथवा ७०० पण दण्ड दिया जाय ॥ २० ॥ जो शूद्र अपने आपको ब्राह्मण बतलावे, और देवताके उद्देश्यसे दिये हुए द्रव्यका अपहरण करे; तथा जो भविष्यमें राजाके अनिष्टको (ज्योतिषी बनकर) बतावे अथवा बग़ावत करे, या किसीकी दोनों आंखें फोड़ देवे, ऐसे व्यक्तिको औषधियोंका सुरमा लगाकर अन्धा करदिया जावे, अथवा उसे ८०० पण दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥

चोरं पारदारिकं वा मोक्षयतो राजशासनमूनमतिरिक्तं वा लिखतः कन्यां दासीं वा सहिरण्यमपहरतः कूटव्यवहारिणो विमांसविक्रयिणश्च वामहस्तद्विपादवधो नवशतो वा दण्डः ॥२२॥

चोर या विभचारीको छोड़ देनेवाले, राजाकी आज्ञाको कम या अधिक करके लिखनेवाले, कन्या या दासीको आभूषण आदिके सहित चुरानेवाले, छलकपटका व्यवहार करनेवाले, अभक्ष्य पशुओंका मांस बेचनेवाले पुरुषका बांयां हाथ और दोनों पैर काट दिये जावें, अथवा ९०० पण दण्ड दिया जावे ॥ २२ ॥

मानुषमांसविक्रये वधः ॥ २३ ॥ देवपशुप्रतिमामनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णरत्नसस्यापहारिण उत्तमो दण्डः शुद्धवधो वा ॥२४॥

आदमीका मांस बेचनेमें प्राण दण्ड दिया जाय ॥ २३ ॥ देव सम्बन्धी पशु, प्रतिमा, मनुष्य, खेत, घर, हिरण्य, सुवर्ण रत्न और अन्न इन वस्तुओं

को जो व्यक्ति चुरावे, उसे उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय, अथवा उसको बिना किसी अन्य क्लेशके प्राणदण्ड दिया जाय ॥ २४ ॥

पुरुषं चापराधं च कारणं गुरुलाघवम् ।
अनुबन्धं तदात्वं च देशकालौ समीक्ष्य च ॥ २५ ॥
उत्तमावरमध्यत्वं प्रदेष्टा दण्डकर्मणि ।
राज्ञश्च प्रकृतीनां च कल्पयेदन्तरास्थितः ॥ २६ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे एकाङ्गवधनिष्क्रयो दशमो ऽध्यायः ॥ १० ॥
आदितः सप्ताशीतिः ॥ ८७ ॥

प्रदेष्टाको चाहिये कि वह, राजा और अमात्योंके मध्यमें रहता हुआ, दण्ड देनेके समयमें पुरुषको उसके अपराधको अपराधके कारणोंको, आदमीकी छोटी बड़ी हैसियतको, भविष्यमें तथा उस समयमें होनेवाले परिणामको, देश और कालको अच्छी तरह सोचविचार लेवे । फिर उत्तम, प्रथम तथा मध्यमसाहस आदि दण्डोंको न्यायानुसार देवे ॥ २५-२६ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें दसवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय ।

८६ प्रकरण ।

शुद्ध और चित्र दण्ड ।

कलहे घ्नतः पुरुषं चित्रो घातः ॥ १ ॥ सप्तरात्रस्यान्तर्मृते शुद्धवधः ॥ २ ॥ पक्षस्यान्तरुत्तमः ॥ ३ ॥ मासस्यान्तः पञ्चशतः समुत्थानव्ययश्च ॥ ४ ॥

लड़ाई झगड़ेमें जो पुरुष दूसरे आदमीको जानसे मारदे, उसको कष्टपूर्वक प्राण दण्ड दिया जाय । (अर्थात् उसे दुःख दे २ कर मारा जाय, यह चित्रवध कहाता है, जिस वधके पूर्व कोई अन्य कष्ट न दिया जाय उसे शुद्ध वध कहते हैं) ॥ १ ॥ झगड़ेमें मारते २ यदि इतनी चोट पहुंचावे कि वह पुरुष सात दिनतक मरजावे, तो मारनेवालेको शुद्ध प्राण दण्ड दिया जावे ॥२॥ यदि १५ दिनके बाद मरे तो उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥३॥ एक महीनेके बाद मरे, तो ५०० पण दण्ड, और उसकी चिकित्सा आदिका सम्पूर्ण व्यय देवे ॥ ४ ॥

शस्त्रेण प्रहरत उत्तमो दण्डः ॥ ५ ॥ मदेन हस्तवधः ॥६॥

मोहेन द्विशतः ॥ ७ ॥ वधे वधः ॥ ८ ॥ प्रहारेण गर्भं पातयत उत्तमो दण्डः ॥ ९ ॥ भैषज्येन मध्यमः ॥ १० ॥ परिक्लेशेन पूर्वः साहसदण्डः ॥ ११ ॥

यदि हथियारसे प्रहार करे, तो उत्तम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५ ॥ यदि अपने बलके घमण्डसे प्रहार करे, तो हाथ काट दिया जावे ॥ ६ ॥ क्रोधके कारण प्रहार करे तो उसे २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ७ ॥ जानसे मार देनेपर हत्यारेको प्राण दण्ड दिया जाय ॥ ८ ॥ चोट लगाकर गर्भ गिराने वाले, पुरुषको उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ९ ॥ औषधिके द्वारा गर्भ गिरानेपर मध्यमसाहस दण्ड ॥ १० ॥ और कठोर काम करानेके द्वारा गर्भ गिरानेपर प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ ११ ॥

प्रसभस्त्रीपुरुषघातकाधीसारकानिग्राहकावघोषकावस्कन्दकोपवेधकान्पथि वेश्मप्ररोधकान्राजहस्त्यश्वरथानां हिंसकान्स्तेनान्वा शूलानारोहयेयुः ॥ १२ ॥ यश्चैनान्दहेदपनयेद्वा स तमेव दण्डं लभेत साहसमुत्तमं वा ॥ १३ ॥

बलात्कार स्त्री या पुरुषकी हत्या करनेवाले, बलात्कारसे स्त्रीको उठा ले जानेवाले, बलात्कार जनताके नाक या कान आदि काट देनेवाले, "मैं हत्या करूंगा, चोरी करूंगा" इस प्रकारकी घोषणा करनेवाले, बलात्कार नगर और ग्रामोंसे द्रव्यापहरण करनेवाले, तथा भींत आदि फोड़कर सेंध लगानेवाले, पुरुषोंको, और मार्गकी धर्मशालाओं तथा प्याऊओंमें चोरी करनेवाले, राजाके हाथी, घोड़े और रथोंको नष्ट करने मारने या चुरानेवाले पुरुषोंको, शूलीपर चढ़ाकर मार दिया जावे ॥ १२ ॥ शूलीपर चढ़ाकर मारे हुए इन पुरुषोंका जो दाहसंस्कार करे या उठाकर लेजावे, उसे भी यही दण्ड, अथवा उत्तमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ १३ ॥

हिंस्रस्तेनानां भक्तवासोपकरणाग्निमन्त्रदानवैयावृत्यकर्मसूत्तमो दण्डः ॥ १४ ॥ परिभाषणमविज्ञाने ॥ १५ ॥ हिंस्रस्तेनानां पुत्रदारमसमन्त्रं विसृजेत्समन्त्रमाददीत ॥ १६ ॥

जो पुरुष, घातक और चोरोंको अन्न, निवासस्थान, वस्त्र आदि अन्य सामान, अग्नि और सलाह देवें, तथा उनके पास नौकरी करें, तो उन्हें उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥ यदि यह मालूम न हो कि ये घातक या चोर हैं, तो केवल वाग्दण्ड दिया जावे। अर्थात् उलाहना आदि देकर उन्हें

समझा दिया जावे ॥ १५ ॥ घातक और चोरोंके लड़कों तथा स्त्रियोंको यदि वे चोरी और हत्याकी सलाहमें शामिल न हों, तो निरपराध समझकर छोड़ दिया जावे। यदि सलाहमें शामिल हों, तो गिरफ्तार करके उचित दण्ड दिया जावे ॥ १६ ॥

राज्यकामुकमन्तःपुरप्रधर्षकमटव्यमित्रोत्साहकं दुर्गराष्ट्रदण्डकोपकं वा शिरोहस्तप्रादीपिकं घातयेत् ॥ १७ ॥ ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत् ॥ १८ ॥

राज्यकी कामना करनेवाले, अन्तःपुरमें झमेला डालनेवाले, अटवीचर पुलिन्द आदिको तथा अन्य शत्रुओंको उभारनेवाले, किले तथा बाहरकी सेनाको राजासे कुपित करादेनेवाले, पुरुषोंको उनके सिर और हाथपर जलता हुआ अंगारा रखकर कत्ल करवा दिया जावे ॥ १७ ॥ यदि ऐसा काम करनेवाला कोई ब्राह्मण होवे, तो उसे आजीवन कालकोठरीमें बन्द करदे॥१८॥

मातृपितृपुत्रभ्रात्राचार्यतपस्विघातकं वा त्वक्छिरःप्रादीपिकं घातयेत् ॥ १९ ॥ तेषामाक्रोशे जिह्वाच्छेदः ॥ २० ॥ अङ्गाभिरदने तदङ्गान्मोच्यः ॥ २१ ॥

माता पिता, पुत्र, भाई, आचार्य और तपस्वीकी हत्या करनेवाले पुरुषको उसके सिरकी खाल उतरवाकर उसपर आग जलाकर कतल करवा देवे ॥ १९ ॥ माता पिता आदिको गाली देनेपर जीभ कटवा देवे ॥ २० ॥ और वह माता आदिके जिस किसी अङ्गको अपने नाखून आदिसे नूँचे खसोटे, वही अङ्ग उसका कटवा दिया जाय ॥ २१ ॥

यदृच्छाघाते पुंसः पशुयूथाऽश्वस्तेये च शुद्धवधः ॥ २२ ॥ दशावरं च यूथं विद्यात् ॥ २३ ॥ उदकधारणं सेतुं भिन्दतस्तत्रैवाप्सु निमज्जनम् ॥२४॥ अनुदकमुत्तमः साहसदण्डः ॥२५॥ भग्नोत्सृष्टकं मध्यमः ॥ २६ ॥

जो किसी पुरुषको अचानक मार देवे, अथवा पशुओंके झुण्ड या घोड़ोंको चुरालेवे, उसे शुद्ध प्राणदण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ कमसे कम दस पशुओंका एक झुण्ड यहां समझना चाहिये ॥ २३ ॥ जलको रोकनेवाले सेतु (बांध) को जो तोड़े, उसे वहीं जलमें डुबाकर मार दिया जाय ॥ २४ ॥ यदि बिनाही जलके सेतु बना हुआ हो, तो उसे तोड़नेवाले पुरुषको उत्तमसाहस दण्ड दिया जावे ॥ २५ ॥ यदि वह पहिलेसेही टूटाफूटा पड़ाहो और फिर उसे तोड़े तो मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ २६ ॥

विषदायकं पुरुषं स्त्रियं च पुरुषघ्नीमपः प्रवेशयेदगार्भिणीम् ॥ २७ ॥ गर्भिणीं मासावरप्रजातां पतिगुरुप्रजाघातिकामग्निविषदां संधिच्छेदिकां वा गोभिः पाटयेत् ॥ २८ ॥

किसीको बिष देकर मारनेवाले पुरुषको, और पुरुषकी हत्या करनेवाली स्त्रीको जलमें डुबाकर मार दिया जावे, परन्तु वह स्त्री गर्भिणी न हो ॥२७॥ अगर गर्भिणी हो, तो बच्चा होनेके कमसे कम एक महीने बाद डुबाकर मार दी जावे । और अपने पति, गुरु तथा बच्चेकी हत्या करनेवाली, आग लगानेवाली, विष देनेवाली, तथा सेंध लगाकर चोरी करनेवाली स्त्रीको गौओंके पैरोंके नीचे कुचलवाकर मार दिया जावे ॥ २८ ॥

विवीतक्षेत्रखलवेश्मद्रव्यहास्तिवनादीपिकमग्निना दाहयेत् ॥२९॥ राजाक्रोशकमन्त्रभेदकयोरनिष्टप्रवृत्तिकस्य ब्राह्मणमहानसावलेहिनश्चजिह्वामुत्पाटयेत् ॥३०॥ प्रहरणावरणस्तेनमनायुधीयमिषुभिर्घातयेत् ॥ ३१ ॥

चरागाह, खेत, खल्यान, घर, लकड़ियोंके, तथा हाथियोंके सुरक्षित जंगलोंमें आग लगाने वाले पुरुषको अग्निमें जला दिया जाय ॥ २९ ॥ राजाको गाली देनेवाले, गुप्त रहस्यको खोल देनेवाले, राजाके अनिष्टको फैलाने वाले, तथा ब्राह्मणकी पाकशालासे बलात्कार अन्न लेकर खानेवाले पुरुषकी जिह्वा कटवा दी जाय ॥ ३० ॥ जो हथियारसे अपनी आजीविका न करता हो, ऐसा पुरुष यदि हथियार और कवच आदि चुरावे, तो उसे सामने खड़ा करके बाणों से मरवा देना चाहिए ॥ ३१ ॥

आयुधीयस्योत्तमः ॥ ३२ ॥ मेढ्रफलोपघातिनस्तदेव छेदयेत् ॥ ३३ ॥ जिह्वानासोपघाते संदंशवधः ॥ ३४ ॥

यदि वह हथियारोंसे आजीविका करता हो, तो उसे उत्तम साहसदंड दिया जावे, ॥ ३२ ॥ यदि कोई किसीकी उपस्थ इन्द्रिय और अण्डकोश काट डाले, तो उसकेभी उपस्थ इन्द्रिय और अण्डकोश कटवा दिये जावें ॥ ३३ ॥ किसीकी जिह्वा और नासिका काट देने पर, काटने वाले पुरुषकी कनी (कनिष्ठिका) अंगुली और अंगूठा कटवा दिया जाय ॥ ३४ ॥

एते शास्त्रेष्वनुगताः क्लेशदण्डा महात्मनाम् ।
अक्लिष्टानां तु पापानां धर्म्यः शुद्धवधः स्मृतः ॥ ३५॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्प एकादशो ऽध्यायः ॥ ११ ॥ आदितो ऽष्टाशीतिः ॥ ८८ ॥

ये कठोर मृत्युदण्ड मनु आदि महात्माओंके धर्मशास्त्रों में विधान किये गये हैं। इनसे कुछ हलके पापोंका, शुद्धवध ही धर्मानुकूल दण्ड समझना चाहिये ॥ ३९ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरण में ग्यारहवां अध्याय समाप्त।

बारहवां अध्याय।

८७ प्रकरण

कन्या प्रकर्म।

सवर्णामप्राप्तफलां कन्यां प्रकुर्वतो हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः ॥ १ ॥ मृतायां वधः ॥ २ ॥ प्राप्तफलां प्रकुर्वतो मध्यमप्रदेशिनीवधो द्विशतो वा दण्डः पितुश्चावहीनं दद्यात् ॥ ३ ॥

जो पुरुष अपनी जातिकी अरजस्का (जो उस समय तक रजस्वला न हुई हो) कन्याको दूषित करे, उसका हाथ कटवा दिया जाय, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जाय ॥१॥ यदि वह योनिक्षतके दुःखसे मरजावे, तो अपराधीको प्राणदण्ड दिया जावे ॥ २ ॥ यदि वह रजस्वला होचुकी हो तो अपराधीकी मध्यमा (बीचकी) और तर्जनी (अंगूठेके पासकी) अंगुली कटवा दी जावे, अथवा २००पण दण्ड दिया जावे. और लड़कीका पिता जोकुछ हर्जाना बतावे, उसे दिलवाया जावे ॥ ३ ॥

न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ ४ ॥ सकामायां चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ५ ॥ स्त्रियास्त्वर्धदण्डः ॥ ६ ॥

पुरुषकी कामना न करनेवाली कन्यामें संग करनेसे कभी इच्छा पूर्त्ति नहीं होती, अतः यह सर्वथा त्याज्य है (इसका फल सिवाय दण्ड भुगतनेके और कुछ नहीं होता) ॥ ४ ॥ जो पुरुषकी इच्छा करती है, उसके साथ संग करने पर पुरुषको ५४ पण दण्ड, ॥ ५ ॥ और स्त्रीको २७ पण दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥

परशुल्कावरुद्धायां हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः शुल्कदानं च ॥७॥ सप्तार्तवप्रजातां वरणादूर्ध्वमलभमानः प्रकृत्य प्राकामी स्यात् ॥ ८ ॥ न च पितुरपहीनं दद्यात् ॥९॥ ऋतुप्रतिरोधिभिः स्वाम्यादपक्रामति ॥ १० ॥

दूसरेके साथ सगाई हो जानेके कारण रुकी हुई कन्याको जो दूषित

करे, उसका हाथ काट दिया जाय, अथवा ४०० पण दण्ड दिया जाय, और सगाईका (शुल्क) धन उससे वसूल किया जावे ॥ ७ ॥ सात. मासिक धर्म होने तकभी यदि सगाई कीहुई कन्याका विवाह न किया जावे, तो उसका भावी पति, उस कन्याको यथेच्छ भोग सकता है ॥ ८ ॥ और वह उस कन्या के पिताको हर्जानाभी न देवे ॥ ९ ॥ क्योंकि वह पिता मासिक ऋतु धर्मरूपी तस्करोंके कारण, लड़कीके स्वामित्वसे हटादिया गया है । अर्थात् ऐसी अवस्था में लड़कीपर उसका कोई स्वत्व नहीं रह जाता ॥ १० ॥

त्रिवर्षप्रजातार्तवायास्तुल्यो गन्तुमदोषः ॥ ११ ॥ ततः परमतुल्यो ऽप्यनलंकृतायाः ॥१२॥ पितृद्रव्यादाने स्तेयं भजेत ॥ १३ ॥

यदि तीन वर्षतक मासिक धर्म होनेपरभी कन्या न विवाही जावे, तो उसकी जातिका कोई भी पुरुष उसके साथ संग कर सकता है इसमें कोई दोष नहीं । (अर्थात् वह पुरुष उसको अपने पास रख सकता है) ॥ ११ ॥ यदि मासिक धर्म होतेहुए तीन वर्षसे अधिक गुजर जांय, तो भिन्न जातिका पुरुषभी, उसको अपनी स्त्री बना सकता है, इसमें कोई दोष नहीं, परन्तु वह पुरुष, लड़कीके पिताके बनवाये हुए आभूषण आदि, तथा अन्य द्रव्य, उस लड़कीके साथ नहींले जासकता ॥१२॥ यदि वह उसके (कन्याके) पिताके द्रव्यको उसे (पिताको) न लौटावे तो चोरीका दण्ड पावे ॥ १३ ॥

परमुद्दिश्यान्यस्य विन्दतो द्विशतो दण्डः ॥ १४ ॥ न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥ १५ ॥ कन्यामन्यां दर्शयित्वान्यां प्रयच्छतः शत्यो दण्डस्तुल्यायाम् ॥१६॥ हीनायां द्विगुणः ॥१७॥

दूसरेके लिये कही हुई कन्याको, 'वह पुरुष मैं ही हूं' ऐसा कहकर जो अन्य पुरुष विवाहता है, उसे २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥ स्त्रीकी कामना न होनेपर कोई भी पुरुष यथेच्छ भोग न करे, ॥ १५ ॥ एक कन्याको पहिले दिखला कर विवाहके समय उसी जातिकी दूसरी कन्याको देवे, तो १०० पण दण्ड दिया जाय ॥१६॥ यदि हीन जातिकी कन्याको देवे तो २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ १७ ॥

प्रकर्मण्यकुमार्याश्चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ १८ ॥ शुल्कव्ययकर्मणी च प्रतिदद्याद् अवस्थाय ॥१९॥ तज्जातं पश्चात्कृता द्विगुणं दद्यात् ॥ २० ॥

जो पुरुष क्षतयोनि स्त्रीका अक्षतयोनि कहकर दूसरी बार विवाह करदे,

उसे ५४ पण दण्ड दिया जाय ॥१८॥ और शुल्क तथा विवाहमें हुए खर्चको विवाह करने वाले पुरुषके पास लौटादे ॥ १९ ॥ यदि फिर तीसरी बारभी वह अक्षत योनि कहकर विवाह करे, तो पहलेसे दुगना अर्थात् १०८ पण उसे जुरमाना किया जाय ॥ २० ॥

अन्यशोणितोपधाने द्विशतो दण्डः ॥ २१ ॥ मिथ्याभिशंसिनश्च पुंसः ॥ २२ ॥ शुल्कव्ययकर्मणी च जीयेत ॥ २३ ॥

योनिक्षीणता दिखलानेके लिये, दूसरेका रुधिर अपने कपड़ोंपर लगाने वाली स्त्रीको २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ २१ ॥ और झूठ बोलने वाले पुरुष कोभी (अर्थात् जो अक्षत योनि स्त्रीको क्षत योनी बताये) यही (२०० पण) दण्ड दिया जाय ॥ २२ ॥ तथा शुल्क और विवाहका खर्चभी उससे दिलवाया जाय ॥ २३ ॥

न च प्राकाम्यमकामायां लभेत ॥२४॥ स्त्री प्रकृता सकामा समाना द्वादशपणदण्डं दद्यात् ॥ २५ ॥ प्रकर्त्री द्विगुणम् ॥२६॥

स्त्रीकी इच्छाके विरुद्ध उसे कोई नहीं भोग सकता ॥ २४ ॥ कामना रखती हुई समान जातिकी स्त्रीको यदि कोई क्षतयोनी करदेवे, तो वह स्त्री १२ पण जुरमाना देवे ॥ २५ ॥ यदि वह स्त्री स्वयंही अपनी योनिको क्षीण कर लेवे, तो उसे दुगना अर्थात् २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ २६ ॥

अकामायाः शत्यो दण्ड आत्मरागार्थं शुल्कदानं च ॥२७॥ स्वयं प्रकृता राजदास्यं गच्छेत् ॥ २८ ॥ बहिर्ग्रामस्य प्रकृतायां मिथ्याभिशंसने च द्विगुणो दण्डः ॥ २९ ॥

पुरुषकी कामना न रखती हुई भी स्त्री केवल थोड़ी देरकी अपनी खुशीके लिये, किसी पुरुषसे अपनी योनि क्षीण कराती है, तो वह १०० पण दण्ड देवे, और उस पुरुषको फीस देवे ॥ २७ ॥ जो स्त्री अपनी इच्छासे संग करती है, वह राजदासियोंमें होजावे ॥ २८ ॥ गांवके बाहर विजन स्थानमें संग करनेपर स्त्रीको दुगना अर्थात् २४ पण, और पुरुषको 'मैंने संग नहीं किया' इस प्रकार झूठ बोलनेपर दुगना दण्ड दियाजाय ॥ २९ ॥

प्रसह्य कन्यामपहरतो द्विशतः ॥ ३० ॥ ससुवर्णामुत्तमः ॥ ३१ ॥ बहूनां कन्यापहारिणां पृथग्यथोक्ता दण्डाः ॥ ३२ ॥

बलात्कार कन्या अपहरण करने वाले पुरुषको २०० पण दण्ड दिया जाय ॥ ३० ॥ यदि वह स्वर्णके आभूषण आदिसे युक्त हो, तो अपहरण करने

वाले को उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३१ ॥ कन्याको अपहरण करनेवाले यदि बहुतसे व्यक्ति होवें तो पृथक् २ यथोक्त दण्ड दिये जावें ॥ ३२ ॥

गणिकादुहितरं प्रकुर्वतश्चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डाः ॥ ३३ ॥ शुल्कं मातुर्भोगः षोडशगुणः ॥ ३४ ॥ दासस्य दास्या वा दुहितरमदासीं प्रकुर्वतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः शुल्काबन्ध्यदानं च ॥३५॥

वैश्याकी लकड़ीके साथ बलात्संग करनेवाले पुरुषको ५४ पण दण्ड दिया जावे ॥ ३३ ॥ और दण्डसे सोलहगुणी अर्थात् ८६४ पण फीस उसकी माताको देवे ॥ ३४ ॥ दास या दासीकी लड़कीको, जो कि स्वयं किसीकी दासी नहीं है, दूषित करे, उसे २४ पण दण्ड दिया जावे। और शुल्क तथा आभूषण आदि वह उस कन्याको देवे, ॥ ३५ ॥

निष्क्रयानुरूपां दासीं प्रकुर्वतो द्वादशपणो दण्डो वस्त्राबन्ध्यदानं च ॥ ३६ ॥ साचिव्यावकाशदाने कर्तृसमो दण्डः ॥३७॥ प्रोषितपतिकामपचरन्तीं पतिबन्धुस्तत्पुरुषो वा संगृह्णीयात् ॥३८॥

दासता छुड़ानेके अनुरूप धन देकर जो पुरुष दासीको दूषित करे, वह १२ पण जुरमाना देवे, और स्त्रीको वस्त्र तथा आभूषण देवे ॥ ३६ ॥ कन्याको दूषित करनेमें जो सहायता देवे अथवा अवसर (मौका) या जगह देवे, उसे भी दूषित करने वालेके समान ही दण्ड दिया जाय ॥ ३७ ॥ जिसका पति विदेश चला गया हो, ऐसी स्त्री यदि व्यभिचार करे, तो पतिका भाई, या उसका कोई नौकर आदि उसे (स्त्रीको) नियममें रक्खें ॥ ३८ ॥

संगृहीता पतिमाकांक्षेत ॥ ३९ ॥ पतिश्चेत्क्षमेत विसृज्येतोभयम् ॥ ४० ॥ अक्षमायाः स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनं वधं जारश्च प्राप्नुयात् ॥ ४१ ॥

नियममें रहती हुई वह पतिके आनेकी प्रतीक्षा करे ॥ ३९ ॥ यदि पति क्षमाकरदे, तो उन दोनों जार और जारिणीको छोड़दिया जाय अर्थात् उन को दण्ड न दिया जाय ॥ ४० ॥ क्षमा न करनेपर स्त्रीके कान नाक काट लिये जावें, और जार पुरुषको प्राण दण्ड दिया जावे ॥ ४१ ॥

जारं चोरं इत्यभिहरतः पञ्चशतो दण्डः ॥ ४२ ॥ हिरण्येन मुञ्चतस्तदष्टगुणः ॥ ४३ ॥

व्यभिचारको छिपानेके लिये यदि कोई रक्षक व्यक्ति जारको 'यह चोर जाता है' इस प्रकार कहे, तो उसे ५०० पण दण्ड दिया जावे ॥ ४२ ॥ यदि

रक्षापुरुष हिरण्यकी रिश्वत लेकर उस जार पुरुषको छोड़ देवे, तो उसे लिएहुए हिरण्यसे ८ गुणा दण्ड दिया जाय ॥४३॥

केशाकेशिकं संग्रहणमुपलिङ्गनाद्वा शरीरोपभोगानां तज्जातेभ्यः स्त्रीवचनाद्वा ॥ ४४ ॥

किसी स्त्रीका दूसरे पुरुष के साथ फंसा होना, निम्न लिखित रीतिसे जाना जासकता है:—एक दूसरेके केश आदि पकड़कर कीजाती हुई कामक्रीड़ाको देखनेसे, या कामके उद्दीपन चन्दन आदिका शरीरपर लेप करनेसे, या काम सम्बन्धी इशारोंको जानने वाले पुरुषोंके द्वारा, या स्त्री जब स्वयं कह देवे ॥ ४४ ॥

परचक्राटवीहृतामोघप्रव्यूढामरण्येषु दुर्भिक्षे वा त्यक्तां प्रेतभावोत्सृष्टां वा परस्त्रियं निस्तारयित्वा यथासंभाषितं समुपभुञ्जीत ॥ ४५ ॥

कोई पुरुष, शत्रुओं या जंगलियोंके द्वारा अपहरण की हुई, नदी प्रवाहमें बहती हुई, जंगलोंमें अथवा दुर्भिक्षके समयमें त्यागी हुई, रोग या मूर्च्छाके कारण मरी हुई समझ कर छोड़ी हुई पराई स्त्रीको भी इन सारी आपत्तियोंसे उद्धार करके, दोनोंकी सलाह होने पर अच्छी तरह भोग सकता है ॥ ४५ ॥

जातिविशिष्टामकामामपत्यवतीं निष्क्रयेण दद्यात् ॥ ४६ ॥

यदि वह स्त्री उच्च कुलकी हो, समान जाति होनेपर भी उद्धार कर्त्ता पुरुषकी कामना न करे, और बालबच्चों वालीहो, तो उसके पतिसे अपने परिश्रम (आपत्तिसे उद्धार करने)का उचित पुरस्कार लेकर उसे, उसके मालिकको देदेवे ॥ ४६ ॥

चोरहस्तान्नदीवेगाद्दुर्भिक्षाद्देशविभ्रमात् ।
निस्तारयित्वा कान्तारान्नष्टां त्यक्तां मृतेति वा ॥४७॥
भुञ्जीत स्त्रियमन्येषां यथासंभाषितं नरः ।
न तु राजप्रतापेन प्रमुक्तां स्वजनेन वा ॥ ४८ ॥
न चोत्तमां न चाकामां पूर्वापत्यवतीं न च ।
ईदृशीं चानुरूपेण निष्क्रयेणापवाहयेत् ॥ ४९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे कन्याप्रकर्मं द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥
आदित एकोननवतिः ॥ ८९ ॥

चोरोंके हाथसे, नदी प्रवाहसे, दुर्भिक्षसे बचाकर और जंगलोंमें भटकती हुई 'तथा मरगईहै' ऐसा समझकर छोड़ी हुई पराई स्त्रीकोभी आपत्तिसे रक्षा करके दोनोंकी सलाह होनेपर कोई पुरुष भोग सकता है। परन्तु राजाके क्रोध अथवा अपने जनोंसे त्यागी हुई स्त्रीको; कुलीन, कामना रहित और बालबचों वाली स्त्रीको आपत्तिसे छुड़ानेपरभी कोई पुरुष उपभोग नहीं कर सकता, प्रत्युत अनुरूप पुरस्कार लेकर इस प्रकारकी स्त्रीको उनकेघर भिजवादें ॥४७-४९॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें बारहवां अध्याय समाप्त

तेरहवां अध्याय

८८ प्रकरण

अतिचार दण्ड

ब्राह्मणमपेयमभक्ष्यं वा ग्रासयत उत्तमो दण्डः ॥ १ ॥ क्षत्रियं मध्यमः ॥ २ ॥ वैश्यं पूर्वः साहसदण्डः ॥ ३ ॥

जो पुरुष, किसी ब्राह्मणको अभक्ष्य या अपेय वस्तु खिलावे पिलावे, उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥ १ ॥ यदि क्षत्रियको खिलावे पिलावे तो मध्यम साहस दण्ड ॥२॥ और वैश्यको खिलाने पिलानेपर प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ३ ॥

शूद्रं चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः ॥ ४ ॥ स्वयंग्रसितारो निर्विषयाः कार्याः ॥ ५ ॥ परगृहाभिगमने दिवा पूर्वः साहसदण्डः ॥ ६ ॥ रात्रौ मध्यमः ॥७॥ दिवा रात्रौ वा सशस्त्रस्य प्रविशत उत्तमो दण्डः ॥ ८ ॥

तथा शूद्रको खिलाने पिलानेपर ५४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ४ ॥ यदि ब्राह्मण आदि स्वयंही अभक्ष्य अपेय खावें पीवें तो उन्हें देशसे बाहर करादिया जाय ॥ ५ ॥ जो पुरुष दिनमें ही किसी दूसरेके घरमें घुसे, उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ६ ॥ रात्रिमें प्रवेश करनेपर मध्यम साहस दण्ड ॥ ७ ॥ और रात अथवा दिनमें हथियार लेकर प्रवेश करनेपर उत्तम साहस दण्डदिया जाय ॥ ८ ॥

भिक्षुकवैदेहकौ मत्तोन्मत्तौ बलादापदि चातिसंनिकृष्टाः प्रवृत्तप्रवेशाश्चादण्ड्या अन्यत्र प्रतिषेधात् ॥९॥ स्ववेश्मनो ऽपि रात्रादूर्ध्वं परिवार्यमारोहतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ १० ॥

भिखारी और फेरी लगानेवाले, मदिरा पीने और उन्माद रोगसे पागल हुए २ बलात्कार, बन्धुबान्धव और मित्र आदि आपत्तिमें, यदि दूसरेके घरमें प्रवेश करें, तो ये उस हालतमें दण्डनीय नहीं होते, जबकि घरके किसी आदमीने भीतर जानेसे इन्हें रोका न हो ॥ ९ ॥ यदि कोई पुरुष एक प्रहर रात्रि बीतजानेपर, अपनेही घरकी बाहरकी ओरकी दीवारोंपर चढ़े, तो उसे प्रथमसाहस दण्ड दिया जाय ॥ १० ॥

परवेश्मनो मध्यमः ॥ ११ ॥ ग्रामारामव्राटभेदिनश्च ॥१२॥ ग्रामेष्वन्यतः सार्थिका ज्ञातसारा वसेयुः ॥ १३ ॥ मुषितं प्रवासितं चैषामनिर्गतं रात्रौ ग्रामस्वामी दद्यात् ॥ १४ ॥ ग्रामान्तेषु वा मुषितं प्रवासितं विवीताध्यक्षो दद्यात् ॥ १५ ॥

यदि इसी हालतमें दूसरेके घरकी दीवारोंपर चढ़े ॥ ११ ॥ और ग्राम अथवा बागीचोंकी बाढ़को तोड़े, तो उसे मध्यमसाहस दण्ड दिया जाय ॥१२॥ यात्रा करते हुए व्यापारी लोग यदि किसी गांवमें ठहरें, तो अपने पासके सब माल असबाबकी सूचना ग्रामाध्यक्षको देकरही ठहरें ॥ १३ ॥ रातमें यदि यदि इनकी चोरी होजाय, या गांवमें कोई वस्तु छूट जाय, तो उस वस्तुको ग्रामाध्यक्ष देवे ॥ १४ ॥ अगर गांवके बाहर सरहद्में ही कोई वस्तु चुराई गई हो या छूट गई हो, तो उसे विवीताध्यक्ष (चरागाहका निरीक्षक) देवे ॥ १५ ॥

अविवीतानां चोररज्जुकः ॥ १६ ॥ तथाप्यगुप्तानां सीमावरोधेन विचयं दद्युः ॥ १७ ॥ असीमावरोधे पञ्चग्रामी दशग्रामी वा ॥ १८ ॥

यदि वहांपर चारागाह आदि भी न होवें, ऐसे स्थानोंपर चुराई हुई या छूटी हुई वस्तुको चोररज्जुक (चोरोंको पकड़नेवाले राजपुरुष) देवें ॥ १६ ॥ यदि फिरभी वस्तु सुरक्षित न रह सके तो जिसकी सीमामें वह चोरी आदि हुई हो, उस सीमाका मालिक वस्तु मिल जानेपर दे देवे ॥ १७ ॥ यदि फिर भी प्रबन्ध न हो सके, तो जहां चोरी आदि हुई हो उसके पासके पांच गांव या दसगांवकी पञ्चायत उस धनको ढूंढकर अदा करे ॥ १८ ॥

दुर्बलं वेश्म शकटमनुत्तब्धमूर्ध्वस्तम्भशस्त्रमनपाश्रयमप्रतिच्छन्नं श्वभ्रं कूपं कूटावपातं वा कृत्वा हिंसायां दण्डपारुष्यं विद्यात् ॥ १९ ॥

मकानकी दीवार आदिको कमजोर करके, गाड़ीकी छतरी आदि मजबूत न लगाकर, हथियारको ठीक तौरपर न रखकर, गड्ढेको न पूरकर, और कुएकी मन न बनाकर, अर्थात् इन बातोंकी वजहसे जो पुरुष किसीकी हत्यामें कारण बन जाय, तो उसे दण्डपारुष्यमें बतलाये हुए उचित दण्ड दिये जावें ॥ १९ ॥

वृक्षच्छेदने दम्यरश्मिहरणे चतुष्पदानामदान्तसेवने वा काष्ठलोष्टपाषाणदण्डबाणबाहुविक्षेपणेषु याने हस्तिना च ॥ २० ॥ संघट्टने चापेहीति प्रक्रोशन्नदण्ड्यः ॥ २१ ॥

वृक्ष काटते समय, मारनेवाले बैल आदिकी रस्सी खोलते समय, पहिले पहिले चौपायोंको सवारीमें चलानेका अभ्यास कराते समय, अथवा दोका आपसमें झगड़ा होनेपर लकड़ी, ढेला, पत्थर, डण्डे, बाण फेंकने और हाथापाई करते समय, तथा हाथीकी सवारी करते समय, और भीड़में हटजाओ २ इस प्रकार चिल्लानेपर भी यदि बीचमें आ जानेसे किसीके हाथ पांव टूट जावें, तो वृक्ष काटनेवाले आदि पुरुष दण्डनीय न समझे जावें ॥ २०-२१ ॥

हस्तिना रोषितेन हतो द्रोणान्नमद्यकुम्भं माल्यानुलेपनं दन्तप्रमार्जनं च पटं दद्यात् ॥ २२ ॥

यदि कोई पुरुष 'मैं हाथीके द्वारा मारा जाऊँ' ऐसा सोचकर सड़कपर उसके रास्तेमें आकर लेट जावे, और इस लिये गुस्सेमें आकर हाथी उसे मार देवे, तो उसके उत्तराधिकारी बन्धु बान्धवोंको उचित है कि वे द्रोणभर अन्न मद्यका एक घड़ा, माला, अनुलेपन (माथेपर लगानेके लिये सिन्दूर या चन्दन आदि) और दान्त साफ करनेका वस्त्र, हाथीके लिये देवे ॥ २२ ॥

अश्वमेधावभृथस्नानेन तुल्यो हस्तिना वध इति पादप्रक्षालनम् ॥ २३ ॥ उदासीनवधे यातुरुत्तमो दण्डः ॥२४॥ शृङ्गिणा दंष्ट्रिणा वा हिंस्यमानममोक्षयतः स्वामिनः पूर्वः साहसदण्डः ॥ २५ ॥

क्योंकि जितना पुण्य अश्वमेधके अनन्तर पवित्र स्नान करनेसे होता है, उतनाही पुण्य हाथीके द्वारा मारे जानेपर होता है, इसलिये द्रोणभर अन्न आदि देना, यह हाथीकी पूजा विशेष है ॥ २३ ॥ परन्तु यदि कोई पुरुष इस प्रकार मरना न चाहे, और वह सवारके प्रमादसे हाथीके द्वारा मारा जावे, तो सवारको उत्तम साहस दण्ड दियाजाय ॥ २४ ॥ यदि किसी पुरुषको, गौ

आदि सींगसे मारें, अथवा घोड़े आदि दांतसे काटें, और गौ आदिका मालिक उसको न छुड़ावे, तो मालिकको प्रथम साहस दण्ड दियाजाय ॥ २५ ॥

प्रतिक्रुष्टस्य द्विगुणः ॥ २६ ॥ शृङ्गिदंष्ट्रिभ्यामन्योन्यं घातयतस्तच्च तावच्च दण्डः ॥ २७ ॥ देवपशुमृषभमुक्षाणं गोकुमारीं वा वाहयतः पञ्चशतो दण्डः ॥ २८ ॥

मारे या काटे जाने वाले आदमीके 'मुझे छुड़ाओ २, इस प्रकार चिल्लानेपर भी यदि मालिक न छुड़ावे, तो पहिलेसे दुगना दण्ड दिया जावे ॥२६॥ यदि सींग वाले और दांतवाले जानवर आपसमें लड़कर एक दूसरेको मारदें, तो (मारने वाले पशुका) मालिक मरे हुए जानवरकी कीमत और उतनाही दण्ड देवे ॥२७॥ देव सम्बन्धी (देवताके नामपर छोड़े हुए) किसी पशुको, सांडको, बैलको या बछड़ीको जो कोई पुरुष जोते उसे ५०० पण दण्ड दियाजाय ॥ २८ ॥

प्रवासयत उत्तमः ॥ २९ ॥ लोमदोहवाहनप्रजननोपकारिणां क्षुद्रपशूनामादाने तच्च तावच्च दण्डः ॥ ३० ॥ प्रवासने च ॥ ३१ ॥ अन्यत्र देवपितृकार्येभ्यः ॥ ३२ ॥

यदि इनको कोई निकाले या दूर लेजावे, तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाय ॥२९॥ ऊन, दूध, तथा सवारी देनेवाले, और बच्चा पैदा करने वाले छोटे २ पशुओंका जो अपहरण करे, वह उनकी कीमत और उतनाही दण्ड देवे ॥३०॥ इनका प्रवासन करनेपर भी यही दण्ड दिया जावे ॥ ३१ ॥ परन्तु यदि देव-कार्यके लिये या पितृ-कार्यके लिये प्रवासन हो तो कोई दोष नहीं ॥ ३२ ॥

छिन्ननस्यं भग्नयुगं तिर्यक्प्रतिमुखागतं प्रत्यासरद्वा चक्रयुक्तं यातपशुमनुष्यसंबाधे वा हिंसायामदण्ड्यः ॥ ३३ ॥ अन्यथा यथोक्तं मानुषप्राणिहिंसायां दण्डमभ्याभवेत् ॥ ३४ ॥

यदि बैलकी नाथ टूट जाय, या जूआ टूट जाय, या जुता हुआही बैल तिरछा होजाय, या सामनेकी ओर बिल्कुल उलटा होजाय, या अन्य गाड़ियों पशुओं तथा मनुष्योंकी भारी भीड़ हो, ऐसे समयमें यदि किसी मनुष्य या पशुको चोट पहुँच जाय, तो गाड़ी चलाने वालेको अपराधी न समझा जावे ॥ ३३ ॥ यदि ये सब बातें न हों तो मनुष्य या पशुको किसी तरहकी चोट पहुँचनेपर पहिले कहे हुए उचित दण्ड दिये जावें ॥ ३४ ॥

अमानुषप्राणिवधे प्राणिदानं च ॥ ३५ ॥ बाले यातरि यानस्थः स्वामी दण्ड्यः ॥ ३६ ॥ अस्वामिनि यानस्थः प्राप्तव्यवहारो

वा याता ॥३७॥ बालाधिष्ठितमपुरुषं वा यानं राजा हरेत् ॥३८॥

यदि मनुष्य या बड़े पशुके अतिरिक्त कोई छोटासा बकरी या मुर्गी आदि मर जाय, तो वह उसी तरहका दूसरा जानवर देवे ॥ ३५ ॥ यदि उस समय गाड़ी चलाने वाला नाबालिग हो, तो उसका मालिक इन सब दण्डों को भुगते ॥ ३६ ॥ यदि मालिक उपस्थित न हो, तो गाड़ीमें सवार होनेवाला पुरुष, अथवा दूसरा बालिग सारथि इस दण्डको भोगे ॥ ३७ ॥ यदि गाड़ीमें बालक के सिवाय कोई न हो, तो राजा उसे जब्त करले ॥३८॥

कृत्याभिचाराभ्यां यत्परमापादयेत्तदापादयितव्यः ॥३९॥ कामं भार्यायामनिच्छन्त्यां कन्यायां वा दारार्थिनां भर्तरि भार्याया वा संवननकरणम् ॥ ४० ॥ अन्यथा हिंसायां मध्यमः साहस-दण्डः ॥ ४१ ॥

कृत्या और अभिचार कर्मोंसे जो दूसरेको तंग करे, उसे गिरफ्तार कर लिया जाय ॥ ३९ ॥ जो स्त्री पतिको न चाहे, उस पर पति, कन्यापर स्त्रीको चाहनेवाले पुरुष, और अपने पतिपर भार्या, कृत्या वशीकरण आदि तान्त्रिक प्रयोगोंको कर सकते हैं। इतनेमें वे अपराधी न समझे जावें ॥ ४० ॥ इससे अतिरिक्त विषयमें तान्त्रिक प्रयोग करनेपर, करने वालोंको मध्यम साहस दण्ड दिया जाय ॥ ४१ ॥

मातापित्रोर्भगिनीं मातुलानीमाचार्याणां स्नुषां दुहितरं भगिनीं वाधिचरतः लिङ्गच्छेदनं वधश्च ॥ ४२ ॥ सकामा तदेव लभेत ॥ ४३ ॥

जो पुरुष, माता और पिताकी बहिन (मासी और बूआ), मामाकी स्त्री (मामी) गुरुमाता (गुरुकी स्त्री), पुत्रवधू, अपनी लड़की और अपनी बहिनके साथ व्यभिचार करे, उसकी उपस्थ इन्द्रिय और अण्डकोश काटकर प्राण दण्ड दिया जावे ॥४२॥ यदि मासी बूआ आदि स्वयं ऐसा करवावें, तो उन्हें भी दोनों स्तन और भगका छेदन करके प्राण दण्ड दिया जावे ॥ ४३ ॥

दासपरिचारकाहितकभुक्ता च ॥ ४४ ॥ ब्राह्मण्यामगुप्तायां क्षत्रियस्योत्तमः ॥ ४५ ॥ सर्वस्वं वैश्यस्य ॥ ४६ ॥ शूद्रः कटाग्निना दह्येत ॥४७॥ सर्वत्र राजभार्यागमने कुम्भीपाकः ॥ ४८ ॥

दास, परिचारक और बन्धुए यदि व्यभिचार करें, तो उन दोनोंको भी वही दण्ड दिया जावे ॥ ४४ ॥ स्वतन्त्र रहने वाली ब्राह्मणीके साथ यदि

क्षत्रिय व्यभिचार करे, तो उसे उत्तम साहसदण्ड दिया जावे ॥ ४५ ॥ यदि वैश्य करे तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त करली जावे ॥ ४६ ॥ यदि शूद्र करे, तो उसको तिनकोंकी आगमें जला देना चाहिए ॥ ४७ ॥ राजाकी स्त्रीके साथ जो कोई भी व्यभिचार करे, उसे तपे भाड़में भून दिया जावे ॥ ४८ ॥

श्वपाकीगमने कृतकबन्धाङ्कः परविषयं गच्छेच्छ्वपाकत्वं वा ॥ ४९ ॥ शूद्रश्वपाकस्यार्यागमने वधः स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम् ॥ ५० ॥ प्रव्रजितागमने चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ५१ ॥ सकामा तदेव लभेत ॥ ५२ ॥

चण्डालीके साथ गमन करनेपर पुरुषके माथेपर छाप लगाकर उसे देश से बाहर निकाल दिया जावे। यदि गमन करने वाला पुरुष शूद्र हो, तो उसे चण्डालभी बनाया जा सकता है ॥ ४९ ॥ चण्डाल यदि किसी आर्या (ब्राह्मणी क्षत्रिया, वैश्या) के साथ गमन करे, तो उसे प्राण दिया जाय, और स्त्रीके कान तथा नाक काट दिये जावें ॥ ५० ॥ सन्यासिनीके साथ गमन करनेपर २४ पण दण्ड दिया जाय, ॥ ५१ ॥ यदि संन्यासिनी कामवश ऐसा करवावे तो उसेभी यही (२४पण) दण्ड दिया जाय ॥ ५२ ॥

रूपाजीवायाः प्रसह्योपभोगे द्वादशपणो दण्डः ॥ ५३ ॥ बहूनामेकाधिचरतां पृथक्चतुर्विंशतिपणो दण्डः ॥ ५४ ॥ स्त्रियमयोनौ गच्छतः पूर्वः साहसदण्डः ॥ ५५ ॥ पुरुषमधिमेहतश्च ॥ ५६ ॥

वेश्याके साथ बलात्कार संभोग करनेपर १२ पण दण्ड दिया जावे, ॥५३॥ यदि बहुतसे आदमी किसी एक स्त्रीके साथ भोग करें, तो उन्हें पृथक् पृथक् २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५४ ॥ स्त्रीको यदि योनिके अतिरिक्त स्थान से (गुदा मुख आदिमें) कोई भोग करे, तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जावे ॥ ५५ ॥ पुरुषके साथ गमन (इग़लाम) करने परभी यही (प्रथम साहस) दण्ड दिया जावे ॥ ५६ ॥

मैथुने द्वादशपणः तिर्यग्योनिष्वनात्मनः ।
दैवतप्रतिमानां च गमने द्विगुणः स्मृतः ॥ ५७ ॥
अदण्ड्यदण्डने राज्ञो दण्डस्त्रिंशद्गुणोऽम्भसि ।
वरुणाय प्रदातव्यो ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम् ॥ ५८ ॥

गौ आदि पशुयोनियोंमें गमन करनेवाले पापी पुरुषको १२ पण, और देव प्रतिमाओंके साथ गमन करनेपर २४ पण दण्ड दिया जाय ॥ ५७ ॥ अद-

दण्डनीय व्यक्तिको दण्ड देनेपर, राजाको उस दण्डसे ३० गुणा दण्ड दिया जावे और वह दण्डका धन, वरुण देवताके उद्देश्यसे जलमें डाल दिया जावे, और फिर ब्राह्मणोंको देदिया जावे ॥ ५८ ॥

तेन तत्पूयते पापं राज्ञो दण्डापचारजम् ।
शास्ता हि वरुणो राजा मिथ्या व्याचरतां नृषु ॥ ५९ ॥

इति कण्टकशोधने चतुर्थे ऽधिकरणे अतिचारदण्डः त्रयोदशो ऽध्यायः ॥१३॥
आदितः नवतिः ॥ ९० ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य कण्टकशोधनं
चतुर्थमधिकरणं समाप्तम् ॥ ४ ॥

ऐसा करनेसे, ठीक दण्ड न देनेके कारण उत्पन्न हुआ हुआ राजा का पाप, शुद्ध हो जाता है । अर्थात् राजा उस पापसे छूट जाता है । क्योंकि मनुष्योंमें मिथ्या व्यवहार (अनुचित व्यवहार) करने वाले राजाओंका शासन वरुण ही करता है ॥ ५९ ॥

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त ।

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरण समाप्त ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरण

पहला अध्याय

८९ प्रकरण

दण्ड (उपांशुवध) प्रयोग ।

दुर्गराष्ट्रयोः कण्टकशोधनमुक्तम् ॥१॥ राजराज्ययोर्वक्ष्यामः ॥ २ ॥

दुर्ग और राष्ट्रके कण्टकोंका शोधन चतुर्थ अधिकरणमें कह दिया गया है ॥ १ ॥ अब राजा और उसके अमात्य आदिमें कण्टकोंका शोधन बताया जायगा ॥ २ ॥

राजानमवगृह्योपजीविनः शत्रुसाधारणा वा ये मुख्यास्तेषु गूढपुरुषप्रणिधिः कृत्यपक्षोपग्रहो वा सिद्धिर्यथोक्तं पुरस्तादपजापोपसर्पो वा यथा च पारग्रामिके वक्ष्यामः ॥ ३ ॥

राजाको नीचा करके रहने वाले, अथवा दुश्मनोंसे मिले हुए जो मुख्य पुरुष (प्रधान पुरुष=मन्त्री पुरोहित सेनापति युवराज आदि) होवें, उनके मुकाबलेमें सिद्धिलाभ करनेके लिये यह आवश्यक है कि राजा अत्युत्तम गुप्त पुरुषोंकी नियुक्ति करे, और जो व्यक्ति शत्रुओंसे खार खाए बैठे हों उनको अपनी ओर मिलावे । उनकी नियुक्ति और काम करानेका ढंग पहिले (१ अधि- १२ अध्यायमें) कह चुके हैं, और आगे पारग्रामिक (१३ अधि० १ अध्या०) प्रकरण में कहा जायगा ॥ ३ ॥

राज्योपघातिनस्तु वल्लभाः संहता वा ये मुख्याः प्रकाशमशक्याः प्रतिषेद्धुं दूष्यास्तेषु धर्मरुचिरुपांशुदण्डं प्रयुञ्जीत ॥ ४ ॥

जो अध्यक्ष अथवा आपसमें मिले हुए अमात्य आदि राज्यका नाश कर रहे हों, जिन दुष्टोंको कि खुले तौरपर कुछ न कहा जासके (क्योंकि ये बड़े २ अधिकारोंपर रहते हैं, इनको सीधा कहनेसे प्रजामें असन्तोष फैलनेकी सम्भावना रहती है), धर्मात्मा राजाको चाहियेकि उनमें उपांशुदण्ड (ऐसा वध आदि दण्ड जिसमें मारने का तथा मारने वाले आदिका कुछभी विशेष

पता न लगने पाय , अर्थात् छिपे २ चुपचाप वध आदि करा देने) का प्रयोग करे ॥ ४ ॥

दूष्यमहामात्रभ्रातरमसत्कृतं सत्त्री प्रोत्साह्य राजानं दर्शयेत् ॥५ ॥ तं राजा दूष्यद्रव्योपभोगातिसर्गेण दूष्ये विक्रमयेत् ॥६॥ शस्त्रेण रसेन वा विक्रान्तं तत्रैव घातयेद्भ्रातृघातकोऽयमिति ॥७॥

दूषणीय हस्त्यध्यक्ष आदिके भाईको, जिसको कि दायभाग न मिला हो, सत्कार पूर्वक उभार कर, सत्री राजाको दिखावे, अर्थात् उसे राजाके पास लावे ॥ ५ ॥ राजा उसको दूषणीयका निग्रह करनेके लिये हथियार आदि सामान देकर, झगड़ा करवा देवे ॥ ६ ॥ जब वह विष या शस्त्र आदिसे अपने भाईको मार देवे, तो इसी अपराधमें 'यह अपने भाईका घातक है' ऐसा कहकर राजा उसेभी मरवा देवे ॥ ७ ॥

तेन पारशवः परिचारिकापुत्रश्च व्याख्यातौ ॥ ८ ॥ दूष्यमहामात्रं वा सत्त्रिप्रोत्साहितो भ्राता दायं याचेत ॥ ९ ॥

यही ढंग पारशव महामात्र (महामात्रका, नीच वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र) और परिचारिका पुत्र (दासीसे उत्पन्न हुए पुत्र) के सम्बन्धमें जानना चाहिये। अर्थात् सत्री इनको उभारकर लावे, ये अपने पिताको मारदें, और इन्हें पितृघातक कहकर इसी अपराधमें राजा मरवा देवे ॥ ८ ॥ अथवा सत्रीसे उभारा हुआ भाई, दूषणीय महामात्रसे अपना दाय भाग मांगे ॥ ९ ॥

तं दूष्यगृहप्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो हत्वा ब्रूयात् ॥ १० ॥ हतोऽयं दायकामुक इति ॥ ११ ॥ ततो हतपक्षं परिगृह्येतरं निगृह्णीयात् ॥ १२ ॥

फिर तीक्ष्ण पुरुष (घातक गुप्तचर व्यक्ति), दूषणीयके घरके दरवाजेके सामने सोते हुए अथवा अन्यत्र निवास करते हुए इसको रातमें मारकर कहे कि:—॥ १० ॥ यह अपना दायभाग मांगता था, इसलिए इसके महामात्र भाईने इसे मार डाला है ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर राजा हतव्यक्तिके बंधुबांधव लड़के मामा आदिको बुलवाकर, महामात्रको 'यह भाईका घातक है' ऐसा कहकर मरवा डाले ॥ १२ ॥

दूष्यसमीपस्था वा सत्रिणो भ्रातरं दायं याचमानं घातेन परिभर्त्सयेयुः ॥ १३ ॥ तं रात्राविति समानम् ॥ १४ ॥

अथवा दूषणीय (महामात्र आदि) के समीप रहते हुए सभी लोग

दायभाग मांगने वाले भाईको, 'हम तुझे मारडालेंगे' ऐसा कहकर धमकावें; फिर पूर्वोक्त रीतिसे रातमें स्वयं तीक्ष्ण उसे मारदेवे, आगे सब पूर्ववत् ही समझना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥

दूष्यमहामात्रयोर्वा यः पुत्रः पितुः पिता वा पुत्रस्य दारानधिचरति भ्राता वा भ्रातुस्तयोः कापटिकमुखः कलहः पूर्वेण व्याख्यातः ॥ १५ ॥

दूष्य और महामात्रका पुत्र, अपने पिताकी स्त्रियोंके साथ, पिता पुत्रोंकी स्त्रियोंके साथ, और भाई भाईकी स्त्रीके साथ यदि व्यभिचार करें, तो उनका (पितापुत्र और भाई भाईका) आपसमें कापटिक गुप्तचर (देखो—१ अधि०, ११ अध्या० २—३ सूत्र) झगड़ा करवा देवे। एक दूसरेको मार देनेपर पहिलेकी तरह कार्य किया जाय ॥ १५ ॥

दूष्यमहामात्रपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्त्री राजपुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह न्यस्तोऽसीत्युपजपेत् ॥ १६ ॥ प्रतिपन्नं राजा रहसि पूजयेत् ॥ १७ ॥ प्राप्तयौवराज्यकालं त्वां महामात्रभयान्नाभिषिञ्चामीति ॥ १८ ॥

दूष्य और महामात्रके पुत्रके पास, जोकि अपने आपको बड़ा बहादुर और उदार समझता हो, सत्री आवे, और कहे कि तुम तो युवराज होसकते हो, शत्रुके भयसे यहां पड़े हुए हो इत्यादि ॥ १६ ॥ सत्रीके कथनको स्वीकार करके जब वह राजाके पास आवे, तो एकान्तमें राजा उसका अच्छी तरह सत्कार रहे ॥ १७ ॥ और कहे कि तुम्हारे यौवराज्यका समय आगया है, मैं केवल महामात्र (राज्यकी कामना करनेवाला, उस लड़केका पिता) के भयसे तुम्हारा अभिषेक नहीं करता, इत्यादि ॥ १८ ॥

तं सत्त्री महामात्रवधे योजयेत् ॥ १९ ॥ विक्रान्तं तत्रैव घातयेत्पितृघातकोऽयमिति ॥ २० ॥ भिक्षुकी वा दूष्यभार्यां सांवननकीभिरौषधीभिः संवास्य रसेनातिसंदध्यात् ॥ २१ ॥ इत्याप्यः प्रयोगः ॥ २२ ॥

फिर सत्री उस लड़केको अपने पिता महामात्रके वध करनेके लिये तैयार करदेवे ॥ १९ ॥ जब वह महामात्रका वध करदेवे, तो इसी अपराधको सामने रखकर यह पितृघातक है, ऐसा कहकर राजा उसे भी मरवा डाले ॥ २० ॥ अथवा गुप्तचरका काम करती हुई भिक्षुकी, दूष्य (महामात्र आदि)

की भार्याको कहे कि मैं वशीकरणकी औषधि बहुत अच्छी तरह जानती हूँ, तुम यह औषधि अपने पतिको खिलाना, इस प्रकार वशीकरणकी जगह विष देकर मरवा देवे ॥ २१ ॥ इस प्रकार किये गये कार्यको 'आप्य प्रयोग' कहते हैं ॥ २२ ॥

दूष्यमहामात्रमटवीं परग्रामं वा हन्तुं कान्तारव्यवहिते वा देशे राष्ट्रपालमन्तपालं वा स्थापयितुं नागरस्थानं वा कुपितमवगृहीतुं सार्थातिवाह्यं प्रत्यन्ते वा सप्रत्यादेयमादातुं फल्गुबलं तीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ २३ ॥

दूष्य महामात्र, जंगलके निरीक्षक और बाग़ी गांवको मारनेके लिये, तीक्ष्ण पुरुषोंके साथ, राजा थोड़ीसी सेना यह बहाना करके भेजे कि इस जंगलके पार अमुक नगरमें राष्ट्रपाल या अन्तपालकी स्थापना करनी है, या अमुक नगरमें प्रजा विरुद्ध होगई है उसे वशमें करना है, या यह बहाना करे कि राज्यकी सीमापर दूसरे कृषक आदि पुरुषोंने हमारी भूमि दबाली है, उसे उनसे वापस लेना है इत्यादि ॥ २३ ॥

रात्रौ दिवा वा युद्धे प्रवृत्ते तीक्ष्णाः प्रतिरोधकव्यञ्जना वा हन्युरभियोगे हत इति ॥ २४ ॥ यात्राविहारगतो वा दूष्यमहामात्रान्दर्शनायाह्वयेत् ॥ २५ ॥ ते गूढशस्त्रैस्तीक्ष्णैः सह प्रविष्टा मध्यमकक्ष्यायामात्मविचयमन्तः प्रवेशनार्थं दद्युः ॥ २६ ॥

इसके बाद रातमें या दिनमें लड़ाई होनेपर तीक्ष्ण पुरुष चोर या डाकुओंका भेस बनाकर जिसको मारना हो मार डालें, और फिर कहदें कि यह लड़ाईमें मारा गया है ॥ २४ ॥ यात्रा या विहारके लिये तैयार हुआ २ राजा, दूष्य महामात्रोंको देखनेके लिये अपने पास बुलावे ॥ २५ ॥ अपने पास शस्त्र छिपाये हुए तीक्ष्ण पुरुष भी महामात्रोंके साथ २ राजाके पास भीतर जावें। दूसरी ड्योढ़ीपर, प्रवेश करनेके लिये अपनी तलाशी देवें ॥ २६ ॥

ततो दौवारिकाभिगृहीतास्तीक्ष्णा दूष्यप्रयुक्ताः स्म इति ब्रूयुः ॥ २७ ॥ ते तदभिविख्याप्य दूष्यान्हन्युः ॥ २८ ॥

जब द्वारपाल हथियारोंके साथ उन्हें (तीक्ष्ण पुरुषोंको) पकड़े, तो वे कहें कि हमको दूष्योंने राजाके मारनेको हथियार लानेके लिये कहा है। (यह बात उसी हालतमें समझनी चाहिये, जबकि भीतर सशस्त्र जानेकी किसीको भी आज्ञा न हो) ॥ २७ ॥ तब नगरमें यह प्रख्यात करके कि दूष्य महामात्र राजाको मारना चाहते थे, उन्हें (महामात्रोंको) मरवा दिया जावे ॥ २८ ॥

तीक्ष्णस्थाने चान्ये वध्याः ॥ २९ ॥ बहिर्विहारगतो वा दूष्यानासन्नावासान्पूजयेत् ॥ ३० ॥ तेषां देवीव्यञ्जना वा दुःस्त्री रात्रावावासेषु गृह्येतेति समानं पूर्वेण ॥ ३१ ॥

तथा तीक्ष्ण पुरुषोंके स्थानपर और किन्हींको मरवा दिया जावे ॥२९॥ अथवा बाहर विहारके लिये गया हुआ राजा, अपने पासमें ही ठहरे हुए दूष्यों का बहुत अच्छी तरह आदरसत्कार करे ॥ ३० ॥ फिर रातमें, किसी दुष्ट स्त्रीको महाराणीके भेसमें बनाकर, उनके शयन स्थानमें भेजदेवे, तदनन्तर सिपाहियों के द्वारा वहींपर उसे गिरफ्तार कराले, पुनः इसी अपराधमें दूष्योंको मरवा देवे, इत्यादि ॥ ३१ ॥

दूष्यमहामात्रं वा सूदो भक्षकारो वा ते शोभन इति स्तवेन भक्ष्यभोज्यं याचेत ॥ ३२ ॥ बहिर्वा क्वचिदध्वगतः पानीयं तदुभयं रसेन योजयित्वा प्रतिस्वादने तावेवोपयोजयेत् ॥ ३३ ॥ तदभिविख्याप्य रसदाविति घातयेत् ॥ ३४ ॥

अथवा राजा, दूष्य महामात्रसे "तुम्हारा रसोईया और पकवान बनाने-वाला बड़ेही चतुर हैं' इस प्रकार उनकी स्तुति करके, कुछ खाद्य पदार्थ मांगे ॥ ३२ ॥ या कहीं बाहर रास्तेमें जाता हुआ जल मांगे, और उन दोनों वस्तुओंमें विष मिलाकर, लीजिये आपही पहिले खाईये या पीजिये, ऐसा कहकर दूष्य महामात्रको ही वह खाद्य या पेय लौटादे । वे खापीकर मर जावेंगे ॥ ३३ ॥ फिर भोजन बनानेवालेको ये दोनों विष देनेवाले हैं, ऐसा प्रसिद्ध करके मरवा देवे ॥ ३४ ॥

अभिचारशीलं वा सिद्धव्यञ्जनो गोधाकूर्मकर्कटकूटानां लक्षण्यानामन्यतमप्रकाशनेन मनोरथानवाप्स्यसीति ग्राहयेत् ॥ ३५ ॥ प्रतिपन्नं कर्मणि रसेन लोहमुसलैर्वा घातयेत्कर्मव्यापदा हत इति ॥ ३६ ॥

सिद्धके भेसमें कोई गुप्तचर, आभिचारिक कर्मोंमें श्रद्धा रखनेवाले दूष्य महामात्रको कहे कि, अच्छे लक्षणोंसे युक्त गोह, कछुवा, केंकड़ा और टूटे हुए सींगवाले हरिण, इन चारोंमेंसे किसीको आभिचारिक विधिसे श्मशानमें पकाकर खानेपर तुम अपने सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त करसकोगे ॥ ३५ ॥ जब दूष्य महामात्र इसपर विश्वास करके श्मशानमें अभिचार कर्मको प्रारम्भ करे तो उसे खानेमें विष देकर अथवा लोहेके मूसलोंसे कूटकर मार दिया जावे ।

और यह प्रसिद्ध करदिया जावे कि कर्मके विगुण होजानेके कारण पिशाच आदिने उसको मार दिया है ॥ ३६ ॥

चिकित्सकव्यञ्जनो वा दौरात्मिकमसाध्यं वा व्याधिं दूष्यस्य स्थापयित्वा भैषज्याहारयोगेषु रसेनातिसंदध्यात् ॥ ३७ ॥ सूदारालिकव्यञ्जना वा प्रणिहिता दूष्यं रसेनातिसंदध्युः ॥ ३८ ॥ इत्युपनिषत्प्रतिषेधः ॥ ३९ ॥

अथवा चर वैद्यका भेस बनाकर, दूष्यसे कहे कि दुराचारसे उत्पन्न, या अन्य कोई असाध्यरोग तुम्हें होगया है, इस प्रकार कहकर चिकित्सा करते समय औषधि या भोजनके द्वारा विष देकर मारडाले ॥ ३७ ॥ अथवा मांस पकानेवाले या चावल आदि पकानेवाले पाचकके भेसमें जाकर दूष्यके पास रहे और उसे विष देकर मार डाले ॥ ३८ ॥ यहांतक गुप्तरूपसे दूष्योंके निग्रहके ढंग बताये गये ॥ ३९ ॥

उभयदूष्यप्रतिषेधस्तु ॥ ४० ॥ यत्र दूष्यः प्रतिषेद्धव्यस्तत्र दूष्यमेव फल्गुबलतीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत् ॥ ४१ ॥ गच्छामुष्मिन्दुर्गे राष्ट्रे वा सैन्यमुत्थापय ॥ ४२ ॥

अब दो दूष्योंको एकही यत्नसे किस प्रकार नष्ट किया जाय, इसका उपाय बताते हैं ॥ ४० ॥ जहांपर एक दूष्यका निराकरण करना हो, वहां दूसरे दूष्यको ही थोड़ीसी सेना और तीक्ष्ण पुरुषोंके साथ भेजे ॥ ४१ ॥ उससे यह कहे कि अमुक किले या प्रान्तमें जाओ और वहां सेनाके योग्य आदमियोंको सेनामें भर्ती करो ॥ ४२ ॥

हिरण्यं वा ॥ ४३ ॥ वल्लभाद्वा हिरण्यमाहारय ॥ ४४ ॥ वल्लभकन्यां वा प्रसह्यानय ॥ ४५ ॥ दुर्गसेतुवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्मणामन्यतमद्वा कारय ॥ ४६ ॥ राष्ट्रपाल्यमन्तपाल्यं वा ॥ ४७ ॥

अथवा सुवर्ण आदि धन जमा करो ॥ ४३ ॥ या अमुक अध्यक्षसे धन आहरण करलाओ ॥ ४४ ॥ या अमुक अध्यक्षकी कन्याको बलात्कार लेआओ ॥ ४५ ॥ या अमुक स्थानपर दुर्ग, मकान बनवाओ, व्यापारियोंके मार्गको ठीक करवाओ, जंगलमें मकान बनवाओ, खानोंमें, लकड़ीके या हाथियोंके जंगलोंमें अमुक काम करवाओ ॥ ४६ ॥ या राष्ट्रपाल अथवा अन्तपालके कार्योंको करवाओ ॥ ४७ ॥

यश्च त्वा प्रतिषेधयेन्न वा ते साहाय्यं दद्यात्स बन्धव्यः स्यादिति ॥ ४८ ॥ तथैवेतरेषां प्रेषयेदमुष्याविनयः प्रतिषेद्धव्य इति ॥४९॥ तमेतेषु कलहस्थानेषु कर्मप्रतिघातेषु वा विवदमानं तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा प्रच्छन्नं हन्युः ॥ ५० ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५१ ॥

यदि तुम्हारे इन कार्योंमें कोई रुकावट डाले, या सहायता न देवे, उसे गिरफ्तार करालिया जाय, इत्यादि ॥ ४८ ॥ और इसी प्रकार दूसरे दूष्योंको यह मौखिकसूचना भेजदेवे कि अमुक व्यक्तिकी उद्दण्डताओंको रोको, इत्यादि ॥ ४९ ॥ इस तरह एक दूसरेमें झगड़ा होनेपर या काममें रुकावट डालेजानेपर विवाद उपस्थित करनेवाले दूष्यको गुप्तरूपसे तीक्ष्ण पुरुष शस्त्रोंके द्वारा मार देवें ॥ ५० ॥ इस प्रकार दूसरे दूष्योंपर, राजाके द्वारा नियुक्त हुए पुरुषके वधका अपराध लगाकर, उनको भी मरवा दिया जावे ॥ ५१ ॥

पुराणां ग्रामाणां कुलानां वा दूष्याणां सीमाक्षेत्रखलवेश्म-मर्यादासु द्रव्योपकरणसस्यवाहनहिंसासु प्रेक्षाकृत्योत्सवेषु वा समुत्पन्ने कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा ब्रूयुः ॥ ५२ ॥

दूष्य नगर, ग्राम अथवा परिवारोंके, सीमा, खेत, खल्यान और मकानोंकी मर्यादाके विषयमें, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न और सवारीका विनाश करदेनेसे तथा तमाशे और उत्सवोंमें परस्पर झगड़े होनेपर अथवा तीक्ष्ण पुरुषोंके द्वारा दूष्य-नगर आदिमें झगड़ा करादेनेपर, तीक्ष्ण पुरुषही छिपे तौरपर कुछ दूष्योंको हथियारोंसे मार डालें; और दूसरे दूष्योंपर उस हत्याको थोपते हुए कहें कि तुम्हीं अपराधी हो ॥ ५२ ॥

एवं क्रियन्ते ये ऽमुना कलहायन्त इति ॥ ५३ ॥ तेन दो-षेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५४ ॥ येषां वा दूष्याणां जातमूलाः कलहास्तेषां क्षेत्रखलवेश्मान्यादीपयित्वा बन्धुसंबन्धिषु वाहनेषु वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा तथैव ब्रूयुः ॥ ५५ ॥

जो उनके साथ झगड़ा करते हैं उनका यही हाल किया जाता है ॥ ५३ ॥ इसी अपराध को सामने रखकर अन्य दूष्योंको भी मरवा दिया जावे ॥ ५४ ॥ जिन दूष्य पुरुषोंके आपसके झगड़े जड़ पकड़ गए हों, उनके खेत खल्यान और मकान आदिको जलाकर, तीक्ष्ण पुरुष उनके भाई बन्धुओं सम्ब-

न्धियों और घोड़े आदि सवारियोंको हथियारसे मारकर उसी प्रकार कहे कि:— ॥ ५५ ॥

अ‌ुना प्रयुक्ताः स्म इति ॥ ५६ ॥ तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५७ ॥ दुर्गराष्ट्रदूष्यान्वा सत्त्रिणः परस्परस्यावेशनिकान्कारयेयुस्तत्र रसदा रसं दद्युस्तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः ॥ ५८ ॥

अमुक व्यक्तिने हमको यह काम करनेके लिए कहा, इत्यादि ॥ ५६ ॥ इसी अपराधमें उनको (अन्य दूष्योंको) गिरफ्तार करके प्राण दण्ड दे दिया जाय ॥ ५७ ॥ आपसमें दुश्मनी रखनेवाले, किलेमें और उसके बाहर रहते हुए दूष्योंको, सत्रिपुरुष परस्पर मेल कराकर, एक दूसरेके घरमें उनको निमन्त्रण दिलवावें, और विष देनेवाले तीक्ष्ण पुरुष वहांपर भोजनके साथ निमन्त्रित दूष्यको विष देदेवें । इसी (विष देनेके) अपराधमें राजा दूसरे दूष्यको प्राण दण्ड दे देवे ॥ ५८ ॥

भिक्षुकी वा दूष्यराष्ट्रमुख्यं दूष्यराष्ट्रमुख्यस्य भार्या स्नुषा दुहिता वा कामयत इत्युपजपेत् ॥५९॥ प्रतिपन्नस्याभरणमादाय स्वामिने दर्शयेत् ॥ ६० ॥

अथवा (चरका कार्य करती हुई) कोई भिक्षुकी, राष्ट्रके किसी उच्चपदाधिकारी दूष्यको जाकर झूंठ मूंठ कहे कि अमुक दूष्य उच्चपदाधिकारीकी भार्या, पुत्रवधू या लड़की आपको बहुत चाहती है ॥ ५९ ॥ यदि वह इस बातपर विश्वास करले, तो उससे भार्या आदिके नामपर उसका कोई आभूषण लेकर दूसरे दूष्यको आकर दिखला देवे ॥ ६० ॥

असौ ते मुख्यो यौवनोत्सिक्तो भार्यां स्नुषां दुहितरं वाभिमन्यत इति ॥ ६१ ॥ तयोः कलहो रात्राविति समानम् ॥६२॥

और कहे कि देखो यह पदाधिकारी जवानीके मदके गर्वमें आकर तुम्हारी भार्या, पुत्रवधू या कन्याकी कामना करता है, इत्यादि ॥ ६१ ॥ इस प्रकार जब उनका आपसमें अच्छी तरह झगड़ा हो जावे तो रातमें तीक्ष्ण पुरुष एक दूष्यको हथियारोंसे मार डालें, और प्रसिद्ध करदें कि अमुक दूष्यने इसको मारा है, राजा इसी अपराधमें उसको भी मरवा डाले ॥ ६२ ॥

दूष्यदण्डोपनतेषु तु युवराजः सेनापतिर्वा किंचिदुपकृत्यापक्रान्तो विक्रमेत ॥ ६३ ॥ ततो राजा दूष्यदण्डोपनतानेव प्रेषयेत्फल्गुबलतीक्ष्णयुक्तानिति समानाः सर्व एव योगाः ॥ ६४ ॥

दण्डोपनत (सैनाके द्वारा वशमें किये हुए, देखो ७ अधि० १६ अध्या०) दूष्योंके सम्बन्धमें, युवराज या सेनापति उनका कुछ अपकार करके फिर अलहदा रहता हुआ ही झगड़ा करता रहे ॥६३॥ इसके बाद राजा दण्डोपनत दूष्योंको ही, थोड़ीसी सेना और तीक्ष्ण पुरुषोंको साथ देकर दूसरे दण्डोपनत दूष्योंको दबानेके लिये भेज देवे, इस प्रकार ये सबही उपाय प्रायः एकसमान हैं ॥ ६४ ॥

तेषां च पुत्रेष्वनुक्षिपत्सु यो निर्विकारः स पितृदायं लभेत ॥ ६५ ॥ एवमस्य पुत्रपौत्राननुवर्तते राज्यमपास्तपुरुषदोषमिति ॥ ६६ ॥

वध किये हुए दूष्य पुरुषोंके पुत्रोंमेंसे वही पुत्र अपने पिताकी सम्पत्ति का अधिकारी हो सकता है, जो राजाकी निन्दा करने वाला न हो, अपने पिता के मारे जानेपर भी द्रोह या बदलेका खयाल न करे ॥ ६५ ॥ यदि कोई पुरुष (राजाके विरुद्ध) अपने चित्तमें किसी प्रकारका विचार न आनेदे, तो उसके पुत्र पौत्र आदि बराबर बेखटके अपने पिताकी सम्पत्तिको भोग सकते हैं ॥ ६६ ॥

स्वपक्षे परपक्षे वा तूष्णीं दण्डं प्रयोजयेत् ।
आयत्यां च तदात्वे च क्षमावानविशङ्कितः ॥ ६७ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे दाण्डकर्मिकं प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदित एकनवतिः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार क्षमाशील राजा वर्त्तमान और भविष्यमें बिना किसी शङ्काके उचित रूपसे स्वपक्ष और परपक्षमें इस गूढ़ दण्डका प्रयोग करे ॥ ६७ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

९० प्रकरण

कोशका अधिक संग्रह ।

कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रः संगृह्णीयात् ॥ १ ॥ जनपदं महान्तमल्पप्रमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत ॥ २ ॥

खज़ाना थोड़ा होनेपर, या अचानक अर्थ कष्ट उपस्थित होनेपर राजा कोशका संचय करे । अर्थात् उसे बढ़ावे ॥१॥ बड़े या छोटे प्रान्तसे, जिसके जीवन

का निर्भर वृष्टि परही हो, तथा जहां अन्न खूबहो, अन्नका तीसरा या चौथा हिस्सा, राजा मांगकर प्रजाकी अनुमतिसे लेवे (अर्थात् प्रजापर बलात्कार करके न लेवे) ॥ २ ॥

यथासारं मध्यमवरं वा दुर्गसेतुकर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्मोपकारिणं प्रत्यन्तमल्पप्राणं वा न याचेत ॥३॥ धान्यपशुहिरण्यादि निविशमानाय दद्यात् ॥ ४ ॥

इसी प्रकार मध्यम और छोटे २ प्रान्तोंसे भी, वहांपर उत्पन्न होने वाले अन्नके अनुसारही राजा हिस्सा लेवे । परन्तु जो प्रान्त किलों, मकानों, व्यपारी मार्गों, खाली मैदानों, खान, लकड़ी और हाथीके जंगलोंके द्वारा राजा या प्रजाका उपकार करने वाले हों; जो राज्यकी सीमापर हों, और जिनके पास अन्न आदि बहुत थोड़ा हो, उनसे राजा कुछ न मांगे ॥ ३ ॥ नये बसने वाले किसानको खेतीके लिये अन्न, बैल आदि पशु तथा सहायतार्थ धन, सरकारकी ओरसे दिया जावे, ॥ ४ ॥

चतुर्थमंशं धान्यानां बीजभक्तशुद्धं च हिरण्येन क्रीणीयात् ॥ ५ ॥ अरण्यजातं श्रोत्रियस्वं च परिहरेत् ॥ ६ ॥ तदप्यनुग्रहेण क्रीणीयात् ॥ ७ ॥

इस तरहके किसानोंसे, राजा उनके द्वारा पैदा किये हुए अन्नका चौथा हिस्सा खरीद लेवे, और फिर खेतके बीज, तथा उनके खाने योग्य अन्न छोड़ कर बाकीभी खरीद लेवे ॥ ५ ॥ जंगलमें स्वयं पैदा हुए तथा श्रोत्रियके द्वारा उत्पन्न किये अन्नमेंसे राजा हिस्सा न लेवे । खेतके बीज और खाने योग्य अन्न छोड़कर उसमेंसे भी राजा खरीद सकता है ॥ ७ ॥

तस्याकरणे वा समाहर्तृपुरुषा ग्रीष्मे कर्षकाणामुद्वापं कारयेयुः ॥ ८ ॥ प्रमादावस्कन्नस्यात्ययं द्विगुणमुदाहरन्तो बीजकाले बीजलेख्यं कुर्युः ॥ ९ ॥

यदि श्रोत्रिय खेती न करे, तो अधिकारियोंको चाहिए कि वे उस जमीनको अन्य किसानोंसे गरमीमें जुतवा बुवा देवें ॥ ८ ॥ यदि किसानके प्रमादसे खेतमें बोया बीज नष्ट होजाय, तो उससे उसपर दुगना जुरमाना करते हुए अधिकारी जन फिर बीज बोनेके समय, बीजके सम्बन्धकी किसानकी उक्त कारवाईको सरकारी पुस्तकमें लिखलेवें ॥ ९ ॥

निष्पन्ने हरितपक्वादानं वारयेयुः ॥ १० ॥ अन्यत्र शाककट

भङ्गमुष्टिभ्यां देवापतृपूजादानार्थं गवार्थं वा ॥ ११ ॥ भिक्षुक-ग्रामभृतकार्थं च राशिमूलं परिहरेयुः ॥ १२ ॥

जब फसल तैयार होनेवाली हो तो किसानोंको हरा या पक्का अन्न (खेतमेंसे) लेनेसे रोक देवें ॥ १० ॥ परन्तु वे (किसान) देवपूजा या पितृपूजा में देनेके लिये अथवा गायके लिये सागकी मुट्ठी और पुआल आदिकी मुट्ठी खेतसे ले सकते हैं ॥ ११ ॥ भिखारी और गांवके नाई धोबी मालकी आदि चाकरोंके लिये धान्य राशि (खल्यानमें साफ किये हुए नाजका ढेर) के नीचे का हिस्सा छोड़ देवें ॥ १२ ॥

स्वसस्यापहारिणः प्रतिपातो ऽष्टगुणः ॥१३॥ परसस्यापहा-रिणः पञ्चाशद्गुणः सीतात्ययः स्ववर्गस्य ॥ १४ ॥

अपने ही खेतमेंसे जो धान्यकी चोरी करले (किसान ऐसी चोरी सर-कारको पैदावारकी कमी दिखानेके लिये कर सकता है), उसे चोरीके मालका आठगुणा दण्ड दिया जाय ॥ १३ ॥ जो दूसरेके सस्य (खड़ी फसल) अपहरण करे, तथा वह उसी ग्रामका रहने वाला हो तो उसे इस अपराधमें चोरीके मालका पचास गुणा दण्ड दिया जाय ॥ १४ ॥

बाह्यस्य तु वधः ॥१५॥ चतुर्थमंशं धान्यानां षष्ठं वन्यानां तूललाक्षाक्षौमवल्ककार्पासरौमकौशेयकौषधगन्धपुष्पफलशाकपण्या-नां काष्ठवेणुमांसवल्लूराणां च गृह्णीयुः ॥ १६ ॥

यदि अपहरण करनेवाला बाहरके (दूसरे) किसी गांवका हो तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय ॥ १५ ॥ धान्योंका चौथा हिस्सा, और बनमें होनेवाले अन्नादिका तथा रुई, लाख, पाट (जूट), छाल, कपास, अन, रेशम, औषधि, गन्ध, पुष्प, फल, शाक और लकड़ी, बांस, मांस तथा सूखे मांसका, छठा हिस्सा, राजालोग करके तौरपर ग्रहण करें ॥ १६ ॥

दन्ताजिनस्यार्धम् ॥ १७ ॥ तदनिसृष्टं विक्रीणानस्य पूर्वः साहसदण्डः ॥ १८ ॥ इति कर्षकेषु प्रणयः ॥ १९ ॥

हाथी दांत और गौ आदिके चमड़ेका आधा हिस्सा टैक्सके तौरपर राजा लेवे ॥ १७ ॥ जो पुरुष इन वस्तुओंको राजाकी आज्ञाके बिना बेचे, उसे प्रथम साहसदण्ड दिया जाय ॥ १८ ॥ यहां तक किसानोंके विषयमें प्रणय (प्रार्थना, राज्यकर लेनेके लिये कथन करना=राजाकी ओरसे करकी याचना) का निरूपण किया गया ॥ १९ ॥

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालाश्वहस्तिपण्याः पञ्चाशत्कराः ॥२०॥ सूत्रवस्त्रताम्रवृत्तकंसगन्धभैषज्यशीधुपण्याश्चत्वारिंशत्कराः ॥ २१ ॥ धान्यरसलोहपण्याः शकटव्यवहारिणश्च त्रिंशत्कराः ॥ २२ ॥ काचव्यवहारिणो महाकारवश्च विंशतिकराः ॥ २३ ॥ क्षुद्रकारवो वर्धकिपोषकाश्च दशकराः ॥ २४ ॥ काष्ठवेणुपाषाण-मृद्भाण्डपक्वान्नहरितपण्याः पञ्चकराः ॥ २५ ॥

सोना, चांदी, हीरा, मणि, मोती, मूंगा, घोड़े और हाथी इन व्यापारिक द्रव्योंपर, मूल्यका पचासवां हिस्सा टैक्स लिया जाय ॥ २० ॥ सूत, कपड़ा, तांबा, पीतल, कांसा, गन्ध, जड़ीबूटी और शराबपर चालीसवां हिस्सा ॥२१॥ गेहूं, धान आदि अन्न, तेल घी आदि रस, और लोहेपर, तथा जो किराये पर गाड़ी चलाकर अपनी जीविका करते हैं उनसे ३०वां हिस्सा ॥ २२ ॥ कांचका व्यवहार करने वाले और बड़े २ कारीगरोंसे १०वां हिस्सा ॥ २३ ॥ छोटे २ कारीगरोंसे, और कुलटा स्त्रीको घरमें रखने वाले पुरुषसे दसवां हिस्सा ॥ २४ ॥ लकड़ी, बांस, पत्थर, मट्टीके बर्तन, पकवान और हरे शाक आदिपर पांचवां हिस्सा सरकारी टैक्स लिया जाय ॥ २५ ॥

कुशीलवा रूपाजीवाश्च वेतनार्धं दद्युः ॥ २६ ॥ हिरण्यकरम-कर्मण्यानाहारयेयुः ॥२७॥ न चैषां कंचिदपराधं परिहरेयुः ॥२८॥

नट आदि तथा वेश्यायें अपने वेतन (कमाई) में से आधा राज्यकर देवें ॥ २६ ॥ जो बनिये आदि व्यापारके काममें न लगे हुए हों, उनसे प्रति पुरुषके हिसाबसे कुछ नकदी (एक वण्टक=सिका विशेष) टैक्स लिया जाय ॥ २७ ॥ और इनके किसी अपराधकी उपेक्षा न कीजाय । अर्थात् उनका व्यापार न करनाही अपराध कोटिमें समझा जाय, और उसका दण्डरूप कर उनसे अवश्य लिया जाय ॥ २८ ॥

ते ह्यपरगृहीतमभिनीय विक्रीणीरन् ॥ २९ ॥ इति व्यवहारिषु प्रणयः ॥ ३० ॥

क्योंकि ऐसे लोगोंसे यह भी सम्भव है कि वे अपनी वस्तुको दूसरेकी करके बेचें, जिससे सरकारको यह मालूम हो कि वे व्यापार नहीं करते, और इसलिये टैक्ससे बच जांय ॥ २९ ॥ व्यापारियोंसे राज्यकर लेनेके विषयमें यहां तक कहा गया है ॥ ३० ॥

कुक्कुटसूकरमर्धं दद्यात् ॥ ३१ ॥ क्षुद्रपशवः षड्भागम्

॥ ३२ ॥ गोमहिषाश्वतरखरोष्ट्राश्च दशभागम् ॥ ३३ ॥ बन्धकीपोषका राजप्रेष्याभिः परमरूपयौवनाभिः कोशं संहरेयुः ॥३४॥ इति योनिपोषकेषु प्रणयः ॥ ३५ ॥

मुर्गे और सूअर पालनेवाले, उनका (मुर्गे आदि की बढ़तीका) आधा ॥ ३१ ॥ भेड़बकरी पालनेवाले छठा, ॥ ३२ ॥ गाय, भैंस, खच्चर, गधे और ऊँट पालनेवाले दसवां हिस्सा सरकारी टैक्स देवें ॥ ३३ ॥ वेश्याओंके जमादार राजासे अनुमति पाई हुई, परमरूपवती युवती वेश्याओंके द्वारा राजकोषके लिये धन जमा करें ॥ ३४ ॥ यहांतक जानवर पालनेवालोंसे राज्यकर लेनेके विषयमें निरूपण किया गया ॥ ३५ ॥

सकृदेव न द्विः प्रयोज्यः ॥ ३६ ॥ तस्याकरणे वा समाहर्ता कार्यमपदिश्य पौरजानपदान्भिक्षेत ॥ ३७ ॥ योगपुरुषाश्चात्र पूर्वमतिमात्रं दद्युः ॥ ३८ ॥

राजाको चाहिये कि इस प्रकारका अधिक कर एकही वार लेवे, दूसरी वार कभी न लेवे । (क्योंकि इसमें प्रजाके असन्तोषका भय रहता है) ॥३६॥ यदि उपर्युक्त रीतियोंसे कोशका सञ्चय न किया जासके तो, समाहर्त्ताको चाहिये कि वह किसी कार्यका बहाना करके नगरनिवासी तथा प्रान्तनिवासी लोगोंसे धन मांगे ॥ ३७ ॥ संकेत किये हुए समाहर्त्ताके पुरुष पहिले उस कार्यमें अधिकसे अधिक धन देवें ॥ ३८ ॥

एतेन प्रदेशेन राजा पौरजानपदान्भिक्षेत ॥ ३९ ॥ कापटिकाश्चैनानल्पं प्रयच्छतः कुत्सयेयुः ॥ ४० ॥ सारतो वा हिरण्यमाढ्यान्याचेत ॥ ४१ ॥ यथोपकारं वा स्ववशा वा यदुपहरेयुः स्थानच्छत्रवेष्टनविभूषाश्चैषां हिरण्येन प्रयच्छेत् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर इसी बहानेसे राजा, नगर तथा जनपदनिवासी जनोंसे धन मांगे ॥ ३९ ॥ यदि ये थोड़ा धन देवें, तो राजाके छिपे पुरुष (कापटिक) इनकी निन्दा करें ॥ ४० ॥ अथवा धनी पुरुषोंसे उनकी हैसियतके माफिक धन मांगें ॥ ४१ ॥ उपकारके अनुसार (सरकारने जिन व्यक्तियोंके लिये जितने न्यूनाधिक सुभीते किये हुए हों उनके अनुसार), अथवा जो धन अपने वशके आदमी देवें, उतनीही रकम धनिकोंसे लीजावे और इस प्रकार राजाको सहायता देनेवाले इन धनी पुरुषोंका, अधिकार स्थान देकर, छत्र आदि लगानेकी अनुमति देकर, खासतरहकी पगड़ी या आभूषण आदि देकर राजाकी ओरसे सत्कार किया जाय ॥ ४२ ॥

पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यं वा कृत्यकराः प्रेतस्य दग्धहृदयस्य वा हस्ते न्यस्तमित्युपहरेयुः ॥ ४३ ॥ देवताध्यक्षो दुर्गराष्ट्रदेवतानां यथास्वमेकस्थं कोशं कुर्यात् ॥ ४४ ॥ तथैव चापहरेत् ॥ ४५ ॥

किसी पाखण्डी या समूहकी सम्पत्तिको, तथा जिसका कोई भाग श्रोत्रियके पास न जाता हो ऐसे किसी मन्दिरकी सम्पत्तिको, यह मरे हुएकी है, अथवा घर जले हुएकी है ऐसा कहते हुए कृत्य करनेवाले पुरुष लेआवें, और राजाको अर्पण करदें ॥ ४३ ॥ देवताध्यक्ष, दुर्ग और राष्ट्रके देवताओं (देव-मन्दिरों) के आय धनको यथोचित रूपसे एक स्थानपर रक्खें ॥ ४४ ॥ और फिर राजाको देदिया करें ॥ ४५ ॥

दैवतचैत्यं सिद्धपुण्यस्थानमौपपादिकं वा रात्रावुत्थाप्य यात्रा-समाजाभ्यामाजीवेत् ॥ ४६ ॥ चैत्योपवनवृक्षेण वा देवताभिग-मनमनार्तवपुष्पफलयुक्तेन ख्यापयेत् ॥ ४७ ॥

किसी प्रसिद्ध पवित्रस्थानमें भूमिको फाड़कर देवता निकला है, ऐसी प्रसिद्धि कराकर रात्रिमें वहां एक देवताकी वेदी बनवादे, और मेला लगवाकर यात्रियों तथा अन्य पुरुषोंसे उसपर खूब भेंट चढ़वावे, और उसे राजाको अर्पण करदे ॥ ४६ ॥ बिनाही ऋतुके देवमन्दिरके उपवनमें प्रयत्नपूर्वक किसी वृक्षपर फल या फूल पैदा करवाके, प्रसिद्धि करादे कि यह देवताकी महिमा है ॥ ४७ ॥

मनुष्यकरं वा वृक्षे रक्षोभय रूपयित्वा सिद्धव्यञ्जनाः पौरजान पदानां हिरण्येन प्रतिकुर्युः ॥ ४८ ॥

अथवा सिद्धोंके भेसमें घूमनेवाले गुप्तपुरुष, रातमें किसी वृक्षपर बैठकर, "मुझे प्रतिदिन एक २ मनुष्य देना चाहिये, नहीं तो सबको खाजा-ऊँगा" इस प्रकार मनुष्यकर मांगते हुए राक्षसका भय दिखलाकर, नगर तथा जनपदनिवासी पुरुषोंके धनसे इस भयका प्रतीकार करावे। और उस धनको राजाको देदेवे ॥ ४८ ॥

सुरङ्गायुक्ते वा कूपे नागमनियतशिरस्कं हिरण्योपहारेण दर्शयेत् नागप्रतिमायामन्तश्छिद्रायाम् ॥ ४९ ॥

अथवा किसी सुरङ्गवाले कुएमें तीन सिरवाले, या पांच सिरवाले बना-वटी सांपको, इस प्रकारकी पोली सांपकी मूर्त्तिमें दिखलावे कि जिसमें कोई

असली सांप समा सकता हो । और दिखानेके बदले दर्शकोंसे धन ले लेवे । वह धन राजाको देदिया जावे ॥ ४९ ॥

चैत्यच्छिद्रे वल्मीकछिद्रे वा सर्पदर्शनमाहारेण प्रतिबन्धसंज्ञं कृत्वा श्रद्धधानानां दर्शयेत् ॥ ५० ॥

किसी मन्दिर या बमई (बम्बी) के छेदमें सांपको अचानक देखनेपर उसे मन्त्र या औषधिसे बांध लेवे, अर्थात् वशमें करलेवे, और यह कहते हुए श्रद्धालु पुरुषोंको दिखावे कि देखो देवताकी कैसी महिमा है ॥ ५० ॥

अश्रद्दधानानामाचमनप्रोक्षणेषु रसमुपचार्य देवताभिशापं ब्रूयात् ॥ ५१ ॥ अभित्यक्तं वा दंशयित्वा योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोषाभिसंहरणं कुर्यात् ॥ ५२ ॥

जो पुरुष इसपर श्रद्धा न करे, उन्हें चरणामृतके साथ केवल इतना विष देवे, जिससे वे बेहोश होजांय और फिर कहे कि देखो यह नाग देवता का शाप है ॥ ५१ ॥ और देवताकी निन्दा करनेवाले पुरुषको सांपसे कटवा देवे । और कहे कि देखो यह देवताका शाप है, अथवा फिर औपनिषदिक प्रकरणमें बतलाई हुई विषचिकित्साके द्वारा उस विषका प्रतीकार करदेवे । इस प्रकार धनसञ्चय करके राजकोशको बढ़ाता जावे ॥ ५२ ॥

वैदेहकव्यञ्जनो वा प्रभूतपण्यान्तेवासी व्यवहरेत ॥ ५३ ॥ स यदा पण्यमूल्ये निक्षेपप्रयोगैरुपचितः स्यात्तदैनं रात्रौ मोषयेत् ॥ ५४ ॥

अथवा व्यापारीके भेसमें गुप्त राजपुरुष, प्रचुर विक्रेय वस्तुएं और अनेक सहायकोंको लेकर व्यापार करना प्रारम्भ करदे ॥ ५३ ॥ जब इसके पास व्यापारका धन खूब होजावे, और अन्य पुरुष इसको अच्छा सेठ समझकर विश्वाससे इसके पास अमानत आदिका धन खूब जमा करदें, तथा ब्याज आदिके लिये भी लोग इसके पास काफी पूंजी जमा करदें, तब इसके यहां चोरी करवा देवे अर्थात् चोरीके बहानेसे वह सारा धन राजा ले लेवे ॥ ५४ ॥

एतेन रूपदर्शकः सुवर्णकारश्च व्याख्यातौ ॥ ५५ ॥

इसी प्रकार राजकीय सिक्कोंका निरीक्षक और सुवर्णकार भी छल करके राजकोषके लिये धन इकट्ठा करें । (अर्थात् निरीक्षक सिक्कोंको परीक्षाके लिये अपने घरमें इकट्ठा करावे, रातको वहां चोरी होजाय । इसी प्रकार सुवर्णकारके यहां जब आभूषण बनानेके लिये लोगोंका बहुत सोना इकट्ठा होजाय, वहां चोरी करवा दीजावे) ॥ ५५ ॥

वैदेहकव्यञ्जनो वा प्रख्यातव्यवहारः प्रवहणनिमित्तं याचितकमवक्रीतकं वा रूपसुवर्णभाण्डमनेकं गृह्णीयात् ॥ ५६ ॥ समाजे वा सर्वपण्यसंदोहेन प्रभूतं हिरण्यसुवर्णमृणं गृह्णीयात् ॥ ५७ ॥

अथवा व्यापारीका भेस बनाकर गुप्तराजपुरुष अपने क्रयविक्रय व्यवहारके खूब प्रसिद्ध होजानेपर, एक दिन जौनार (निमन्त्रण=पांत) के बहाने आसपासके सब लोगोंके यहांसे चांदी और सोनेके अनेक प्रकारके बर्त्तन, मांग कर या भाड़ेपर ले लेवे ॥ ५६ ॥ और अनेक पुरुषोंकी उपस्थितिमें अपने सम्पूर्ण मालकी ओटमें (के बदले) पर्याप्त हिरण्य सुवर्ण आदि धन ऋण ले लेवे ॥ ५७ ॥

प्रतिभाण्डमूल्यं च ॥ ५८ ॥ तदुभयं रात्रौ मोषयेत् ॥५९॥

और दूसरे दिन जिनको अपनी वस्तु बेचनी हों, उनसे प्रतिवस्तुका मूल्य भी ले लेवे ॥ ५८ ॥ इन दोनों वस्तुओं (नकदीमाल और सोने आदिके बर्त्तनों) को रातमें चोरी करवादे । अर्थात् चोरीके बहाने राजाके कोषमें यह धन भिजवा दिया जाय ॥ ५९ ॥

साध्वीव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिर्दूष्यानुन्मादयित्वा तासामेव वेश्मस्वभिगृह्य सर्वस्वान्याहरेयुः ॥ ६० ॥

कुलीन स्त्रियोंके भेसमें रहनेवाली (राजकीय गुप्त) स्त्रियोंके द्वारा राजासे दुश्मनी रखनेवाले दूष्य पुरुषोंको उन्मत्त बनाकर, उन स्त्रियोंके घरमें ही उनको गिरफ्तार किया जाय, और उनका सर्वस्व अपहरण कर लिया जाय ॥ ६० ॥

दूष्यकुल्यानां वा विवादे प्रत्युत्पन्ने रसदाः प्रणिहिता रसं दद्युः ॥ ६१ ॥ तेन दोषेणेतरे पर्यादातव्याः ॥ ६२ ॥

दूष्य पुरुषोंका अपने खानदानी लोगोंके साथ कोई झगड़ा खड़ा होने पर, विष देनेवाले खुफिया रसोईये आदिके वेषमें उनके पास ही रहते हुए किसी एक पक्षवालेको विष देदेवें ॥ ६१ ॥ इसी अपराधमें दूसरे दूष्योंका सर्वस्व अपहरण कर लिया जावे ॥ ६२ ॥

दूष्यमभित्यक्तोवा श्रद्धयापदेशं पुण्यं हिरण्यनिक्षेपमृणप्रयोगं दायं वा याचेत ॥ ६३ ॥

कोई अभित्यक्त (बध्य=जिसको मारदेना चाहिये ऐसा व्यक्ति), माल, स्वर्ण आदिकी अमानत, ऋण अथवा दायभागको दूष्यके पास आकर उससे

इस प्रकार मांगे, जिससे कि लोगोंको विश्वास होजाय कि इन वस्तुओंसे इसका अवश्य कुछ न कुछ सम्बन्ध है ॥ ६३ ॥

दासशब्देन वा दूष्यमालम्बेत ॥ ६४ ॥ भार्यामस्य स्नुषां दुहितरं वा दासीशब्देन भार्याशब्देन वा ॥ ६५ ॥ तं दूष्यगृह-प्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो हत्वा ब्रूयात् ॥ ६६ ॥

अथवा दूष्यको दास कहकर पुकारे ॥ ६४ ॥ या इसकी भार्या, पुत्रवधू और लड़कीको दासी शब्दसे या अपनी भार्या कहकर गाली देवे ॥ ६५ ॥ तब उसको रातमें दूष्यके सामने सोते हुए, अथवा और किसी जगह निवास करते हुएको, तीक्ष्ण पुरुष जाकर मार देवे, और कहे किः— ॥ ६६ ॥

हतोऽयमित्थं कामुक इति ॥ ६७ ॥ तेन दोषेणेतरे पर्या-दातव्याः ॥ ६८ ॥

यह कामी पुरुष इस प्रकार (दूष्यके साथ उक्त प्रकारसे झगड़ा करनेके कारण) मारा गया है ॥ ६७ ॥ इसी अपराधमें दूसरे दूष्योंका, राजा सर्वस्व अपहरण करले ॥ ६८ ॥

सिद्धव्यञ्जनो वा दूष्यं जम्भकाविद्याभिः प्रलोभयित्वा ब्रूयात् ॥६९॥ अक्षयं हिरण्यं राजद्वारिकं स्त्रीहृदयमरिव्याधिकरमायुष्यं पुत्रीयं वा कर्म जानामीति ॥ ७० ॥

अथवा सिद्धके भेसमें गुप्तराजपुरुष दूष्यको छलविद्याओंसे प्रलोभन देकर कहे किः—॥ ६९ ॥ "मैं अक्षय सुवर्णके खजानेको देखना, राजाको वशमें करना, स्त्रीके हृदयको अपनी ओर आकर्षित करना, दुश्मनको बीमार करदेना, आयुको बढ़ाना, और सन्तान उत्पन्न करना, आदि कामोंको अच्छी तरह जानता हूँ" ॥ ७० ॥

प्रतिपन्नं चैत्यस्थाने रात्रौ प्रभूतसुरामांसगन्धमुपहारं कार-येत् ॥७१॥ एकरूपं चात्र हिरण्यं पूर्वनिखातं प्रेताङ्गं प्रेतशिशुर्वा यत्र निहितः स्यात्ततो हिरण्यमस्य दर्शयेदत्यल्पमिति च ब्रूयात् ॥ ७२ ॥

जब उसको विश्वास आ जाय, तो किसी देवस्थानमें जाकर रातमें उससे खूब मदिरा मांस और गन्ध आदि भेंट देवताको चढ़वावे ॥ ७१ ॥

पहिलेसेही गाड़े हुए (तत्कालीन) एक सिक्केकी बराबर सोनेको, जहांपर मुर्देका कोई अंग, या मरा हुआ बच्चा गढ़रहा हो, वहांसे निकालकर इस दूष्यको दिखावे, और कहे कि यह बहुत थोड़ा है। (क्योंकि तुमने भेंट भी थोड़ीही चढ़ाई है) ॥ ७२ ॥

प्रभूतहिरण्यहेतोः पुनरुपहारः कर्तव्य इति स्वयमेवैतेन हिरण्येन श्वोभूते प्रभूतमौपहारिकं क्रीणीहीति ॥ ७३ ॥ तेन हिरण्येनौपहारिकक्रये गृह्येत ॥ ७४ ॥

यदि तुम बहुत अधिक हिरण्य चाहते हो तो तुमको देवतापर और अधिक भेंट चढ़ाना चाहिये, लो यह भी सोना लो, इस सोनेसे तुम कलको अपने आपही बाजारमें जाकर अधिक चढ़ावेका सामान खरीदना ॥ ७४ ॥ जब वह दूष्य उस सोनेसे चढ़ावेका सामान बाजारसे खरीदने लगे, तबही उसको गिरफ्तार करलिया जाय, और इस अपराधमें उसका सर्वस्व अपहरण करलिया जावे ॥ ७४ ॥

मातृव्यञ्जनाया वा पुत्रो मे त्वया हत इत्यवरूपितः स्यात् ॥ ७५ ॥ संसिद्धमेवास्य रात्रियागे वनयागे वनक्रीडायां वा प्रवृत्तायां तीक्ष्णा विशस्याभित्यक्तमतिनयेयुः ॥ ७६ ॥

अथवा कोई गुप्तराजस्त्री, माताके भेसमें जाकर दूष्यके ऊपर मिथ्या दोषारोपण करे कि तूने मेरे लड़केको मार डाला है ॥ ७५ ॥ दूष्यके रात्रियाग (रात्रिका हवन), वनयाग (जंगलमें किये जानेवाला होम), और वनक्रीडाके प्रारम्भ होनेपर, तीक्ष्णपुरुष पहिलेहांसे तैयार किये हुए वध्य पुरुषको मारकर रात्रियाग आदिके समीपस्थानमें गाढ़ देवें। और इसी अपराधमें दूष्यको पकड़ उसका सर्वस्व अपहरण करलिया जाय ॥ ७६ ॥

दूष्यस्य वा भृतकव्यञ्जनो वेतनहिरण्ये कूटरूपं प्रक्षिप्य प्ररूपयेत् ॥ ७७ ॥ कर्मकारव्यञ्जनो वा गृहे कर्म कुर्वाणस्तेन कूटरूपकारकोपकरणमपनिदध्यात् चिकित्सकव्यञ्जनो वा गरमगरापदेशेन ॥ ७८ ॥

अथवा दूष्यके नौकरके रूपमें रहता हुआ कोई खुफिया नौकरीका धन पानेपर उसमें जाली सिक्का मिलाकर राजाको खबर देदेवे ॥ ७७ ॥ अथवा चाकरके भेसमें दूष्यके घर काम करता हुआ कोई खुफिया चोरी २ जालीसिक्के बनानेके सब साधनोंको वहां रखदे। अथवा वैद्यका भेस बनाकर विषनाशक औषधिके बहानेसे उसके (दूष्यके) हाथमें विष देदेवे। (सूत्रमें 'गदमगदापदे-

शन' यह भी पाठान्तर है, उसका अर्थः—रोगनाशक औषधिके बहाने रोगवर्द्धक औषधि देकर' यह करना चाहिये) और इसी अपराधमें दूष्यको पकड़कर उसका सर्वस्व अपहरण करलेवे ॥ ७८ ॥

प्रत्यासन्नो वा दूष्यस्य सत्त्री प्रणिहितमभिषेकभाण्डममित्रशासनं च कापटिकमुखेन आचक्षीत कारणं च ब्रूयात् ॥ ७९ ॥

अथवा दूष्यके समीप रहता हुआ कोई सत्री (गुप्तचर विशेष), दूष्यके घरमें रक्खे हुए अभिषेकके सामानको और शत्रुके लेखको कापटिक (गुप्तचर विशेष) के द्वारा राजाको कहे। और इसका कारण यह बतावे कि दूष्य राजाको मारकर शत्रुको रज्यपर अभिषेक करनेका यत्न करता है, इत्यादि । इसी अपराधमें उसका सर्वस्व अपहरण करालिया जावे ॥ ७९ ॥

एवं दूष्येष्वधार्मिकेषु च वर्तेत ॥ ८० ॥ नेतरेषु ॥ ८१ ॥

अधिक कोश जमा करनेके लिये राजा ऐसे उपायोंका प्रयोग दूष्यों और अधार्मिक पुरुषोंपरही करे ॥ ८० ॥ अन्योंपर नहीं ॥ ८१ ॥

पक्वं पक्वमिवारामात्फलं राज्यादवाप्नुयात् ।
आमच्छेदभयादामं वर्जयेत्कोपकारकम् ॥ ८२ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे कोशाभिसंहरणं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितो द्विनवतिः ॥ ९२ ॥

राजा दुष्ट पुरुषोंके धनको इस प्रकार ले लेवे, जैसे पके हुए फलको बाटिकासे ले लिया जाता है, और धर्मात्माओंके धनको इस प्रकार छोड़ दिया जाय, जैसे कच्चे फलको छोड़ दिया जाता है । कच्चे फलकी तरह धर्मात्माओंसे लिया हुआ धन भी प्रकृतिके कोपका कारण होता है । अर्थात् जैसे कच्चा फल खाया हुआ देहकी पित्त कफ आदि प्रकृतिको कुपित करदेता है । ऐसेही धर्मात्माका लिया हुआ धन प्रकृति अर्थात् प्रजाको कुपित करदेता है ॥ ८२ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय ।

९१ प्रकरण ।

भृत्योंका भरण पोषण ।

दुर्गजनपदशक्त्या भृत्यकर्म समुदयपादेन स्थापयेत् ॥ १ ॥
कार्यसाधनसहेन वा भृत्यलाभेन शरीरमवेक्षेत ॥ २ ॥

दुर्ग और जनपदकी शक्तिके अनुसार नौकरोंके लिये अपनी सम्पूर्ण

आयका चौथा भाग व्यय करके, उनकी स्थापना करे ॥ १ ॥ अथवा कार्य करनेमें समर्थ भृत्य, जितने धनसे मिल सकें, उतनाही धन देकर (चाहे वह सम्पूर्ण आयके चतुर्थांशसे अधिक भी हो) उनकी नियुक्ति करे । परन्तु आमदनीकी असली हालतको अवश्य देखता रहे, (शरीरमवेक्षेत)। कहीं ऐसा न हो कि आमदनीसे ज्यादा व्यय होजाय ॥ २ ॥

न धर्मार्थौ पीडयेत् ॥ ३ ॥ ऋत्विगाचार्यमन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजराजमातृराजमहिष्यो ऽष्टचत्वारिंशत्साहस्राः ॥४॥ एतावता भरणे नानास्वाद्यत्वमकोपकं चैषां भवति ॥ ५ ॥

ऐसा कोई भी काम न करे जिसमें धर्म और अर्थको पीड़ा पहुँचे। अर्थात् देवकार्य, पितृकार्य और दान आदि धर्मोंको, तथा दुर्ग, सेतु और व्यापारी मार्ग बनवाना आदि अर्थसाधक कार्योंको बराबर करता रहे ॥ ३ ॥ ऋत्विक्, आचार्य, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, राजमाता और राजमहिषी (पटरानी) इनको प्रतिवर्ष ४८००० सहस्र पण वेतनरूपमें दिया जाय ॥ ४ ॥ क्योंकि भरणपोषणके लिये इतना वेतन मिलनेपर ये आरामसे रह सकते हैं। और राजाके प्रति कोपके कारण न बनेंगे ॥ ५ ॥

दौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसंनिधातारश्चतुर्विंशतिसाहस्राः ॥ ६ ॥ एतावता कर्मण्या भवन्ति ॥ ७ ॥ कुमारकुमारमातृनायकाः पौरव्यावहारिककार्मान्तिकमन्त्रिपरिषद्राष्ट्रान्तपालाश्च द्वादशसाहस्राः ॥ ८ ॥

दौवारिक (द्वारपाल=द्वाररक्षाका मुख्य अधिकारी), अन्तर्वंशिक (अन्तःपुरका रक्षक), आयुधाध्यक्ष, समाहर्त्ता (धान्यकर आदि वसूल करनेवाला प्रधान अध्यक्ष), और भाण्डागाराध्यक्षको २४ सहस्र पण वार्षिक दिया जावे ॥ ६ ॥ इतना वेतन मिलनेपरही ये कार्य करनेमें समर्थ हो सकते हैं ॥ ७ ॥ कुमार ❀ (युवराजसे अतिरिक्त अन्य राजकुमार), कुमारमाता ❀ (पटरानीसे अतिरिक्त अन्य रानियां अथवा राजकुमारोंको पालन करनेवाली धाय), नायक (पैदल सेनाओंका नेता=सूबेदार मेजर), नगर निरीक्षक, व्यापाराध्यक्ष, कृषि आदिका अध्यक्ष, मन्त्रिपरिषद्के १२ सदस्य, राष्ट्रपाल (सम्पूर्ण

❀ म० म० गणपति शास्त्रीने 'कुमार' का अर्थ 'अश्वानुचर' और 'कुमारमाता' का अर्थ 'अशीतिजननेता' किया है। यह अर्थ उनकी प्रान्तिक भाषामें उपलब्ध हुए, अर्थशास्त्रके किसी पुराने अनुवादके आधारपर किया गया है। परन्तु यह अर्थ कुछ संगत प्रतीत नहीं होता।

पुलिसका मुख्य अधिकारी=पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट), अन्तपाल, (सीमा निरीक्षक), इनको १२००० वार्षिक दिया जावे ॥ ८ ॥

स्वामिपरिबन्धबलसहाया ह्येतावता भवन्ति ॥ ९ ॥ श्रेणीमुख्या हस्त्यश्वरथमुख्याः प्रदेष्टारश्चाष्टसाहस्राः ॥१०॥ स्ववर्गानुकर्षिणो ह्येतावता भवन्ति ॥ ११ ॥

इतना वेतन देनेसे ये लोग सदा राजाके अनुकूल रहेंगे, और उसकी सहायता करनेके लिए हर समय तैयार रहेंगे ॥ ९ ॥ सजातीय शिल्पियोंके निरीक्षक, (इञ्जिनीयर) हाथी, घोड़े, और रथोंके निरीक्षक, तथा प्रदेष्टा (कण्टकशोधनाधिकारी), इनको ८००० वार्षिक दिया जावे ॥ १० ॥ इतना वेतन मिलनेपर ये लोग अपने वर्गके कर्मचारियोंको अनुकूल रक्खेंगे ॥ ११ ॥

पत्त्यश्वरथहस्त्यध्यक्षा द्रव्यहस्तिवनपालाश्चतुःसाहस्राः ॥ १२ ॥ रथिकानीकचिकित्सकाश्वदमकवर्धकयो योनिपोषकाश्च द्विसाहस्राः ॥ १३ ॥

पदाति सेनाका अध्यक्ष, अश्वारोही, रथारोही, गजारोही सेनाओंके अध्यक्ष, लकड़ी और हाथियोंके जंगलोंके निरीक्षक, इनको ४००० पण वार्षिक दिया जावे ॥ १२ ॥ रथका चलाना सिखानेवाले, गज शिक्षक, चिकित्सक, अश्वशिक्षक, तथा, मुर्गे, सूअर आदि पालनेवालोंका अध्यक्ष, इनको २००० पण वार्षिक वेतन दिया जाय ॥ १३ ॥

कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकसूतमागधाः पुरोहितपुरुषाः सर्वाध्यक्षाश्च साहस्राः ॥ १४ ॥ शिल्पवन्तः पादाताः संख्यायकलेखकादिवर्गः पञ्चशताः ॥ १५ ॥

स्त्री या पुरुषोंके हाथ आदिमें लक्षण (चिन्ह) देखकर उनके भूत या भविष्यत् को बतानेवाले, शकुन बतानेवाले, ज्योतिषी, पुराणोंकी कथा कहने वाले, सारथि, स्तुति पाठक, पुरोहितके भृत्य और सुरा आदिके अध्यक्ष, इनको १००० वार्षिक दिया जावे ॥ १४ ॥ चित्रकार, पादात (गदका, बनैट, तलवार आदि खेलनेमें अत्यन्त चतुर), हिसाब करनेवाला तथा लेखक आदिको ५०० पण वार्षिक दिया जाय ॥ १५ ॥

कुशीलवास्त्वर्धतृतीयशताः ॥ १६ ॥ द्विगुणवेतनाश्चैषां तूर्यकराः ॥ १७ ॥ कारुशिल्पिनो विंशतिशातिकाः ॥१८॥ चतुष्पदद्विपदपरिचारकपारिकर्मिकोपस्थायिकपालकविष्टिबन्धकाः षष्टिवेतनाः ॥ १९ ॥

कुशीलव (नट) आदिको २५० पण, और जो उनमें बढ़िया बाजे आदि भी बनाना जानते हों, उन्हें दुगना अर्थात् ५०० पण दिया जाय ॥१६॥१७॥ अन्य साधारण कारीगरोंको १२० पण दिया जाय ॥ १८ ॥ पशु तथा मनुष्योंके परिचारक और उनके मुखिया, शरीर परिचारक (स्नानादि करानेवाले) गौ आदिकी रक्षा करनेवाले, और बेगारियोंको ६० पण वार्षिक वेतन दिया जाय ॥ १९ ॥

कार्ययुक्तारोहकमाणवकशैलखनकाः सर्वोपस्थायिन आचार्या विद्यावन्तश्च पूजावेतनानि यथार्हं लभेरन्पञ्चशतावरं सहस्रपरम् ॥ २० ॥

आर्य (अच्छे स्वभाव वाला सत्पुरुष), युक्तारोहक (बिगड़े हुए घोड़े आदिपरभी जो अच्छीतरह सवारी करसके), माणवक (वेदादि पढ़नेवाला विद्यार्थी), पत्थर आदिपर खोदनेवाला (नक्काशी करनेवाला), गाने आदिमें अत्यन्त चतुर गान्धर्वाचार्य (सर्वोपस्थायिन आचार्याः), और अच्छे विद्वान् पुरुषोंको उनके सत्कारार्थ योग्यतानुसार ५०० पणसे १००० पण तक दिया जाय ॥ २० ॥

दशपणिको योजने दूतः मध्यमः ॥२१॥ दशोत्तरे द्विगुण-वेतन आयोजनशतादिति ॥ २२ ॥ समानविद्येभ्यस्त्रिगुणवेतनो राजा राजसूयादिषु क्रतुषु राज्ञः सारथिः साहस्रः ॥ २३ ॥

एक योजन जानेवाले मध्यम (न बहुत तेज चलनेवाले न मन्द) दूत को १० पण दिये जांय ॥ २१ ॥ दस योजनसे अधिक सौ योजन तक चलने वालेको दुगना, अर्थात् प्रतियोजन २० पण दिये जांय ॥ २२ ॥ राजसूय आदि यज्ञोंके करनेपर राजा, मन्त्री पुरोहित आदिको उनके साधारण वेतनसे तिगुना देवे । और राजाको यज्ञ स्थानमें लानेवाले सारथिको १००० पण दिया जाय ॥ २३ ॥

कापटिकोदास्थितगृहपतिकवैदेहकतापसव्यञ्जनाः साहस्राः ॥२४॥ ग्रामभृतकसत्त्रितीक्ष्णरसदाभिक्षुक्यः पञ्चशताः ॥ २५ ॥ चारसंचारिणोर्धतृतीयशताः प्रयासवृद्धवेतना वा ॥ २६ ॥

कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक और तापस आदिके भेसमें काम करनेवाले गुप्तचरोंको (ये सब गुप्तचरोंके भेद हैं) १००० पण दिया जावे ॥ २४ ॥ गांवके नौकर (धोबी नाई आदि) अथवा गांवके मुखिया सत्री (गुप्त-

चर विशेष), तीक्ष्ण, विष आदि देनेवाले, तथा भिक्षुकीके वेषमें काम करने वाले गुप्तचरोंको ५०० पण दिया जाय ॥ २५ ॥ चरोंको इधर उधर भेजनेवाले कर्मचारियोंको २५० पण दिया जाय । अथवा मेहनतके अनुसार सबको अधिक वेतन मिले ॥ २६ ॥

शतवर्गसहस्रवर्गाणामध्यक्षा भक्तवेतनलाभमादेशं विक्षेपं च कुर्युः ॥ २७ ॥ अविक्षेपो राजपरिग्रहदुर्गराष्ट्ररक्षावेक्षणेषु च नित्यमुख्याः स्युरनेकमुख्याश्च ॥ २८ ॥

उपर्युक्त भृत्योंके शतवर्ग या सहस्रवर्गके अध्यक्ष, भृत्योंको भत्ता वेतन देवें और राजाकी आज्ञाका उनसे पालन करावें तथा उनको उचित स्थानोंपर नियुक्त अथवा तब्दील करें ॥ २७ ॥ किसी वर्गमें ठीक कार्य न होनेपर, उसका अध्यक्ष, राजमहल, दुर्ग तथा राष्ट्रकी रक्षा और देखभालके लिए पुरुषोंको नियुक्त करे, प्रत्येक वर्गके कर्मचारी अपने अध्यक्षके अधीन रहकर अपने अपने कार्योंको ठीक ठीक करें । अध्यक्ष भी अनेक होने चाहियें ॥२८॥

कर्मसु मृतानां पुत्रदारा भक्तवेतनं लभेरन् ॥ २९ ॥ बालवृद्धव्याधिताश्चैषामनुग्राह्याः ॥ ३० ॥ प्रेतव्याधितसूतिकाकृत्येषु चैषामर्थमानकर्म कुर्यात् ॥ ३१ ॥ अल्पकोशः कुप्यपशुक्षेत्राणि दद्यात् ॥ ३२ ॥ अल्पं च हिरण्यम् ॥ ३३ ॥

राजकर्मचारियोंके काम करते हुए मरजानेपर उनके वेतन आदिको उनके लड़के या स्त्री लेवें ॥ २९ ॥ मृत राजकर्मचारियोंके बालक बूढ़े और बीमार सम्बन्धियोंपर राजा सदा अनुग्रह दृष्टि बनाये रक्खे ॥ ३० ॥ तथा इनके यहां मौत बीमारी या बच्चा आदि पैदा होनेपर, आर्थिक सहायता, और जाने आनेसे सत्कार आदि करता रहे ॥ ३१ ॥ खजानेमें कमी होनेपर राजा, सहायता देने योग्य पुरुषोंको कुप्य, पशु तथा जमीन आदि देवे ॥ ३२ ॥ सुवर्ण आदि बहुत थोड़ा देवे ॥ ३३ ॥

शून्यं वा निवेशयितुमभ्युत्थितो हिरण्यमेव दद्यात् ॥ ३४ ॥ न ग्रामं ग्रामसजातव्यवहारस्थापनार्थम् ॥ ३५ ॥ एतेन भृतानामभृतानां च विद्याकर्मभ्यां भक्तवेतनविशेषं च कुर्यात् ॥ ३६ ॥

परन्तु यदि राजा निर्जन मैदानोंको बसाना चाहे, तो स्वर्णही अधिक देवे ॥ ३४ ॥ जमीन आदि न देवे । जिससे कि बसे हुए गांवके मूल्य आदिका निर्णय, व्यवहारकी स्थापनाके लिये ठीक तौर पर होसके । (अर्थात्

अमुक गांवमें इतना सुवर्ण व्यय होगया है, उससे इतनी आमदनी अवश्य होनी चाहिये, इस प्रकारके व्यवहारका निश्चय करनेके लिये) ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार स्थायी या अस्थायी कर्मचारियोंके विद्या और कार्यकी न्यूनाधिकताके अनुसार, उन्हें न्यून या अधिक वेतन तथा भत्ता दिया जावे ॥ ३६ ॥

षष्टिवेतनस्याढकं कृत्वा हिरण्यानुरूपं भक्तं कुर्यात् ॥ ३७ ॥ पत्त्यश्वरथद्विपाः सूर्योदये बहिः संधिदिवसवर्जं शिल्पयोग्याः कुर्युः ॥ ३८ ॥ तेषु राजा नित्ययुक्तः स्यादभीक्ष्णं चैषां शिल्पदर्शनं कुर्यात् ॥ ३९ ॥

६० पणके पीछे एक आढ़कभर अन्न दिया जावे, इसीके अनुसार वेतन जैसे २ न्यून या अधिक हो, वैसेही वैसे अन्न (भक्त भत्ता) भी न्यून अथवा अधिक दिया जाय ॥ ३७ ॥ अमावस्या आदि छुट्टीके दिनोंको छोड़कर सूर्योदय होनेपर ही पदाति, अश्वारोही, रथारोही, और गजारोही सेनाओंको कवायद सिखलाई जावे ॥३८॥ राजाको चाहिए कि वह सेनाओंपर बराबर सदा ध्यान रक्खे । और जल्दी जल्दी उनकी कवायद आदि को देखता रहे ॥ ३९ ॥

कृतनरेन्द्राङ्कं शस्त्रावरणमायुधागारं प्रवेशयेत् ॥ ४० ॥ अशस्त्राश्चरेयुरन्यत्र मुद्रानुज्ञातात् ॥४१॥ नष्टं विनष्टं वा द्विगुणं दद्यात् ॥४२ ॥

और शस्त्रचर्या (कवायद) के बाद, राजाकी मुद्रा (मोहर) से चिन्हित फौजी हथियारों और कवच आदिको आयुधागारमें रखवा दिया जावे ॥ ४० ॥ जिनको हर समय हथियार रखनेका लैसन्स मिला हुआ है, उनको छोड़कर बाकी सब सिपाही आदि बिना ही हथियारोंके इधर उधर आवें जावें ॥ ४१ ॥ जो हथियार खोजाय या टूटफूट जाय, उसका दुगना मूल्य उससे वसूल किया जाय ॥ ४२ ॥

विध्वस्तगणनां च कुर्यात् ॥ ४३ ॥ सार्थिकानां शस्त्रावरणमन्तपाला गृह्णीयुः समुद्रमवचारयेयुर्वा ॥ ४४ ॥ यात्रामभ्युत्थितो वा सेनामुद्योजयेत् ॥ ४५ ॥

आयुधशाला आदिमें टूटे या नष्टहुए हथियारोंकी बराबर गिनती करता रहे ॥ ४३ ॥ दूसरे देशसे आनेवाले व्यापारियोंके हथियारों और कवचोंको अन्तपाल (सीमा निरीक्षक अधिकारी) लेलेवे। जिनके पास लैसन्स होवे उन्हें छोड़देवें, अर्थात् उनसे हथियार न लेवे, उन्हें सशस्त्र ही देशमें आजानेदे ॥४४॥

किसीपर चढ़ाईकी तैयारी करनेवाला राजा अपनी सेनाको अच्छी तरह इकट्ठा करलेवे ॥ ४५ ॥

ततो वैदेहकव्यञ्जनाः सर्वपण्यान्यायुधीयेभ्यो यात्राकाले द्विगुणप्रत्यादेयानि दद्युः ॥ ४६ ॥ एवं राजपण्ययोगाविक्रयो वेतनप्रत्यादानं च भवति ॥ ४७ ॥

और फिर यात्राके समय, राजाके द्वारा नियुक्तहुए गुप्त पुरुष व्यपारियों के भेसमें युद्धकी सम्पूर्ण आवश्यक सामग्रीको सिपाहियोंके हाथ दुगने दामों पर बेचें ॥ ४६ ॥ इस प्रकार राजकीय पदार्थोंका विक्रयभी होजायगा, और सिपाहियोंको दिया हुआ वेतन, फिर शाही खजानेमें कुछ न कुछ लौट आयगा ॥ ४७ ॥

एवमवेक्षितायव्ययः कोशदण्डव्यसनं नावाप्नोति ॥ ४८ ॥ इति भक्तवेतनविकल्पः ॥ ४९ ॥

इसप्रकार आय व्ययकी अच्छी तरह देखभाल करनेवाला राजा, कभी-भी आर्थिक या सैनिक आपत्तिको प्राप्त नहीं होता ॥ ४८ ॥ यहांतक भत्ता व वेतनके विषयमें विविध विचार किया गया ॥ ४९ ॥

सत्त्रिणश्चायुधीयानां वेश्याः कारुकुशीलवाः ।
दण्डवृद्धाश्च जानीयुः शौचाशौचमतन्द्रिताः ॥ ५० ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे भृत्यभरणीयं तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥
आदितस्त्रिनवतिः ॥ ९३ ॥

सत्त्री, वेश्या, कारीगर और पुराने बुड्ढे सैनिक, बड़ी सावधानीके साथ सिपाहियोंकी ईमानदारी (सचाईसे काम करना=शौचम्) और बेईमानीको (अशौचम्) जानें. । अर्थात् उनके काम करनेके ढंगका सदा निरीक्षण करते रहें ॥ ५० ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

९२ प्रकरण

मन्त्री आदि राजकर्मचारियोंका राजाके प्रति व्यवहार ।

लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नं प्रियहितद्वारेणा-

श्रयेत ॥ १ ॥ यं वा मन्येत यथाहमाश्रयेप्सुरेवमसौ विनयेप्सुराभिगामिकगुणयुक्त इति ॥ २ ॥

सांसारिक व्यवहारोंमें चतुर पुरुष, आत्मसम्पन्न (महाकुलीन और दैवी बुद्धि आदिसे युक्त), तथा योग्य अमात्योंसे युक्त राजाका, राजाके प्रिय और हितैषी पुरुषोंके द्वारा आश्रय लेवे ॥ १ ॥ यदि ऐसा राजा न मिले, तो जिसको यह समझे कि–'जैसे मैं अच्छा आश्रय चाहता हूं, ऐसे ही यह विद्यावृद्ध अनुभवी पुरुषको चाहता है' ऐसे आत्मसम्पन्न राजाका आश्रय लेवे ॥ २ ॥

द्रव्यप्रकृतिहीनमप्येनमाश्रयेत ॥ ३ ॥ न त्वेवानात्मसंपन्नम् ॥ ४ ॥ अनात्मवान्हि नीतिशास्त्रद्वेषादानर्थ्यसंयोगाद्वा प्राप्यापि महदैश्वर्यं न भवति ॥ ५ ॥

चाहे वह द्रव्य प्रकृति हीनही हो, अर्थात् श्रेष्ठ गुणवाले अमात्य आदिसे युक्त न भी हो ॥ ३ ॥ परन्तु जो राजा आत्मसम्पन्न न होवे, चाहेवह अमात्यादि प्रकृतिसे युक्त हीहो, उसका आश्रय कदापि न लेवे ॥ ४ ॥ क्योंकि आत्मसम्पत्तिहीन राजा, नीतिशास्त्र आदिकी जानकारी न रखनेके कारण अथवा अनर्थकारी मृगया द्यूतआदि कार्योंके करने, या इस प्रकारके पुरुषोंकी संगति करनेके कारण, महान् पितृ पैतामह ऐश्वर्यको प्राप्त करकेभी नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥

आत्मवति लब्धावकाशः शास्त्रानुयोगं दद्यात् ॥ ६ ॥ अविसंवादाद्धि स्थानस्थैर्यमवाप्नोति ॥ ७ ॥ मतिकर्मसु पृष्टः तदात्वे चायत्यां च धर्मार्थसंयुक्तं समर्थं प्रवीणवदपरिषद्भीरुः कथयेत् ॥ ८ ॥

यदि राजा आत्मसम्पन्नहो तो अवसर आनेपर उसे शास्त्रानुकूल सम्मति देवे ॥ ६ ॥ शास्त्रके साथ उसकी सम्मतिका मिलान हो जानेपर राजाको यह निश्चित होजाता है कि यह नीतिशास्त्रके तत्त्वको जानने वाला है, और फिर उसकी किसी अधिकारी पदपर स्थायी नियुक्ति होजाती है ॥ ७ ॥ अति विचारणीय विषयोंके सम्बन्धमें उससे कुछ पूछे जानेपर, उस समय या भविष्यत्में धर्म और अर्थसे युक्त, शक्तिसम्पन्न चतुर पुरुषोंके समान, सभामें न डरता हुआ भाषण करे ॥ ८ ॥

ईप्सितः पणेत ॥ ९ ॥ धर्मार्थानुयोगमविशिष्टेषु बलवत्संयुक्तेषु दण्डधारणं बलवत्संयोगे तदात्वे च दण्डधारणमिति न कुर्याः ॥ १० ॥ पक्षं वृत्तिं गुह्यं च मे नोपहन्याः ॥ ११ ॥ संज्ञया च त्वां कामक्रोधदण्डनेषु वारयेयमिति ॥ १२ ॥

जब राजा उसको अमात्य बनाना चाहे, तो वह राजाके साथ इस प्रकार निम्नलिखित शर्तें करे कि:—॥ ९ ॥ जो पुरुष साधारण बुद्धि वाले हैं और धर्म अर्थके तत्त्वोंको नहीं समझते, उनसे कभी जिज्ञासाके तौरपर धर्म अर्थके सम्बन्धमें प्रश्न न करना, तथा बलवान्, या बलवान् जिसके सहायक हों ऐसे शत्रुपर दण्ड न उठाना, और मेरे सम्बन्धमें भी किसी बातपर फौरन ही दण्ड न उठाना ॥ १० ॥ मेरे पक्ष, मेरे व्यवहार या जीविका तथा मेरे गुप्त रहस्योंको कभी न खोलना या नष्टकरना ॥ ११ ॥ काम या क्रोधके वशीभूत होकर अनुचित दण्ड देनेके लिए तैयार हुए २ तुमको, मैं बराबर इशारोंसे रोकूंगा। तुम इसका ध्यान रखना और बुरा न मानना ॥ १२ ॥

आदिष्टः प्रदिष्टायां भूमावनुज्ञातः प्रविशेत् ॥ १३ ॥ उपविशेच्च पार्श्वतः संनिकृष्टः विप्रकृष्टः परासनम् ॥ १४ ॥ विगृह्य कथनमसभ्यमप्रत्यक्षमश्रद्धेयमनृतं च वाक्यमुच्चैरनर्मणि हासं वातष्ठीवने च शब्दवती न कुर्यात् ॥ १५ ॥

राजाकी अनुमतिसे किसी अधिकार पदपर नियुक्त हुआ २ कार्य करे ॥ १३ ॥ तथा राजाके समीप इधर उधर (सामने नहीं) न बहुत दूर न अति समीप श्रेष्ठ उचित आसनपर बैठे ॥ १४ ॥ आक्षेप पूर्वक, असभ्य, परोक्षविषयक, अविश्वसनीय, तथा असत्य कथन कभी न करे; बेमौके ऊंचे कभी न हंसे, शब्दके साथ डकार या खकार कभी न लेवे ॥ १५ ॥

मिथः कथनमन्येन जनवादे द्वन्द्वकथनं राज्ञो वेषमुद्धतकुहकानां च रत्नातिशयप्रकाशाभ्यर्थनमेकाक्ष्योष्ठनिर्भोगं भ्रुकुटीकर्म वाक्यावक्षेपणं च ब्रुवति बलवत्संयुक्तविरोधं स्त्रीभिः स्त्रीदर्शिभिः सामन्तदूतैर्द्वेष्यपक्षावक्षिप्तानर्थ्यैश्च प्रतिसंसर्गमेकार्थचर्यां संघातं च वर्जयेत् ॥ १६ ॥

राजाकी उपस्थितिमें ही किसी दूसरेके साथ मिलकर बातचीत करना, किसी अफवाह (जनवाद) की बाबत निश्चित रूपसे हां या ना कहदेना, राजा के या उद्धत पाखण्डियोंके वेशको धारण करना, राजाके धारण करने योग्य रत्नोंकी अपने लिए खुले तौर पर प्रार्थना करना, एक आंख या एक होंठको टेढा करके बोलना, भौं चढ़ाना, राजाके बोलते हुए बीचमें बात काटना, बलवान्के सम्बन्धीसे झगड़ा करना, स्त्रियोंके साथ स्त्रियोंके देखनेवालोंके साथ दूसरे देशके दूतोंके साथ राजाके दुश्मन उदासीन और तिरस्कृत तथा अनर्थकारी कार्य

या पुरुषोंके साथ संसर्ग करना, एकही बातको करते चले जाना, और गुट्ट बनाकर रहना आदि सब कामोंको सर्वथा छोड़ देवे ॥ १६ ॥

अहीनकालं राजार्थं स्वार्थं प्रियहितैः सह ।
परार्थदेशकाले च ब्रूयाद्धर्मार्थसंहितम् ॥ १७ ॥
पृष्टः प्रियहितं ब्रूयान्न ब्रूयादहितं प्रियम् ।
अप्रियं वा हितं ब्रूयाच्छृण्वतोऽनुमतो मिथः ॥ १८ ॥

राजाके मतलबकी बातको उससे फौरन कह देवे, अपने मतलबकी बातको राजाके प्रिय और हितकारी पुरुषोंसे कहे, दूसरेके मतलबकी बातको स्थान और अवसर देखकर कहे, तथा जो कुछ कहे वह सब धर्म और अर्थसे युक्त होना चाहिए ॥ १७ ॥ राजा के पूछनेपर जबकि वह ध्यानपूर्वक सुन रहा हो, उसकी अनुमति लेकर प्रिय और हितकारी बातको कहे, अहितकारी प्रिय कभी न कहे, किन्तु अप्रिय हितकारी बातको अवश्य कह देवे ॥ १८ ॥

तूष्णीं वा प्रतिवाक्ये स्याद्द्वेष्यादींश्च न वर्जयेत् ।
अप्रिया अपि दक्षाः स्युः तद्भावाद्ये बहिष्कृताः ॥१९॥
अनर्थ्याश्च प्रिया दृष्टाश्चित्तज्ञानानुवर्तिनः ।
अभिहास्येष्वभिहसेद्धोरहासांश्च वर्जयेत् ॥ २० ॥

उत्तर देते समय यदि अप्रिय वाक्य सुनानेमें डर हो, तो चुप हो जावे । और राजाके द्वेष्य पुरुषोंका कथन न करे । क्योंकि ऐसा करनेसे राजा की इच्छानुसार न चलनेवाले चतुर पुरुष भी राजाके अप्रिय हो जाते हैं ॥१९॥ और राजाकी इच्छानुसार चलनेवाले अनर्थकारी पुरुष भी राजाके प्रिय देखे गये हैं । राजाके हंसनेपर हंसे, काठकी तरह खड़ा न रहे । और अट्टहासको सर्वथा छोड़ देवे ॥ २० ॥

परात्संक्रामयेद्धोरं न च घोरं परे वदेत् ।
तितिक्षेतात्मनश्चैव क्षमावान्पृथिवीसमः ॥ २१ ॥

किसी घोर भयावह संवादको दूसरेके द्वारा कहलावे, स्वयं कभी न न कहे । यदि अपने ही ऊपर कोई ऐसी बात आजावे, तो पृथिवीके समान क्षमाशील होकर उसका सहन करे ॥ २१ ॥

आत्मरक्षा हि सततं पूर्वं कार्या विजानता ।
अग्नाविव हि संप्रोक्ता वृत्ती राजोपजीविनाम् ॥ २२ ॥

एकदेशं दहेदग्निः शरीरं वा परं गतः ।
सपुत्रदारं राजा तु घातयेद्वर्धयेत वा ॥ २३ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे अनुजीविवृत्तं चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥
आदितश्चतुर्नवतिः ॥ ९४ ॥

इस लिये समझदार कर्मचारीको सबसे पहिले बड़ी सावधानीके साथ अपनी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि राजाके आश्रय रहने वाले पुरुषोंकी स्थिति अग्निमें खेल करने वालेके समान कही गई है ॥ २२ ॥ अग्नि तो शरीरके एक-देश, या अधिक से अधिक सारे शरीरको जला सकती है, परन्तु राजा पुत्र कलत्र सहित सम्पूर्ण परिवारको नष्ट कर सकता है। तथा अनुकूल होनेपर उन्नत भी कर सकता है ॥ २३ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

९३ प्रकरण

व्यवस्था का पालन ।

नियुक्तः कर्मसु व्ययविशुद्धमुदयं दर्शयेत् ॥१॥ आभ्यन्तरं बाह्यं गुह्यं प्रकाश्यमात्ययिकमुपेक्षितव्यं वा कार्यमिदमेवमिति विशेषयेच्च ॥ २ ॥

अपने कार्योंपर नियुक्त हुआ २ समाहर्त्ता आदि कर्मचारी पुरुष, खर्चेको अलहदा दिखाकर शुद्ध आमदनी राजाको दिखावे ॥ १ ॥ दुर्ग में होने वाले और बाहर जनपदमें होने वाले कार्योंको, तथा छिपाकर खुलेतौरपर विघ्न-पूर्वक और उपेक्षा-पूर्वक किये जाने वाले कार्योंको—'यह इस प्रकार किया गया है' इसतरह राजाके सामने साफ २ कहे, और इन सब बातोंको राजकीय पुस्तकमें लिखदेवे ॥ २ ॥

मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीषु प्रसक्तं चैवमनुवर्तेत ॥ ३ ॥ प्रशंसाभि-रासन्नश्चास्य व्यसनोपघाते प्रयतेत ॥ ४ ॥ परोपजापातिसंधानो-पाधिभ्यश्च रक्षेत् ॥ ५ ॥

राजा यदि मृगया द्यूत मद्य और स्त्रियोंमें आसक्त रहता हो, तो उसकी प्रशंसा करते हुए उसका अनुगामी बनारहे ॥ ३ ॥ और इसके पास रहता

हुआ इसे व्यसनोंसे छुड़ानेका यत्न करे ॥ ४ ॥ तथा शत्रुओंके द्वारा भेद डालने वाले, ठगने वाले, और विष आदि देनेवाले पुरुषोंसे राजाकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

इङ्गिताकारौ चास्य लक्षयेत् ॥ ६ ॥ कामद्वेषहर्षदैन्यव्यवसायभयद्वन्द्वविपर्यासमिङ्गिताकाराभ्यां हि मन्त्रसंवरणार्थमाचरन्ति प्रज्ञाः ॥ ७ ॥

राजाकी चेष्टाओंको और आकारको बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे बार-बार देखता रहे ॥ ६ ॥ क्योंकि अपने गुप्त रहस्योंको छिपाये रखनेके लिये बुद्धिमान् पुरुष, काम, द्वेष, हर्ष, दैन्य, व्यवसाय (किसी कार्यके करनेका निश्चय), भय, द्वन्द्वों (सुख दुःख आदि) के विपर्यासको, चेष्टाओं तथा विशेष आकृतियोंके द्वारा ही बतलाते हैं । अतः चेष्टा आदिके जाननेमें बड़ा ध्यान रखना चाहिए ॥ ७ ॥

दर्शने प्रसीदति ॥ ८ ॥ वाक्यं प्रतिगृह्णाति ॥ ९ ॥ आसनं ददाति ॥ १० ॥ विविक्तो दर्शयते ॥ ११ ॥ शङ्कास्थाने नातिशङ्कते ॥ १२ ॥ कथायां रमते ॥ १३ ॥ परिज्ञाप्येष्ववेक्षते ॥ १४ ॥ पथ्यमुक्तं सहते ॥ १५ ॥ स्मयमानो नियुंक्ते ॥१६॥ हस्तेन स्पृशति ॥ १७ ॥ श्लाघ्ये नोपहसति ॥ १८ ॥ परोक्षं गुणं ब्रवीति ॥ १९ ॥ भक्ष्येषु स्मरति ॥ २० ॥ सह विहारं याति ॥ २१ ॥ व्यसने ऽभ्यवपद्यते ॥ २२ ॥ तद्भक्तीन्पूजयति ॥ २३ ॥ गुह्यमाचष्टे ॥ २४ ॥ मानं वर्धयति ॥ २५ ॥ अर्थं करोति ॥२६॥ अनर्थं प्रतिहन्ति ॥२७॥ इति तुष्टज्ञानम् ॥२८॥

राजाकी प्रसन्नताको निम्नलिखित बातोंसे समझना चाहियेः—वह देखनेपरही प्रसन्न होजाता है ॥ ८ ॥ उसकी कही हुई बातको ध्यान पूर्वक आदरसे सुनता है ॥ ९ ॥ उसको बैठनेके लिये उचित आसन देता है ॥ १० ॥ विविक्त=एकान्त स्थान अथवा अन्तःपुर आदिमें भी उसे दर्शन देता है ॥ ११ ॥ शङ्काका अवसर होनेपर भी, विश्वासके कारण अधिक शङ्का नहीं करता ॥ १२ ॥ उसके साथ बातचीत करनेमें कुछ सुखका अनुभव करता है ॥ १३ ॥ दूसरोंके बताये हुए कार्योंमें भी अपने प्रिय पुरुषकी सलाहकी इच्छा रखता है ॥ १४ ॥ हितसे कही हुई कठोर बातको भी सहन करलेता है ॥ १५ ॥ मुस्कराता हुआ उसे किसी कामपर लगाता है ॥ १६ ॥ हाथसे छूता है, अथवा छूते हुए बात करता है ॥ १७ ॥ प्रशंसा योग्य किये गये कामपर उसके सामनेही हँसता है ॥ १८ ॥ उसके पीछे उसके गुणोंकी प्रशंसा करता है ॥ १९ ॥ भोजनोंके सम-

थमें याद करता है, अर्थात् विशेष भोजनोंमें उसेभी बुलाता है ॥ २० ॥ उसके साथ २ खेलने कूदने आदिके लिये जाता है ॥ २१ ॥ उसके ऊपर कोई दुःख आनेपर, उसे हटानेके लिये पूरी सहायता करता है ॥ २२ ॥ उसके साथ अनुराग रखने वालोंका खूब सत्कार करता है ॥ २३ ॥ अपने गुप्त रहस्योंको भी उसके सामने कहदेता है ॥ २४ ॥ उसके मान सत्कार आदिको खूब बढ़ाता है ॥ २५ ॥ उसकी इच्छानुसार आर्थिक सहायता देता है ॥ २६ ॥ और अनर्थका निवारण करता है ॥ २७ ॥ इन सब बातोंसे राजाकी प्रसन्नता जानी जाती है ॥ २८ ॥

एतदेव विपरीतमतुष्टस्य ॥ २९ ॥ भूयश्च वक्ष्यामः ॥३०॥ संदर्शने कोपः ॥ ३१ ॥ वाक्यस्याश्रवणप्रतिषेधौ ॥३२॥ आसनचक्षुषोरदानम् ॥ ३३ ॥ वर्णस्वरभेदः ॥३४॥ एकाक्षिभ्रुकुट्योष्ठनिर्भेदः ॥ ३५ ॥ स्वेदश्वासास्मितानमस्थानोत्पत्तिः ॥ ३६ ॥ परिमन्त्रणम् ॥ ३७ ॥ अकस्माद्व्रजनम् ॥ ३८ ॥ वर्धनमन्यस्य ॥ ३९ ॥ भूमिगात्रविलेखनम् ॥४०॥ अन्यस्योपतोदनम्॥४१॥ विद्यावर्णदेशकुत्सा ॥ ४२ ॥ समदोषनिन्दा ॥ ४३ ॥ प्रतिदोषनिन्दा ॥ ४४ ॥ प्रतिलोमस्तवः ॥४५॥ सुकृतानपेक्षणम् ॥४६॥ दुष्कृतानुकीर्तनम् ॥ ४७ ॥ पृष्ठावधानम् ॥ ४८ ॥ अतित्यागः ॥ ४९ ॥ मिथ्याभिभाषणम् ॥ ५० ॥ राजदर्शिनां च तद्वृत्तान्यत्वम् ॥ ५१ ॥

जब राजा अप्रसन्न हो, तो येही सब बातें उल्टी होजाती हैं ॥ २९ ॥ और कुछ अधिक बातें भी अप्रसन्नता जाननेके लिये बताते हैं ॥ ३० ॥ जिसपर राजा अप्रसन्न हो उसे देखतेही कुपित होजाता है ॥ ३१ ॥ उसकी कही हुई बातको सुनताही नहीं, या रोक देता है ॥ ३२ ॥ बैठनेके लिये आसन नहीं देता और उसकी ओर आंख भी नहीं उठाता ॥ ३३ ॥ मुँह चढ़ाकर और आवाज बदलकर बोलता है ॥ ३४ ॥ एक आंखसे या भौंचढ़ाकर, अथवा होठ टेढ़ा करके बोलता है ॥ ३५ ॥ और बिनाही अवसर उसे पसीना आजाता है, लम्बा सांस चलने लगता है, तथा वह मुस्कराने लगता है ॥ ३६ ॥ दूसरेके साथ बातचीत करने लगता है ॥ ३७ ॥ अचानक उठकर चला जाता है ॥३८॥ इसको छोड़कर दूसरेकी प्रशंसा करने लगता है ॥ ३९ ॥ भूमि अथवा अपने शरीरको नाखूनसे कुरेदने लगता है ॥ ४० ॥ दूसरे किसीको मारने लगता है

॥ ४१ ॥ उसकी विद्या उसके वर्ण और उसके देशकी निन्दा करने लगता है ॥ ४२ ॥ उसके किसी दोषकी ॥ ४३ ॥ या उसके समान किसी दूसरेके दोषकी निन्दा करने लगता है ॥ ४४ ॥ व्याजस्तुति करने लगता है ॥ ४५ ॥ उसके अच्छे किये हुए कामकी भी कुछ पर्वाह नहीं करता ॥ ४६ ॥ और बिगड़े हुए कामको सब जगह कह देता है ॥ ४७ ॥ उसके लौटनेपर पीछेसे उसे बड़े ध्यानसे देखता है ॥ ४८ ॥ समीप आनेपर तत्क्षण किसी कार्यके बहाने उसे वहांसे दूर हटा देता है ॥ ४९ ॥ और उसके साथ मिथ्या=भाव-शून्य अर्थात् सारहीन भाषण करता है ॥ ५० ॥ अन्य राजसेवकोंको उसके व्यवहारमें भेद डालता है ॥ ५१ ॥

वृत्तिविकारं चावेक्षेताप्यमानुषाणाम् ॥ ५२ ॥ अयमुच्चैः सिञ्चतीति कात्यायनः प्रवव्राज ॥ ५३ ॥

मनुष्योंसे अतिरिक्त पशु और पक्षियोंके भी वृत्तिविकारको (मानसिक नाना वृत्तियोंके अनुसार विकृत हुए २ मुखादि आकारोंको) अच्छी तरह ध्यानपूर्वक देखना चाहिये ॥ ५२ ॥ * यह जल सींचनेवाला आज ऊपरसे जल सींच रहा है, इस बातको देखकर मन्त्री कात्यायन राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५३ ॥

क्रौञ्चो ऽपसव्यमिति कणिङ्को भारद्वाजः ॥ ५४ ॥

---

* इसका इतिहास इस प्रकार है:—पौण्ड्रदेशमें सोमदत्त नामका राजा रहता था। उसके पुत्रने कोई अपराध किया। राज-पुत्रको कैद करनेके लिये राजाने अपने मन्त्री कात्यायनके साथ इस विषयमें सलाह की। राज-पुत्रके पक्षके लोगोंको इस बातका पता लगगया, और उन्होंने राजकुमारको वहांसे किसी अन्य सुरक्षित स्थानपर पहुँचा दिया। राजाने समझा कि मन्त्री कात्यायनने ही हमारे भेदको खोल दिया है। उसका वध करनेके लिये अपने नौकरों को उसने आज्ञा देदी। किसी जल सींचनेवाले आदमीने राजाकी इस आज्ञाको किसी तरह सुन लिया। जब कि मन्त्री कात्यायन उधरको आरहा था, वह जलसेचक ऊपरसे ही जल डालकर सींचता रहा। यह देख मन्त्रीने अपने चित्तमें विचार किया, कि कलतक तो यह मेरे ऊपर छींट गिरजानेके डरसे धीरे २ नीचेसे सींचता था, पर आज इसने कुछ परवाह न की, मालूम होता है मेरे प्रति, राजाका कोई महान कोप इसे मालूम होगया है, इसलिए इसके चित्तमें यह विकार हुआ है। यह निश्चय करके मन्त्री कात्यायन, तत्कालही राजाको छोड़ कर चला गया ॥ ५३ ॥

*क्रौञ्चपक्षी बाईं ओरको चला गया यह देखकर भारद्वाज गोत्रीय कणिङ्क नामका मन्त्री राजाको छोड़ गया ॥ ५४ ॥

तृणमितिदीर्घश्चारायणः ॥ ५५ ॥

† तृणको देखकर दीर्घ चारायण आचार्य, राजाको छोड़गया ॥ ५५ ॥

शीता शाटीति घोटमुखः ॥ ५६ ॥

‡ कपड़ा ठण्डा है, इस बातको सुनकर आचार्य घोटमुख राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५६ ॥

हस्ती प्रत्यौक्षीदिति किञ्जल्कः ॥ ५७ ॥

---

* कोसल देशोंमें परन्तप नामक राजाका एक नीतिनिपुण भारद्वाज गोत्रीय कणिङ्क नामका मन्त्री था। वह जब राजाके पासजाता, तो उसकी दाहिनी ओर एक क्रौञ्च नामक पक्षी उड़कर निकला करता था। एक दिन राजाको मालूम हुआ कि मैं जब अन्तः पुरमें था, उस समय कणिङ्क यहां आया। राजा मन्त्रीकी इसबातपर क्रुद्ध होगया, और उसकी बड़ी निन्दाकी। दूसरे दिन राजाके समीप जाते समय मन्त्रीके बाईं ओरसे होकर वह पक्षी उड़ा। इस विपर्ययसे उसने राजाके कोपका अनुमानकर उसे परित्याग कर दिया ॥५४॥

† मगध देशमें कोई बालक राजा होगया। चारायण गोत्रीय दीर्घ नामक, उसका एक आचार्य था। जब वह घरमें आता, राजमाता उसकी अत्यन्त सेवाशुश्रूषा करती। युवा होनेपर, आचार्यकी सेवा न सहन करते हुए राजाने एकदिन अपनी मातासे पूछा, तुम इस ब्राह्मणकी इतनी सेवा क्योंकरती हो? माताने उत्तर दिया, ये अत्यन्त विद्वान् और हमारे आचार्य हैं, तुमभी अन्न वस्त्र आदि देकर इनकी पूजाकरो। यह सुनकर तत्कालही उसने तिनकोंसे भरा हुआ अन्न, आचार्यके लिये दिया। आचार्य दीर्घ चारायण इससे अपने अनादरको जानकर वहांसे चले गये ॥ ५५ ॥

‡ अवन्ती नगरीमें अंशुमान् नामक राजाके पुत्रको नीतिशास्त्र पढ़ानेके लिये घोटमुख नामके एक आचार्य रहतेथे। राजा किसी बातपर उनसे अप्रसन्न होगया। गुरुभक्त राजकुमारने यहबात इशारेसे अपने गुरुको इस प्रकार बताई, वह नित्य प्रति स्नानके अनन्तर अपने वस्त्रको निचोड़कर कन्धेपर रखकर लेजाता था। परन्तु उसदिन यह कहते हुए कि 'यह कपड़ा ठण्डा है', उसे वहीं छोड़कर चला गया। घोटमुखने इस इशारेसे, राजाके चित्तमें कुछ विकार जानकर उसे छोड़ दिया ॥ ५६ ॥

*हाथीने ऊपर पानी डाल दिया यह देखकर किञ्जल्क नामका आचार्य राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५७ ॥

रथाश्वं प्राशंसीदिति पिशुनः ॥ ५८ ॥

†रथके घोड़ेकी प्रसंशा सुनकर पिशुन नामका आचार्य अपने राजाको छोड़कर चला गया ॥ ५८ ॥

प्रतिरवणे शुनः पिशुनपुत्र इति ॥ ५९ ॥

‡ कुत्तेके भूकनेपर पिशुन आचार्यका पुत्र राजाको त्यागकर चला गया ॥ ५९ ॥

अर्थमानावक्षेपे च परित्यागः ॥ ६० ॥ स्वामिशीलमात्मनश्च किल्बिषमुपलभ्य वा प्रतिकुर्वीत मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेत् ॥ ६१ ॥

---

* बङ्गालमें शतानन्द नामक राजाके यहां, एक किञ्जल्क नामका आचार्य रहता था। वह राजाकी सवारीके हाथीको नित्यप्रति पुचकारकर फिर राजकुलमें जाया करता था। किसी दिन हाथीके ऊपर चढ़े हुए राजाने आचार्यके सम्बन्धमें द्रोहपूर्वक मन्त्रणा की। इस बातको जानकर दूसरे दिन जब आचार्य हाथीके पास आया, तो उसने अपनी सूंडसे आचार्यके ऊपर जल फेंक दिया। इस चेष्टासे, राजाके चित्तमें अपनी ओरसे विकार जानकर, वह राजाको छोड़ चला गया ॥ ५७ ॥

† पिशुन नामका आचार्य उज्जयिनीमें प्रद्योत राजाके पुत्र पालकको राजनीति विद्या पढ़ाता था। पढ़ाई समाप्त होजानेपर, राजाने पिशुनके धनको अपहरण करनेके लिये अपने पुत्रसे मंत्रणा की। पुत्रने गुरुद्रोह न करते हुए अगले दिन जुते हुए रथको आचार्यके सामने खड़ा करके कहा कि ये घोड़े चलनेमें बहुत तेज हैं, एक दिनमें ३०० योजन जासकते हैं। आचार्य पिशुनने अपने चले जानेका यह इशारा जान कर तत्काल ही उस राजा को छोड़ दिया ॥ ५८ ॥

‡ पिशुन आचार्यका पुत्र बाल्यकालमेंही सम्पूर्ण राजनीति तत्वोंको जानकर राजाकी सेवा करता था। राजा उसको विद्वान् जानकर सदा उसका अनुसरण करता था। एकबार राजाने विचार किया कि अभी यह बालक होने से मन्त्री पदके योग्य तो है नहीं, इस लिए इसे युवा होनेतक बांधकर रखना चाहिये, नहीं तो यह दूसरे देशको चला जायगा। राजाकी इस सलाहको जान कर एक कुत्ता पिशुनपुत्रके आगे बार २ भौंकताथा। इससे पिशुनपुत्रने राजा के चित्तके विकारका अनुमान करके उसे छोड़ दिया ॥ ५९ ॥

सम्पत्ति और सत्कारका नाश करनेवाले राजाको भी त्याग देना चाहिए ॥ ६० ॥ अथवा राजाके स्वभाव और अपने अपराधपर विचार करके, राजाको न छोड़नेकी इच्छा होनेपर, उसका प्रतीकार करना चाहिए। अथवा राजाके किसी समीपके सम्बन्धी या मित्रका आश्रय लेना चाहिए, जिसके द्वारा राजा को प्रसन्न किया जा सके ॥ ६१ ॥

तत्रस्थो दोषनिर्घातं मित्रैर्भर्तरि चाचरेत् ।
ततो भर्तरि जीवेद् वा मृते वा पुनराव्रजेत् ॥ ६२ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे समयाचारिकं पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितः पञ्चनवतिः ॥ ९५ ॥

राजाके पास रहता हुआ ही, मित्रोंके द्वारा अपने अपराधकी सफ़ाई करावे, और राजाके प्रसन्न होनेपर चाहे उसीके आश्रयमें रहे, या उसके मर जानेपर फिर आ जावे ॥ ६२ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय

९४—९५ प्रकरण

राज्यका प्रतिसन्धान और एकैश्वर्य।

राजव्यसनमेवममात्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १ ॥ प्रागेव मरणाबाधभयाद्राज्ञः प्रियहितोपग्रहेण मासद्विमासान्तरं दर्शनं स्थापयेत् ॥ २ ॥ देशपीडापहममित्रापहमायुष्यं पुत्रीयं वा कर्म राजा साधयतीत्यपदेशेन राजव्यञ्जनमनुरूपवेलायां प्रकृतीनां दर्शयेत् ॥३॥

राजापर आई हुई आपत्तियोंका प्रतीकार, अमात्य इस प्रकार करे ॥१॥ राजाकी मृत्युके भयसे पूर्व ही, राजाके प्रिय और हितैषी पुरुषोंकी सलाह लेकर एक महीना या दो महीने बाद राजाके दर्शनकी तिथि नियुक्त करदे ॥२॥ और यह बहाना करे कि राजा आजकल, देशकी पीड़ाको दूर करनेवाले, शत्रुओंको नष्ट करनेवाले, आयु देनेवाले तथा पुत्र देनेवाले कर्मका अनुष्ठान कर रहा है, इत्यादि। जब राजाके दर्शनका ठीक समय आवे, तो राजाके भेस में किसी पुरुषको प्रजाके सामने दिखला देवे ॥ ३ ॥

मित्रामित्रदूतानां च ॥ ४ ॥ तैश्च यथोचितां संभाषाममात्यमुखो गच्छेत् ॥ ५ ॥ दौवारिकान्तर्वंशिकमुखश्च यथोक्तं राज-

प्रणिधिमनुवर्तयेत् ॥ ६ ॥ अपकारिषु च हेडं प्रसादं वा प्रकृतिकान्तं दर्शयेत् ॥ ७ ॥ प्रसादमेवोपकारिषु ॥ ८ ॥

मित्र, शत्रु, और दूतोंको (अथवा मित्रके दूत तथा शत्रुके दूतोंको) भी उसी बनावटी राजाको दिखा देवे ॥ ४ ॥ उन लोगोंके साथ वह राजा अमात्यके द्वाराही यथोचित सम्भाषण करे ॥ ५ ॥ पहिले प्रसिद्ध किये हुए राजाके कार्यके विषयमें द्वारपाल और अन्तःपुरके रक्षक पुरुषोंके द्वारा ही कहलवाये ॥ ६ ॥ अपकार करनेवाले लोगोंपर अमात्यकी सम्मतिसे कोप अथवा प्रसन्नता दिखावे ॥ ७ ॥ और उपकार करनेवालोंपर प्रसन्नता ही दिखावे, कोप नहीं ॥ ८ ॥

आप्तपुरुषाधिष्ठितौ दुर्गप्रत्यन्तस्थौ वा कोशदण्डावेकस्थौ कारयेत् ॥ ९ ॥ कुल्यकुमारमुख्यांश्चान्यापदेशेन ॥ १० ॥ यश्च मुख्यः पक्षवान्दुर्गाटवीस्थो वा वैगुण्यं भजेत तमुपग्राहयेत् ॥ ११ ॥

दुर्ग और सीमाप्रान्तके कोश तथा सेनाको किसी अत्यन्त विश्वस्त पुरुषकी देखरेखमें, किसी बहानेसे इकट्ठा कर देवे ॥ ९ ॥ तथा और किसी बहानेसे राजाके खान्दानी, राजकुमार, और अन्य मुख्य पुरुषोंको भी एकत्रित कर देवे ॥ १० ॥ जो मुख्य (प्रधान कर्मचारी), किसीकी सहायता लेकर दुर्ग अथवा अटवीमें स्थित हुआ २ राजाके विरुद्ध हो जावे, तो उसे किसी उपायसे अपने अनुकूल बनाया जावे ॥ ११ ॥

बह्वाबाधां वा यात्रां प्रेषयेत् ॥ १२ ॥ मित्रकुलं वा ॥ १३ ॥ यस्माच्च सामन्तादाबाधां पश्येत्तमुत्सवविवाहहस्तिबन्धनाश्वपण्यभूमिप्रदानापदेशेनावग्राहयेत् ॥ १४ ॥

अथवा उसे बहुत बाधाओंसे युक्त यात्रा (आक्रमण, किसी देशपर चढ़ाई) पर भेज देवे ॥ १२ ॥ अथवा किसी मित्र राष्ट्रके पास उसकी सहायताका बहाना करके भेज देवे ॥ १३ ॥ जिस किसी सामन्त अर्थात् समीप के राजासे बाधा (कष्ट) का भय हो, उसे उत्सव, विवाह, हाथीके पकड़ने और घोड़ा, अन्य माल, तथा भूमि देनेके बहानेसे अपने पास बुलाकर अनुकूल बनावे ॥ १४ ॥

स्वामित्रेण वा ततः संधिमदूष्यं कारयेत् ॥ १५ ॥ आटविकामित्रैर्वा वैरं ग्राहयेत् ॥ १६ ॥ तत्कुलीनमवरुद्धं वा भूम्येकदेशेनोपग्राहयेत् ॥ १७ ॥

अथवा अपने मित्रके द्वारा उसे अनुकूल बना लेवे, और फिर उसीके द्वारा अपने साथ अदूष्य (दूषित न होनेवाली) सन्धि करालेवे ॥ १५ ॥ अथवा आटविक, तथा अपने शत्रुके साथ इस सामन्तका वैर करादेवे ॥ १६ ॥ अथवा सामन्तके घरानेके किसी आदमीको भूमिका कुछ हिस्सा देकर अपने वशमें करलेवे और फिर उसीके द्वारा सामन्तका दमन करावे ॥ १७ ॥

कुल्यकुमारमुख्योपग्रहं कृत्वा वा कुमारमभिषिक्तमेव दर्शयेत् ॥ १८ ॥ दाण्डधर्मिकवद्वा राज्यकण्टकानुद्धृत्य राज्यं कारयेत् ॥ १९ ॥

राजाके मर जानेपर तो राजाके वंशज राजकुमार, तथा राष्ट्रके मुख्य कर्मचारियोंकी अनुकूलता देखकर, अभिषिक्त राजकुमारको ही प्रजाओंके सामने दिखलावे ॥ १८ ॥ और दाण्डकर्मिक प्रकरणमें बतलाई हुई रीतिसे, राज्य कण्टकोंको उखाड़कर निष्कण्टक राज्य करावे ॥ १९ ॥

यदि वा कश्चिन्मुख्यः सामन्तादीनामन्यतमः कोपं भजेत तमेहि राजानं त्वा करिष्यामीत्यावाहयित्वा घातयेत् ॥ २० ॥ आपत्प्रतीकारेण वा साधयेत् ॥ २१ ॥

यदि सामन्त आदिमेंसे कोई एक मुख्य इस बातसे कुपित होजावे, तो उससे कहे कि:—"यह बालक तो सर्वथा राज्यके अयोग्य है, तुम यहां आओ, मैं तुमको ही राजा बनादूँगा' इस प्रकार बुलाकर उसे मरवा डाले ॥ २० ॥ यदि वह न आवे, तो आपत्प्रतीकार प्रकरणमें बताई हुई रीतिसे उसे सीधा करे ॥ २१ ॥

युवराजे वा क्रमेण राज्यभारमारोप्य राजव्यसनं ख्यापयेत् ॥ २२ ॥ परभूमौ राजव्यसने मित्रेणामित्रव्यञ्जनेन शत्रोः संधिमवस्थाप्यापगच्छेत् ॥ २३ ॥

युवराजपर धीरे २ सम्पूर्ण राज्यका भार सौंपकर फिर राजाकी विपत्ति को सबके सामने प्रकट करे ॥ २२ ॥ यदि राजा कहीं दूसरे देशमेंही मरजावे, तो बनावटी दुश्मन बने हुए मित्रके साथ शत्रुकी सन्धि कराकर वापस चला आवे ॥ २३ ॥

सामन्तादीनामन्यतमं वास्य दुर्गे स्थापयित्वापगच्छेत् ॥ २४ ॥ कुमारमभिषिच्य वा प्रतिव्यूहेत ॥ २५ ॥ परेणाभियुक्तो वा यथोक्तमापत्प्रतीकारं कुर्यात् ॥ २६ ॥ एवमेकैश्वर्यममात्यः कारयेदिति कौटल्यः ॥ २७ ॥

अथवा सामन्त आदिमेंसे किसी एकको इसके दुर्गमें स्थापित करके चला आवे ॥ २४ ॥ और राजकुमारका राज्याभिषेक करके फिर शत्रुके साथ युद्ध करे ॥ २५ ॥ यदि कोई अन्य शत्रुही इसके ऊपर चढ़ाई करदे, तो अभि-यास्यत्कर्म अधिकरणमें बतलाये हुए बाहर और भीतरकी आपत्तियोंसे बचनेके उपायोंके द्वारा उस आपत्तिका प्रतीकार करे ॥ २६ ॥ इस प्रकार अमात्य एकैश्वर्य राज्यका पालन करावे, यह कौटल्यका मत है ॥ २७ ॥

नैवमिति भारद्वाजः ॥ २८ ॥ प्रम्रियमाणे वा राजन्यमात्यः कुल्यकुमारमुख्यान्परस्परं मुख्येषु वा विक्रामयेत् ॥ २९ ॥ विक्रान्तं प्रकृतिकोपेन घातयेत् ॥ ३० ॥

परन्तु भारद्वाज आचार्यका मत है कि अमात्य इस प्रकार राजपुत्रका एकैश्वर्य (एकच्छत्र) राज्य न करवावे ॥ २८ ॥ किन्तु राजाके आसन्नमरण (मरनेवाले) होनेपर, अमात्य, राजाके वंशज, राजकुमार, तथा मुख्य व्यक्तियों को परस्पर, या इनको अन्य मुख्योंके साथ लड़ा देवे ॥ २९ ॥ इनके लड़नेपर प्रजा या अमात्य आदिके कुपित होनेके कारण इनको मरवा देवे ॥ ३० ॥

कुल्यकुमारमुख्यानुपांशुदण्डेन वा साधयित्वा स्वयं राज्यं गृह्णीयात् ॥ ३१ ॥ राज्यकारणाद्धि पिता पुत्रान्पुत्राश्च पितरमभिद्रुह्यन्ति ॥३२॥ किमङ्ग पुनरमात्यप्रकृतिर्ह्येकप्रग्रहो राज्यस्य ॥३३॥

अथवा राजाके वंशज, राजकुमार, और मुख्य व्यक्तियोंको उपांशुदण्ड से (चुपचाप कोई षड्यन्त रचकर, विष आदि देनेसे) मरवा देवे । और अपने आपही सम्पूर्ण राज्यका मालिक बनजावे ॥ ३१ ॥ क्योंकि राज्यके लिये पिता पुत्रके साथ और पुत्र पिताके साथ अभिद्रोह करते देखे गये हैं ॥ ३२ ॥ फिर अमात्यका तो कहनाही क्या ? जोकि सम्पूर्ण राज्यकी एक बागडोर समझा जाता है ॥ ३३ ॥

तत्स्वयमुपस्थितं नावमन्येत ॥ ३४ ॥ स्वयमारूढा हि स्त्री त्यज्यमानाभिशपतीति लोकप्रवादः ॥ ३५ ॥

इस लिये स्वयं आये हुए इतने विशाल राज्यका कभी तिरस्कार न करे ॥ ३४ ॥ क्योंकि रमण करनेके लिये स्वयं आई हुई स्त्री (भी) यदि छोड़ दी जावे तो वह पुरुषको शाप देदेती है, यह बात लोक प्रसिद्ध है ॥ ३५ ॥

कालश्च सकृदभ्येति यं नरं कालकाङ्क्षिणम् ।
दुर्लभः स पुनस्तस्य कालः कर्मचिकीर्षतः ॥ ३६ ॥

काम करनेकी इच्छासे, पुरुष चिरकालसे जिस उचित समयकी प्रतीक्षा करता रहता है, ऐसा मौका कभी एकबारही उसके पास आता है। उसकी उपेक्षा करदेनेपर फिर अवसर दुर्लभ होता है। सांप निकल जानेपर लकीर पीटनेसे क्या फ़ायदा ॥ ३६ ॥

प्रकृतिकोपकमधर्मिष्ठमनैकान्तिकं चैतदिति कौटल्यः ॥३७॥ राजपुत्रमात्मसंपन्नं राज्ये स्थापयेत् ॥ ३८ ॥

परन्तु इसके विरुद्ध कौटल्यका मत है कि इस प्रकारकी कार्रवाई प्रजा-को रुष्ट करनेवाली, अधर्मसे युक्त और सदा न होने वाली है ॥ ३७ ॥ अतः आत्मसम्पन्न राजपुत्रको ही राजसिंहासनपर अभिषिक्त करदे ॥ ३८ ॥

संपन्नाभावे व्यसनिनं कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वा पुरस्कृत्य महामात्रान्सन्निपात्य ब्रूयात् ॥ ३९ ॥

यदि कोई राजकुमार आत्मसम्पन्न न होवे, तो व्यसनी (स्त्री मद्य आदि में आसक्त) राजकुमारको, राज कन्याको, या गर्भिणी महारानीको, सामने कर के, राष्ट्रके सम्पूर्ण महान व्यक्तियोंको एकत्रित करके कहे, कि:—॥ ३९ ॥

अयं वो निक्षेपः ॥ ४० ॥ पितरमस्यावेक्षध्वं सत्त्वाभिजन-मात्मनश्च ॥४१॥ ध्वजमात्रो ऽयं भवन्त एव स्वामिनः ॥४२॥ कथं वा क्रियतामिति ॥ ४३ ॥

यह आप लोगोंकी धरोहर है, इसकी रक्षा आप लोगोंको ही करनी है ॥ ४० ॥ इसके (राजकुमारके) पिताके पराक्रम और वंशकी ओर भी ध्यानदें और ज़रा अपनी ओर भी देखें ॥ ४१ ॥ यह (राजकुमार) केवल एक झण्डेके समान है, जो सबसे ऊँचा रहता हुआ फहराता रहता है, वस्तुतः इस राज्यके प्रबन्धकर्त्ता आपही लोग हैं ॥ ४२ ॥ अब बतलाइये इस विषयमें क्या किया जाय? इत्यादि ॥ ४३ ॥

तथा ब्रुवाणं योगपुरुषा ब्रूयुः ॥ ४४ को ऽन्यो भवत्पुरोगा-दस्माद्राज्ञश्चातुर्वर्ण्यमर्हति पालयितुमिति ॥ ४५ ॥

इसप्रकार कहतेहुए अमात्यको, वे एकत्रित कियेहुए राष्ट्रके महान व्यक्ति कहें:—॥ ४४ ॥ आपके नेतृत्वमें अथवा आपकी देखरेखमें रहते हुए इसके (राजकुमारके) सिवाय और कौन है, जो राजाकी चातुर्वर्ण्य प्रजाका पालन करसके, इत्यादि ॥ ४५ ॥

तथेत्यमात्यः कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वाधिकुर्वीत

॥ ४६ ॥ बन्धुसंबन्धिनां मित्रामित्रदूतानां च दर्शयेत् ॥ ४७ ॥

'अच्छी बात है' कहकर अमात्य, उस राजकुमारको या राजकन्याको अथवा गर्भिणी महारानीको राज्य सिंहासनपर अभिषिक्त कर दे ॥ ४६ ॥ और इसे, उसके भाई बन्धु तथा सम्बन्धियों, मित्र, शत्रु, तथा दूतोंको दिखला देवे, कि ये राजा हैं ॥ ४७ ॥

भक्तवेतनविशेषममात्यानामायुधीयानां च कारयेत् ॥४८॥ भूयश्चायं वृद्धः करिष्यतीति ब्रूयात् ॥ ४९ ॥ एवं दुर्गराष्ट्रमुख्यानाभाषेत ॥ ५० ॥ यथार्हं च मित्रामित्रपक्षम् ॥ ५१ ॥ विनयकर्माणि च कुमारस्य प्रयतेत ॥ ५२ ॥

अमात्य और सिपाहियोंके भत्ते और वेतनमें कुछ तरक्की करवा देवे ॥ ४८ ॥ और कहे कि यह बड़ा होकर और भी वेतनवृद्धि करेगा ॥ ४९ ॥ इसी प्रकार दुर्ग तथा राष्ट्रके मुख्य कर्मचारियोंको भी कहे ॥ ५० ॥ और मित्र तथा शत्रुपक्षके साथ भी यथोचित आभाषण करे ॥ ५१ ॥ तथा राजकुमारकी विद्या विनय और अन्य प्रकारकी शिक्षाके लिये पूरा प्रयत्न करे ॥५२॥

कन्यायां समानजातीयादपत्यमुत्पाद्य वाभिषिञ्चेत् ॥५३॥ मातुश्चित्तक्षोभभयात्कुल्यमल्पसत्त्वं छात्रं च लक्षण्यमुपनिदध्यात् ॥ ५४ ॥ ऋतौ चैनां रक्षेत् ॥ ५५ ॥

अथवा किसी समानजातीय पुरुषसे राजकन्यामें पुत्र उत्पन्न कराके, उसे राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त करे ॥ ५३ ॥ राजकुमारकी माता (महाराणी) का चित्त बेचैन न हो यह विचार करके किसी कुलीन, निर्बल, सौम्य वेदाध्येताको उसके पास रखदेवे, जिससे कि वह धर्मशास्त्र तथा पुराण आदि सुनाकर उसके चित्तको शान्त रक्खे ॥ ५४ ॥ और ऋतुकालमें इसकी अच्छी तरह रक्षा करे ॥ ५५ ॥

न चात्मार्थं कश्चिदुत्कृष्टमुपभोगं कारयेत् ॥ ५६ ॥ राजार्थं तु यानवाहनाभरणवस्त्रस्त्रीवेश्मपरिवापान्कारयेत् ॥ ५७ ॥

अपने लिये उपभोगका कोई बढ़ियापदार्थ सञ्चित न करे ॥ ५६ परन्तु राजाके लिये यान (रथ आदि सवारी) वाहन (घोड़े हाथी आदि) आभरण, वस्त्र, स्त्री, मकान, और बढ़िया शयनासन आदि तैयार करावे ॥ ५७ ॥

यौवनस्थं च याचेत विश्रमं चित्तकारणात् ।
परित्यजेदतुष्यन्तं तुष्यन्तं चानुपालयेत् ॥ ५८ ॥

जब राजकुमार युवा होजावे, राज्यभार संभाल सके, तो उसके चित्तके अभिप्रायको जाननेके लिये; स्वयं मन्त्रीका कार्य छोड़नेको उससे कहे। यदि वह 'चले जाओ' ऐसा कहदे, तो राजकुमारको छोड़कर वह चला जावे। यदि वह जानेको न कहे तो फिर उसीके आश्रयमें रहकर यथापूर्व कार्य करता रहे ॥ ५८ ॥

निवेद्य पुत्ररक्षार्थं गूढसारपरिग्रहान् ।
अरण्यं दीर्घसत्त्रं वा सेवेतारुच्यतां गतः ॥ ५९ ॥

अमात्य पदपर कार्य करनेकी रुचि न रहनेपर अथवा राजाकी ओरसे कुछ मनमुटाव होनेपर, पुत्रकी रक्षाके लिये पितृ पितामह आदिके स्थापित किये हुए गूढ़पुरुष मूलबल और खजाने आदिको राजपुत्रको बताकर अरण्यमें तपस्याके लिये चला जावे। अथवा बहुत लम्बे समयतक होनेवाले यज्ञ आदि कर्मोंका अनुष्ठान करे ॥ ५९ ॥

मुख्यैरवगृहीतं वा राजानं तत्प्रियाश्रितः ।
इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित् ॥ ६० ॥

अथवा मामा, फूफा आदि मुख्य व्यक्तियोंके अधीन हुए २ राजा (राजकुमार) को, उसके प्रिय पुरुषोंके आश्रित रहता हुआही, तत्त्वज्ञ अमात्य इतिहास और पुराणोंके द्वारा धर्म अर्थके तत्त्वोंको यथावत् समझाता रहे ॥६०॥

सिद्धव्यञ्जनरूपो वा योगमास्थाय पार्थिवम् ।
लभेत लब्ध्वा दूष्येषु दाण्डकर्मिकमाचरेत् ॥ ६१ ॥

इति योगवृत्ते पञ्चमे ऽधिकरणे राज्यप्रतिसंधानम्
एकैश्वर्यं षष्ठो ऽध्यायः ॥६॥
आदितः षण्णवतिः ॥९६॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य
योगवृत्तं पञ्चममधिकरणं समाप्तम्॥५॥

यदि इस तरहसे भी राजाको यथावत् तत्त्व न समझा सके, तो सिद्ध पुरुषका भेस बनाकर कपटका आश्रय लेकर राजाको अपने वशमें करे। और फिर वशमें करके मातुल आदि दूष्य पुरुषोंमें दाण्डकर्मिक प्रकरणमें बताये उपयुक्त दण्डोंका प्रयोग करे ॥ ६१ ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त।

योगवृत्त पञ्चम अधिकरण समाप्त

मण्डलयोनि षष्ठ अधिकरण ।

पहला अध्याय ।

९६ प्रकरण ।

प्रकृतियोंके गुण ।

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः ॥ १ ॥ तत्र स्वामिसंपत् ॥ २ ॥

स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, (सेना) मित्र, ये सात प्रकृति कहलाते हैं ॥ १ । इनमें से सबसे पहिले स्वामी (राजा) के गुण बताते हैं:— ॥ २ ॥

महाकुलीनो दैवबुद्धिः सत्त्वसंपन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहो ऽदीर्घसूत्रः शक्यसामन्तो दृढबुद्धिरक्षुद्रपरिषत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणाः ॥ ३ ॥

महाकुलीन (श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ २), भाग्यशाली, मेधावी, धैर्यशाली दूरदर्शी अथवा महाज्ञानी, धार्मिक, सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, महादानी, महाउत्साही, क्षिप्रकारी (किसी कार्यको तत्क्षण सोचकर करनेवाला) सामन्तों (समीपके परराष्ट्रों) को वशमें करनेवाला, दृढनिश्चय अथवा दृढ भक्ति, गुणी परिवारवाला, शास्त्रमर्यादाको चाहनेवाला, ये राजाके १६ गुण आभिगामिक (राजाके गुण दो तरहके होते हैं, १ आभिगामिक २ आत्मसम्पत्तिरूप । ये उपर्युक्त १६ आभिगामिक गुण हैं ।) गुण कहाते हैं ॥ ३ ॥

शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिवेशाः प्रज्ञागुणाः ॥ ४ ॥ शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः ॥५॥

शुश्रूषा (शास्त्र सुननेकी इच्छा), श्रवण (शास्त्रज्ञान), प्रत्येक बातका समझना, समझी हुई बातको याद रखना, किसीके सम्बन्धमें विशेषज्ञान रखना, किसी बातकी वास्तविकता जाननेके लिये तर्क करना तथा दुष्ट पक्षको त्याग देना, गुणियोंका पक्ष करना, ये आठ राजाके प्रज्ञागुण कहाते हैं ॥ ४ ॥

शौर्य (निर्भीकता), अमर्ष (पापाचरणको क्षमा न करना), शीघ्रकारी होना, और प्रत्येक कार्य (लङ्घन प्लवन आरोहण आदि) में चतुर होना, ये चार गुण राजाके 'उत्साहगुण' कहलाते हैं ॥ ५ ॥

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रः स्ववग्रहः कृतशिल्पो-व्यसने दण्डनाय्युपकारापकारयोर्दृष्टप्रतीकारी ह्रीमानापत्प्रकृत्यो-र्विनियोक्ता दीर्घदूरदर्शी देशकालपुरुषकारकार्यप्रधानः संधिवि-क्रमत्यागसंयमपणपरच्छिद्रविभागी संवृतोऽदीनाभिहास्यजिह्मभ्रु-कुटीक्षणः कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः शक्लः स्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसंपत् ॥ ६ ॥

वाग्मी (अर्थपूर्ण भाषण करनेमें समर्थ), प्रगल्भ (सभा आदिमें बोलते समय कम्परहित) स्मृति मति तथा बलसे युक्त, उन्नतचित्त, संयमी, हाथी घोड़े आदिके चलानेमें निपुण, शत्रुकी विपत्तिमें चढ़ाई करनेवाला, अपनी विपत्तिमें सेनाकी रक्षा करनेवाला, किसीके द्वारा उपकार या अपकार किये जानेपर उसका शास्त्रके अनुसार प्रतीकार करनेवाला, लज्जाशील, दुर्भिक्ष और सुभिक्षमें धान्य आदिका ठीक २ विनियोग करनेवाला, लम्बी और दूरकी सोचनेवाला, अपनी सेनाके युद्धोचित देशकाल उत्साहशक्ति तथा कार्यको प्रधानतया देखनेवाला, सन्धिके प्रयोगको समझनेवाला, प्रकाशयुद्ध आदि करनेमें चतुर, सुपात्रमें दान देनेवाला, प्रजाको कष्ट न पहुँचाकर ही गुप्तरूपसे कोशको बढ़ानेवाला, शत्रुके अन्दर मृगयाद्यूत आदि व्यसनोंको देखकर उसपर तीक्ष्ण रस आदिका प्रयोग करनेमें समर्थ, अपने मन्त्रको गुप्त रखनेवाला, दीन पुरुषोंकी हँसी न उड़ानेवाला, टेढ़ी भौं न करके देखनेवाला, काम, क्रोध, लोभ मोह, चपलता, उपताप और पैशुन्य (चुगलखोरी) से सदा अलग रहनेवाला, प्रिय बोलनेवाला, हँसमुख तथा उदार भाषण करनेवाला, और वृद्धोंके उप-देश तथा आचारको माननेवाला राजा होना चाहिये । ये राजाकी आत्मसम्पत् हैं । इनसे युक्त राजा आत्मसम्पन्न कहाता है ॥ ६ ॥

अमात्यसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥ ७ ॥ मध्ये चान्ते च स्थानवा-नात्मधारणः परधारणश्चापदि स्वारक्षः स्वाजीवः शत्रुद्वेषी शक्य-सामन्तः पङ्कपाषाणोषरविषमकण्टकश्रेणीव्यालमृगाटवीहीनः का-न्तः सीताखनिद्रव्यहस्तिवनवान् गव्यः पौरुषेयो गुप्तगोचरः पशुमा-नदेवमातृको वारिस्थलपथाभ्यामुपेतः सारचित्रबहुपण्यो दण्डकर-

सहः कर्मशीलकर्षको ऽबालिशस्वाम्यवरवर्णप्रायो भक्तशुचिमनुष्य इति जनपदसंपत् ॥ ८ ॥

अमात्यसम्पत् पहिले वैनयिक अधिकरणमें कही जाचुकी है ॥ ७ ॥ अब जनपद सम्पत् बतलाते हैं:—मध्यमें तथा सीमाप्रान्तमें किले हों, जिस में स्वेदशनिवासी तथा परदेशसे आनेवाले जनोंके लिये पर्याप्त धान्य आदि पैदा हो सके, आपत्तिमें पहाड़ बन आदिके होनेसे देशवासियोंकी रक्षा करसके या पर्वत आदिके कारण सरलतासे जिसकी रक्षा कीजासके, जहां थोड़ेही परिश्रमसे धान्य आदि पैदा हो जांय, राजाके शत्रुसे दुश्मनी रखने वाले मनुष्यों से युक्त, जिसके आसपासके राजा दुर्बलहों, कीचड़ कङ्कड़ उसर विषम चोर ज्वारी (कण्टक), छोटे २ शत्रु (श्रेणी) हिंसक जानवर और घने जंगलोंसे रहित हो, नदी सर आदिके कारण रमणीय, खेती खान लकड़ियों तथा हाथियों के जंगलोंसे युक्त हो, गौओंके लिये हितकारी हो, पुरुषोंके लिये भी जहांका जलवायु अच्छा हो, लुब्धक आदिसे सुरक्षित, गाय भैंस आदि पशु जहां खूब हों, नदी नहरोंसे युक्त, जल थलके बहूमूल्य तरह २ के क्रय्य वस्तुओंसे युक्त, जो दण्ड और करको सहन कर सके, जहांके किसान बड़े मेहनती हों, जहांके मालिक समझदार हों, जहां नीच वर्णके मनुष्य अधिक हों, जहां अनुरक्त और शुद्ध हृदयके पुरुष हों, ऐसा जनपद होना चाहिये। ये सब बातें 'जनपद सम्पत्ति' के नामसे कही जाती हैं ॥ ८ ॥

दुर्गसंपदुक्ता पुरस्तात् ॥ ९ ॥ धर्माधिगतः पूर्वैः स्वयं वा हेमरूप्यप्रायश्चित्रस्थूलरत्नहिरण्यो दीर्घामप्यापदमनायतिं सहेतेति कोशसंपत् ॥ १० ॥

दुर्ग सम्पत् पहिले ही दुर्ग विधान प्रकरणमें बतलाई जाचुकी है ॥९॥ कोशसम्पत् बताते हैं:—पहिले राजाओंके द्वारा या स्वयं धर्मपूर्वक सञ्चित किया हुआ धान्यका षड्भाग आदि, अत्यधिक सुवर्ण तथा रजतसे युक्त, बहुमूल्य बड़े २ और नाना प्रकारके रत्नों तथा हिरण्योंसे भराहुआ, जो चिर काल तक रहनेवाली दुर्भिक्ष आदि आपत्ति और धन व्ययको सहन कर सके, ऐसा कोश होना चाहिये। इनसब बातोंका होना 'कोशसम्पत्' कहाता है ॥ १० ॥

पितृपैतामहो नित्यो वश्यस्तुष्टभृतपुत्रदारः प्रवासेष्वपि संपादितः सर्वत्राप्रतिहतो दुःखसहो बहुयुद्धः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविशारदः सहवृद्धिक्षयिकत्वादद्वैध्यः क्षत्रप्राय इति दण्डसंपत् ॥ ११ ॥

पितृपितामहके समयसे आया हुआ, इसी लिये स्थिरताके साथ सेवा करनेवाला, वशमें रहनेवाला, जिसके पुत्र और स्त्री राजाकी ओरसे भरण पोषण होनेके कारण सन्तुष्ट रहते हैं, चढ़ाईके समयमें भी जो उचित आवश्यक वस्तुओंसे युक्त करदिया जाता है, जो कहीं हार न खाता हो, दुःख सहने वाला, युद्धकी चतुरताओंसे परिचित, हर तरहके युद्धके हथियारोंके चलानेमें सुचतुर, राजाके अनुकूल, हानि लाभ होनेके कारण भेद रहित, जिसमें क्षत्रियही प्रायः अधिक हों, ऐसा सैन्य होना चाहिये। दण्ड अर्थात् सेनाके अन्दर इन गुणोंका होना ही (दण्डसम्पत् कहाता) है ॥११॥

पितृपैतामहं नित्यं वश्यमद्वैध्यं महल्लघुसमुत्थमिति मित्रसंपत् ॥ १२ ॥

पितृपितामह क्रमसे आये हुए, जो बनावटी न हों, अपने वशमें रहें, जिनके साथ कभी भेद न हो, जो प्रभु मन्त्र तथा उत्साह आदि शक्तियोंसे युक्त हों, अवसर आनेपर झट सहायता करनेके लिये तैयार होजांय, इस प्रकारके मित्र होने चाहियें। मित्रोंमें इन गुणोंका होना ही 'मित्रसम्पत्' कहाता है ॥ १२ ॥

अराजबीजी लुब्धः क्षुद्रपरिषत्को विरक्तप्रकृतिरन्यायवृत्तिरयुक्तो व्यसनी निरुत्साहो दैवप्रमाणो यत्किंचनकार्यगतिरननुबन्धः क्लीबो नित्यापकारी चेत्यमित्रसंपत् ॥ १३ ॥ एवंभूतो हि शत्रुः सुखः समुच्छेत्तुं भवति ॥ १४ ॥

जो शुद्ध राजवंशका न हो, लोभी, दुष्ट परिवार वाला, अमात्य आदि प्रकृति जिससे प्रसन्न न रहें, शास्त्रके प्रतिकूल आचरण करने वाला, अयुक्त, व्यसनी, उत्साह रहित, भाग्यको ही सबकुछ समझने वाला, बिना विचारे काम करनेवाला, अशरण, सहाय रहित, नपुंसक-धैर्यहीन, अपने तथा परायेकी सदा बुराई करनेवाला, शत्रु होना चाहिये, इन बातोंका शत्रुओंमें होना ही 'शत्रु सम्पत्' कहाता है ॥ १३ ॥ इस प्रकारका शत्रु बड़ी आसानीसे उखाड़ दिया जाता है ॥ १४ ॥

अरिवर्जाः प्रकृतयः सप्तैताः स्वगुणोदयाः ।
उक्ताः प्रत्यङ्गभूतास्ताः प्रकृता राजसंपदः ॥ १५ ॥

शत्रुको छोड़कर (क्योंकि वह राजा होनेसे स्वामिप्रकृतिके अन्दर आजाता है) बाकी ये स्वामी आदि सात प्रकृतियां अपने २ गुणोंसे युक्त कहदी

गईं । ये एक दूसरेकी सहायक होनेसे परस्पर अङ्गभूत हुईं २ और अपने २ कार्योंमें लगीहुईं, 'राजसम्पत्ति' नामसे कही जाती हैं ॥ १५ ॥

संपादयत्यसंपन्नाः प्रकृतीरात्मवान्नृपः ।
विवृद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान् ॥ १६ ॥
ततः स दुष्टप्रकृतिश्चातुरन्तो ऽप्यनात्मवान् ।
हन्यते वा प्रकृतिभिर्याति वा द्विषतां वशम् ॥ १७ ॥

आत्मसम्पत्तिसे युक्त राजा, अपने २ गुणोंसे रहित प्रकृतियोंको भी गुणोंसे सम्पन्न बना लेता है। और आत्मसम्पत्तिसे रहित राजा गुणसमृद्ध तथा अनुरक्त प्रकृतियोंको भी नष्ट करदेता है ॥ १६ ॥ इसी कारण ,वह दुष्ट प्रकृति, आत्मसम्पत्ति रहित राजा चतुस्समुद्र पर्यन्त भूमिका अधिपति होता हुआ भी यातो अमात्य आदि प्रकृतियोंके द्वारा मारदिया जाता है, अथवा शत्रु के वशमें चला जाता है ॥ १७ ॥

आत्मवांस्त्वल्पदेशो ऽपि युक्तः प्रकृतिसंपदा ।
नयज्ञः पृथिवीं कृत्स्नां जयत्येव न हीयते ॥ १८ ॥

इति मण्डलयोनौ षष्ठे ऽधिकरणे प्रकृतिसंपदः प्रथमो ऽध्याय ॥१॥
आदितः सप्तनवतः ॥९७॥

परन्तु आत्मसम्पन्न नीतिज्ञ राजा थोड़ी भूमिका मालिक होते हुए भी प्रकृति सम्पत्तिसे युक्त हुआ २ सम्पूर्ण पृथिवीको विजय करलेता है, और कभी क्षीणताको प्राप्त नहीं होता ॥ १८ ॥

मण्डलयोनि षष्ठ अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

९७ प्रकरण

शांति और उद्योग ।

शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः ॥१॥ कर्मारम्भाणां योगाराधनो व्यायामः ॥ २ ॥

शान्ति क्षेमका तथा व्यायाम योगका कारण है ॥ १ ॥ अपने देशमें दुर्ग आदि तथा दूसरे देशमें सन्धि आदि कार्योंका, कार्य कुशल पुरुषोंके तथा आवश्यक उपकरणोंके साथ सम्बन्धका जो साधक है वही व्यायाम कहाता है। अर्थात् दुर्ग तथा सन्धि आदि कार्योंपर उपकरण सहित कार्यकुशल पुरुषोंको नियुक्त करना ही व्यायाम शब्दका अर्थ है ॥ २ ॥

कर्मफलोपभोगानां क्षेमाराधनः शमः ॥ ३ ॥ शमव्यायाम-योर्योनिः षाड्गुण्यम् ॥ ४ ॥ क्षयस्थानं वृद्धिरित्युदयास्तस्य ॥५॥ मानुषं नयापनयौ दैवमयानयौ ॥ ६ ॥

दुर्ग तथा सन्धि आदि कर्मोंके फलोंके उपभोग करनेमें हर तरहके आनेवाले विघ्नोंके नाशका जो साधन है, वही शम कहाता है ॥ ३ ॥ शम और व्यायामके कारण सन्धि, विग्रह, यान आसन, संश्रय और द्वैधीभाव ये छः गुण हैं ॥ ४ ॥ उन्नति (वृद्धिः), अवनति (क्षयः), या उसी अवस्था में रहना (स्थानं), ये तीन, इन छः गुणोंके फल हैं ॥ ५ ॥ इन फलोंके प्राप्त करानेवाले दो प्रकारके कर्म हैं, एक मानुष और दूसरे दैव। नय और अपनय मानुषकर्म हैं। अय और अनय दैव कर्म हैं ॥ ६ ॥

दैवमानुषं हि कर्म लोकं यापयति ॥७॥ अदृष्टकारितं दैवम् तस्मिन्निष्टेन फलेन योगो ऽयः ॥ ९ ॥ अनिष्टेनानयः ॥ १० ॥

ये दैव और मानुषकर्म ही लोक यात्राको करते हैं ॥ ७ ॥ धर्म और अधर्मरूप अदृष्टसे कराया हुआ कर्म दैव कहाता है ॥ ८ ॥ उसके होनेपर जब वाञ्छनीय फलके साथ सम्बन्ध होजाय तो वह अय कहा जाता है ॥ ९ ॥ और प्रतिकूल फलके साथ सम्बन्ध होनेपर अनय कहाता है ॥ १० ॥

दृष्टकारितं मानुषम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्योगक्षेमनिष्पत्तिर्नयः विपत्तिरपनयः ॥ १३ ॥

प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति या उत्साहशक्ति आदिके कारण, सन्धि विग्रह आदि गुणोंके प्रयोगके द्वारा जो कराया जाय, वह मानुषकर्म कहाता है ॥ ११ ॥ उसके होनेपर यदि योग और क्षेमकी सिद्धि हो जाय तो वह नय कहाता है ॥ १२ ॥ यदि विपत्ति आजाय तो अपनय कहा जाता है ॥१३॥

तच्चिन्त्यम् ॥ १४ ॥ अचिन्त्यं दैवमिति ॥ १५ ॥

योग क्षेमकी सिद्धि और विपत्तिके प्रतीकारके लिए मानुषकर्मका ही यहांपर विचार करना चाहिए ॥ १४ ॥ दैव कर्म अचिन्त्य है, उसपर विचार करना हमारी शक्तिसे बाहर है, क्योंकि वह सर्वथा परोक्ष है ॥ १५ ॥

राजात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नो नयस्याधिष्ठानं विजिगीषुः ॥१६॥ तस्य समन्ततो मण्डलीभूता भूम्यनन्तरा अरिप्रकृतिः ॥ १७ ॥ तथैव भूम्येकान्तरा मित्रप्रकृतिः ॥१८॥ अरिसंपद्युक्तः सामन्तः शत्रुः ॥ १९ ॥

आत्मसम्पन्न, अमात्य आदि द्रव्यप्रकृति सम्पन्न, और नीतिका आश्रयभूत राजा विजिगीषु कहाता है ॥ १३ ॥ विजिगीषुके राज्यके चारों ओर लगे हुए राज्योंके अधिपति 'अरि प्रकृति' कहाते हैं ॥ १७ ॥ इसी प्रकार एक राज्य से व्यवहित राज्योंके अधिपति 'मित्र प्रकृति' कहाते हैं ॥ १८ ॥ अरिसम्पत्ति (अराजबीजी इत्यादि) से युक्त सामन्तभी शत्रु कहाता है ॥ १९ ॥

व्यसनी यातव्य अनपाश्रयो दुर्बलाश्रयो वोच्छेदनीयः ॥२०॥ विपर्यये पीडनीयः कर्शनीयो वा ॥२१॥ इत्यरिविशेषाः ॥२२॥

जो शत्रु व्यसनी हो, उसपर आक्रमण करदेना चाहिए । आश्रयहीन अथवा दुर्बल आश्रयवाले शत्रुकाभी उच्छेद करदेना चाहिये ॥ २० ॥ यदि शत्रु आश्रयहीन या दुर्बल आश्रयवाला न हो, तो किसी अपकारके द्वारा उसे पीडा पहुंचाये, अथवा उसकी सेना व धनको किन्हीं उपायोंसे कम करनेका यत्न करे ॥ २१ ॥ ये शत्रुओंके चार भेद बतलाये गये ॥ २२ ॥

तस्मान्मित्रमरिमित्रं मित्रमित्रमरिमित्रामित्रं चानन्तर्येण भूमीनां प्रसज्यते पुरस्तात् ॥ २३ ॥

इसके बाद मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र और अरिमित्रमित्र, ये राजा राज्योंके क्रमसे विजिगीषुके सामने आते हैं । अर्थात् जब विजिगीषु शत्रुको विजय करनेके लिये प्रवृत्त होता है तब उसके सामने क्रमसे ये पांच राजा आते हैं—शत्रु, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र और अरिमित्रमित्र । तात्पर्य यह है कि अपने देशसे लगेही हुए देशका राजा शत्रु, उसके आगेका मित्र और उसके आगेका अरिमित्र, इसी प्रकार आगे समझिये ॥ २३ ॥

पश्चात्पार्ष्णिग्राह आक्रन्दः पार्ष्णिग्राहासार आक्रन्दासार इति ॥ २४ ॥ भूम्यनन्तरः प्रकृत्यमित्रः तुल्याभिजन सहजः ॥२५॥ विरुद्धो विरोधयिता वा कृत्रिमः ॥ २६ ॥

तथा विजिगीषुके पीछेके चार पार्ष्णिग्राह आक्रन्द पार्ष्णिग्राहासार और आक्रन्दसार कहाते हैं, इन दोनोंके बीचमें एक विजिगीषु, ये सब मिला कर दशका 'राजमण्डल' कहाता है ॥ २४ ॥ अपने राज्यके समीपही राज्य करनेवाला स्वाभाविक शत्रु, तथा अपने वंशमें उत्पन्न हुआ दायभागी, येदोनों 'सहजशत्रु' कहाते हैं ॥ २५ ॥ स्वयं विरुद्ध होजानेवाला, अथवा किसीको विरोधी करदेनेवाला 'कृत्रिमशत्रु' कहलाता है ॥ २६ ॥

भूम्येकान्तरं प्रकृतिमित्रं मातापितृसंबद्धं सहजम् ॥ २७ ॥ धनजीवितहेतोराश्रितं कृत्रिममिति ॥ २८ ॥ अरिविजिगीष्वो-

भूम्यनन्तरः संहतासंहतयोरनुग्रहसमर्थो निग्रहे चासंहतयोर्मध्यमः ॥ २९ ॥

एक राज्यके व्यवधानसे राज्य करनेवाला स्वभावतः मित्र, तथा ममेरा या फुफेरा भाई ये 'सहजमित्र' होते हैं ॥ २७ ॥ धन या जीविकाके लिये जो आश्रय ले, वह 'कृत्रिममित्र' कहाता है ॥ २८ ॥ अरि और विजिगीषु दोनोंके राज्योंसे मिला हुआ, उनके सन्धि और विग्रह करनेपर अनुग्रहमें समर्थ, और केवल विग्रह करनेपर विग्रहमें समर्थ राजा 'मध्यम' कहाता है ॥ २९ ॥

अरिविजिगीषुमध्यानां बहिः प्रकृतिभ्यो बलवत्तरः संहतासंहतानामरिविजिगीषुमध्यमानामनुग्रहे समर्थो निग्रहे चासंहतानामुदासीनः ॥ ३० ॥ इति प्रकृतयः ॥ ३१ ॥

अरि, विजिगीषु और मध्यम इनकी प्रकृतियोंसे बाहर, तथा शक्तिशाली मध्यमसेभी और अधिक बलवान्, अरि विजिगीषु और मध्यमके सन्धि तथा विग्रह होनेपर अनुग्रहमें समर्थ, और विग्रह होनेपर विग्रहमें समर्थ राजा उदासीन कहाता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार इन बारह राजप्रकृतियोंका निरूपण किया गया ॥ ३१ ॥

विजिगीषुर्मित्रं मित्रमित्रं वास्य प्रकृतयस्तिस्रः ॥ ३२ ॥ ताः पञ्चभिरमात्यजनपददुर्गकोशदण्डप्रकृतिभिरेकैकशः संयुक्ता मण्डलमष्टादशकं भवति ॥ ३३ ॥

अब चार मण्डलोंका संक्षेपमें निरूपण करते हैं:—विजिगीषु, उसका मित्र और मित्रमित्र ये तीन प्रकृति हैं ॥ ३२ ॥ इनमेंसे एक २ अलहदा २ अमात्य जनपद दुर्ग कोश और दण्ड इन पांच प्रकृतियोंके साथ मिलकर (अर्थात् एक विजिगीषु और उसकी अमात्य आदि पांच प्रकृतियां=६. ये सब मिलकर) अठारह अवयव वाला एक मण्डल बन जाता है । इसे विजिगीषु सम्बन्धी मण्डल कहते हैं ॥ ३३ ॥

अनेन मण्डलपृथक्त्वं व्याख्यातमरिमध्यमोदासीनानाम् ॥ ३४ ॥ एवं चतुर्मण्डलसङ्क्षेपः ॥ ३५ ॥ द्वादश राजप्रकृतयः ॥ ३६ ॥ षष्टिर्द्रव्यप्रकृतयः ॥ ३७ ॥ संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥ ३८ ॥

ठीक इसी प्रकार अरिमण्डल, मध्यममण्डल, और उदासीनमण्डलकी भी पृथक् २ कल्पना करलेनी चाहिये ॥ ३४ ॥ इस प्रकार चार मण्डलोंका संक्षेपमें निरूपण कर दिया गया ॥ ३५ ॥ राज प्रकृति बारह ॥ ३६ ॥ और

साठ अमात्यादि द्रव्य प्रकृति ॥ ३७ ॥ इन सबको मिलाकर संक्षेपसे ७२प्रकृति कहीजाती हैं ॥ ३८ ॥

तासां यथास्वं संपदः शक्तिः सिद्धिश्च ॥ ३९ ॥ बलं शक्तिः ॥ ४० ॥ सुखं सिद्धिः ॥ ४१ ॥ शक्तिस्त्रिविधा ॥ ४२ ॥ ज्ञान-बलं मन्त्रशक्तिः ॥ ४३ ॥ कोशदण्डबलं प्रभुशक्तिः ॥ ४४ ॥ विक्रमबलमुत्साहशक्तिः ॥ ४५ ॥

इनकी सम्पत्ति यथायोग्य पहिले कही जाचुकी है। शक्ति और सिद्धि भी इसप्रकार समझनी चाहिये ॥ ३९ ॥ बल शक्ति है ॥ ४० ॥ और सुखही सिद्धि है ॥ ४१ ॥ शक्ति तीन प्रकारकी होती है ॥ ४२ ॥ ज्ञान बलही मन्त्र शक्ति है, यह शक्तिका एक प्रकार है ॥ ४३ ॥ कोश और दण्ड (सेना) का बल प्रभुशक्ति है, दूसरा प्रकार ॥ ४४ ॥ विक्रमबल उत्साह शक्ति है, तीसरा प्रकार। अर्थात् ज्ञानादिसे योगक्षेमका साधन करनेमें समर्थ पृथक् २ तीन शक्तियां हैं ॥ ४५ ॥

एवं सिद्धिस्त्रिविधैव ॥ ४६ ॥ मन्त्रशक्तिसाध्या मन्त्रसिद्धिः ॥ ४७ ॥ प्रभुशक्तिसाध्या प्रभुसिद्धिः ॥ ४८ ॥ उत्साहशक्ति-साध्या उत्साहसिद्धिरिति ॥ ४९ ॥

इसी तरह सिद्धिभी ३ प्रकारकी है ॥ ४६ ॥ मन्त्रशक्तिसे होनेवाली सिद्धि मन्त्रसिद्धि कहलाती है ॥ ४७ ॥इसी प्रकार प्रभुशक्तिसे होनेवाली सिद्धि को प्रभुसिद्धि ॥ ४८ ॥ और उत्साहशक्तिसे होनेवाली सिद्धिको उत्साहसिद्धि कहते हैं ॥ ४९ ॥

ताभिरभ्युच्चितो ज्यायान्भवति ॥ ५० ॥ अपचितो हीनः ॥ ५१ ॥ तुल्यशक्तिः समः ॥ ५२ ॥ तस्माच्छक्तिं सिद्धिं च घटेतात्मन्यावेशयितुम् ॥ ५३ ॥

इन शक्तियोंसे युक्त हुआ २ राजा बहुत बड़ा या श्रेष्ठ होजाता है ॥ ५० ॥ इन शक्तियोंसे रहित हुआ २ हीन या अधम होजाता है ॥ ५१ ॥ और बराबर शक्ति रखने वाला सम अर्थात् मध्यम कहलाता है। ॥ ५२ ॥ इस लिये अपनी शक्ति और सिद्धिको बढ़ानेका सर्वदा पूरा प्रयत्न करें ॥ ५३ ॥

साधारणो वा द्रव्यप्रकृतिष्वानन्तर्येण शौचवशेन वा दूष्या-मित्राभ्यां वापकर्ष्टुं यतेत ॥ ५४ ॥

जो राजा साधारण अर्थात् अपनी शक्ति व सिद्धिको न बढ़ासके, वह

अमात्य आदि द्रव्यप्रकृतियोंमें क्रमसे अथवा सुभीतेके अनुसार शक्ति व सिद्धि को बढावे । और दूष्य तथा शत्रुकी शक्ति व सिद्धिको घटाने या नष्ट करनेका यत्न करे ॥ ५४ ॥

यदि वा पश्येत् ॥ ५५ ॥ अमित्रो मे शक्तियुक्तो वाग्दण्ड-पारुष्यार्थदूषणैः प्रकृतीरुपहनिष्यति ॥ ५६ ॥ सिद्धियुक्तो वा मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रमादं गमिष्यति ॥ ५७ ॥ स विरक्तप्रकृतिरुपक्षीणः प्रमत्तो वा साध्यो मे भविष्यति ॥ ५८ ॥

यदि वह राजा यह देखे कि ॥ ५५ ॥ यह शक्तिशाली मेरा शत्रु, वाक्पारुष्य दण्डपारुष्य और आर्थिकदोष लगाकर अपनी अमात्य आदि द्रव्य प्रकृतियोंको रुष्ट या विरक्त करदेगा ॥ ५६ ॥ अथवा सिद्धियुक्त हुआ २ मृगया द्यूत मद्य और स्त्रियोंमें आसक्त होनेके कारण प्रमादको प्राप्त होजायगा ॥ ५७ ॥ इस प्रकार अमात्य आदिके विरक्त होजानेपर असहाय हुआ २ और मृगया आदिमें आसक्त होनेके कारण प्रमत्त हुआ २ शत्रु अवश्यही मेरे वशमें होजा यगा, अर्थात् मैं उसको आसानीसे जीत सकूंगा ॥ ५८ ॥

विग्रहाभियुक्तो वा सर्वसंदोहेनैकस्थो दुर्गस्थो वा स्थास्यति ॥ ५९ ॥ स संहितसैन्यो मित्रदुर्गवियुक्तः साध्यो मे भविष्यति ॥ ६० ॥

अथवा जब मैं अपने सम्पूर्ण सेनासमूहको लेकर लड़नेके लिये उसपर चढाई करूंगा, तो वह अपनी शक्तिके गर्वसे किसी एक स्थानमें या दुर्गमेंही अकेला स्थित रहेगा ॥ ५९ ॥ ऐसी हालतमें उसकी सेना घिर जायगी, वह मित्र या दुर्गसे कोई सहायता न लेसकेगा, और फिर मैं उसे आसानीसे जीत सकूंगा ॥ ६० ॥

बलवान्वा राजा परतः शत्रुमुच्छेत्तुकामस्तमुच्छिद्यमानमुच्छिन्द्यादिति बलवता प्रार्थितस्य मे विपन्नकर्मारम्भस्य वा साहाय्यं दास्यति ॥ ६१ ॥ मध्यमलिप्सायां चेति ॥ ६२ ॥ एवमादिषु कारणेष्वमित्रस्यापि शक्तिं सिद्धिं चेच्छेत् ॥ ६३ ॥

अथवा यदि यह ऐसा समझे, कि:—वह बलवान् राजा दूसरे शत्रुका उच्छेद करनेकी अभिलाषा रखता हुआ, उसे उच्छेद करके मेरा उच्छेद नहीं करेगा, अथवा बलवान्के साथ युद्ध करनेके कारण मेरे क्षीणशक्ति होनेपर और मध्यमकी अपेक्षा करनेपर यह अवश्यही मेरी सहायता करेगा ॥ ६१,६२ ॥

तो इस प्रकारके विशेष कारण उपस्थित होनेपर शत्रुकी भी शक्ति और सिद्धिकी कामना करे ॥ ६३ ॥

नेमिमेकान्तरात् राज्ञः कृत्वा चानन्तरानरान् ।
नाभिमात्मानमायच्छेन्नेता प्रकृतिमण्डले ॥ ६४ ॥
मध्ये ऽभ्युपहितः शत्रुर्नेतुर्मित्रस्य चोभयोः ।
उच्छेद्यः पीडनीयो वा बलवानपि जायते ॥ ६५ ॥

इति मण्डलयोनौ षष्ठे ऽधिकरणे शमव्यायामिकं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितो ऽष्टनवतिः ॥ ९८ ॥
एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य मण्डलयोनिः
षष्ठमधिकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

नेता विजिगीषु, राजमण्डलरूपी चक्रमें एक राज्यसे व्यवहित मित्र राजाओंको नेमि, समीपके राजाओंको अरा, और अपने आपको नाभिके स्थानमें समझे ॥ ६४ ।. बलवान् भी शत्रु, विजिगीषु और मित्र इन दोनोंके बीचमें आजानेपर, या तो नष्ट करादिया जाता है, अथवा बहुत पीड़ित किया जाता है ॥ ६५ ॥

मण्डलयोनि षष्ठ अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

मण्डलयोनि षष्ठ अधिकरण समाप्त ।
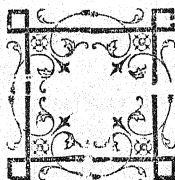
षाड्गुण्य सप्तम अधिकरण ।

पहिला अध्याय ।

९८, ९९ प्रकरण ।

छः गुणोंका उद्देश और क्षय, स्थान तथा वृद्धिका निश्चय

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डलं योनिः ॥ १ ॥ संधिविग्रहासनयानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः ॥ २ ॥

स्वामी आदि सात प्रकृति और १२ राजमण्डल, सन्धि आदि छः गुणोंके कारण हैं ॥ १ ॥ आचार्य कहते हैं कि:—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव ये छः गुण हैं ॥ २ ॥

द्वैगुण्यमिति वातव्याधिः ॥३॥ संधिविग्रहाभ्यां हि षाड्गुण्यं संपद्यत इति ॥ ४ ॥

वातव्याधि (उद्धव) आचार्यका सिद्धान्त है कि गुण दो ही हैं ॥ ३ ॥ सन्धि और विग्रह, शेष चार इन्हीं दोके अवान्तर भेद है । आसन और संश्रयका सन्धिमें, यानका विग्रहमें और द्वैधीभावका यथायोग्य दोनोंमें ही अन्तर्भाव होजाता है ॥ ४ ।

षाड्गुण्यमेवैतदवस्थाभेदादिति कौटल्यः ॥ ५ ॥

सन्धि और विग्रहसे यान आदि चारोंका सर्वथा भेद होनेसे छः ही गुण हैं, यह कौटल्यका अपना मत है ॥ ५ ॥

तत्र पणबन्धः संधिः ॥ ६ ॥ अपकारो विग्रहः ॥ ७ ॥ उपेक्षणमासनम् ॥८॥ अभ्युच्चयो यानम् ॥ ९ ॥ परार्पणं संश्रयः ॥ १० ॥ संधिविग्रहोपादानं द्वैधीभाव इति षड्गुणाः ॥ ११ ॥

इनमेंसे, दो राजाओंका किन्हीं शर्त्तोंपर मेल होजाना, 'सन्धि' कहाता है ॥ ६ ॥ शत्रुका कोई अपकार करना विग्रह कहा जाता है ॥ ७ ॥ सन्धि आदिका प्रयोग न करके उपेक्षा करदेना आसन कहाता है ॥ ८ ॥ शक्ति आदिका अत्यधिक होजाना ही, यानका हेतु होनेसे यान कहाता है ॥ ९ ॥

दूसरे बलवान् राजाके सामने अपने पुत्र, स्त्री, आत्मा तथा सर्वस्वको अर्पण करदेना संश्रय कहाता है ॥ १० ॥ सन्धि और विग्रह दोनोंका उपयोग करना द्वैधीभाव कहाता है। इस प्रकार ये छः गुण हैं ॥ ११ ॥

परस्माद्धीयमानः संदधीत ॥ १२ ॥ अभ्युच्चीयमानो विगृह्णीयात् ॥१३॥ न मां परो नाहं परमुपहन्तुं शक्त इत्यासीत ॥१४॥

यदि शत्रुसे अपने आपको निर्बल समझे तो सन्धि करलेवे ॥ १२ ॥ यदि शक्ति आदिसे सम्पन्न होनेके कारण अपने आपको बलवान् समझे तो विग्रह करे ॥ १३ ॥ न शत्रु मुझे दबा सकता है, और न मैं ही शत्रुको दबा सकता हूँ, ऐसी अवस्थामें आसन गुणका प्रयोग करे ॥ १४ ॥

गुणातिशययुक्तो यायात् ॥१५॥ शक्तिहीनः संश्रयेत ॥१६॥ सहायसाध्ये कार्ये द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ १७ ॥ इति गुणावस्थापनम् ॥ १८ ॥

आभियास्यत्कर्म अधिकरणमें कहे हुए शक्ति देश काल आदि गुणोंके अधिक या ठीक होनेपर यानका प्रयोग करे ॥ १५ ॥ शक्ति रहित हुआ २ राजा संश्रयसे काम निकाले ॥ १६ ॥ किसी कार्यमें सहायताकी अपेक्षा होनेपर द्वैधीभावका प्रयोग करे ॥ १७ ॥ इस प्रकार विषयभेदसे छः गुणोंका यहांतक निरूपण किया गया ॥ १८ ॥

तेषां यस्मिन्वा गुणे स्थितः पश्येत् ॥ १९ ॥ इहस्थः शक्ष्यामि दुर्गसेतुकर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्माण्यात्मनः प्रवर्तयितुं परस्य चैतानि कर्माण्युपहन्तुमिति तमातिष्ठेत् ॥ २० ॥

उन गुणोंमेंसे जिस किसी (सन्धि आदि) गुणका आश्रयण करनेपर यह समझे कि:—॥ १९ ॥ मैं इस सन्धि आदि गुणका आश्रय लेता हुआ, अपने दुर्ग, सेतुकर्म, व्यापारीमार्ग, शून्यनिवेश (नई बस्ती बसाना), खान, लकड़ियों तथा हाथियोंके बन आदि कामोंके करनेमें समर्थ होसकूंगा, और शत्रुके दुर्ग आदि कार्योंको नष्ट कर सकूंगा, उसही का अवलम्बन करे ॥२०॥

सा वृद्धिराशुतरा ॥ २१ ॥ मे वृद्धिर्भूयस्तरा वृद्ध्युदयतरा वा भविष्यति विपरीता परस्येति ज्ञात्वा परवृद्धिमुपेक्षेत ॥ २२ ॥

इस प्रकारके गुणका अवलम्बन या अनुष्ठान वृद्धिका हेतु होनेसे वृद्धि कहलाता है ॥ २१ ॥ मेरी वृद्धि बहुत जल्दी होगी, और शत्रुकी देरसे, मेरी

वृद्धि बहुत अधिक होगी और शत्रुकी कम, शत्रुकी और मेरी एकही समयमें बराबर वृद्धि होनेपर भी उसकी ह्रासोन्मुख होगी और मेरी अभ्युदयोन्मुख, ऐसा जब देखे, तो शत्रुकी वृद्धिकी कुछ पर्वाह न करे ॥ २२ ॥

तुल्यकालफलोदयायां वा वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥२३॥ यस्मिन्वा गुणे स्थितः स्वकर्मणामुपघातं पश्येन्नेतरस्य तस्मिन्न तिष्ठेत् ॥ २४ ॥ एष क्षयः ॥ २५ ॥

यदि शत्रुकी भी वृद्धि बराबर उतनेही समयमें उदयोन्मुखही होवे, तो उसके साथ सन्धि करलेवे ॥ २३ ॥ जिस गुणके अवलम्बनसे अपने दुर्ग आदि कर्मोंका नाश और शत्रुके कर्मोंका नाश न होना समझे, उस गुणका कदापि आश्रय न ले ॥ २४ ॥ इस प्रकारके गुणका अनुष्ठान क्षयका हेतु होनेसे क्षय कहाता है ॥ २५ ॥

चिरतरेणाल्पतरं वृद्ध्युदयतरं वा क्षेष्ये विपरीतं परं इति ज्ञात्वा क्षयमुपेक्षेत ॥ २६ ॥

मेरा क्षय बहुत दिनोंमें होगा, शत्रुका बहुत जल्दी; मेरा क्षय बहुत थोड़ा होगा शत्रुका बहुत अधिक; मेरा क्षय उदयोन्मुख होगा और शत्रुका क्षयोन्मुख, जब ऐसा समझे, तो अपने क्षयकी कुछ पर्वाह न करे, अर्थात् उस क्षयके प्रतीकारका कोई उपाय न करे ॥ २६ ॥

तुल्यकालफलोदये वा क्षये संधिमुपेयात् ॥२७॥ यस्मिन्वा गुणे स्थितः स्वकर्मवृद्धिं क्षयं वा नाभिपश्येदेतत्स्थानम् ॥ २८ ॥

यदि शत्रुका क्षय भी एकही समयमें बराबर और उदयोन्मुखही हो तो उसके साथ सन्धि करलेवे ॥ २७ ॥ जिस गुणका अवलम्बन करनेपर अपनी वृद्धि और क्षय कुछ भी न देखे, वह समान स्थितिमें रखनेके कारण 'स्थान' कहाता है ॥ २८ ॥

ह्रस्वतरं वृद्ध्युदयतरं वा स्थास्यामि विपरीतं पर इति ज्ञात्वा स्थानमुपेक्षेत ॥ २९ ॥

मेरी ऐसी स्थिति बहुत थोड़े दिनतक रहेगी, शत्रुकी बहुत दिनोंतक, मेरी स्थिति उदयोन्मुख होगी और शत्रुकी क्षयोन्मुख; जब ऐसा समझे तो अपनी उस स्थितिकी पर्वाह न करे, अर्थात् उसके सुधारनेका कोई उपाय न करे ॥ २९ ॥

तुल्यकालफलोदये वा स्थाने संधिमुपेयादित्याचार्याः ॥ ३० ॥

शत्रुका भी स्थान बराबर समयतक होनेवाला और उदयोन्मुखही हो

तो उसके साथ सन्धि करलेनी चाहिये, ऐसा आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ३० ॥

नैतद्विभाषितमिति कौटल्यः ॥३१॥ यदि वा पश्येत् ॥ ३२ ॥ संधौ स्थितो महाफलैः स्वकर्मभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥३३॥

परन्तु कौटल्य कहता है कि आचार्योंने यह बहुत साधारण बात बताई ॥ ३१ ॥ कुछ विशेष बात इस तरह समझनी चाहियें, यदि विजिगीषु इस बातको देखे कि:—॥ ३२ ॥ सन्धि करलेनेपर अत्यन्त लाभदायक दुर्ग आदि अपने कर्मोंसे शत्रुके कर्मोंका नाश करदूंगा, अर्थात् अपने देशमें तरह २ का अधिकाधिक माल तैयार कराके, उसे शत्रुके देशमें भेजकर वहांके मालकी कीमत गिरादूंगा ॥ ३३ ॥

महाफलानि वा स्वकर्माण्युपभोक्ष्ये परकर्माणि वा ॥ ३४ ॥ संधिविश्वासेन वा योगोपनिषत्प्रणिधिभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि ॥ ३५ ॥

अथवा यह समझे कि:—महाफलशाली अपने कर्मोंकी तरह शत्रुके कर्मोंका भी सन्धिके बहाने उपभोग करूंगा ॥ ३४ ॥ अथवा गूढ़पुरुष और तीक्ष्ण आदि प्रयोगोंके, तथा विष और जलदूषण आदि प्रयोगोंके द्वारा, सन्धि के बहाने शत्रुके कार्योंका नाश करूंगा ॥ ३५ ॥

सुखं वा सानुग्रहपरिहारसौकर्यं फललाभभूयस्त्वेन स्वकर्मणा परकर्मयोगावहजनमास्रावयिष्यामि ॥ ३६ ॥

अथवा सन्धिके बहानेसे, शत्रुके कार्यकुशल पुरुषोंको, उनके सुभीते, अन्य प्रकारके उपकार और उनसे कर आदि न लेनेका वचन देकर अपने देशमें खींच लाऊंगा, जिससे मेरे कृष्यादि कार्योंमें सुभीता होनेसे अधिक लाभ होगा ॥ ३६ ॥

बलिनातिमात्रेण वा संहितः परः स्वकर्मोपघातं प्राप्स्यति ॥ ३७ ॥ येन वा विगृहीतो मया संधत्ते तेनास्य विग्रहं दीर्घं करिष्यामि ॥ ३८ ॥

अथवा अत्यधिक बलवान् शत्रुके साथ सन्धि करनेपर शत्रुको बहुत अधिक धन देना पड़ेगा और कोशको क्षीण करनेसे वह अपने कार्योंको क्षीण करलेगा ॥ ३७ ॥ अथवा जिसके साथ विग्रह रखके, यह मुझसे सन्धि करता है। उसके साथ इसका बहुत दिनोंतक विग्रह कराये रक्खूंगा ॥ ३८ ॥

मया वा संहितस्य मद्द्वेषिणो जनपदं पीडयिष्यति ॥३९॥

परोपहतो वास्य जनपदो मामागमिष्यति ॥ ४० ॥ ततः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि ॥ ४१ ॥

अथवा मेरे साथ सन्धि करके, मेरे शत्रुके राष्ट्रको यह अवश्य पीड़ा पहुंचावेगा ॥ ३९ ॥ अथवा दूसरेसे सताया हुआ इसका राष्ट्र, अब सन्धि करलेनेपर मेरेही पास आजावेगा ॥ ४० ॥ इसके बाद मैं अपने दुर्ग आदि कर्मोंमें अत्यधिक वृद्धि करसकूंगा ॥ ४१ ॥

विपन्नकर्मारम्भो वा विषमस्थः परः कर्मसु न मे विक्रमेत ॥ ४२ ॥ परतः प्रवृत्तकर्मारम्भो वा ताभ्यां संहितः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि ॥ ४३ ॥

अथवा दुर्ग आदि कार्योंके नष्ट होजानेपर आपद्ग्रस्त हुआ २ शत्रु मेरे कार्योंपर आक्रमण नहीं करसकेगा ॥ ४२ ॥ अथवा यदि दूसरे शत्रुकी सहायतासे उसने अपना कार्य प्रारम्भ भी किया, तो दोनोंके साथ सन्धि होनेसे मैं अपने कार्योंको अच्छी तरह उन्नत करसकूंगा ॥ ४३ ॥

शत्रुप्रतिबद्धं वा शत्रुणा संधिं कृत्वा मण्डलं भेत्स्यामि ॥४४॥ भिन्नमवाप्स्यामि ॥ ४५ ॥

अथवा शत्रुके साथ मिले हुए मण्डलको, शत्रुसे सन्धि करके दोनोंमें परस्पर भेद डालदूंगा ॥४४॥ और मण्डलसे भिन्न हुए २ शत्रुको अपने वशमें करसकूंगा ॥ ४५ ॥

दण्डानुग्रहेण वा शत्रुमुपगृह्य मण्डललिप्सायां विद्वेषं ग्राहयिष्यामि ॥ ४६ ॥ विद्विष्टं तेनैव घातयिष्यामीति संधिना वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ४७ ॥

अथवा सैनिक सहायता देकर शत्रुको वशमें करके, मण्डलके साथ मिलनेकी इसकी इच्छा होनेपर उलटा द्वेष करादूंगा ॥ ४६ ॥ और द्वेष हो जानेपर मण्डलके द्वाराही इसे मरवादूंगा । इस प्रकारके विषय उपस्थित होने पर सन्धिके द्वारा अपनी उन्नति करे ॥ ४७ ॥

यदि वा पश्येत् ॥ ४८ ॥ आयुधीयप्रायः श्रेणीप्रायो वा मे जनपदः शैलवननदीदुर्गैकद्वारारक्षो वा शक्ष्यति पराभियोगं प्रतिहन्तुमिति ॥ ४९ ॥

अब विग्रहसे किस प्रकार अपनी वृद्धि करे यह बताया जाता है, यदि विजिगीषु समझे कि:—॥ ४८ ॥ मेरे राज्यमें आयुधजीवी क्षत्रिय और खेती

करने करानेवाले पुरुषही अधिक रहते हैं; पहाड़, जङ्गल, नदी और किले बहुत हैं; राज्यमें बाहर आने जानेके लिये मार्ग भी एकही है; इसलिये शत्रुके किये हुए आक्रमणका प्रतीकार, मेरा प्रान्त बहुत अच्छी तरह करसकता है, तो शत्रुके साथ विग्रह करदेवे ॥ ४९ ॥

विषयान्ते दुर्गमविषह्यमपाश्रितो वा शक्ष्यामि परकर्माण्युपहन्तुमिति ॥५०॥ व्यसनपीडोपहतोत्साहो वा परः संप्राप्तकर्मोपघातकाल इति ॥ ५१ ॥ विगृहीतस्यान्यतो वा शक्ष्यामि जनपदमपवाहयितुमिति विग्रहे स्थितो वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५२ ॥

अथवा राज्यकी सीमापर अति दुर्भेद्य दुर्गका आश्रय लेकर, मैं शत्रुके दुर्ग आदि कार्योंका अच्छी तरह नाश करसकूँगा, ऐसा जब समझे, तो भी विग्रह करदेवे ॥ ५० ॥ अथवा व्यसन और पीड़ाओंसे हतोत्साह हुए २ शत्रुके कर्मोंका अब विनाशकाल प्राप्त होगया है, जब ऐसा समझे तो भी विग्रह करदे ॥ ५१ ॥ अथवा विग्रह किये हुए शत्रुके जनपदको दूसरे किसी रास्तेसे भी पार सकूंगा; जब ऐसा समझे तो भी विग्रह करदे। इस प्रकार इन अवसरोंके आनेपर विग्रहके द्वारा अपनी उन्नति करे ॥ ५२ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ५३ ॥ न मे शक्तः परः कर्माण्युपहन्तुम् ॥ ५४ ॥ नाहं तस्य कर्मोपघाती वा ॥ ५५ ॥ व्यसनमस्य श्ववराहयोरिव कलहे वा ॥ ५६ ॥ स्वकर्मानुष्ठानपरो वा वर्धिष्य इत्यासनेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५७ ॥

अब आसनके द्वारा वृद्धि किस प्रकार करनी चाहिये यह बताते हैं, अथवा यदि विजिगीषु यह समझे, कि:—॥ ५३ ॥ शत्रु मेरे दुर्ग आदि कर्मोंका नाश नहीं करसकता ॥ ५४ ॥ और मैं भी उसके कर्मोंका नाश नहीं कर सकता ॥ ५५ ॥ इस समय इसपर विपत्ति आई है, समान शक्तिवाले कुत्ते और सूअरके समान हमारा विग्रह होजानेपर भी ॥५६॥ अपने कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ मैं अपनी वृद्धि करूंगा, इस प्रकार आसनके द्वारा राजा अपनी उन्नति करे ॥ ५७ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ५८ ॥ यानसाध्यः कर्मोपघातः शत्रोः प्रतिविहितस्वकर्मारक्षश्चास्मीति यानेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ५९ ॥

अथवा यदि राजा यह समझे कि:—॥ ५८ ॥ शत्रुके कर्मोंका नाश यानसेही होसकता है, और मैंने अपने कर्मोंकी रक्षाका प्रबन्ध अच्छी तरह करदिया है, यह समझकर राजा यानके द्वारा अपनी उन्नति करे ॥ ५९ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ६० ॥ नास्मि शक्तः परकर्माण्युपहन्तुं स्वकर्मोपघातं वा त्रातुमिति बलवन्तमाश्रितः स्वकर्मानुष्ठानेन क्षयात्स्थानं स्थानाद्वृद्धिं चाकाङ्क्षेत ॥ ६१ ॥

अथवा यदि राजा यह समझे कि:—॥ ६० ॥ मैं शत्रुके दुर्ग आदिके नाश करनेमें सर्वथा असमर्थ हूं और मेरे दुर्ग आदिपर आक्रमण होनेपर मैं उसकी रक्षाभी नहीं करसकता, इसलिये ऐसा समझनेपर बलवान्का आश्रय लेवे, और अपने कर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ क्षयसे स्थानकी और स्थानसे वृद्धिकी आकाङ्क्षा करे ॥ ६१ ॥

यदि वा मन्येत ॥ ६२ ॥ संधिनैकतः स्वकर्माणि प्रवर्तयिष्यामि विग्रहेणैकतः परकर्माण्युपहनिष्यामीति द्वैधीभावेन वृद्धिमातिष्ठेत् ॥ ६३ ॥

अथवा यदि राजा यह समझे कि:—॥ ६२ ॥ एक शत्रुके साथ सन्धि करके अपने दुर्ग आदि कार्योंको यथावत् करता रहूंगा, और दूसरेके साथ विग्रह करके उसके कर्मोंका नाश करता रहूंगा, तो द्वैधीभाव गुणका प्रयोग करके अपनी उन्नतिका सम्पादन करे ॥ ६३ ॥

एवं षड्भिर्गुणैरेतैः स्थितः प्रकृतिमण्डले ।
पर्येषेत क्षयात्स्थानं स्थानाद्वृद्धिं च कर्मसु ॥ ६४ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे षाड्गुण्यसमुद्देशः

क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयश्च प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितो नवनवतिः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार अमात्य आदि प्रकृतिमण्डलमें स्थित हुआ २ राजा, सन्धि आदि छः गुणोंके प्रयोगोंसे, कर्मोंके सम्बन्धमें क्षयावस्थाको पार करके स्थान और स्थानावस्थाको पार करके वृद्धिकी आकाङ्क्षा करे ॥ ६४ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१०० प्रकरण

संश्रय वृत्ति ।

किसी प्रबल राजाके आश्रयसे अपनी शक्तिको पूरा करना 'संश्रय-वृत्ति' कहाता है । पहिले अध्यायमें यह बताया गया है कि एक ही गुणसे किस प्रकार अपनी उन्नति करनी चाहिये । अब सबसे पहिले संश्रयवृत्तिके प्रसङ्गक–दो गुणोंसे एक समान ही लाभ होनेपर उन दोनोंमें से किस गुणका प्रयोग करना चाहिये, वह बताया जायगा ।

संधिविग्रहयोस्तुल्यायां वृद्धौ संधिमुपेयात् ॥ १ ॥ विग्रहे हि क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवाया भवन्ति ॥ २ ॥

सन्धि और विग्रह दोनोंसे जब एकही समान लाभ समझे, तो सन्धि का ही अवलम्बन करे ॥ १ ॥ क्योंकि विग्रह करनेपर प्राणियोंका नाश, धान्य आदिका व्यय, दूसरेके देशमें जाना, और शत्रुके द्वारा विष आदिके प्रयोग से कष्ट इत्यादि अनर्थ अवश्यम्भावी है ॥ २ ॥

तेनासनयानयोरासनं व्याख्यातम् ॥ ३ ॥ द्वैधीभावसंश्रययोर्द्वैधीभावं गच्छेत् ॥ ४ ॥ द्वैधीभूतो हि स्वकर्मप्रधान आत्मन एवोपकरोति ॥ ५ ॥ संश्रितस्तु परस्योपकरोति नात्मनः ॥ ६ ॥

इसी तरह आसन और यानसे समान लाभ देखनेपर आसनका ही आश्रय लेवे ॥ ३ ॥ द्वैधीभाव और संश्रयसे समान लाभ होनेपर द्वैधीभावका ग्रहण करे ॥ ४ ॥ क्योंकि द्वैधीभावका आश्रय लेनेपर राजा, मुख्यतया अपने ही कार्योंको करता हुआ, अपना ही उपकार करता है ॥ ५ ॥ परन्तु संश्रयका सहारा लेनेपर, अपने आश्रयभूत राजाकाही अधिक उपकार करता है, अपना नहीं ॥ ६ ॥

यद्बलः सामन्तस्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टबलाभावे तमेवाश्रितः कोशदण्डभूमीनामन्यतमेनास्योपकर्तुमदृष्टः प्रयतेत ॥ ८ ॥ महादोषो हि विशिष्टबलसमागमो राज्ञामन्यत्रारिविगृहीतात् ॥ ९ ॥

सामन्त (अपना प्रतिद्वन्द्वी राजा) जितना बलवान् हो, उससेभी अत्यधिक बलशाली राजाका आश्रय लेवे ॥ ७ ॥ यदि इतना बलशाली कोई राजा

न मिले, तो अपने इस अभियोक्ता (प्रतिद्वन्द्वी) सामन्तका ही आश्रय लेलेवे और धन, सेना, तथा भूमि आदिमें से किसी चीजको देकर, दूर रहता हुआ ही इसके उपकार करनेका प्रयत्न करे, समीप न आवे ॥ ८ ॥ क्योंकि राजाओंका बलवान् के साथ समागम करना, कभी २ वध बन्धन आदि महान अनर्थोंका उत्पादक हो जाता है। परन्तु यदि वह बलवान्, शत्रुसे विग्रह किया हुआ हो, अर्थात् शत्रुने उससे विग्रह कर रक्खा हो, तो उसके साथ मिलनेमें कोई हानि नहीं ॥ ९ ॥

अशक्यो दण्डोपनतवद्वर्तेत ॥ १० ॥ यदा चास्य प्राणहरं व्याधिमन्तःकोपं शत्रुवृद्धिं मित्रव्यसनमुपस्थितं वा तन्निमित्तमात्मनश्च वृद्धिं पश्येत्तदा संभाव्य व्याधिधर्मकार्यापदेशेनापयायात् ॥ ११ ॥

यदि बलवान् राजाको, विना उसके पास जाये प्रसन्न करना अशक्य हो, तो सेनार्पण द्वारा उसके साथ सन्धि करके नम्रता पूर्वक वहीं पर रहे ॥ १० ॥ और जब देखे कि इस (बलवान् आश्रयभूत राजा) को कोई प्राणान्त कारी व्याधि हुई है, अथवा पुरोहित आदि कुपित होगये हैं, अथवा शत्रु बहुत बढ़गये हैं, या मित्रके ऊपर कोई विपत्ति आखड़ी हुई है; और इन्हीं कारणोंसे अपनी उन्नति देखे, तब किसी सम्भावित व्याधि या धर्मकार्यका बहाना करके वहांसे अपने देशको चला जावे ॥ ११ ॥

स्वविषयस्थो वा नोपगच्छेत् ॥१२॥ आसन्नो वास्य च्छिद्रेषु प्रहरेत् ॥ १३ ॥ बलीयसोर्वा मध्यगतस्त्राणसमर्थमाश्रयेत् ॥१४॥

यदि बलवान्की उपर्युक्त हालतोंमें, यह अपनेही देशमें होवे, तो बुलाये जानेपर भी किसी व्याधि या धर्म कार्यका बहाना करके उसके पास न जावे ॥ १२ ॥ अथवा उसके समीप रहता हुआ ही, उसकी निर्बलताओंपर बराबर आघात करता रहे ॥ १३ ॥ अथवा दो बलवान् राजाओंके बीचमें रहता हुआ अपनी (आश्रितकी) रक्षा करनेमें समर्थ राजाकाही आश्रय लेवे ॥ १४ ॥

यस्य वान्तर्धिः स्यात् ॥१५॥ उभौ वा कपालसंश्रयस्तिष्ठेत् ॥ १६ ॥

अथवा जो अपने समीप होवे उसीका आश्रय लेवे ॥ १५ ॥ दोनोंके समीप होनेपर, कपाल सन्धिके द्वारा दोनोंका ही आश्रय लेवे, दोनोंसे जाकर अलहदा २ यह कहे कि आपही मेरे रक्षक हैं, यदि आप मेरी रक्षा न

करेंगे, तो दूसरा राजा मुझे उखाड़ कर फेंक देगा, इसका नामही कपाल सन्धि है ॥ १६ ॥

मूलहरमितरस्येतरमपदिशेत् ॥ १७ ॥ भेदमुभयोर्वा परस्परापदेशं प्रयुञ्जीत ॥ १८ ॥ भिन्नयोरुपांशुदण्डम् ॥ १९ ॥

दोनोंको एक दूसरेका अपकार करनेवाला बतलाता रहे ॥ १७ ॥ एक दूसरेके द्रव्यका परस्पर नाश करने वाला बताकर, उन दोनोंमें भेद डलवा देवे ॥ १८ ॥ इस प्रकार दोनोंमें भेद पड़जाने पर, उपांशुदण्डका प्रयोग करे, अर्थात् दोनोंको छिपकर किन्हीं उपायोंसे मरवा देवे ॥ १९ ॥

पार्श्वस्थो वा बलस्थयोरासन्नभयात्प्रतिकुर्वीत ॥ २० ॥ दुर्गापाश्रयो वा द्वैधीभूतास्तिष्ठेत् ॥ २१ ॥ संधिविग्रहक्रमहेतुभिर्वा चेष्टेत ॥ २२ ॥

अथवा उन दोनों बलवान् राजाओंमें से जिसकी ओरसे शीघ्र भयकी आशङ्का हो, उसके समीपही रहता हुआ भावी आपत्तिका प्रतीकार करे ॥२०॥ अथवा दुर्गका आश्रय लेकर द्वैधीभावका प्रयोग करे, अर्थात् एकके साथ सन्धिकर दूसरेके साथ विग्रह करदेवे ॥ २१ ॥ अथवा ७, १, ३३में, तथा ७, १, ४९ में कहे हुए सन्धि और विग्रहके निमित्तोंको लेकर कार्य करनेमें प्रवृत्त हो जावे ॥ २२ ॥

दूष्यामित्राटविकानुभयोरुपगृह्णीयात् ॥ २३ ॥ एतयोरन्यतरं गच्छंस्तैरेवान्यतरस्य व्यसने प्रहरेत् ॥ २४ ॥ द्वाभ्यामुपहितो वा मण्डलापाश्रयस्तिष्ठेत् ॥ २५ ॥

दोनोंही प्रतिद्वन्द्वियोंके दूष्य, शत्रु और आटविकोंको दान सत्कार आदिसे अपने वशमें करलेवे ॥ २३ ॥ दोनोंमें से किसी एक प्रतिद्वन्द्वीका मुकाबला करता हुआ जिस विषयमें वह निर्बल हो वहींपर दूष्य आदिके द्वारा ही प्रहार करवावे ॥ २४ ॥ यदि दोनोंही इसको पीड़ा पहुंचावें, तो मण्डलका आश्रय लेकर रहे ॥ २५ ॥

मध्यममुदासीनं वा संश्रयेत ॥ २६ ॥ तेन सहैकमुपगृह्येतरमुच्छिन्द्यादुभौ वा ॥ २७ ॥ द्वाभ्यामुच्छिन्नो वा मध्यमोदासीनयोस्तत्पक्षीयाणां वा राज्ञां न्यायवृत्तिमाश्रयेत ॥ २८ ॥

मध्यम अथवा उदासीनका आश्रय लेवे ॥ २६ ॥ मध्यम अथवा उदासीनके साथ रहता हुआ, एक (अभियोक्ता=प्रति- द्वन्द्वी) को दान आदिसे वशमें करके दूसरेका उच्छेद करदेवे, यदि होसके तो दोनोंका ही उच्छेद

करदेवे ॥ २७ ॥ अथवा दोनोंसे पीड़ित किया हुआ राजा मध्यम या उदासीन, या उनके पक्षके अन्य राजाओंमें से जो न्यायवृत्ति अर्थात् न्यायानुकूल व्यवहार करनेवाला हो उसका आश्रय लेवे ॥ २८ ॥

तुल्यानां वा यस्य प्रकृतयः सुरुयेयुरेनं यत्रस्थो वा शक्नुयादात्मानमुद्धर्तुं यत्र पूर्वपुरुषोचिता गतिरासन्नः संबन्धो वा मित्राणि भूयांसीति शक्तिमन्ति वा भवेयुः ॥ २९ ॥

यदि उनमेंसे कई राजा न्यायशील होवें, तो जिसकी अमात्य आदि प्रकृतियां अपने अनुकूल या प्रीति करनेवाली हों, उसीका आश्रय लेवे। अथवा जिसके साथ रहता हुआ अपना उद्धार कर सके, अथवा जिसके साथ अपने पूर्व पुरुषाओंका विवाह आदि अन्तरङ्ग सम्बन्ध रहा हो, अथवा जहां बहुतसे शक्तिशाली मित्र हों, उसका आश्रय लेवे ॥ २९ ॥

प्रियो यस्य भवेद्यो वा प्रियो ऽस्य कतरस्तयोः ।
प्रियो यस्य स तं गच्छेदित्याश्रयगतिः परा ॥ ३० ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संश्रयवृत्तिः द्वितीयो ऽध्यायः ॥२॥
आदितः शततमः ॥१००॥

जो जिसका प्रिय है, उन दोनोंमेंसे कौन किसका प्रिय नहीं होता ? अर्थात् दोनोंही दोनोंके प्रिय होते हैं । इसलिये जो जिसका प्रिय हो, वह उसीका आश्रय लेवे, यही आश्रयस्थान सबसे श्रेष्ठ बताया गया है ॥ ३० ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय

१०१, १०२ प्रकरण

सम, हीन तथा अधिकके गुणोंकी स्थापना और हीनके साथ सन्धि ।

विजिगीषुः शक्त्यपेक्षः षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत ॥१॥ समज्यायोभ्यां संधीयेत ॥ २ ॥ हीनेन विगृह्णीयात् ॥ ३ ॥

विजिगीषु अपनी शक्तिके अनुसार सन्धि आदि छः गुणोंका यथोचित प्रयोग करे ॥ १ ॥ बराबर तथा अधिक शक्ति वालेके साथ सन्धि करलेवे ॥२॥ हीन शक्तिके साथ विग्रहका प्रयोग करे ॥ ३ ॥

विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैति ॥४॥ समेन चामं पात्रमामेनाहतमिवोभयतः क्षयं करोति ॥ ५ ॥

क्योंकि अधिक शक्तिवाले के साथ विग्रह करनेपर हीनशक्ति राजाकी वही दुर्दशा होती है, जो कि गजारोहियोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए २ पदातियों की ॥ ४ ॥ और समानके साथ विग्रह करनेपर, जैसे कच्चा घड़ा कच्चे घड़ेके साथ भिड़कर दोनों नष्ट होजाते हैं, इसी प्रकार उन दोनोंका ही नाश होजाता है ॥ ५ ॥

कुम्भेनेवाश्मा हीनेनैकान्तसिद्धिमवाप्नोति ॥ ६ ॥ ज्यायांश्चेन्न संधिमिच्छेद्दण्डोपनतवृत्तमाबलीयसं वा योगमातिष्ठेत् ॥७॥

हीनके साथ विग्रह करनेपर अवश्य ही सिद्धि होती है, जैसे घड़ेके साथ पत्थरकी चोट लगनेपर घड़ा अवश्य ही टूटफूट जाता है ॥ ६ ॥ अधिक शक्तिवाला राजा यदि सन्धि न करना चाहे, तो दण्डोपनतवृत्त (७ अधि०, १५ अध्याय) प्रकरणमें बतलाये हुए उपायों और आबलीयस (१२ अधि०) अधिकरणमें कहे हुए प्रयोगोंका अवलम्बन करे ॥ ७ ॥

समश्चेन्न संधिमिच्छेद्यावन्मात्रमपकुर्यात्तावन्मात्रमस्य प्रत्यपकुर्यात् ॥ ८ ॥ तेजो हि संधानकारणम् ॥ ९ ॥ नातप्तं लोहं लोहेन संधत्त इति ॥ १० ॥

बराबर शक्तिवाला राजा यदि सन्धि न करना चाहे, तो जितनी हानि वह पहुंचावे, उतनी ही उसकोभी हानि पहुंचा देवे ॥ ८ ॥ क्योंकि तेज ही सन्धिका कारण होता है ॥ ९ ॥ बिना तपा हुआ लोहा, दूसरे लोहेके साथ कभी नहीं मिल सकता ॥ १० ॥

हीनश्चेत्सर्वत्रानुप्रणतस्तिष्ठेत्संधिमुपेयात् ॥ ११ ॥ आरण्योऽग्निरिव हि दुःखामर्षजं तेजो विक्रमयति मण्डलस्य चानुग्राह्यो भवति ॥ १२ ॥

यदि हीनशक्ति राजा प्रत्येक विषयमें नम्रही बना रहे, तो उसके साथ सन्धि करलेवे ॥ ११ ॥ क्योंकि दुःख और अमर्षसे उत्पन्न हुआ २ तेज जंगल में लगी हुई अग्निके समान होता है; सन्धि न करनेपर सम्भवतः वह तेज, हीनशक्ति राजाको विजिगीषुके विषयमें विक्रमशाली बना देता है। तो फिरवह हीन शक्तिराजा मण्डलका कृपापात्र बनजाता है ॥ १२ ॥

संहितश्चेत्परप्रकृतयो लुब्धक्षीणापचारिताः प्रत्यादानभयाद्वा

नोपगच्छन्तीतिं पश्येद्धीनो ऽपि विगृह्णीयात् ॥ १३ ॥ विगृहीत-श्चेत्प्रकृतयो लुब्धक्षीणापचारिता विग्रहोद्विग्ना वा मां नोपगच्छ-न्तीति पश्येज्ज्यायानपि संधीयेत ॥ १४ ॥

हीनशक्ति विजिगीषु सन्धि करलेनेपर भी यदि यह देखे, कि शत्रुके अमात्य आदि प्रकृति जन लोभ, नीचता, या असन्तोषके कारण अथवा बदला लियेजानेके भयसे मुझे नहीं अपनाते, तो विग्रह करदेवे ॥ १३ ॥ अधिक शक्तिशाली विजिगीषु, हीन शक्ति राजाके साथ विग्रह करनेपर भी यह देखे कि—अमात्य आदि प्रकृति लोभी क्षीण तथा चरित्रहीन होनेके कारण, अथवा विग्रहसे उद्विग्न होनेके कारण मुझसे अनुराग नहीं रखते, तो सन्धि करलेवे ॥१४॥

विग्रहोद्वेगं वा शमयेत् ॥ १५ ॥ व्यसनयौगपद्येपि गुरुव्य-सनो ऽस्मि लघुव्यसनः परः सुखेन प्रतिकृत्य व्यसनमात्मनो ऽभि-युञ्ज्यादिति पश्येज्ज्यायानपि संधीयेत ॥ १६ ॥

अथवा विग्रहके कारण उत्पन्न हुई २ उद्विग्नताको शान्त करे ॥ १५ ॥ अथवा जब यह देखे, कि—मेरे ऊपरभी आपत्ति आई हुई है, और शत्रुके ऊपरभी, पर मेरी आपत्ति बहुत बड़ी तथा शत्रुकी बहुत थोड़ी है, वह आनन्द के साथ अपनी आपत्तिका प्रतीकार करके मेरा मुकाबला करनेके लिये तैयार होजावेगा; तो शक्तिहीनके साथभी सन्धि करलेवे ॥ १६ ॥

संधिविग्रहयोश्चेत्परकर्शनमात्मोपचयं वा नाभिपश्येज्ज्याया-नप्यासीत ॥ १७ ॥ परव्यसनमप्रतिकार्यं चेत्पश्येद्धीनो ऽप्यभि-यायात् ॥ १८ ॥

यदि अधिक शक्तिशाली भी विजिगीषु यह समझे, कि—सन्धि या विग्रह करनेपर शत्रुके ह्रास और मेरी वृद्धिकी सम्भावना नहीं है, तो इनदोनों को छोड़कर आसनका अवलम्बन करे ॥ १७ ॥ यदि हीनशक्ति विजिगीषु भी यह देखे, कि—शत्रु अपनी आपत्तिका प्रतिकार नहीं करसकता, तो निःसन्देह उसपर चढ़ाई करदेवे ॥ १८ ॥

अप्रतिकार्यासन्नव्यसनो वा ज्यायानपि संश्रयेत ॥ १९ ॥ संधिनैकतो विग्रहेणैकतश्चेत्कार्यसिद्धिं पश्येज्ज्यायानपि द्वैधीभू-तस्तिष्ठेदिति ॥ २० ॥

अप्रतीकार्य (प्रतीकार न की जासकनेवाली) आपत्तिको समीप आया देख अधिक शक्तिभी विजिगीषु, संश्रयका अवलम्बन करे ॥ १९ ॥ यदि एकके

साथ सन्धिके द्वारा, और एकके साथ विग्रहके द्वाराही अपनी कार्यसिद्धि समझे तो अधिक शक्तिभी विजिगीषु द्वैधीभावका अवलम्बन करे ॥ २० ॥

एवं समस्य षाड्गुण्योपयोगः ॥ २१ ॥ तत्र तु प्रतिविशेषः ॥ २२ ॥

इस प्रकार सम, हीन तथा अधिक शक्ति सबकेही प्रति सन्धि आदि छः गुणोंके उपयोगका निरूपण कर दिया ॥ २१ ॥ अब उनमेंसे हीनके प्रति कुछ विशेषतायें बतलाई जावेंगी ॥ २२ ॥

प्रवृत्तचक्रेणाक्रान्तो राज्ञा बलवताबलः ।
संधिनोपनमेत्तूर्णं कोशदण्डात्मभूमिभिः ॥ २३ ॥

सेना आदिके द्वारा बलवान् राजासे दबाया हुआ निर्बल राजा, जल्दी ही धन सेना आत्मा और भूमि समर्पण करके बलवान्से सन्धि करलेवे, अर्थात् उसके सामने झुक जाय ॥ २३ ॥

स्वयं संख्यातदण्डेन दण्डस्य विभवेन वा ।
उपस्थातव्यमित्येष संधिरामिषो मतः ॥ २४ ॥

विजेता जितना कहे उतनीही सेना लेकर और अपनी शक्तिके अनुसार धन लेकर जो विजित स्वयं शत्रुके पास जाकरही उसकी सेवा करता है, इस प्रकारकी सन्धि 'आमिषसन्धि' कहाती है, क्योंकि यह सन्धि अपने आपको भोग्यरूपसे उपस्थित किये जानेपरही होती है ॥ २४ ॥

सेनापतिकुमाराभ्यामुपस्थातव्यमित्ययम् ।
पुरुषान्तरसंधिः स्यान्नात्मनेत्यात्मरक्षणः ॥ २५ ॥

जो सन्धि, सेनापति और राजकुमारको शत्रुकी सेवामें उपस्थित करके कीजाती है, उसे 'पुरुषान्तरसन्धि' कहते हैं, क्योंकि वह सेनापति और राजकुमार रूप पुरुषविशेषको अर्पण करनेपरही होती है। इसीका नाम 'आत्मरक्षण सन्धि' भी है, क्योंकि इसमें स्वयं राजाकी रक्षा होजाती है, उसे शत्रुके दरबारमें नहीं जाना पड़ता ॥ २५ ॥

एकेनान्यत्र यातव्यं स्वयं दण्डेन वेत्ययम् ।
अदृष्टपुरुषः संधिर्दण्डमुख्यात्मरक्षणः ॥ २६ ॥

किसी दूसरे स्थानपर शत्रुके कार्यको सिद्ध करनेके लिये, मैं स्वयं अकेला ही जाऊंगा, अथवा मेरी सेनाही जायगी, इसप्रकार शर्त्त करके जो सन्धि कीजाती है, उसे 'अदृष्टपुरुष सन्धि' कहते हैं। क्योंकि इस सन्धिके होनेपर शत्रुकी सेवामें किसी पुरुषको उपस्थित नहीं होना पड़ता। इसी संधि

को 'दण्डमुख्यात्मरक्षण सन्धि' भी कहते हैं, क्योंकि इसमें सेनाके मुख्य व्यक्ति और स्वयं राजाकी रक्षा होजाती है ॥ २६ ॥

मुख्यस्त्रीबन्धनं कुर्यात्पूर्वयोः पश्चिमे त्वरिम् ।
साधयेद्गूढमित्येते दण्डोपनतसंधयः ॥ २७ ॥

उपर्युक्त तीन प्रकारकी सन्धियोंमेंसे पहिली आत्मामिष और आत्मरक्षण इन दो सन्धियोंमें, विश्वासके लिये अधिकशक्ति राजा मुख्य राजव्यक्तियों की कन्याओंका विवाह सम्बन्ध करे। तथा तीसरी अदृष्टपुरुष सन्धिमें शत्रुको विष आदि गूढ़ प्रयोगोंके द्वारा वशमें करे, ये तीनों सन्धि 'दण्डोपनतसन्धि' कहाती है ॥ २७ ॥

कोशदानेन शेषाणां प्रकृतीनां विमोक्षणम् ।
परिक्रयो भवेत्संधिः स एव च यथासुखम् ॥ २८ ॥

बलवान् शत्रुसे युद्धमें गिरफ्तार किये हुए अमात्य आदि प्रकृतियोंको, जिस सन्धिमें धन देकर छुड़ाया जावे, उसे 'परिक्रयसन्धि' कहते हैं। और यही परिक्रयसन्धि, जब कि सुखपूर्वक ॥ २८ ॥

स्कन्धोपनेयो बहुधा ज्ञेयः संधिरुपग्रहः ।
निरुद्धो देशकालाभ्यां अत्ययः स्यादपग्रहः ॥ २९ ॥

किश्तवार थोड़ा २ धन बहुत वारमें देना किया जावे, तो 'उपग्राहसन्धि' कहाती है। तथा जब देयधनके विषयमें यह नियम करदिया जावे कि अमुक स्थानमें अमुकसमयमें इतना धन अवश्य देना होगा, तब इसी 'उपग्रह' को 'अत्यय' कहा जाता है ॥ २९ ॥

विषह्यदानादायत्यां क्षमः स्त्रीबन्धनादपि ।
सुवर्णसंधिर्विश्वासादेकीभावगतो भवेत् ॥ ३० ॥

सुखपूर्वक नियत समयमें नियमित धनराशि दे देनेके कारण यह सन्धि, कन्यादान सन्धिसे भी कहीं प्रशस्त है, यह भविष्यमें अच्छा फल लानेवाली होती है, तपे हुए सुवर्णके आपसमें मिल जानेके समान, यह सन्धि शत्रु और विजिगीषुको आपसमें मिलानेका भी साधन हो जाती है, इसीलिये इसको 'सुवर्णसन्धि' भी कहते हैं ॥ ३० ॥

विपरीतः कपालः स्यादत्यादानाभिभाषितः ।
पूर्वयोः प्रणयेत्कुप्यं हस्त्यश्वं वागुरान्वितम् ॥ ३१ ॥

इस उपर्युक्त सन्धिसे विपरीत सन्धि, अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण धनराशि तत्क्षण अदा करदेनी पड़े, 'कपालसन्धि' कहलाती है। दुष्टसन्धि होनेसे

इसको शास्त्रकारोंने उपादेय नहीं कहा है। परिक्रय आदि चार सन्धियोंमेंसे पहिली दो सन्धियोंमें, कपड़े कवच आदि तथा लोहे तांबेकी असार वस्तुओं को शत्रुको देवे, अथवा शत्रुकी इच्छा होनेपर बूढ़े हाथी घोड़ोंको देदेवे, परन्तु उनको ऐसा विष खिलादेवे, जिससे वे दो तीन महीनेतक मरजांय ॥ ३१ ॥

तृतीये प्रणयेदर्थं कथयन्कर्मणां क्षयम् ।
तिष्ठेच्चतुर्थ इत्येते कोशोपनतसंधयः ॥ ३२ ॥

और तीसरी सन्धिमें देयधनका कुछ हिस्सा देकर कह देवे कि आज-कल मेरे काम बहुत बिगड़ रहे हैं, इतनेपरही सन्तोष कीजिये । और चौथी कपालसन्धिमें मध्यम या उदासीनका आश्रय लेकर 'देता हूं, देता हूं' यह कहता हुआ समय टालता जावे । ये चारों सन्धियां कोश दिये जानेके कारण 'कोशोपनतसन्धि' कहाती हैं ॥ ३२ ॥

भूम्येकदेशत्यागने शेषप्रकृतिरक्षणम् ।
आदिष्टसंधिस्तत्रेष्टो गूढस्तेनोपघातिनः ॥ ३३ ॥

देश और प्रकृतिकी रक्षाके लिये, भूमिका कुछ हिस्सा शत्रुको देकर जो सन्धिकी जाती है, उसे 'आदिष्टसन्धि' कहते हैं। दी हुई भूमिमें गूढ़पुरुष और चोरोंके द्वारा उपघात या उपद्रव करानेके लिये (जिससे कि फिर यह भूमि मेरेही पास आजाय) जो विजिगीषु समर्थ हो, उसके लिये यह सन्धि बड़े कामकी है ॥ ३३ ॥

भूमीनामात्तसाराणां मूलवर्जं प्रणामनम् ।
उच्छिन्नसंधिस्तत्रेष्टः परव्यसनकाङ्क्षिणः ॥ ३४ ॥

राजधानी और किलोंको छोड़कर, कर वसूलकी हुई अथवा सब सार पदार्थ ली हुई भूमियोंको शत्रुको देकर जो सन्धिकी जावे उसे 'उच्छिन्नसन्धि' कहते हैं। शत्रुके ऊपर व्यसन आनेपर फिर मैं अपनी भूमिको वापस लेलूंगा, इस प्रकारकी प्रतीक्षा करनेवाले राजाके लिये यह सन्धि अच्छी होती है॥३४॥

फलदानेन भूमीनां मोक्षणं स्यादवक्रयः ।
फलातिमुक्तो भूमिभ्यः संधिः स परिदूषणः ॥ ३५ ॥

भूमिमें उत्पन्न हुई वस्तुको देकर, जिस सन्धिमें भूमिको छुड़ा लिया जावे, उसे 'अवक्रयसन्धि' कहते हैं। परन्तु जिस सन्धिमें भूमिसे उत्पन्न हुई वस्तुओंके अतिरिक्त और भी कुछ दिया जावे, उसे 'परदूषणसन्धि' कहते हैं ॥ ३५ ॥

कुर्यादवेक्षणं पूर्वौ पश्चिमौ त्वाबलीयसम् ।
आदाय फलमित्येते देशोपनतसंधयः ॥ ३६ ॥

इन चारों सन्धियोंमेंसे पहिली दो आदिष्ट और उच्छिन्न सन्धियोंमें शत्रुकी विपत्तिकी प्रतीक्षा करे । तथा पिछली दो सन्धियोंमें भूमिसे उत्पन्न वस्तुओंको लेकर, आबलीयस (१२ अधि.) अधिकरणमें कहे हुए उपायोंके द्वारा शत्रुका प्रतीकार करे । इस प्रकार भूमि देनेके कारण ये चारों सन्धियां 'देशोपनतसन्धि' या 'भूम्युपनतसन्धि' कहाती हैं ॥ ३६ ॥

स्वकार्याणां वशेनैते देशे काले च भाषिताः ।
आबलीयसिकाः कार्यास्त्रिविधा हीनसंधयः ॥ ३७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशो हीनसंधयः तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदित एकशतः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार निरूपण की हुई इन तीन प्रकारकी (दण्डोपनत, कोशोपनत, देशोपनत) हीन सन्धियोंको निर्बल राजा अपने कार्य, देश और समयके अनुसार उपयोगमें लावे ॥ ३७ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरण में तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय ।

१०३-१०७ प्रकरण

विशेष आसन और यान ।

संधिविग्रहयोरासनं यानं च व्याख्यातम् ॥ १ ॥ स्थानमासनमुपेक्षणं चेत्यासनपर्यायाः ॥ २ ॥ विशेषस्तु ॥ ३ ॥ गुणैकदेशे स्थानम् ॥ ४ ॥

सन्धि और विग्रहमें ही आसन तथा यानको पूर्वाचार्योंने कहा है ॥१॥ स्थान, आसन और उपेक्षण ये आसनके पर्यायवाची शब्द हैं ॥ २ ॥ परन्तु जो इनमें विशेषता है, उसे अब बताते हैं ॥ ३ ॥ आसनरूप गुणके एकदेशमें स्थानशब्द प्रयुक्त होता है । इसका तात्पर्य यह है कि:—शत्रुके बराबर शक्ति का होनाही आसन है, जब उसका एकदेश=शक्तिकी अल्पता हो, अर्थात् जिस अवस्थामें शत्रुके द्वारा कोई अपकार किये जानेपर भी उसका बदला न लिया जासके, ऐसी अल्पशक्तिकी अवस्थामें आसनके लिये 'स्थान' शब्दका प्रयोग होता है ॥ ४ ॥

स्ववृद्धिप्राप्त्यर्थमासनम् ॥ ५ ॥ उपायानामप्रयोग उपेक्षण-मिति ॥ ६ ॥ संधानकामयोररिविजिगीष्वोरुपहन्तुमशक्तयोर्विगृह्यासनं संधाय वा ॥ ७ ॥

अपनी वृद्धिके लिये जब इस गुणका अवलम्बन किया जाय, तो इसे 'आसन' कहते हैं॥५॥ उपायोंका प्रयोग न करना अथवा थोड़ा करना 'उपेक्षण' कहाता है॥६॥ सन्धिकी इच्छा करनेवाला शत्रु और विजिगीषु, जबकि आपसमें एक दूसरेका कोई अपकार न कर सकते हों तो (अधिकशक्ति होनेपर) विग्रह करके आसनका अवलम्बन करें, अथवा (अल्पशक्ति होनेपर) सन्धि करकेही करें ॥ ७ ॥

यदा वा पश्येत्स्वदण्डैर्मित्राटवीदण्डैर्वा समं ज्यायांसं वा कर्शयितुमुत्सह इति तदा कृतबाह्याभ्यन्तरकृत्यो विगृह्यासीत ॥८॥

अथवा जब विजिगीषु देखे, कि अपनी सेना और मित्र तथा आटाविक की सेनाओंके द्वारा मैं बराबर या अधिक शक्तिवाले शत्रुको दबा सकता हूं, तो किले और बाहर जनपदके सब कृत्योंको ठीक २ कराकर विग्रह करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ ८ ॥

यदा वा पश्येदुत्साहयुक्ता मे प्रकृतयः संहता विवृद्धाः स्व-कर्मण्यव्याहताश्चरिष्यन्ति परस्य वा कर्माण्युपहनिष्यन्तीति तदा विगृह्यासीत ॥ ९ ॥

अथवा जब देखे कि—मेरी अमात्य आदि प्रकृतियां उत्साहसे भरी हुई हैं, एक सलाहसे काम करनेवाली तथा उन्नत हैं, अपने दुर्ग आदि कार्यों को बिना किसी विरोधके पूर्णरूपसे करेंगी और शत्रुके कर्मोंका उपहनन करेंगी, तब ऐसी अवस्थामें भी विग्रह करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥९॥

यदा वा पश्येत्परस्यापचरिताः क्षीणा लुब्धाः स्वचक्रस्ते-नाटवीव्यथिता वा प्रकृतयः स्वयमुपजापेन वा मामेष्यन्तीति ॥१०॥

अथवा जब देखे कि:—शत्रुके अमात्य आदि प्रकृतिजन, राजासे तिर-स्कृत, दुर्भिक्ष आदिके कारण क्षीण और लुब्ध हुए २, तथा अपनीही सेना, चोर और आटाविकोंसे सताये हुए हैं, इसलिये अपनेही आप, अथवा मेरे द्वारा प्रयुक्त किये गये भेदके उपायोंसे वे मेरेही पास आजावेंगे ॥ १० ॥

संपन्ना मे वार्ता विपन्ना परस्य तस्य प्रकृतयो दुर्भिक्षोपहता मामेष्यन्ति ॥ ११ विपन्ना मे वार्ता संपन्ना परस्य ॥ १२ ॥ तं

मे प्रकृतयो न गमिष्यन्ति विगृह्य चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याहरिष्यामि ॥ १३ ॥

मेरी वार्ता (कृषि वाणिज्य आदि) बनी हुई है और शत्रुकी बिगड़ गई है, उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन दुर्भिक्षसे पीड़ित हुए २ मेरेही पास आवेंगे ॥ ११ ॥ शत्रुकी वार्ता बनी हुई है और मेरी बिगड़ गई है; फिरभी— ॥ १२ ॥ शत्रुके पास मेरे अमात्य आदि प्रकृतिजन नहीं जावेंगे, विग्रह करके मैं शत्रुके धान्य, पशु और हिरण्य आदिको छीन सकूंगा ॥ १३ ॥

स्वपण्योपघातीनि वा परपण्यानि निवर्तयिष्यामि ॥ १४ ॥ परवणिक्पथाद्वा सारवन्ति मामेष्यन्ति विगृहीते नेतरम् ॥१५॥ दूष्यामित्राटवीनिग्रहं वा विगृहीतो न करिष्यति ॥ १६ ॥

परदेससे आया हुआ माल मेरे देशके विक्रेय मालको हानि पहुंचाता है, इसलिये बाहरसे आनेवाले मालको रोकदूंगा ॥ १४ ॥ अथवा शत्रुके व्यापारी मार्गोंसे सारवान् वस्तु (हाथी, घोड़े, हाथीदांत आदि) मेरे पास आजावेगी, विग्रह करनेपर शत्रुके पास न जासकेगी ॥ १५ ॥ अथवा इसके (शत्रुके) साथ विग्रह करनेपर, यह (शत्रु) अपने दूष्य, शत्रु और आटविकोंको वशमें नहीं करसकेगा ॥ १६ ॥

तैरेव वा विग्रहं प्राप्स्यति ॥ १७ ॥ मित्रं मे मित्रभाव्याभिप्रयातो बह्वल्पकालं तनुक्षयव्ययमर्थं प्राप्स्यति ॥ १८ ॥

अथवा दूष्य, शत्रु और आटविकोंके साथही इसे विग्रह करना पड़ेगा ॥ १७ ॥ अथवा मेरे मित्रभावि (देखो ७ अधि. ९ अध्या. ५५ सूत्र) मित्रपर हमला करके, यह (शत्रु) बहुत थोड़े समयमें, थोड़ीसी सेना और धन व्यय करकेही महान अर्थको प्राप्त करेगा, मैं इसके कार्यमें रुकावट डालूंगा ॥१८॥

गुणवतीमादेयां वा भूमिं सर्वसंदोहेन वा मामनादृत्य प्रयातुकामः कथं न यायात् ॥ १९ ॥ इति परवृद्धिप्रतिघातार्थं प्रतापार्थं च विगृह्यासीत ॥ २० ॥ तमेव हि प्रत्यावृत्तो ग्रसत इत्याचार्याः ॥ २१ ॥

अथवा गुणवती अत्यन्त सुख देनेवाली उपादेय भूमिको लेनेके लिये, अथवा मेरा अनादर करकेही, कहीं प्रयाण (आक्रमण) करनेकी इच्छा रखनेवाला यह शत्रु अपनी सम्पूर्ण सेनाको लेकर चल न दे ॥ १९ ॥ इत्यादि अवस्थाओंके देखे जानेपर विजिगीषु, शत्रुको उन्नतिका विघात करनेके लिये और अपने प्रताप

का विस्तार करनेके लिये विग्रह करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ २० ॥ आक्रमणकारी शत्रु, विजिगीषुके द्वारा उसके आक्रमणमें विघ्न कियेजानेपर कहीं कुपित हुआ २ इसीके ऊपर आक्रमण कर इसका उच्छेद करदे, तो अनर्थ ही होगा, इसलिये ऐसी अवस्थामें विग्रह करके आसनका अवलम्बन न करे यह प्राचीन अनेक आचार्योंका मत है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ कर्शनमात्रमस्य कुर्यादव्यसनिनः ॥ २३ ॥ परवृद्ध्या तु वृद्धः समुच्छेदनम् ॥ २४ ॥

किन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ २२ ॥ वह कहता है कि कुपित हुआ २ शत्रु, व्यसन रहित विजिगीषुको उखाड़ नहीं सकता, किन्तु थोड़ा बहुत कष्ट पहुंचा सकता है ॥ २३ ॥ परन्तु यदि विजिगीषु उसके आक्रमणमें विघ्न न डाले, तो वह निर्विघ्न अपने शत्रुको जीतकर और अधिक बलवान् होकर, फिर विजिगीषुका अवश्य ही उच्छेद कर सकता है ॥ २४ ॥

एवं परस्य यातव्यो ऽस्मै साहाय्यमविनष्टः प्रयच्छेत् ॥२५॥ तस्मात्सर्वसंदोहप्रकृतो विगृह्यासीत ॥ २६ ॥

इस प्रकार विग्रह करके आसनका अवलम्बन करनेपर तो, सुरक्षित हुआ २, शत्रुका यातव्य (यातव्य उस राजाको कहते हैं-जिसपर आक्रमण किया जाय), अपनी रक्षा करनेवाले विजिगीषुको अवश्यही सहायता पहुंचावेगा ॥ २५ ॥ इसलिये सम्पूर्ण सैन्यशक्ति को लेकर प्रयाण करनेवाले शत्रुके साथ अवश्यही विग्रह करके आसनका अवलम्बन करे ॥ २६ ॥

विगृह्यासनहेतु प्रातिलोम्ये संधायासीत ॥ २७ ॥ विगृह्यासनहेतुभिरभ्युच्चितः सर्वसंदोहवर्जं विगृह्य यायात् ॥ २८ ॥

विग्रह करके आसनके जो हेतु बतलाये गये हैं, यदि उनसे विपरीत देखे, तो सन्धि करकेही आसनका अवलम्बन करे ॥ २७ ॥ विग्रहके अनन्तर आसनके हेतुओंसे शक्तिका उपचय करके, शत्रुके साथ विग्रहकर यानका अवलम्बन करे। परन्तु जो शत्रु अपनी सम्पूर्ण सेनाको लेकर किसीपर आक्रमणकर रहा हो, उसकेप्रति यानका अवलम्बन न करे ॥ २८ ॥

यदा वा पश्येद्व्यसनी परः प्रकृतिव्यसनं वास्य शेषप्रकृतिभिरप्रतिकार्यं स्वचक्रपीडिता विरक्ता वास्य प्रकृतयः कर्शिता निरुत्साहाः परस्पराद्वा भिन्नाः शक्या लोभयितुमग्न्युदकव्याधिमरकदुर्भिक्षनिमित्तं क्षीणयुग्यपुरुषनिचयरक्षाविधानः पर इति तदा विगृह्य यायात् ॥ २९ ॥

अथवा जब देखे कि शत्रु व्यसनी होगया है, या इसके अमात्य आदि प्रकृतियोंका व्यसन, शेष प्रकृतियोंके द्वारा नहीं हटाया जासकता, अपनी सेनाओंसे पीड़ित (सताई हुई) प्रजा, राजाके प्रति विरक्त हो गई हैं, इसीलिए उत्साह हीन हैं, आपसमें मिलकर नहीं रह सकतीं, इनको लोभ दिया जासकता है; और शत्रु, अग्नि जल, व्याधि, संक्रामकरोग, तथा दुर्भिक्ष आदि उपद्रवोंके कारण, अपने वाहन, कर्मचारी पुरुष, और कोशकी रक्षा न कर सकनेसे क्षीण होचुका है, तो उसके साथ विग्रह करके यानका अवलम्बन करे ॥ २९ ॥

यदा वा पश्येन्मित्रमाक्रन्दश्च मे शूरवृद्धानुरक्तप्रकृतिर्विपरीतप्रकृतिः परः ॥ ३० ॥ पार्ष्णिग्राहश्चासारश्च ॥ ३१ ॥ शक्ष्यामि मित्रेणासारमाक्रन्देन पार्ष्णिग्राहं वा विगृह्य यातुमिति तदा विगृह्य यायात् ॥ ३२ ॥

अथवा जब देखे, कि—मेरे आगेका मित्रराजा और मेरे पीछेका मित्र राजा, दोनोंही शूर, अनुभवी एवं अनुरक्त अमात्योंसे युक्त हैं, और शत्रु इनसे विपरीत अमात्योंसे युक्त हैं, तथा ॥ ३० ॥ इसी प्रकार पार्ष्णिग्राह और आसार भी ॥ ३१ ॥ इसलिये मित्रके साथ आसारका, और आक्रन्दके साथ पार्ष्णिग्राह का विग्रह कराके मैं शत्रुके ऊपर आक्रमण कर सकूंगा इत्यादि, तो विग्रह करके यानका अवलम्बन करे ॥ ३२ ॥

यदा वा फलमेकहार्यमल्पकालं पश्येत्तदा पार्ष्णिग्राहासाराभ्यां विगृह्य यायात् ॥ ३३ ॥ विपर्यये संधाय यायात् ॥ ३४ ॥

अथवा जब किसी फलको अपने अकेले हीके द्वारा थोड़ेही समयमें सिद्ध होजाने वाला देखे, तो पार्ष्णिग्राह और आसारके साथभी विग्रह करके यातव्यके प्रति यानकरे ॥ ३३ ॥ यदि फल अकेलेहीके द्वारा थोड़े समयमें सिद्ध होनेवाला न दीखे, तो सन्धि करके यानका अवलम्बन करे ॥ ३४ ॥

यदा वा पश्येन्न शक्यमेकेन यातुमवश्यं च यातव्यमिति तदा समहीनज्यायोभिः सामवायिकैः संभूय यायादेकत्र निर्दिष्टेनांशेनानेकत्रानिर्दिष्टेनांशेन ॥ ३५ ॥

अथवा जब देखे, कि—मैं अकेला यान नहीं कर सकता, पर यान करना अवश्य चाहिये, तो उस समय समशक्ति हीनशक्ति तथा अधिकशक्ति इकट्ठे हुए २ राजाओंके साथ मिलकर यानका अवलम्बन करे। यदि एकही

देशपर धावा करना हो तो हिस्सेका निर्देश करके, और अधिक देशोंपर धावा करना हो तो हिस्सेका निर्देश किये बिनाही यानका आरम्भ करे ॥ ३५ ॥

तेषामसमवाये दण्डमन्यतमःसन्निविष्टांशेन याचेत ॥ ३६ ॥ संभूयाभिगमनेन वा निर्विंश्येत ॥ ३७ ॥ ध्रुवे लाभे निर्दिष्टेनांशेनाध्रुवे लाभांशेन ॥ ३८ ॥

यदि समशक्ति आदि राजाओंमें से कोई राजा साथ चलना स्वीकार न करे तो उसको कुछ हिस्सा देना कहकर उससे सेना मांगे ॥ ३६ ॥ अथवा यह कहे कि यदि इस समय साथ चलकर तुम मेरी सहायता करोगे, तो मैं भी अवसर आनेपर साथ चलकरही तुम्हारी सहायता करूंगा ॥ ३७ ॥ यदि आक्रमण करनेपर भूमि मिले तो उसहीमेंसे निर्दिष्ट अंशदे, यदि अन्य सामान मिले तो उसमेंसे लाभके अनुसार हिस्सा देदेवे ॥ ३८ ॥

अंशो दण्डसमः पूर्वः प्रयाससम उत्तमः ।
विलोपो वा यथालाभं प्रक्षेपसम एव वा ॥ ३९ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे विगृह्यासनं संधायासनं विगृह्ययानं संधाययानं संभूयप्रयाणं चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो द्विशतः ॥ १०२ ॥

मिलकर शत्रुको जीत लेनेपर वहांसे प्राप्त धनका विभाग इस प्रकार करना चाहिये:—सेनाओंकी न्यूनता या अधिकताके अनुसार राजाओंको धन दियेजावे, यह प्रथम पक्ष है । जिसने जितनी मेहनतकी है उसहीके अनुसार उसे धन दियाजावे, यह उत्तम पक्ष समझा जाता है । लूटमें जो जिसके पल्ले पड़जाय वह उसीका धन रहे, यहभी एक पक्ष है । अथवा आक्रमणके समयमें जितना जिसका धन व्यय हुआ हो, उसहीके अनुसार उसे हिस्सा दिया जाय ॥ ३९ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवा अध्याय

१०८—११० प्रकरण

यान विषयक विचार, प्रकृतियोंके क्षय, लोभ तथा विरागके हेतु, और विजिगीषुके अनुगामियोंका विचार

तुल्यसामन्तव्यसने यातव्यममित्रं वेत्यमित्रमभियायात् ॥ १ ॥

तत्सिद्धौ यातव्यम् ॥ २ ॥ अमित्रसिद्धौ हि यातव्यः साहाय्यं दद्यान्नामित्रो यातव्यसिद्धौ ॥ ३ ॥

यातव्य और शत्रुके ऊपर सामन्तादि जनित तुल्य व्यसन होनेपर, पहिले शत्रुके प्रति ही प्रयाण करे ॥ १ ॥ उसके वशमें होजानेपर फिर यातव्य पर आक्रमण करे ॥ २ ॥ शत्रुके वशमें कर लेनेपर यातव्य अपना (विजिगीषुका) सहायक हो सकता है, परन्तु यातव्यके वशमें करलेने पर भी शत्रु कभी सहायक नहीं हो सकता, क्योंकि वह नित्यही अपकार करनेवाला होता है ॥ ३ ॥

गुरुव्यसनं यातव्यं लघुव्यसनममित्रं वेति ॥ ४ ॥ गुरुव्यसनं सौकर्यतो यायादित्याचार्याः ॥ ५ ॥

अधिक व्यसनमें फंसे हुए यातव्यपर पहिले चढ़ाई की जाय, या थोड़ेसे व्यसनमें फंसे हुए शत्रुपर ? ॥ ॥ ४ ॥ अधिक व्यसनी यातव्यपर ही पहिले आक्रमण किया जाय, क्योंकि उसका जीत लेना बहुत सुगम है, ऐसा आचार्योंका मत है ॥ ५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ लघुव्यसनममित्रं यायात् ॥ ७ ॥ लघ्वपि हि व्यसनमभियुक्तस्य कृच्छ्रं भवति ॥ ८ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ ६ ॥ वह कहता है कि पहिले शत्रुपर ही आक्रमण किया जाय, चाहे उसपर थोड़ी ही बिपत्ति हो ॥ ७ ॥ क्योंकि आक्रमण किए जानेपर छोटेसे व्यसनका भी प्रतीकार करना कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥

सत्यं गुर्वपि गुरुतरं भवति ॥ ९ ॥ अनभियुक्तस्तु लघुव्यसनः सुखेन व्यसनं प्रतिकृत्यामित्रो यातव्यमभिसरेत् ॥ १० ॥ पार्ष्णिं गृह्णीयात् ॥ ११ ॥

यद्यपि यातव्यका गुरु व्यसन, चढ़ाई कर देनेपर और भी गुरुतर हो जायगा, और उसका जीतना अत्यन्त सरल हो जायगा ॥ ९ ॥ तथापि पहिले लघु-व्यसन शत्रुपरही चढ़ाई करे, क्योंकि उसपर चढ़ाई न करनेपर, वह अपने छोटेसे व्यसनका सरलतासे प्रतीकार करके यातव्यकी सहायताके लिए तैयार हो जायगा ॥ १० ॥ या पार्ष्णिग्राह (युद्धके समय पीछेसे आक्रमण कर देने वाला) बन जायगा ॥ ११ ॥

यातव्ययौगपद्ये गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिं लघुव्यसनमन्यायवृत्तिं विरक्तप्रकृतिं वेति ॥ १२ ॥ विरक्तप्रकृतिं यायात् ॥ १३ ॥

गुरु-व्यसन (जिसपर भारी विपत्ति आई हुई हो), और प्रजाका न्याय पूर्वक पालन करनेवाला यातव्य एक, लघु-व्यसन (जिसपर थोड़ीसी आपत्ति हो) और अन्याय-पूर्वक प्रजाका पालन करनेवाला यातव्य दूसरा, जिससे अमात्य आदि प्रकृति विरक्त हों ऐसा यातव्य तीसरा, इस प्रकार युगपत् प्राप्त इन तीनों यातव्योंमेंसे, सबसे प्रथम विरक्तप्रकृति यातव्यपरही आक्रमण किया जाय ॥ १२, १३ ॥

गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयोऽनुगृह्णन्ति ॥ १४ ॥ लघुव्यसनमन्यायवृत्तिमुपेक्षन्ते ॥ १५ ॥

गुरु-व्यसन, पर न्यायवृत्ति यातव्यपर आक्रमण किये जानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन प्राणपणसे उसकी सहायता करते हैं ॥ १४ ॥ लघु-व्यसन अन्यायवृत्ति यातव्यपर आक्रमण किये जानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन उपेक्षावृत्तिसे रहते हैं, अर्थात् न उसकी सहायता करते हैं, और न विरोध करते हैं ॥ १५ ॥

विरक्ता बलवन्तमप्युच्छिन्दन्ति ॥१६॥ तस्माद्विरक्तप्रकृतिमेव यायात् ॥१७॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति ॥१८॥

परन्तु विरक्त हुए २ अमात्य आदि बलवान् राजाकाभी उच्छेद करदेते हैं ॥ १६ ॥ इसलिये विरक्तप्रकृति यातव्यपरही सबसे प्रथम आक्रमण किया जाय ॥ १७ ॥ दुर्भिक्ष आदि विपत्तियोंसे पीड़ित और लोभी अमात्य आदिसे युक्त यातव्यपर पहिले हमला करें, या तिरस्कृत अमात्य आदिसे युक्त यातव्यपर.? ॥ १८ ॥

क्षीणलुब्धप्रकृतिं यायात् ॥ १९ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयः सुखेनोपजापं पीडां वोपगच्छन्ति ॥ २० ॥ नापचरिताः प्रधानावग्रहसाध्या इत्याचार्याः ॥ २१ ॥

प्रथम क्षीण और लोभी अमात्य आदिसे युक्त यातव्यपरही आक्रमण करे ॥ १९ ॥ क्योंकि पीडित और लोभी अमात्य बड़ी सुगमतासे बहकाये और सताये जासकते हैं ॥ २० ॥ परन्तु तिरस्कृत अमात्य आदिका बहकाना या सताना कठिन है, क्योंकि वे अपनी किसी बातको प्रधान पुरुषके स्वीकार करलेने परही फिर उसके वशीभूत होसकते हैं, यह आचार्योंका मत है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयो भर्तरि स्निग्धा भर्तृहिते तिष्ठन्ति ॥ २३ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ २२ ॥ क्योंकि वह कहता

है, कि—पीड़ित लोभी अमात्य आदि प्रकृतिजन, अपने मालिक में बड़ा स्नेह रखते हैं, और उसके हितके लिये हरघड़ी तैयार होसकते हैं ॥ २३ ॥

उपजापं वा विसंवादयन्ति ॥२४॥ अनुरागे सार्वगुण्यमिति ॥ २५ ॥ तस्मादपचरितप्रकृतिमेव यायात् ॥ २६ ॥

यहभी सम्भव है कि वे बहकाने में न आवें ॥ २४ ॥ वे इस बातको समझते हों कि अपने मालिकमें अनुराग रखनाही सब गुणोंका मूल है ॥२५॥ इसलिये तिरस्कृतप्रकृति (जिस यातव्य राजाने अपने अमात्य आदिका अनादर किया हुआहो) यातव्यपरही प्रथम आक्रमण कियाजाय ॥ २६ ॥

बलवन्तमन्यायवृत्तिं दुर्बलं वा न्यायवृत्तिमिति ॥ २७ ॥ बलवन्तमन्यायवृत्तिं यायात् ॥ २८ ॥ बलवन्तमन्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयो नानुगृह्णन्ति निष्पातयन्त्यमित्रं वास्य भजन्ते ॥२९॥

अन्यायवृत्ति (अन्यायपूर्वक प्रजाका पालन करने वाले) बलवान् यातव्य पर पहिले आक्रमण कियाजाय, या न्यायवृत्ति दुर्बल यातव्यपर ? ॥ २७ ॥ पहिले अन्यायवृत्ति बलवान् यातव्य राजापरही आक्रमण करे ॥ २८ ॥ क्योंकि बलवान् भी अन्यायवृत्ति यातव्यपर आक्रमण कियेजानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन उसकी सहायता नहीं करते, प्रत्युत दुर्ग आदिसे उसे निकाल देते हैं, अथवा इसके शत्रुके साथ जाकर मिल जाते हैं, इसे छोड़कर उसका आश्रय लेलेते हैं ॥ २९ ॥

दुर्लभं तु न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयः परिगृह्णन्त्यनुनिष्पतन्ति वा ॥ ३० ॥

परन्तु दुर्बलभी न्यायवृत्ति यातव्यके ऊपर हमला कियेजानेपर उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन प्राणपणसे उसकी सहायता करते हैं, और उसके दुर्ग आदिसे बाहर निकल भागनेपरभी बराबर उसके अनुयायी बने रहते हैं ॥३०॥

अवक्षेपेण हि सतामसतां प्रग्रहेण च ।
अभूतानां च हिंसानामधर्म्याणां प्रवर्तनैः ॥ ३१ ॥
उचितानां चरित्राणां धर्मिष्ठानां निवर्तनैः ।
अधर्मस्य प्रसङ्गेन धर्मस्यावग्रहेण च ॥ ३२ ॥

सज्जन व्यक्तियोंका तिरस्कार और दुर्जनोंपर अनुग्रह करनेसे, अनुचित अधर्मयुक्त हिंसाओं का आरम्भ करनेसे ॥ ३१ ॥ धर्मात्माओंके उचित आचरणोंके छोड़ने, अधर्ममें आसक्त रहने और धर्मको छोड़ देनेसे ॥ ३२ ॥

अकार्याणां च करणैः कार्याणां च प्रणाशनैः ।
अप्रदानैश्च देयानामदेयानां च साधनैः ॥ ३३ ॥
अदण्डनैश्च दण्ड्यानामदण्ड्यानां च दण्डनैः ।
अग्राह्याणामुपग्राहैर्ग्राह्याणां चानभिग्रहैः ॥ ३४ ॥

अनुचित कार्योंके करने तथा उचित कार्योंके बिगाड़नेसे, सुपात्रोंमें दान नदेने और कुपात्रोंको हरतरह सहायता करनेसे ॥ ३३ ॥ अपराधी व्यक्तियोंको दण्ड न देने और सर्वथा निरपराध व्यक्तियोंको कठोर दण्ड देनेसे, चोर आदि त्याज्य पुरुषोंको सदा पास रखने और खान्दानी आये हुए सभ्य नागरिक पुरुषोंको दूर हटाने से ॥ ३४ ॥

अनर्थ्यानां च करणैरर्थ्यानां च विघातनैः ।
अरक्षणैश्च चोरेभ्यः स्वयं च परिमोषणैः ॥ ३५ ॥
पातैः पुरुषकाराणां कर्मणां गुणदूषणैः ।
उपघातैः प्रधानानां मान्यानां चावमाननैः ॥ ३६ ॥

अनर्थकारी कार्योंके करने और सुफलोत्पादक कार्योंके न करनेसे, चोरोंसे प्रजाकी रक्षा न करने और स्वयं चोरी करनेसे ॥ ३५ ॥ पुरुषार्थी व्यक्तियोंके छोड़ने और यथास्थान उचित रीतिपर प्रयुक्त किये गये सन्धि आदि गुणोंकी निन्दा करनेसे, अध्यक्ष आदि प्रधान पुरुषोंपर दोषारोपण करके उन्हें नीच काममें लगाने और माननीय आचार्य पुरोहित आदि व्यक्तियोंका तिरस्कार करनेसे ॥ ३६ ॥

विरोधनैश्च वृद्धानां वैषम्येणानृतेन च ।
कृतस्याप्रतिकारेण स्थितस्याकरणेन च ॥ ३७ ॥
राज्ञः प्रमादालस्याभ्यां योगक्षेमवधेन च ।
प्रकृतीनां क्षयो लोभो वैराग्यं चोपजायते ॥ ३८ ॥

किसीके विषयमें किसी दूसरेसे अनुचित ऊंचनीच या झूंठ कहकर वृद्ध पुरुषोंमें परस्पर विरोध करानेसे, किसीसे किये हुए उपकारको न मानने और स्थित अर्थात् नित्य कर्मोंके न करनेसे ॥ ३७ ॥ तथा राजाके प्रमाद और आलस्यके कारण, योग (किसी वस्तुकी प्राप्ति) तथा क्षेम (प्राप्त वस्तुकी रक्षा) का नाश होनेसे अमात्य आदि प्रकृतियोंका क्षय, उनमें लोभ, और राजाके प्रति वैराग्य उत्पन्न होजाता है ॥ ३८ ॥

क्षीणाः प्रकृतयो लोभं लुब्धा यान्ति विरागताम् ।

विरक्ता यान्त्यमित्रं वा भर्तारं घ्नन्ति वा स्वयम् ॥३९॥

क्षीण हुए २ अमात्य आदि प्रकृतिजन लोभग्रस्त होजाते हैं, लोभी होकर राजाकी ओरसे विरक्त होजाते हैं, और विरक्त होनेपर शत्रुसे जा मिलते हैं। अथवा अपने आपही अपने मालिकका हनन कर डालते हैं ॥ ३९ ॥

तस्मात्प्रकृतीनां क्षयलोभविरागकाराणानि नोत्पादयेत् ॥ ४० ॥ उत्पन्नानि वा सद्यः प्रतिकुर्वीत ॥ ४१ ॥

इसलिये राजाका कर्त्तव्य है कि वह अमात्य आदि प्रकृतियोंके क्षय, लोभ तथा विरागके कारणोंको उत्पन्न न होने दे ॥ ४० ॥ यदि वे उत्पन्न हो भी जांय, तो उनका तत्काल प्रतीकार करदिया जावे ॥ ४१ ॥

क्षीणा लुब्धा विरक्ता वा प्रकृतय इति ॥ ४२ ॥ क्षीणाः पीडनोच्छेदनभयात्सद्यः संधिं युद्धं निष्पतनं वा रोचयन्ते ॥४३॥

क्षीण, लुब्ध और विरक्त इन तीन प्रकारकी प्रकृतियोंमेंसे पूर्वकी अपेक्षा उत्तरको गुरु समझना चाहिए ॥ ४२ ॥ क्षीण हुए २ अमात्य आदि प्रकृतिजन पीडा और उच्छेदके भयसे, जल्दी ही सन्धि, युद्ध या दुर्ग आदि छोड़ जाना स्वीकार कर लेते हैं ॥ ४३ ॥

लुब्धा लोभेनासंतुष्टाः परोपजापं लिप्सन्ते ॥ ४४ ॥ विरक्ताः पराभियोगमभ्युत्तिष्ठन्ते ॥ ४५ ॥

लुब्ध अमात्यादि, लोभके कारण सन्तुष्ट न होनेसे, शत्रुके द्वारा प्रयुक्त हुए २ भेदको प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् शत्रु, उनको झट बहका सकते हैं ॥ ४४ ॥ विरक्त प्रकृत्ति शत्रुके साथ मिलकर विजिगीषुपर आक्रमण करनेको तैयार होजाती हैं ॥ ४५ ॥

तासां हिरण्यधान्यक्षयः सर्वोपघाती कृच्छ्रप्रतीकारश्च ॥ ४६ ॥ युग्यपुरुषक्षयो हिरण्यधान्यसाध्यः ॥ ४७ ॥

इन प्रकृतियोंके हिरण्य और धान्यका क्षय होजाना, हाथी घोड़े आदि सबका नाशक होता है, और इसीलिये इसका प्रतीकार होना भी अत्यन्त कठिन है ॥ ४६ ॥ परन्तु हाथी घोड़े और पुरुषोंके क्षयका प्रतीकार हिरण्य तथा धान्य आदिके द्वारा सुगमतासे होसकता है ॥ ४७ ॥

लोभ ऐकदेशिको मुख्यायत्तः परार्थेषु शक्यः प्रतिहन्तुमादातुं वा ॥ ४८ ॥ विरागः प्रधानावग्रहसाध्यः ॥ ४९ ॥

लोभ, प्रकृतियोंमेंसे किसी एकको होता है, उसका लेना न लेना भी

मुख्यके अधीन है, और शत्रु या यातव्य आदिके धनोंके द्वाराही उसका प्रतीघात या प्रतीकार भी होसकता है, अथवा मुख्य व्यक्तियोंके द्वारा वह स्वयं लिया भी जासकता है ॥ ४८ ॥ परन्तु विरागका प्रतीकार प्रधान पुरुषको वशमें किये बिना नहीं होसकता ॥ ४९ ॥

निष्प्रधानाहि प्रकृतयो भोग्या भवन्त्यनुपजाप्याश्चान्येषाम-नापत्सहास्तु प्रकृतिमुख्यप्रग्रहैस्तु बहुधा भिन्ना गुप्ता भवन्त्यापत्स-हाश्च ॥ ५० ॥

प्रधान रहित प्रकृतिजन, विजिगीषुके वशमें होजाते हैं, वे दूसरेके द्वारा बहकाये भी नहीं जासकते ; परन्तु वे आपत्तियोंको नहीं सहसकते, किसी आपत्तिके आनेपर विजिगीषुको छोड़कर चले जाते हैं । प्रधान पुरुषके अधीन रहनेपर तो दूसरोंसे प्रायः अभेद्य सुरक्षित और शत्रुके द्वारा आक्रमण करदेनेपर विपत्तिको भी सहन करसकते हैं ॥ ५० ॥

समावायिकानामपि संधिविग्रहकारणान्यवेक्ष्य शक्तिशौच-युक्तौ संभूय यायात् ॥ ५१ ॥ शक्तिमान्हि पार्ष्णिग्रहणे यात्रा-साहाय्यदाने वा शक्तः ॥ ५२ ॥

साथ २ चलनेवाले अनुगामियोंके भी सन्धि और विग्रहके कारणोंको अच्छी तरह सोच विचारकर, शक्ति और पवित्रताको देखकर उनके साथही आक्रमण करे ॥ ५१ ॥ क्योंकि शक्तिशाली अनुगामी, पार्ष्णिग्राहके रोकने और युद्धके लिये यात्रामें सेना आदि देनेसे सहायता करसकता है ॥ ५२ ॥

शुचिः सिद्धौ चासिद्धौ च यथास्थितकारीति ॥ ५३ ॥ तेषां ज्यायसैकेन द्वाभ्यां समाभ्यां वा संभूय यातव्यमिति । द्वाभ्यां समाभ्यां श्रेयः ॥ ५५ ॥

और शुचि अर्थात् पवित्र (निष्कपट), कार्यसिद्धि होने या न होनेपर दोनों अवस्थाओंमें न्याय्य मार्गकाही अनुसरण करता है ॥ ५३ ॥ उनमेंसे अधिक शक्तिवाले एकके साथ, या बराबर शक्तिवाले दोके साथ मिलकर यात्रा करे ? अर्थात् इन दोनोंमेंसे किसके साथ यात्रा करना अच्छा है ? ॥ ५४ ॥ बराबर शक्तिवाले दोके साथ यात्रा करना श्रेष्ठ है ॥ ५५ ॥

ज्यायसा ह्यवगृहीतश्चरति समाभ्यामतिसंधानाधिक्ये वा ॥ ५६ ॥ तौ हि सुखौ भेदयितुम् ॥ ५७ ॥ दुष्टश्चैको द्वाभ्यां नियन्तुं भेदोपग्रहं चोपगन्तुमिति ॥ ५८ ॥

क्योंकि अधिक शक्तिवालेके साथ विजिगीषुका तिरस्कृत होकर या दबकरही चलना पड़ता है, बराबर शक्तिवालोंके साथ यह नहीं होता ॥ ५६ ॥ और उनमेंसे (बराबर शक्तिवालोंमेंसे) एकके साथ अधिक मेल करके उन दोनोंमें परस्पर भेद भी सुगमतासे डाला जासकता है ॥ ५७ ॥ यदि उन दोनोंमेंसे कोई दुष्ट हो तो दूसरेकी सहायतासे उसका दमन और दूष्य आदिके द्वारा भेद प्रयोगसे विग्रह भी किया जासकता है ॥ ५८ ॥

समेनैकेन द्वाभ्यां हीनाभ्यां वेति ॥५९॥ द्वाभ्यां हीनाभ्यां श्रेयः ॥ ६० ॥ तौ हि द्विकार्यसाधकौ वश्यौ च भवतः ॥ ६१ ॥

समशक्ति एकके साथ, या हीनशक्ति दोके साथ यात्रा करे? अर्थात् इन दोनोंमेंसे किसके साथ यात्रा करना अच्छा है? ॥ ५९ ॥ हीनशक्ति दोके साथ यात्रा करना श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥ क्योंकि वे दोनों दो कार्योंको एक साथ करसकते हैं और विजिगीषुके वशमें भी रहते हैं ॥ ६१ ॥

कार्यसिद्धौ तु ॥ ६२ ॥

अबतक, मिलकर यात्रा करनेके लिये विजिगीषुसे अपेक्षित राजाओंके विषयमें निरूपण किया गया। अब दूसरे राजाओंसे अपेक्षित विजिगीषुके सम्बन्धमें बताया जाता है। कार्य सिद्धि होनेपर यदि—॥ ६२ ॥

कृतार्थाज्ज्यायसो गूढः सापदेशमपस्रवेत् ।
अशुचेः शुचिवृत्तात्तु प्रतीक्षेताविसर्जनात् ॥ ६३ ॥

कृतार्थ हुए २ अधिकशक्ति राजाके दिलमें बेईमानी आजावे, तो कुछ बहाना करके चुपचाप वहांसे चलदेवे। उसकी ईमानदारी-निष्कपटता जान लेनेपर तो, जबतक वह न छोड़े तबतक प्रतीक्षा करे ॥ ६३ ॥

सत्रादपसरेद्यत्तः कलत्रमपनीय वा
समादपि हि लब्धार्थाद्विश्वस्तस्य भयं भवेत् ॥ ६४ ॥

दुर्ग आदि सङ्कटमय प्रदेशसे, यत्नपूर्वक अपने कलत्र आदि अन्तरङ्ग पारिवारिक जनोंको कहीं दूसरी जगह भेजकर चला जावे। क्योंकि सफल हुए२ समशक्ति राजासे भी विजिगीषुका भयही होता है ॥ ६४ ॥

ज्यायस्त्वे चापि लब्धार्थः समो विपरिकल्पते
अभ्युचितश्चाविश्वास्यो वृद्धिश्चित्तविकारिणी ॥ ६५ ॥

सार यह है कि चाहे अधिक शक्ति हो या समशक्ति, कार्य सिद्धि हो जानेपर दिल बदलही जाता है। वृद्धिको प्राप्त हुए राजाका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, यह वृद्धि चित्तको विकृत करदेनेवाली होती है ॥ ६५ ॥

विशिष्टादल्पमप्यंशं लब्ध्वा तुष्टमुखो व्रजेत्
अनंशो वा ततोऽस्याङ्के प्रहृत्य द्विगुणं हरेत् ॥ ६६ ॥

अधिकशक्ति राजासे थोड़ासा भी अंश प्राप्त करके प्रसन्नमुख होकर चला जावे, यदि वह उस समय कुछ भी न दे, तो भी प्रसन्नतापूर्वक लौट जावे और पीछेसे उसकी किसी निर्बलतापर प्रहार करके दुगना धन वसूल करलेवे ॥६६॥

कृतार्थस्तु स्वयं नेता विसृजेत्सामवायिकान्
अपि जीयेत न जयेन्मण्डलेष्टस्तथा भवेत् ॥ ६७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमेऽधिकरणे यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आदितस्त्रिशतः ॥ १०२ ॥

स्वतन्त्रतापूर्वक यात्रा करनेवाला विजिगीषु, सफल (कार्यसिद्धि) होनेपर, अपने साथी अनुगामी राजाओंको आदरपूर्वक बिदा करे, चाहे उसे स्वयं थोड़ाही हिस्सा मिले। ऐसा करनेसे वह राजमण्डलका अतिप्रिय हो जाता है ॥ ६७ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय।

१११, ११२ प्रकरण

एकसाथ प्रयाण, और परिपणित, अपरिपणित, तथा अपसृत सन्धि।

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमेवमतिसंदध्यात् ॥ १ ॥ सामन्तं संहितप्रयाणे योजयेत् ॥ २ ॥ त्वमितो याहि ॥ ३ ॥ अहमितो यास्यामि ॥ ४ ॥ समानो लाभ इति ॥ ५ ॥

विजिगीषु, द्वितीया प्रकृति अर्थात् शत्रुरूप प्रकृतिको वक्ष्यमाण प्रकारोंसे धोखा देवे ॥ १ ॥ एकसाथ भिन्न स्थानकी यात्राके लिये सामन्तको नियुक्त करे ॥ २ ॥ उससे कहे कि—तू इधरसे जा, ॥ ३ ॥ और मैं अपने यातव्यके प्रति इधरसे जाऊंगा ॥ ४ ॥ दोनों स्थानोंपर जो लाभ होगा, वह बराबर हम दोनोंकाही समझा जावेगा ॥ ५ ॥

लाभसाम्ये संधिः ॥ ६ ॥ वैषम्ये विक्रमः ॥ ७ ॥ संधिः परिपणितश्चापरिपणितश्च ॥ ८ ॥ त्वमेतं देशं याह्यहमिमं देशं यास्यामीति परिपणितदेशः ॥ ९ ॥

यदि दोनोंको समान लाभही होवे तो, विजिगीषु समशक्ति होनेके कारण उससे सन्धि करलेवे ॥ ६ ॥ यदि विजिगीषुको अधिक लाभ हो, तो उससे लड़ाई करदेवे ॥ ७ ॥ अब परिपणित (देश, काल, या कार्य किसीकी शर्त्त लगाकर कीजानेवाली) और अपरिपणित (इससे विपरीत) सन्धिका निरूपण करते हैं ॥ ८ ॥ तू उस अमुक देशको जा, और मैं इसको जाऊंगा, इस प्रकार देश विशेषका निर्देश करके जो सन्धि कीजाय वह पहिली परिपणित सन्धि है । इसको परिपणितदेशसन्धि भी कह सकते हैं ॥ ९ ॥

त्वमेतावन्तं कालं चेष्टस्वाहमेतावन्तं कालं चेष्टिष्य इति परिपणितकालः ॥ १० ॥ त्वमेतावत्कार्यं साधयाहमिदं कार्यं साधयिष्यामीति परिपणितार्थः ॥ ११ ॥

तुम इतने समय तक कार्य करते रहो, और मैं इतने समय तक करूंगा, इस प्रकार नियमित समयका निर्देश करके जो सन्धि की जाय, वह दूसरी परिपणितकालसन्धि कहाती है ॥ १० ॥ तुम इतने कार्यको पूरा करो, और मैं इतना कार्य पूरा करूंगा, इस प्रकार नियमित कार्यका निर्देश करके की हुई सन्धिको परिपणितकार्यसन्धि कहा जाता है ॥ ११ ॥

यदि वा मन्येत शैलवननदीदुर्गमटवीव्यवहितं छिन्नधान्यपुरुषवीवधासारमयवसेन्धनोदकमविज्ञातं प्रकृष्टमन्यभावदेशीयं वा सैन्यव्यायामानामलब्धभौमं वा देशं परो यास्यति विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितदेशं संधिमुपेयात् ॥ १२ ॥

जब विजिगीषु यह समझे कि—जिस देशमें पहाड़ों, जंगलों और नदियोंके किनारेपर बड़े २ किले हों, वहां तक पहुंचनेमें भयानक जंगलोंको पार करना पड़े, जहां दूसरे देशसे धान्य, पुरुष, तेल, घृत आदि सामान और अपने मित्र बलको न लाया जा सके, जहां घास लकड़ी और जल न मिले, अपरिचित हो (जिसका पूर्णतया भौगोलिक ज्ञान न हो), दूर हो, जहांकी प्रजा स्वामी भक्त न हो, तथा जहां सेनाके आने जाने या कवायद आदिके लिए अच्छी भूमि न हो, इत्यादि कारणोंसे, कठिनतासे वशमें आनेवाले देशको दूसरा सामन्त यात्रा करेगा, और सुगमतासेही वशमें आजानेवाले देशपर मैं आक्रमण करूंगा तो इस विशेषताके होनेपर परिपणितदेशसन्धि करलेवे ॥ १२ ॥

यदि वा मन्येत प्रवर्षोष्णशीतमतिव्याधिप्रायमुपक्षीणाहारोपभोगं सैन्यव्यायामानां चौपरोधिकं कार्यसाधनानामूनमतिरिक्तं वा कालं परश्चेष्टिष्यते विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितकालं संधिमुपेयात् ॥ १३ ॥

अथवा यदि विजिगीषु यह समझे कि—जब वर्षा गरमी और सरदी बहुत अधिक हो, जिन दिनों साधारणतया बीमारी होती हो, आहार आदिके लिये सामान अच्छी तरह न मिलता हो, सेनाकी कवायद आदि ठीक न होसकती हो, तथा जितने समयमें कार्य सिद्धहो उतने, या उससेभी अधिक समयमें दूसरे सामन्तका कार्य करना पड़ेगा, और मैं अपने अनुकूल समयमें ही कार्य करूंगा, तब ऐसे विशेष कारणके उपस्थित होनेपर परिपणितकालसन्धि कर लेवे ॥ १३ ॥

यदि वा मन्येत प्रत्यादेयं प्रकृतिकोपकं दीर्घकालं महाक्षयव्ययमल्पमनर्थानुबन्धमकल्यमधर्म्यं मध्यमोदासीनाविरुद्धं मित्रोपघातकं वा कार्यं परः साधयिष्यष्यति विपरीतमहमित्येतस्मिन्विशेषे परिपणितार्थं संधिमुपेयात् ॥ १४ ॥

अथवा विजिगीषु जब यह समझे, कि—शत्रुसे उच्छेद करदेने योग्य अमात्य आदि प्रकृतियोंको कुपित करनेवाले, बहुत समयमें सिद्ध होनेवाले, तथा जिन कार्योंमें अत्याधिक पुरुषोंका नाश और धनका व्यय हो, थोड़े और भविष्यके अनर्थकारी, कार्यकालमें कष्टकर, अधर्मसे युक्त, मध्यम तथा उदासीन राजाके विरोधी, तथा मित्रोंको कष्ट पहुंचाने वाले, कार्यको दूसरा सामंत करेगा, और मैं इससे विपरीत कार्यको करूंगा, तब इस विषेश कारणके होने पर परिपणितार्थ सन्धिकरे ॥ १४ ॥

एवं देशकालयोः कालकार्ययोर्देशकार्ययोर्देशकालकार्याणां चावस्थापनात्सप्तविधः परिपणितः ॥ १५ ॥ तस्मिमन्प्रागेवारभ्य प्रतिष्ठाप्य च स्वकर्माणि परकर्मसु विक्रमेत ॥ १६ ॥

इसी प्रकार देश-काल, काल-कार्य, देश-कार्य, और देशकालकार्य इनके परस्पर अवस्थापन अर्थात् मिलानेसे, ४ ये और तीन पहिले, कुल मिलाकर सात प्रकारकी परिपणित सन्धि होती हैं ॥ १५ ॥ परिपणित सन्धि कर लेने पर पहिलेही अपने कार्योंको प्रारम्भ करे और उन्हें पूर्ण उद्देश्यपर पहुंचा देवे। तदनन्तर शत्रुके दुर्ग आदि कार्योंपर आक्रमणकरे ॥ १६ ॥

व्यसनत्वरावमानालस्ययुक्तमज्ञं वा शत्रुमतिसंधातुकामो देश-कालकार्याणामनवस्थापनात्संहितौ स्व इति संधिविश्वासेन परच्छिद्रमासाद्य प्रहरेदित्यपरिपणितः ॥ १७ ॥

मद्य, द्यूत आदि व्यसनोंसे, शीघ्रतासे, तिरस्कारसे तथा आलस्यसे युक्त, अविचारशील मूर्ख शत्रुको विजय करनेकी इच्छा रखनेवाला राजा, देश, काल और कार्यकी व्यवस्था न करकेही 'हमदोनों आपसमें सन्धि करलेते हैं' ऐसा वाणीमात्रसे कहकर, सन्धिके बहाने उसपर अपना विश्वास जमाकर, तथा उसके दोषोंका पता लगाकर आक्रमण करदेवे, यह अपरिपणित सन्धि होती है ॥ १७ ॥

तत्रैतद्भवति—॥ १८ ॥
सामन्तेनैव सामन्तं विद्वानायोज्य विग्रहे ।
ततो ऽन्यस्य हरेद्भूमिं छित्वा पक्षं समन्ततः ॥ १९ ॥

सन्धि कर लेनेपर यह करना चाहिये' कि:—॥ १८ ॥ विद्वान् विचारशील विजिगीषु, एक सामन्तके साथही दूसरे सामन्तको लड़ादेवे । और फिर यातव्य मित्रके समग्र पक्षको नष्ट करके, अन्य=यातव्यकी भूमिको अपने वशमें कर लेवे ॥ १९ ॥

संधेरकृतचिकीर्षा कृतश्लेषणं कृतविदूषणमवशीर्णक्रिया च ॥ २० ॥ विक्रमस्य प्रकाशयुद्धं कूटयुद्धं तूष्णींयुद्धमिति संधिविक्रमौ ॥ २१ ॥ अपूर्वस्य संधेः सानुबन्धैः सामादिभिः पर्येषणं समहीनज्यायसां च यथाबलमवस्थापनमकृतचिकीर्षा ॥२२॥

सन्धिके चार धर्म समझे जाते हैं—अकृतचिकीर्षा, कृतश्लेषण, कृतविदूषण, और अवशीर्णक्रिया ॥ २० ॥ तथा विग्रहके प्रकाशयुद्ध, कूटयुद्ध और तूष्णींयुद्ध ये तीन धर्म हैं । इस प्रकार सन्धि और विग्रहका परस्पर विभाग है ॥ २१ ॥ किसी राजाके साथ पहिले ही पहिले, एक दूसरेके साथ मिलकर प्रयुक्त किये गये साम आदिके द्वारा सन्धिका करना, और अपनी शक्तिके अनुसार, समशक्ति, हीनशक्ति तथा अधिकशक्ति राजाओंकी, उचित साम आदि के द्वारा ही व्यवस्था करना 'अकृतचिकीर्षा' नामक सन्धि धर्म है ॥२२॥

कृतस्य प्रियहिताभ्यामुभयतः परिपालनं यथासंभाषितस्य च निबन्धनस्यानुवर्तनं रक्षणं च कथं परस्मान्न भिद्येत इति

कृतश्लेषणम् ॥ २३ ॥ परस्यापसंधेयतां दूष्यातिसंधानेन स्थापयित्वा व्यतिक्रमः कृतविदूषणम् ॥ २४ ॥

की हुई सन्धिको प्रिय तथा हित आचरणके द्वारा, दोनों पक्षोंकी ओर से बनाये रखना, और अपने पूर्व कथनके (समझौतेके) अनुसार शर्त्तोंका मानना तथा इसप्रकार उनकी रक्षाकरना, जिससे शत्रु भेद न डालसके, यह 'कृतश्लेषण' सन्धि धर्म कहाता है ॥ २३ ॥ इसने दूष्य (राज्यद्रोही) के साथ सन्धिकी है, इस बहानेसे शत्रुकी ओरसे सन्धिभङ्गको सिद्धकरके, विजिगीषु का पहिले कीहुई सन्धिको तोड़ देना, 'कृतविदूषण' सन्धि धर्म होता है ॥ २४ ॥

भृत्येन मित्रेण वा दोषापसृतेन प्रतिसंधानमवशीर्णक्रिया ॥ २५ ॥ तस्यां गतागतश्चतुर्विधः—॥ २६ ॥

किसी दोषसे विजिगीषुको छोड़कर गये हुए भृत्य या मित्रके साथ फिर सन्धिका होजाना 'अवशीर्णक्रिया' नामक सन्धि धर्म कहाता है ॥ २५ ॥ अवशीर्णक्रियामें पृथक् होकर फिर मिलजाना (गतागत) चार प्रकारका होता है ॥ २६ ॥

कारणाद्गतागतो विपरीतः कारणाद्गतोऽकारणादागतो विपरीतश्चेति ॥ २७ ॥

किसी कारण विशेषसे ही पृथक् होना और फिर किसी कारण विशेषसे ही आकर मिलजाना, बिनाही कारणके पृथक् होना और बिना कारणही आकर फिर मिलजाना, किसी कारण विशेषसे पृथक् होनेपर बिना ही कारण आकर फिर मिलजाना, बिनाही कारणके पृथक् होना तथा किसी कारण विशेषसे पुनः आकर मिलजाना ॥ २७ ॥

स्वामिनो दोषेण गतो गुणेनागतः परस्य गुणेन गतो दोषेणागत इति कारणाद्गतागतः संधेयः ॥ २८ ॥

अपने मालिकके दोष (अप्रसन्नता आदि) से पृथक् हुआ २ तथा (प्रसन्नता आदि) गुणके कारण पुनः आया हुआ; शत्रुके गुणोंके कारण मालिकको छोड़कर गया हुआ तथा शत्रुके दोषोंको जानकर पुनः मालिकके पास आया हुआ। यह गमनागमन कारणपूर्वक होता है, इसलिये पुनः सन्धि करनेके योग्य है ॥ २८ ॥

स्वदोषेण गतागतो गुणमुभयोः परित्यज्याकारणाद्गतागतश्चलबुद्धिरसंधेयः॥ २९ ॥

अपनेही दोषसे स्वामीको छोड़कर शत्रुके पास गया हुआ, तथा उसी दोषसे शत्रुको छोड़कर फिर स्वामीके पास आया हुआ, स्वामी और शत्रु दोनोंके गुणोंको न समझ सकनेके कारण, उन्हें बिना ही कारण छोड़कर जाता आता हुआ, चञ्चल बुद्धि पुनः सन्धि करने योग्य नहीं होता ॥ २९ ॥

स्वामिनो दोषेण गतः परस्मात्स्वदोषेणागत इति कारणाद्गतो ऽकारणादागतस्तर्कयितव्यः ॥ ३० ॥

स्वामीके दोषसे शत्रुके पास गया हुआ, तथा वहांसे अपने दोषसे लौटा हुआ, कारणसे गत और अकारणसे आयाहुआ समझाजावे, तथा इसकी जांच निम्नलिखित रीतिसे कीजावे ॥ ३० ॥

परप्रयुक्तः स्वेन वा दोषेणापकर्तुकामः परस्योच्छेत्तारमामित्रं मे ज्ञात्वा प्रतिघातभयादागतः परं वा मामुच्छेत्तुकामं परित्यज्यानृशंस्यादागत इति ज्ञात्वा कल्याणबुद्धिं पूजयेदन्यथाबुद्धिमपकृष्टं वासयेत् ॥ ३१ ॥

क्या यह शत्रुकी प्रेरणासे मेरा अपकार करनेके लिये आया है ? अथवा मेरे द्वारा कियेगये पहिले अपकारको याद करके स्वयंही उसका बदला निकालेने आया है ? वा शत्रुके आदमियोंका वध करनेकी इच्छा करनेवाले मेरे शत्रुको जानकर अपने बधके भयसे यहां चला आया है ? अथवा मेरे उच्छेदकी कामना करनेवाले शत्रुको छोड़कर पहिले स्नेहके कारण मेरे पास आगया है ? इत्यादि । इसको कल्याणबुद्धि जानकर सत्कारपूर्वक अपने पास रक्खे, यदि अन्यथाबुद्धि हो तो दूरही वास करावे ॥ ३१ ॥

स्वदोषेण गतः परदोषेणागत इत्यकारणाद्गतः कारणादागतस्तर्कयितव्यः ॥ ३२ ॥

अपने दोषसे मालिकको छोड़कर शत्रुके पास गया हुआ, तथा शत्रुके दोषके कारण उसे छोड़कर पुनः आया हुआ, अकारण गत और कारणसे आयाहुआ समझना चाहिये । इसकी भी निम्नरीतिसे जांच कीजावे ॥ ३२ ॥

छिद्रं मे पूरयिष्यत्युचितो ऽयमस्य वासः परत्रास्य जनो न रमते ॥ ३३ ॥ मित्रैर्मे संहितः शत्रुभिर्विगृहीतो लुब्धक्रूरादाविग्नः शत्रुसंहिताद्वा परस्मादिति ज्ञात्वा यथाबुद्ध्यवस्थापयितव्यः ॥ ३४ ॥

क्या यह अब यहां आकर मेरे दोषोंको फैलायेगा ? या इस प्रान्तका

निवास इसकेलिए अनुकूल है इसलिये आया है ? अथवा इसके स्त्रीपुत्र आदि परदेशमें रहना नहीं चाहते ? अथवा मेरे मित्रोंके साथ इसने सन्धि करली है ? या शत्रुओंने इसका कुछ अपकार किया है ? अथवा अपने शत्रुसे सन्धि कियेहुए लोभी तथा क्रूर शत्रुसे घबड़ा गया है ? इत्यादि। इन सब बातोंको जानकर कल्याणबुद्धि होनेपर उसे रक्खे, अन्यथा दूर करे ॥३३-३४॥

कृतप्रणाशः शक्तिहानिर्विद्यापण्यत्वमाशानिर्वेदो देशलौल्यमविश्वासो बलवद्विग्रहो वा परित्यागस्थानमित्याचार्याः ॥३५॥

आचार्योंका मत है कि—जो कृतज्ञ न हो, जिसकी शक्तियोंका क्षय होचुका हो, साधारण विक्रेय वस्तुओंके समान जिसके राज्यमें विद्या मूल्य लेकर बिकती हो, अर्थात् जो विद्याकी अवहेलना करनेवाला हो, देनेकी आशा दिलाकर न देनेपर दुःखदाई हो, जिसके देशमें उपद्रव रहता हो, जो भृत्योंपर विश्वास न करता हो, अथवा बलवान् राजाके साथ झगड़ा कर बैठे, ऐसे मालिक (राजा) का परित्याग करदेना चाहिये ॥ ३५ ॥

भयमवृत्तिरमर्ष इति कौटल्यः ॥ ३६ ॥ इहापकारी त्याज्यः परापकारी संधेयः ॥ ३७ ॥

परन्तु कौटल्यका मत है कि —भय, किसी कार्यको आरम्भ न करना तथा क्रोध, इन्हीं तीन कारणोंके होनेपर राजाका परित्याग करे ॥ ३६ ॥ गतागतके विषयमें इतनी बात और ध्यानमें रखनी चाहिये कि जो अपना अपकार करके जावे, और शत्रुका अपकार किये बिनाही वापस आवे उसे सर्वथा त्यागदेवे। और जो शत्रुकाही अपकार करने वाला हो, उसके साथ फिर मिलजावे ॥३७॥

उभयापकारी तर्कयितव्य इति समानम् ॥ ३८ ॥ असंधेयत्वेन त्ववश्यं संधातव्ये यतः प्रभावस्ततः प्रतिविदध्यात् ॥३९॥

जो दोनोंका अपकार करनेवाला हो उसकी अच्छी तरह परिक्षा करके कल्याण बुद्धि होनेपर रखलेवे, अन्यथा न रक्खे ॥ ३८ ॥ जो सन्धि करने योग्य नहीं है, ऐसे व्यक्तिके साथ यदि किन्हीं विशेष कारणोंसे अवश्य सन्धि करनी पड़जावे, तो शत्रुका जिन कारणोंसे उस (व्यक्ति) पर प्रभाव हो, उनका प्रतीकार करदेवे ॥ ३९ ॥

सोपकारं व्यवहितं गुप्तमायुः क्षयादिति।
वासयेदरिपक्षीयमवशीर्णक्रियाविधौ ॥ ४० ॥

शत्रुपक्षका कोई व्यक्ति अपने आश्रित रहकर, किसी दोषसे फिर शत्रु के पास जाकर पुनः वापस आये तो इस प्रकारके गतागत के विषयमें भी कुछ

सन्धिके नियम बतायेजाते हैं:—अवशीर्ण क्रिया विधिमें (टूटी हुई सान्धिको पुनः स्थापित करनेमें) अपना उपकार करनेवाले शत्रु पक्षके गतागत व्यक्तिको, एक विश्वस्त भृत्यकी देखरेखमें, छिपे तौर पर आयुपर्यन्त आश्रय दिया जावे ॥४०॥

विक्रामयेद्भर्तरि वा सिद्धं वा दण्डचारिणम् ।
कुर्यादमित्राटवीषु प्रत्यन्ते वान्यतः क्षिपेत् ॥ ४१ ॥

यदि वह निष्कपट सिद्धहो तो स्वामीकी परिचर्यामें लगा लिया जावे, वहांभी निष्कपट सिद्ध होनेपर सेना विभागमें नियुक्त करके शत्रु अथवा आटविकोंके मुकाबलेमें भेज दियाजावे । अथवा अन्यत्र दूरदेशमें किसी कामपर नियुक्त कर दियाजावे ॥ ४१ ॥

पण्यं कुर्यादसिद्धं वा सिद्धं वा तेन संवृतम् ।
तस्यैव दोषेणादूष्य परसंधेयकारणात् ॥ ४२ ॥

यदि जिस कार्यपर वह लगाया गया है, उसके करनेमें असमर्थ हो, अर्थात् हृदयमें कपट होनेके कारण ठीक न करता हो, तो उसे माल बेचना कहकर शत्रुके देशमें भेज दियाजावे, और इस बहानेसे शत्रुके साथ सन्धि करनेका दोषारोपणकर, उसीके दोषसे उसे मार दियाजावे ॥ ४२ ॥

अथ वा शमयेदेनमायत्यर्थमुपांशुना ।
आयत्यां च वधप्रेप्सुं दृष्ट्वा हन्याद्गतागतम् ॥ ४३ ॥

अथवा भविष्यमें कुछ उपद्रव न हो, ऐसा विचारकर, उसका उपांशु-वध करा दियाजावे । भविष्यमें वध करनेकी इच्छा रखनेवाले गतागत व्यक्ति को तो देखतेही मरवा डाले ॥ ४३ ॥

अरितो ऽभ्यागतो दोषः शत्रुसंवासकारितः ।
सर्पसंवासधर्मित्वान्नित्योद्वेगेन दूषितः ॥ ४४ ॥

शत्रुके पाससे आया हुआ पुरुष, शत्रुके साथ रहनेके कारण अवश्य ही दोषका हेतु होता है, क्योंकि शत्रुका सहवास सर्पके सहवासके समान है; इस लिये सदा ही भयका हेतु होनेसे इस प्रकारका व्यक्ति निन्दित कहा गया है ॥ ४४ ॥

जायते प्लक्षबीजाशात्कपोतादिव शाल्मलेः ।
उद्वेगजननो नित्यं पश्चादपि भयावहः ॥ ४५ ॥

पिलखनके बीज खानेवाला कबूतर जैसे सिंभलके उद्वेगका ही कारण होता है इसी प्रकार शत्रुपक्षका व्यक्तिभी विजिगीषुके लिये भयङ्कर और पीछेसे उद्वेग जनकही होता है ॥ ४५ ॥

प्रकाशयुद्धं निर्दिष्टो देशे काले च विक्रमः ।
विभीषणमवस्कन्दः प्रमादव्यसनार्दनम् ॥ ४६ ॥

अब युद्धधर्मोंके विषयमें दो श्लोकोंसे बतलाते हैं—अमुकदेश और अमुक समयमें हमारा तुम्हारा युद्ध होगा, इस प्रकार कहकर जो युद्ध किया जाता है, उसे 'प्रकाशयुद्ध' कहते हैं । थोड़ीसी सेनाको बहुत दिखलाकर भय उत्पन्न करदेना, किले आदिका जलाना और लूटना, प्रमाद तथा व्यसनके समय शत्रुको पीड़ा देना ॥ ४६ ॥

एकत्र त्यागघातौ च कूटयुद्धस्य मातृका ।
योगगूढोपजापार्थं तूष्णींयुद्धस्य लक्षणम् ॥ ४७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संहितप्रयाणिकं
परिपणितापरिपणितापसृताश्च संधयः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥
आदितश्चतुःशतः ॥ १०४ ॥

एक जगह युद्ध छोड़कर दूसरी जगह धावा करदेना, ये सब कूटयुद्धके लक्षण हैं । विष औषधि आदिके प्रयोग तथा गूढ पुरुषोंके द्वारा उपजाप (बहकाना, धोखादेना) आदिके प्रयोगोंसे शत्रुका नाश करना 'तूष्णींयुद्ध' का लक्षण है ॥ ४७ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

११३ प्रकरण

द्वैधीभाव सम्बन्धी सन्धि और विक्रम ।

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमेवमुपगृह्णीयात् ॥ १ ॥ सामन्तं सामन्तेन संभूय यायात् ॥ २ ॥ यदि वा मन्येत-पार्ष्णिं मे न ग्रहीष्यति ॥ ३ ॥

विजिगीषु अपने समीप देशमें स्थित शत्रुको, अपनी सहायताके लिये निम्न लिखित उपायोंसे तैयार करे ॥ १ ॥ पृष्ठ तथा पार्श्व देशस्थित सामन्तके साथ मिलकरही यातव्य सामन्तपर आक्रमण करे ॥ २ ॥ अथवा यदि समझे कि —अपने साथ मिलाया हुआ सामन्त पार्ष्णिग्राह नहीं बनेगा, अर्थात् यातव्य पर आक्रमण करनेके लिये मेरे बाहरचले जानेपर, वह पीछेसे मेरेदेशपर आक्रमण नहीं करेगा ॥ ३ ॥

पार्ष्णिग्राहं वारयिष्यति ॥ ४ ॥ यातव्यं नाभिसरिष्यति ॥ ५ ॥ बलवद्द्वैगुण्यं मे भविष्यति ॥ ६ ॥ वीवधासारौ मे प्रवर्तयिष्यति ॥ ७ ॥ परस्य वारयिष्यति ॥ ८ ॥

दूसरे पार्ष्णिग्राह (पीछेसे आक्रमण करनेवाले) को रोकेगा ॥ ४ ॥ मेरे यातव्यका पक्ष ग्रहण न करेगा ॥ ५ ॥ मेरा बल दुगना होजावेगा ॥ ७ ॥ अपने देशमें उत्पन्न हुए २ धान्य, तथा मेरेमित्रकी सेनाको मेरी सहायताके लिये आनेदेगा, उसे बीचमें न रोकेगा ॥ ७ ॥ और शत्रुके लिये इन दोनों चीजोंको रोकेगा, अर्थात् धान्य और मित्र सेना को उस तक न पहुंचने देगा ॥ ८ ॥

बह्वाबाधे मे पथि कण्टकान्मर्दयिष्यति ॥ ९ ॥ दुर्गाटव्यपसारेषु दण्डेन चरिष्यति ॥ १० ॥ यातव्यमविषह्ये दोषे संधौ वा स्थापयिष्यति ॥ ११ ॥

मेरे यात्रा करनेपर, मार्गमें आई हुई विघ्न बाधाओंको नष्ट करेगा ॥९॥ दुर्ग तथा अटवियोंमें विजिगीषु सेनाके जानेपर, अपनी सेनासे बराबर उसकी सहायता करेगा ॥ १० ॥ कोई असह्य अनर्थ या आपत्ति आपड़नेपर, यातव्यके साथ सन्धिकी स्थापना करदेगा ॥ ११ ॥

लब्धलाभांशो वा शत्रूनन्यान्मे विश्वासयिष्यतीति ॥ १२ ॥ द्वैधीभूतो वा कोशेन दण्डं दण्डेन कोशं सामन्तानामन्यतमाल्लिप्सेत ॥ १३ ॥

और अपने प्रतिज्ञात धनको मुझसे प्राप्तकर, मेरे अन्य शत्रुओंको भी मेरा विश्वास उत्पन्न करावेगा, इत्यादि । सामन्तको साथ मिलाकर यात्रा करने पर, ये पार्ष्णिशुद्धि आदि १० प्रयोजन सिद्ध होते हैं । यह समझकर विजिगीषु सामन्तको साथ मिलावे ॥१२॥ यदि विजिगीषु सामन्तके मिलानेमें विश्वास न करे तो द्वैधीभावका अवलम्बनकर पृष्ठ तथा पार्श्ववर्त्ती सामन्तोंमेंसे किसी एकसे, कोशदेकर सेना (यदि सेना कमहोतो), और सेनादेकर कोश (यदि कोश कम होतो), लेनेकी इच्छाकरे ॥ १३ ॥

तेषां ज्यायसोऽधिकेनांशेन समात्समेन हीनाद्धीनेनेति समसंधिः ॥ १४ ॥ विपर्यये विषमसंधिः ॥ १५ ॥

अधिक शक्ति सामन्तको अधिक हिस्सादेकर सन्धिकरना, समशक्ति सामन्तको समभाग और हीनशक्ति सामन्तको थोड़ा हिस्सा देकर सन्धिकरना

ये ३ प्रकारकी समसन्धि कहाती हैं ॥ १४ ॥ इससे विपरीत विषम सन्धि होती है । अधिक शक्तिको सम तथा न्यून हिस्सा देकर दो प्रकार की, इसी प्रकार सम शक्तिको न्यून तथा अधिक, और हीन शक्तिको सम तथा अधिक हिस्सा देकर, दो २ प्रकारकी, कुल छः प्रकारकी विषम सन्धि होती है ॥ १५ ॥

तयोर्विशेषलाभादतिसंधिः ॥१६॥ व्यसनिनमपायस्थाने सक्त-मनार्थिनं वा ज्यायांसं हीनो बलसमेन लाभेन पणेत ॥ १७ ॥

इन दोनोंमें जब प्रतिज्ञात धनसे अधिक धनका लाभ हो जावे, तो नौओं (=३ समसन्धि+६ विषमसन्धि) सन्धियां अतिसन्धि कहलाती हैं, अर्थात् इस अतिसन्धि भेदसे फिर वे १८ प्रकारकी हो जाती हैं ॥ १६ ॥ व्यसनी, शरीरादिके नाश करनेवाले कार्योंमें आसक्त, अनर्थसे युक्त अधिक शक्ति सामन्तके साथ, हीनशक्ति विजिगीषु सेनाके समान हिस्सा लेकर ही सन्धि करे ॥ १७ ॥

पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ १८ ॥ अन्यथा संद-ध्यात् ॥ १९ ॥

इस प्रकार सन्धि करनेपर यदि अधिक शक्ति सामन्त, अपना तिर-स्कार करनेवाले विजिगीषुका अपकार करनेमें समर्थ हो, तो उसपर आक्रमण कर देवे ॥ १८ ॥ अन्यथा चुपचाप सन्धि कर लेवे ॥ १९ ॥

एवंभूतो हीनशक्तिप्रतापपूरणार्थं संभाव्यार्थाभिसारी मूलपार्ष्णित्राणार्थं वा ज्यायांसं हीनो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ २० ॥

इस प्रकार हीनकी अधिकशक्तिके साथ विषमसन्धि बताकर अब समसन्धि कहते हैं—इस तरह व्यसन आदिसे दबा हुआ हीन, अपने नष्ट हुए २ प्रताप और शक्तिको पूरा करनेके लिए, तथा अपने सम्भावित (निश्चित-प्राय) अर्थके लेनेको, मूल (दुर्ग आदि) और पार्ष्णिकी रक्षा करनेके लिए सेनाकी अपेक्षा अधिक हिस्सा देकर, अधिकशक्ति समन्तके साथ सन्धि कर लेवे ॥ २० ॥

पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयादन्यथा विक्रमेत ॥ २१ ॥

सन्धि करलेनेपर यदि हीन ईमानदारीसे रहे, तो अधिकशक्ति सामन्त सदा उसपर अनुग्रह बनाए रक्खे, अन्यथा उसपर आक्रमण करदेवे ॥ २१ ॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमुपास्थितानर्थं वा ज्यायांसं हीनो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो वा ह्रस्वमध्वानं यातुकामः शत्रुमयुद्धमेकान्तसिद्धिं वा लाभमादातुकामो बलसमाद्धीनेन लाभेन पणेत पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ २२ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ २३ ॥

मृगया आदि व्यसनोंमें आसक्त, कुपित लोभी, तथा भीत (डरपोक) अमात्य आदि प्रकृतिवाले, अनर्थयुक्त अधिकशक्ति सामन्तके साथ, हीनशक्ति राजा, अपने बढ़िया मजबूत किले तथा सहायक मित्रोंके कारण गर्वित हुआ २, अथवा थोड़ीही दूरपर किसी शत्रुकी ओर आक्रमण करनेवाला, बिनाही युद्धके अवश्य सिद्ध होनेवाले लाभको ग्रहण करनेकी कामना करता हुआ, सेनाकी अपेक्षा थोड़ा हिस्सा देकरही सन्धि करलेवे। यदि अधिकशक्ति सामन्त, इस प्रकार की सन्धि करलेनेपर, अपना तिरस्कार करनेवाले हीनका अपकार करनेमें समर्थ हो, तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ २२ ॥ अन्यथा चुपचाप उससे सन्धि करलेवे ॥ २३ ॥

अरन्ध्रव्यसनो वा ज्यायान्दुरारब्धकर्माणं भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामो दूष्यदण्डं प्रवासयितुकामो दूष्यदण्डमावाहयितुकामो वा पीडनीयमुच्छेदनीयं वा हीनेन व्यथयितुकामः संधिप्रधानो वा कल्याणबुद्धिर्हीनं लाभं प्रतिगृह्णीयात् ॥ २४ ॥

प्रकृतिकोप तथा मृगया आदि व्यसनोंसे पृथक् हुआ २, अपने विरुद्ध कार्य करनेवाले शत्रुको फिर अधिक क्षय (पुरुषोंका नाश) और व्यय (धनका नाश) के साथ युक्त करनेकी कामना रखनेवाला, तथा अपनी दूषित सेनाको निकालने और शत्रुकी दूषित सेनाको अपने यहां बुलानेकी इच्छा करनेवाला, अथवा पीडनीय और उच्छेदनीय शत्रुका हीनके द्वारा पीडित और उच्छेदन करानेकी इच्छा रखनेवाला, अथवा सन्धि गुणको ही प्रधान समझनेवाला, कल्याणबुद्धि अधिकशक्ति सामन्त, होनेके द्वारा थोड़े दिय हुए लाभको भी स्वीकार करलेवे ॥ २४ ॥

कल्याणबुद्धिना संभूयार्थं लिप्सेत ॥ २५ ॥ अन्यथा विक्रमेत ॥ २६ ॥ एवं समः सममतिसंदध्यादनुगृह्णीयाद्वा ॥२७॥

कल्याणबुद्धि हीनके साथ मिलकर, बराबर उसकी सहायता करे ॥ २५ ॥ यदि हीन दुष्टबुद्धि हो, तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ २६ ॥ इसी प्रकार समशक्ति सामन्त, दूसरे समशक्ति सामन्तके साथ, दुष्टबुद्धि और कल्याणबुद्धि देखकर, विग्रह तथा अनुग्रह करे ॥ २७ ॥

परानीकस्य प्रत्यनीकं मित्राटवीनां वा शत्रोर्विभूमीनां देशिकं मूलपार्ष्णित्राणार्थं वा समः समबलेन लाभेन पणेत ॥ २८ ॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयात् ॥२९॥ अन्यथा विक्रमेत ॥३०॥

शत्रुकी सेना, तथा शत्रुके मित्र और आटविकोंके साथ, युद्ध करनेमें समर्थ, शत्रुके पर्वतप्रान्त आदिके नक्शोंको ठीक २ जाननेवाले (विभूमीनां देशिकम्), अथवा अपने मूल और पार्ष्णिकी रक्षाके लिये समशक्ति सामन्तकी सेनाके बराबरही लाभ देकर सन्धि करे ॥ २८ ॥ सन्धि करनेपर यदि समशक्ति सामन्त कल्याणबुद्धि हो तो उसपर अनुग्रह बनाये रक्खे ॥ २९ ॥ अन्यथा दुष्टबुद्धि होनेपर आक्रमण करदेवे ॥ ३० ॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमनेकविरुद्धमन्यतो लभमानो वा समः समबलाद्धीनेन लाभेन पणेत ॥ ३१ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ३२ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ३३ ॥

मृगया आदि व्यसनोंसे तथा प्रकृति कोपसे युक्त, और अनेक अन्य सामन्तोंके विरोधी, अथवा सहायताके बिना अन्य किसी उपायसे कार्यसिद्धि होनेपर, समशक्ति सामन्तके साथ सेनाकी अपेक्षा लाभका थोड़ाही हिस्सा देकर सन्धि करे ॥ ३१ ॥ सन्धि करनेपर यदि उसके अपकार करनेमें समर्थ हो तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ ३२ ॥ अन्यथा चुपचाप सन्धि करलेवे ॥ ३३ ॥

एवंभूतो वा समः सामन्तायत्तकार्यः कर्तव्यबलो वा बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ ३४ ॥ पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयात् ॥ ३५ ॥ अन्यथा विक्रमेत ॥ ३६ ॥

मृगया आदि व्यसन और प्रकृतिकोपसे युक्त, दूसरे सामन्तकी सहायता होनेपरही अपने कार्योंको सफल देखनेवाला, अथवा नई सेना भर्ती करनेवाला समशक्ति सामन्त दूसरे समशक्ति सामन्तके साथ सेनाकी अपेक्षा अधिक लाभ देकर सन्धि करे ॥ ३४ ॥ सन्धि होनेपर, यदि वह कल्याणबुद्धि हो तो सदा उसपर अनुग्रह दृष्टि रक्खे ॥ ३५ ॥ यदि दुष्टबुद्धि हो तो आक्रमण करदेवे ॥ ३६ ॥

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमभिहन्तुकामः स्वारब्धमेकान्तसिद्धिं वास्य कर्मोपहन्तुकामो मूले यात्रायां वा प्रहर्तुकामो यातव्याद्भूयो लभमानो वा ज्यायांसं हीनं समं वा भूयो याचेत ॥ ३७ ॥

मृगया आदि व्यसन तथा प्रकृतिकोपसे युक्त ज्यायान्, हीन अथवा समको नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला, या उसके उचित देशकालके अनुसार आरम्भ किये गये अतएव अवश्य सफल हो जानेवाले कार्यको नष्ट करनेकी कामनावाला, अथवा विजिगीषुके यात्रा करनेपर पीछेसे उसके किले आदिपर धावा करनेकी इच्छा रखनेवाला, अथवा विजिगीषुकी अपेक्षा यातव्यसे अधिक धन पाजानेवाला हीन, ज्यायान् या सम, उपर्युक्त ज्यायान् हीन अथवा समसे और अधिक लाभकी याचना करे ॥ ३७ ॥

भूयो वा याचितः स्वबलरक्षार्थं दुर्धर्षमन्यदुर्गमासारमटवीं वा परदण्डेन मर्दितुकामः प्रकृष्टेऽध्वनि काले वा परदण्डं क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः परदण्डेन वा विवृद्धस्तमेवोच्छेत्तुकामः परदण्डमादातुकामो वा भूयो दद्यात् ॥ ३८ ॥

इस प्रकार अधिक की याचना किये जानेपर, अपनी सेनाकी रक्षाके लिये, अथवा दूसरेके दुर्गम दुर्ग, मित्रबल तथा आटविकोंको (अधिक धन मांगनेवाले) दूसरे सामन्तकी सेनाके द्वारा ही कुचलनेकी इच्छा करनेवाला, दूर देशमें अधिक समय तक दूसरे सामन्तकी सेनाको कामपर लगाकर क्षय और व्ययसे युक्त करनेकी कामनावाला, अथवा यातव्यकी सेनाके द्वारा (उसके जीत लेनेपर) अपनी सेनाको बढ़ाकर फिर उसीका (अधिक मांगनेवालेका) उच्छेदन करनेकी कामनावला, अथवा यातव्यकी सेनाको अधिक याचक सामन्तकी सहायतासे लेनेकी इच्छा वाला, अवश्यही उतना अधिक लाभ दे देवे जितना कि दूसरे सामन्तन मांगी है ॥ ३८ ॥

ज्यायान् वा हीनं यातव्यापदेशेन हस्ते कर्तुकामः परमुच्छिद्य वा तमेवोच्छेत्तुकामस्त्यागं वा कृत्वा प्रत्यादातुकामो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत ॥ ३९ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ४० ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४१ ॥

ज्यायान्, हीनके साथ, उसे यातव्यके बहाने अपने वशमें करनेकी इच्छावाला, अथवा शत्रुका उच्छेद करके फिर उसीका उच्छेद करनेकी कामनावाला, अथवा देकर फिर लौटा लेनेकी इच्छा रखनेवाला अवश्यही सेनाकी अपेक्षा अधिक लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ ३९ ॥ सन्धि होनेपर यदि उसका अपकार करनेमें समर्थ हो, तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ ४० ॥ अन्यथा चुपचाप सन्धि बनाये रक्खे ॥ ४१ ॥

यातव्यसंहितो वा तिष्ठेत् ॥ ४२ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं वास्मै दद्यात् ॥ ४३ ॥ जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रो वा ज्यायान्हीनं बलसमेन लाभेन पणेत ॥ ४४ ॥ पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत ॥ ४५ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४६ ॥

अथवा यातव्यके साथ सन्धि करके अपने स्थानपर ही रहे ॥ ४२ ॥ अथवा अपनी दूष्य शत्रुभूत तथा आटाविक सेनाको सन्धि करनेवाले अधिकशक्ति सामन्तके लिये देदेवे ॥ ४३ ॥ मृगया आदि व्यसनोंमें आसक्त तथा प्रकृतिकोप आदिसे युक्त, अधिकशक्ति सामन्त होनेके साथ सेनाके बराबर लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ ४४ ॥ सन्धि करनेपर यदि उसका अपकार करनेमें समर्थ हो तो उसपर आक्रमण करदेवे ॥ ४५ ॥ अन्यथा सन्धि बनाये रक्खे ॥ ४६ ॥

एवंभूतं वा हीनं ज्यायान्बलसमाद्धीनेन लाभेन पणेत ॥४७॥ पणितस्तस्यापकरणसमर्थो विक्रमेत ॥ ४८ ॥ अन्यथा संदध्यात् ॥ ४९ ॥

व्यसनी और प्रकृतिकोप आदिसे युक्त हीनके साथ, अधिकशक्ति सामन्त, बलकी अपेक्षा न्यून लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ ४७ ॥ यदि अपकार करनेमें समर्थ हो तो आक्रमण करदेवे ॥ ४८ ॥ अन्यथा सन्धि बनाये रक्खे ॥ ४९ ॥

आदौ बुद्ध्येत पणितः पणमानश्च कारणम् ।
ततो वितर्कोभवतो यतः श्रेयस्ततो व्रजेत् ॥ ५० ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संहितप्रयाणिकं द्वैधीभावकाः संधिविक्रमाः सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितः पञ्चशतः ॥ १०५ ॥

इसलिये पणित (सन्धि या शर्त्त किया हुआ) और पणमान (सन्धि या शर्त्त करनेवाला) दोनों, उपर्युक्त सन्धियोंके कारणोंको ठीक २ समझें। फिर सन्धि करनेपर लाभ या हानिको तथा विग्रह करनेपर लाभ या हानिको अच्छी तरह सोच समझकर, जिसमें अपना कल्याण समझे, उसी मार्गका आश्रय लेवे ॥ ५० ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त ।

आठवां अध्याय।

११४, ११५ प्रकरण।

यातव्य सम्बन्धी व्यवहार, तथा अनुग्राह्य मित्रोंके विशेष।

यातव्योऽभियास्यमानः संधिकारणमादातुकामो विहन्तुकामो वा सामवायिकानामन्यतमं लाभद्वैगुण्येन पणेत ॥ १ ॥

यातव्य विजिगीषु (जिसपर कोई विजिगीषु आक्रमण करे वह यातव्य कहाता है, यातव्य ही जब पहिले विजिगीषुपर आक्रमण करने लगे तो वह भी विजिगीषु ही है, इस प्रकारका यातव्य विजिगीषु), यान करनेके पहिले ही सन्धिके कारणको स्वीकार करने या अस्वीकार करनेकी इच्छावाला, अन्य सामवायिक (सहायक=साथी) सामन्तोंमेंसे किसी एकके साथ पूर्व निश्चित लाभसे दुगना लाभ देकर सन्धि करलेवे ॥ १ ॥

प्रपणितः क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवायपरोपकारशरीराबाधांश्चास्य वर्णयेत् ॥ २ ॥ प्रतिपन्नमर्थेन योजयेत् ॥ ३ ॥ वैरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत् ॥ ४ ॥

सन्धि करनेवाला; पुरुषोंका नाश, धनका व्यय, दूरदेशका आना जाना, मार्गके विघ्न, शत्रुके पक्षमें प्रवेशकर उसका उपकार करना, और शरीरकी पीडा (अर्थात् कदाचित् प्राणान्ततक होजाना), इन छः दोषोंको साथी सामंतके सामने अच्छी तरह बतला देवे ॥ २ ॥ यदि वह इन सबको स्वीकार करलेवे, तो उसे प्रतिज्ञात धन देदेवे ॥ ३ ॥ यदि सन्धि कारणको ही स्वीकार न करे, तो दूसरे सामन्तोंके साथ इसका विरोध कराके सन्धि तोड़ देवे ॥ ४ ॥

दुरारब्धकर्माणं भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः स्वारब्धां वा यात्रासिद्धिं विघातयितुकामो मूले यात्रायां वा प्रतिहन्तुकामो यातव्यसंहितः पुनर्याचितुकामः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रस्तस्मिन्नविश्वस्तो वा तदात्वे लाभमल्पमिच्छेत् ॥ ५ ॥

अनुचित देश कालमें युद्धयात्राका आरम्भ करनेवाले सामन्तको फिर क्षय और व्ययसे युक्त करनेकी इच्छा करनेवाला, अथवा उचित देश कालमें यात्रा करनेपर अवश्य होनेवाली सिद्धिका विघात करनेकी इच्छा वाला, अथवा यात्रा करनेपर दुर्ग आदिके ऊपर आक्रमण करनेकी इच्छा वाला, यातव्यसे

उस समय थोड़ाही लेकर सन्धि करके फिर अधिक मांगनेकी कामना वाला, अथवा तत्काल अचानकही उत्पन्न अर्थ कष्टसे युक्त, अथवा यातव्यमें अविश्वास करनेवाला उस समय थोड़ाही लाभ लेकर सन्धि कर लेवे। और फिर भविष्यमें अधिक धन लेनेकी इच्छा करे ॥ ५ ॥

आयत्यां प्रभूतं मित्रोपकारममित्रोपघातमर्थानुबन्धमवेक्षमाणः पूर्वोपकारकं कारयितुकामो भूयस्तदात्वे महान्तं लाभमुत्सृज्यायत्यामल्पमिच्छेत् ॥ ६ ॥

किसी विशेष फलसे युक्त, मित्रके लाभ और शत्रुकी हानिको देखता हुआ, तथा पहिले उपकार करनेवालेको फिर करानेकी इच्छावाला, उस समय अधिक लाभको छोड़कर भविष्यमें भी थोड़े लाभकी कामना करे ॥ ६ ॥

दूष्यामित्राभ्यां मूलहरेण वा ज्यायसा विगृहीतं त्रातुकामस्तथाविधमुपकारं कारयितुकामः संबन्धावेक्षी वा तदात्वे चायत्यां च लाभं न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ७ ॥

दूष्य तथा शत्रुसे अथवा किले आदि तोड़नेवाले अधिकशक्ति सामन्तसे विगृहीत हुए २ साथीकी रक्षा चाहनेवाला, तथा इस प्रकारके उपकारोंको स्वयं या किसी अन्यके द्वारा करानेकी इच्छावाला, तथा यातव्यके साथ सम्बन्ध चाहनेवाला, उस समय और भविष्यमें भी अपने साथीसे लाभ न लेवे ॥ ७ ॥

कृतसंधिरतिक्रमितुकामः परस्य प्रकृतिकर्शनं मित्रामित्रसंधिविश्लेषणं वा कर्तुकामः पराभियोगाच्छङ्कमानो लाभमप्राप्तमधिकं वा याचेत ॥ ८ ॥

पहिली की हुई सन्धिको तोड़नेकी इच्छावाला, शत्रुके प्रकृतिजनोंको नष्ट करने और मित्र तथा शत्रुकी सन्धिको तोड़नेकी कामना करनेवाला, शत्रुके आक्रमणकी आशङ्का करनेवाला, अप्राप्त (न वसूल हुए २) तथा पूर्व निश्चित लाभसे अधिककी याचना करे ॥ ८ ॥

तमितरस्तदात्वे चायत्यां च क्रममपेक्षेत ॥ ९ ॥ तेन पूर्वे व्याख्याताः ॥ १० ॥

दूसरा सामन्त (जिससे लाभकी याचना की गई है), इस प्रकारकी मांग की बावत, उस समय तथा भविष्यमें होनेवाले लाभ हानिका अच्छी तरह विचार करे ॥ ९ ॥ इसी प्रकार पहिले तीन पक्षोंमें भी हानि लाभका विचार समझना चाहिए ॥ १० ॥

अरिविजिगीष्वोस्तु स्वं स्वं मित्रमनुगृह्णतोः शक्यकल्यभव्यारम्भिस्थिरकर्मानुरक्तप्रकृतिभ्यो विशेषः ॥ ११ ॥ शक्यारम्भी विषह्यं कर्मारभेत ॥ १२ ॥

शत्रु और विजिगीषु, जो कि अपने २ मित्रोंपर बड़ा अनुग्रह रखते हों, वे शक्यारम्भी , कल्यारम्भी, भव्यारम्भी, स्थिरकर्मा और अनुरक्त-प्रकृति, इन मित्रोंपर ही विशेष अनुग्रह करें ॥ ११ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार कर सकने योग्य कार्यको ही आरम्भ करनेवाला शक्यारम्भी कहाता है ॥ १२ ॥

कल्यारम्भी निर्दोषम् ॥ १३ ॥ भव्यारम्भी कल्याणोदयम् ॥ १४ ॥ स्थिरकर्मा नासमाप्य कर्मोपरमते ॥ १५ ॥ अनुरक्तप्रकृतिः सुसहायत्वादल्पेनाप्यनुग्रहेण कार्यं साधयति ॥ १६ ॥

जो दोषरहित कार्य को आरम्भ करे वह कल्यारम्भी, ॥ १३ ॥ भाविष्य में कल्याण रूप फल देने वाले कार्य को जो करे, वह भव्यारम्भी, ॥ १४ ॥ आरम्भ किये हुए कार्य को जो विना समाप्त किये न छोड़े वह स्थिरकर्मा, ॥१५॥ अनायास ही सहायक हो जानेके कारण, थोड़े सैन्य आदिसे भी कार्य को सिद्ध कर देने वाले अनुरक्तप्रकृति कहाते हैं ॥ १६ ॥

त एते कृतार्थाः सुखेन प्रभूतं चोपकुर्वन्ति ॥ १७ ॥ अतः प्रतिलोमे नानुग्राह्यः ॥ १८ ॥

यदि इन शक्यारम्भी आदि पांच प्रकारके मित्रों को सहायता दी जाय, तो कृतार्थ हुए २ ये बड़ी सुगमतासे बहुत अधिक सहायता देते हैं ॥ १७ ॥ जो इनसे विपरीत हों, अर्थात् अशक्यारम्भी आदि, उन पर कभी अनुग्रह न करे ॥ १८ ॥

तयोरेकपुरुषानुग्रहे यो मित्रं मित्रतरं वानुगृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ १९ ॥ मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति ॥ २० ॥

यदि शत्रु और विजिगीषु दोनों एकही पुरुष पर अनुग्रह करना चाहें, तो जो मित्र अथवा अतिशय मित्र हो, उसही पर अनुग्रह करना अच्छा होता है वह अत्यन्त लाभ पहुंचाता है । ॥ १९ ॥ क्योंकि मित्रसे सदा अपनी उन्नति ही होती है, जब उस पर अनुग्रह किया जाय, तो कहना की क्या ? ॥ २० ॥

क्षयव्ययप्रवासपरोपकारानितरः ॥ २१ ॥ कृतार्थश्च शत्रुवैगुण्यमेति ॥ २२ ॥

जो मित्रके बजाय शत्रु पर अनुग्रह करता है, उसके पुरुषों का क्षय और धन का व्यय होता है, तथा दूर दूर देशमें जाना और शत्रु का उपकार करना पड़ता है । ॥ २१ ॥ और मतलब निकल आने पर शत्रु फिर बिगड़ भी बैठता है । ॥ २२ ॥

मध्यमं त्वनुगृह्णतोर्यो मध्यमं मित्रं मित्रतरं वानुगृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति क्षयव्ययप्रवास-परोपकारानितरः ॥ २४ ॥

यदि मध्यवर्त्ती राजा पर शत्रु और विजिगीषु दोनों अनुग्रह करना चाहते हैं तो भी मित्र अथवा अतिशय मित्र परही अनुग्रह करना अच्छा तथा लाभदायक होता है । ॥ २३ ॥ क्योंकि मित्रसे सदा अपनी वृद्धि होती है। और शत्रु पर अनुग्रह करने वाले को सदा क्षय, व्यय, प्रवास तथा शत्रु का उपकार करना पड़ता है ॥ २४ ॥

मध्यमश्चेदनुगृहीतो विगुणः स्यादमित्रोऽतिसंधत्ते ॥ २५ ॥ कृतप्रयासं हि मध्यमामित्रमपसृतमेकार्थोपगतं प्राप्नोति ॥ २६ ॥ तेनोदासीनानुग्रहो व्याख्यातः ॥ २७ ॥

अनुगृहीत हुआ २ मध्यम यदि बिगड़ जावे, तो अपने शत्रु को ही विशेष लाभ होता है । ॥ २५ ॥ क्योंकि पहिले मित्र बना हुआ, और अब बिगड़ जानेसे शत्रु हुआ २ मध्यम समान कार्य करने वाले मित्र को (विजिगीषु के शत्रुरूप) को प्राप्त कर लेता है । ॥ २६ ॥ इसी प्रकार उदासीन पर अनुग्रह करने का विवरण भी समझ लेना चाहिये ॥ २७ ॥

मध्यमोदासीनयोर्बलांशदाने यः शूरं कृतास्त्रं दुःखसहमनुरक्तं वा दण्डं ददाति सोऽतिसंधीयते ॥ २८ ॥ विपरीतोऽतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

मध्यम और उदासीन राजाओं को सेना की सहायता देने के विषय में, जो शूर, अस्त्र आदि चलाने में सुचतुर, दुःख सहने वाले, अनुरक्त सैन्य को दे डालता है, वह ठगा जाता है, अर्थात् धोखा खाता है । ॥ २८ ॥ और जो अपनी इस प्रकार की सेना को नहीं देता, वह लाभ में रहता है ॥ २९ ॥

यत्र तु दण्डः प्रतिहतस्तं वा चार्थमन्यांश्च साधयति तत्र

मौलभृतश्रेणीमित्राटवीबलानामन्यतममुपलब्धदेशकालं दण्डं दद्यात् ॥ ३० ॥

जिस कार्यके किये जाते हुए पहिले भेजी हुई सेना नष्ट हो चुकी हो, उसी कार्यको पूरा करनेके लिये, या अन्य कार्योंको सिद्ध करनेके लिये, उस अवसरपर मौलबल, भृतबल, श्रेणीबल, मित्रबल तथा अटवीबल, इन पांचोंमेंसे किसी एक सेनाको उचित देश,कालके अनुसार भेजदेवे ॥ ३० ॥

अमित्राटवीबलं वा व्यवहितदेशकालम् ॥ ३१ ॥ यं तु मन्येत कृतार्थो मे दण्डं गृह्णीयादमित्राटव्यभूम्यनृतुषु वा वासयेदफलं वा कुर्यादिति दण्डव्यासङ्गापदेशेनैनमनुगृह्णीयात् ॥३२॥

अथवा दूरदेश और अधिक कालके लिये अमित्रबल या अटवीबलको ही देवे, अन्य मौल आदिको नहीं ॥ ३१ ॥ जिस उदासीन या मध्यमको यह समझे कि,—यह अपना काम निकालकर मेरी सेनाको अपने अधीन करलेगा; अथवा शत्रुके पास, आटविकोंके पास, न रहने योग्य स्थानों तथा ऋतुओंमें रक्खेगा; अथवा मेरी सेनाको जीतके धनमेंसे कुछ हिस्सा न देगा; उसको 'मेरी सेना किसी दूसरे काममें लगी हुई है' ऐसा बहाना करके सेना न देवे ॥ ३२ ॥

एवमवश्यं त्वनुगृहीतव्ये तत्कालसहमस्मै दण्डं दद्यात् ॥३३॥ आसमाप्तेश्चैनं वासयेद्योधयेच्च बलव्यसनेभ्यश्च रक्षेत् ॥ ३४ ॥

यदि इस प्रकारके राजाको अवश्य ही सहायता देनी पड़जावे, तो उस समयके लिये समर्थ सेनाको, उसे देदेवे ॥ ३३ ॥ और कार्य समाप्त होनेपर सेनाको योग्य भूमि आदिमें निवास कराये, तथा अवसर आनेपर युद्ध करावे। और सैनिक आपत्तियोंसे या हथियार आदिके टूट फूट जानेसे उन्हें सुरक्षित रक्खे ॥ ३४ ॥

कृतार्थाच्च सापदेशमपस्रावयेत् ॥ ३५ ॥ दूष्यामित्राटवीदण्डं वास्मै दद्यात् ॥३६॥ यातव्येन वा संधायैनमतिसंदध्यात् ॥३७॥

काम निकल जानेपर उदासीन या मध्यमसे, कुछ बहाना करके अपनी सेनाको वहांसे बुलवा लेवे ॥ ३५ ॥ और फिर अवसर आनेपर अपनी दूष्य सेना शत्रु सेना, या अटवीसेनाको उसे देदेवे ॥ ३६ ॥ अथवा यातव्यके साथ सन्धि करके मध्यम या उदासीनसे खूब लाभ (पूर्व निश्चितसे भी अधिक, लेवे ॥३७॥

समे हि लाभे संधिः स्याद्विषमे विक्रमो मतः ।
समहीनविशिष्टानामित्युक्तः संधिविक्रमः ॥ ३८॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे यातव्यवृत्तिरनुग्राह्यमित्रविशेषा अष्टमो ऽध्यायः ॥ ८ ॥ आदितः षट्छतः ॥ १०६ ॥

बराबर लाभ होनेपर सन्धि, और लाभमें न्यूनाधिकता होनेपर विग्रह करना चाहिये । सम हीन और विशिष्ट राजाओंके सन्धि तथा विक्रम इस अध्यायमें निरूपण किये गये हैं ॥ ३८ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें आठवां अध्याय समाप्त ।

नौवां अध्याय

११६ प्रकरण

मित्र, हिरण्य भूमि तथा कर्म (दुर्ग) आदिके द्वाराकी हुई सन्धि । इस नवम अध्यायमें मित्र सन्धि और हिरण्यसन्धिका ही निरूपण किया जायगा ।

संहितप्रयाणे मित्रहिरण्यभूमिलाभानामुत्तरोत्तरो लाभः श्रेयान् ॥ १ ॥ मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवतो मित्रं हिरण्यलाभात् ॥२॥ यो वा लाभः सिद्धः शेषयोरन्यतरं साधयति स श्रेयान् ॥ ३ ॥

मिलकर यात्रा करनेके विषयमें मित्र, हिरण्य और भूमि इन लाभोंमेंसे उत्तरोत्तर लाभ श्रेष्ठ है, अर्थात् मित्र लाभकी अपेक्षा हिरण्य लाभ और हिरण्यलाभकी अपेक्षा भूमिलाभ उत्तम समझा जाता है ॥ १ ॥ क्योंकि भूमिलाभसे मित्र और हिरण्य दोनों प्राप्त हो सकते हैं, तथा हिरण्य लाभसे मित्र लाभ हो सकता है ॥ २ ॥ अथवा जो सिद्ध हुआ २ लाभ, शेष (दोनों या) दोनोंमेंसें किसी एकको सिद्ध करसके, वही श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ ३ ॥

त्वं चाहं च मित्रं लभावह इत्येवमादिभिः समसंधिः ॥४॥ त्वं मित्रमित्येवमादिभिर्विषमसंधिः ॥ ५ ॥ तयोर्विशेषलाभादतिसंधिः ॥ ६ ॥ समसंधौ तु यः संपन्नं मित्रं मित्रकृच्छ्रे वा मित्रमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥७॥ आपाद्धि सौहृदस्थैर्यमुत्पादयति ॥८॥

तू और मैं दोनों मित्र को लाभ करें, इस प्रकार की हुई सन्धि समसन्धि होती है । ॥ ४ ॥ तू मित्र को लाभ कर मैं हिरण्य को, तू हिरण्य को लाभ कर मैं भूमिको' इस प्रकार कीहुई सन्धि विषमसन्धि कहाती है ॥ ५ ॥ उन दोनों समसन्धि और विषमसन्धिमें, पूर्व निश्चितसे अधिक लाभ हो, वह अतिसन्धि होती है ॥ ६ ॥ समसन्धिमें तो, जो सम्पन्न (देखो—यही अध्याय ९, सू. ५०) मित्रको, अथवा विपत्तिग्रस्त मित्रको प्राप्त करता है, वह अतिसन्धि निमित्तक विशेष लाभको पाता है ॥ ७ ॥ क्योंकि आपत्ति, मित्रतामें दृढ़ता को पैदा कर देती है, अर्थात् आपत्तिमें मित्रता स्थिर होजाती है ॥ ८ ॥

मित्रकृच्छ्रे ऽपि नित्यमवश्यमनित्यं वश्यं वेति ॥९॥ नित्यमवश्यं श्रेयः ॥ १० ॥ तद्ध्यनुपकुर्वदपि नापकरोतीत्याचार्याः ॥ ११ ॥

मित्रकी विपत्ति दशामें भी, अपने वशमें न रहनेवाले सार्वदिक मित्र (जो सदा अपना मित्र बना रहे) का प्राप्त होना अच्छा है, या अपने वशमें रहनेवाले पर, थोड़े दिनके लिये ही मित्रता रखनेवाले मित्रका प्राप्त होना अच्छा है ॥ ९ ॥ इस विषयमें आचार्योंका मत है कि वशमें न रहनेवाले सार्वदिक मित्रका प्राप्त करनाही अच्छा है ॥ १० ॥ क्योंकि वह उपकार न करनेपर भी कभी अपकार भी नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ वश्यमनित्यं श्रेयः ॥१३॥ यावदुपकरोति तावन्मित्रं भवत्युपकारलक्षणं मित्रमिति ॥ १४ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ १२ ॥ उसका सिद्धान्त है कि अपने अधीन रहनेवाला थोड़े दिनका भी मित्र अच्छा होता है ॥ १३ ॥ क्योंकि वह जबतक अपना उपकार करता रहता है, तभी तक मित्र रहता है । मित्रका स्वरूपही, अपने साथीकी भलाई करना है ॥ १४ ॥

वश्ययोरपि महाभोगमनित्यमल्पभोगं वा नित्यमिति ॥१५॥ महाभोगमनित्यं श्रेयः ॥ १६ ॥ महाभोगमनित्यमल्पकालेन महदुपकुर्वन्महान्ति व्ययस्थानानि प्रतिकरोतीत्याचार्याः ॥१७॥

अपनी अधीनता स्वीकार करनेवाले दोनों मित्रोंमें भी, थोड़े ही समयके लिये अधिक कर देने वाला अच्छा है, या सर्वदाके लिये थोड़ा २ कर आदि देनेवाला अच्छा है ? ॥ १५ ॥ इस विषयमें आचार्योंका सिद्धान्त है, कि थोड़े दिनतक ही कर आदि अधिक देनेवाला अच्छा है ॥ १६ ॥ क्योंकि वह थोड़ेही दिनोंमें बहुत अधिक धन सामग्री देकर विजिगीषुका महान उपकार करता है ।

तथा अपनी सहायतासे, उसके व्ययस्थानोंका प्रतीकार कर देता है। अर्थात् विजिगीषुका, जिन २ राजकार्योंमें व्यय होता है, उस व्ययमें यह भी सहायक हो जानेसे, उसका व्ययभार कम कर देता है ॥ १७ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १८ ॥ नित्यमल्पभोगं श्रेयः ॥ १९ ॥ महाभोगमनित्यमुपकारभयादपक्रामति ॥ २० ॥ उपकृत्य वा प्रत्यादातुमीहते ॥२१॥ नित्यमल्पभोगं सातत्यादल्पमुपकुर्वन्म-हता कालेन महदुपकरोति ॥ २२ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्यका यह सिद्धान्त नहीं है ॥१८॥ वह कहता है कि सदाके लिये थोड़ा २ देनेवाला ही मित्र अच्छा है ॥ १९ ॥ क्योंकि एक साथ अधिक देनेवाला मित्र, इसी भयसे बहुत जल्दी मित्रता छोड़ बैठता है ॥ २०॥ और फिर वह इसके लियेभी यत्न करने लगता है कि जो कुछ मैंने इसे दिया है, वह किसी तरह वापस करना चाहिए ॥ २१ ॥ तथा सदाके लिये निरन्तर थोड़ा २ देनेवाला भी बहुत समयके पश्चात् विजिगीषुका महान उपकार कर देता है अर्थात् उसका धीरे २ लगातार थोड़ा २ उपकार किया हुआभी काला-न्तरमें महान होजाता है ॥ २२ ॥

गुरुसमुत्थं महन्मित्रं लघुसमुत्थमल्पं वेति॥२३॥ गुरुसमुत्थं महन्मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ २४ ॥ यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं साधयतीत्याचार्याः ॥ २५ ॥

बड़ी काठिनतासे चिरकाल तक प्रयत्न करनेपर, शत्रुसे युद्ध करनेके तैयार होनेवाला प्रबल मित्र अच्छा है, या सरलतासे ही झट तैयार होजाने वाला अल्पशक्ति मित्र अच्छा है ? ॥ २३ ॥ आचार्योंका इस विषयमें यही सि. द्धान्त है, कि कठिनतासे तैयार होनेवालाभी प्रबल मित्र अच्छा है, क्योंकि वह शत्रुओंका दमन अच्छी तरह करसकता है ॥ २४ ॥ और जबभी तैयार हो जायगा, कार्यको अवश्यही पूरा करदेगा ॥ २५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २६ ॥ लघुसमुत्थमल्पं श्रेयः ॥ २७ ॥ लघुसमुत्थमल्पं मित्रं कार्यकालं नातिपातयति दौर्बल्याच्च यथेष्ट-भोग्यं भवति नेतरत्प्रकृष्टभौमम् ॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य इसको स्वीकार नहीं करता ॥ २६ ॥ वह कहता है, कि सरलतासे झट तैयार होजाने वाला, अल्प शक्तिभी मित्र अच्छा होता है ॥९७॥ क्योंकि ऐसा मित्र अवसरको कभी नहीं चूकता। अर्थात् जब अवसर होता है तत्काल ही कार्य करनेके लिये तैयार होजाता है। कार्यके समयको टलने नहीं

देता। और अपनेसे दुर्बल होनेके कारण अपनी इच्छानुसार कार्यमें लगाया जासकता है। परन्तु ये सब बातें दूसरे मित्रमें नहीं हो सकतीं, और विशेषकर उस अवस्थामें, जबकि वह किसी दूर देशमें रहता हो ॥ २८ ॥

विक्षिप्तसैन्यमवश्यसैन्यं वेति ॥ २९ ॥ विक्षिप्तं सैन्यं शक्यं प्रतिसंहर्तुं वश्यत्वादित्याचार्याः ॥ ३० ॥

जिस मित्र राजाकी सेना, अन्य कार्योंको सिद्ध करनेके लिये अनेक स्थानोंमें भेजी हुई हो, ऐसा वश्य (अपने वशमें रहनेवाली) सेना रखनेवाला मित्र अच्छा, या जिसकी सेना वशमें तो न हो, पर सब अपने पास विद्यमान हो ऐसा मित्र अच्छा है? ॥ २९ ॥ आचार्योंका इस विषयमें यही सिद्धान्त है कि इधर उधर बिखरी हुई सेना वालाभी मित्र अच्छा होता है क्योंकि वह सेना अपने वशमें होनेके कारण शीघ्रही इकट्ठी की जासकती है ॥ ३० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ अवश्यसैन्यं श्रेयः ॥ ३२ ॥ अवश्यं हि शक्यं सामादिभिर्वश्यं कर्तुम् ॥ ३३ ॥ नेतरत्कार्यव्यासक्तं प्रतिसंहर्तुम् ॥ ३४ ॥

परन्तु कौटल्य इस बातको नहीं मानता ॥ ३१ ॥ वह कहता है कि जिसकी सेना अपने वशमें नहीं है, पर अपने पासही सब एकत्रित विद्यमान है, वही मित्र अच्छा है ॥ ३२ ॥ क्योंकि साम आदि उपायोंके द्वारा अवश्य सेनाको भी अपने वशमें किया जासकता है, और तत्काल उसे यथेच्छ कार्योंपर लगाया जासकता है ॥ ३३ ॥ परन्तु इधर उधर बिखरी हुई सेना, अपने अपने कार्योंमें लगी हुई होनेके कारण तत्काल ही एकत्रित नहीं की जासकती ॥ ३४ ॥

पुरुषभोगं हिरण्यभोगं वा मित्रमिति ॥ ३५ ॥ पुरुषभोगं मित्रं श्रेयः ॥ ३६ ॥ पुरुषभोगं मित्रं प्रतापकरं भवति ॥ ३७ ॥ यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं साधयतीत्याचार्याः ॥ ३८ ॥

पुरुषोंके द्वारा उपकार करनेवाला मित्र अच्छा है, या हिरण्यके द्वारा उपकार करनेवाला अच्छा? ॥ ३५ ॥ इस विषयमें आचार्योंका सिद्धान्त है कि पुरुषोंके द्वारा उपकार करनेवाला मित्र अच्छा है क्योंकि वह स्वयं ही शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करसकता है, और उन्हें दबा सकता है ॥ ३७ ॥ और जबकभी भी किसी कार्यको करनेके लिये तैयार होजाता है, अवश्य ही उस कार्यको पूरा कर डालता है ॥ ३८ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३९ ॥ हिरण्यभोगं मित्रं श्रेयः ॥ ४० ॥

नित्योहि हिरण्येन योगः कदाचिद्दण्डेन दण्डश्च हिरण्येनान्ये च कामाः प्राप्यन्त इति ॥ ४१ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता ॥ ३९ ॥ वह कहता है कि हिरण्य आदिसे सहायता करनेवाला मित्रही श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥ क्योंकि धनकी सदाही आवश्यकता रहती है, और सेना आदिकी आवश्यकता कभी २ होती है । तथा धन होनेपर उसके द्वारा सेनाका संग्रहभी किया जासकता है, और अन्य कामनाओंको भी पूरा किया जासकता है ॥ ४१ ॥

हिरण्यभोगं भूमिभोगं वा मित्रमिति ॥ ४२ ॥ हिरण्यभोगं गतिमत्त्वात्सर्वव्ययप्रतीकारकरमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥

हिरण्य आदि धन देनेवाला मित्र अच्छा, या भूमि देनेवाला मित्र अच्छा ॥ ४२ ॥ आचार्योंका इस विषयमें यही सिद्धान्त है, कि हिरण्य आदि धनकी सहायता देनेवालाही मित्र अच्छा है । क्योंकि धनको चाहे जहां इच्छानुसार लेजाया जासकता है । और हरतरहके व्ययमें इसका उपयोग किया जा सकता है ॥ ४३ ॥

नेति कौटल्यः ॥४४॥ मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवत इत्युक्तं पुरस्तात् ॥४५॥ तस्माद्भूमिभोगं मित्रं श्रेय इति ॥ ४६ ॥

परन्तु कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ४४ ॥ वह कहता है कि 'मित्र और हिरण्य दोनोंही भूमिके द्वारा प्राप्त किये जासकते हैं' यह हम पहले कह चुके हैं ॥ ४५ ॥ इस लिये भूमिकी सहायता देनेवाला मित्र ही सबसे श्रेष्ठ होता है ॥ ४६ ॥

तुल्ये पुरुषभोगे विक्रमः क्लेशसहत्वमनुरागः सर्वबललाभो वा मित्रकुलाद्विशेषः ॥ ४७ ॥ तुल्ये हिरण्यभोगे प्रार्थितार्थता प्राभूत्यमल्पप्रयासता सातत्याच्च विशेषः ॥ ४८ ॥ तत्रैतद्भवति- ॥ ४९ ॥

दो मित्र यदि समान रूपसे पुरुषोंकी ही सहायता देनेवाले हों, तो उनमेंसे भी विक्रमशाली, क्लेशोंको सहन करनेवाला, अनुरागी और मौल भृत आदि सब तरहकी सेनाओंको देनेवाला मित्रही प्रशस्त समझा गया है ॥४७॥ समान रूपसे हिरण्य आदि धनकी सहायता देनेवाले दो मित्रोंमेंसे भी वही मित्र प्रशस्त समझा जाता है, जोकि मांगते ही बहुत थोड़ा परिश्रम करनेपर भी बहुतधन देदेवे, और निरन्तर देतारहे ॥ ४८ ॥ अब इसके आगे मित्र तथा उनके गुणोंका निरूपण करते हैं:—॥ ४९ ॥

नित्यं वश्यं लघूत्थानं पितृपैतामहं महत् ।
अद्वैध्यं चेति संपन्नं मित्रं षड्गुणमुच्यते ॥ ॥ ५० ॥

नित्य, वश्य, लघूत्थान,पितृ पतैामह, महत् और अद्वैध्य ये छः प्रकारके मित्र परस्पर गुणोंके भेदसे होते हैं ॥ ५० ॥

ऋते यदर्थं प्रणयाद्रक्ष्यते यच्च रक्षति ।
पूर्वोपचितसंबन्धं तन्मित्रं नित्यमुच्यते ॥ ५१ ॥

धन आदि सम्बन्धके बिनाही, प्रथम उत्पन्न हुए योनिसम्बन्धके कारण अत्यन्त स्नेहसे विजिगीषु जिसकी रक्षा करता है, और इसी प्रकार जो विजिगीषु की रक्षा करता है, इस प्रकारके मित्रोंको 'नित्य' कहते हैं ॥ ५१ ॥

सर्वचित्रमहाभोगं त्रिविधं वश्यमुच्यते ।
एकतोभोग्युभयतः सर्वतोभोगि चापरम् ॥ ५२ ॥

वश्य मित्र तीन प्रकारका होता है:—सर्वभोग, चित्रभोग और महाभोग। जो सेना, धन और भूमि आदि सब तरहसे विजिगीषुकी सहायता करे, वह सर्वभोग कहाता है। केवल सेना और धनसे महान उपकार करने वाला महाभोग, तथा रत्न, तांबा, लोहा आदि खनिज पदार्थ और लकड़ी जंगल आदि भिन्न २ वस्तुओंसे सहायता करनेवाला चित्रभोग कहाता है। ये तीन भेद धनप्राप्तिके भेदसे बताये गये हैं। अनर्थ निवारणके द्वारा उपकार करनेसे भी वश्यमित्र तीन प्रकारके होते हैं:—एकतोभोगी उभयभोगी और सर्वतोभोगी। जो केवल शत्रुका प्रतीकार करे वह एकतोभोगी; जो शत्रु और शत्रुके मित्र दोनोंका प्रतीकार करे वह उभयतोभोगी; तथा जो शत्रु, शत्रुके मित्र और आटविक आदि सबका प्रतीकार करे वह सर्वतोभोगी कहाता है ॥ ५२ ॥

आदातृ वा दातृपि वा जीवत्यरिषु हिंसया ।
मित्रं नित्यमवश्यं तद्दुर्गाटव्यपसारि च ॥ ५३ ॥

जो विजिगीषुका उपकार न करनेपर भी, शत्रुओंमें लूटमार करके कुछ ले देकर अपना निर्वाह करता है, और दुर्ग तथा अटवीमें रहनेके कारण अपनी रक्षा करता हुआ शत्रुके हाथ नहीं आता, वह विजिगीषुका वश्यमित्रता हीन नित्यमित्र होता है ॥ ५३ ॥

अन्यतो विगृहीतं वा लघुव्यसनमेव वा ।
संधत्ते चोपकाराय तन्मित्रं वश्यमध्रुवम् ॥ ५४ ॥

परन्तु जिसपर शत्रुने आक्रमण करदिया हो, अथवा और कोई छोटीसी आपत्ति जिसपर आपड़ी हो, इस कारण उपकार करनेके लिये विजिगीषुके

साथ जो सन्धि करलेवे, वह नित्य मित्रता हीन वश्यमित्र कहाता है । उपकारक होनेसे वश्य, तथा अपने उन्नतिकाल तकही मित्रता रखनेके कारण अनित्य होता है ॥ ५४ ॥

बिना ही विशेषयत्नके जो अपनी सेनाको सहायताके लिये तैयार रक्खे वह 'लघूत्थान' जो पितृपितामह क्रमसे मित्र चला आया हो, वह पितृपैतामह, तथा जो अत्यन्त प्रतापी और अत्यधिक सेनासे युक्त हो, वह 'महत्' कहाता है । सरल होनेके कारण यहां मूलग्रन्थमें इनके लक्षण आचार्य कौटल्यने नहीं बतलाये । इनको छोड़करही अब अद्वैध्य मित्रका स्वरूप बताते हैं:—

एकार्थेनार्थसंबन्धमुपकार्यविकारि च ।
मित्रभावि भवत्येतन्मित्रमद्वैध्यमापदि ॥ ५५ ॥

समानही सुखदुःखका अनुभव करनेवाला, सदा उपकार करनेवाला, कभी विकारको प्राप्त न होनेवाला, आपत्तिमें भी भिन्न न होनेवाला मित्र 'अद्वैध्य' कहाता है । इसी लिये मित्रताका नित्यसम्बन्ध होनेके कारण इसे 'मित्रभावी' भी कहा जाता है ॥ ५५ ॥

मित्रभावाद्ध्रुवं मित्रं शत्रुसाधारणाच्चलम् ।
न कस्यचिदुदासीनं द्वयोरुभयभावि तत् ॥ ५६ ॥

इसके विपरीत एक 'उभयभावी' मित्र होता है । वह शत्रु और विजिगीषु दोनोंका उपकार न करनेके कारण, तथा दोनोंका उपकार करनेके कारण, या दुर्बल होनेसे दोनोंका सेवक होनेके कारण तीन प्रकारका होता है । इनमेंसे पहिला फिर दो प्रकारका है:—एक सामर्थ्य होनेपर भी इच्छा न होनेसे उपकार न करने वाला, और दूसरा इच्छा होनेपर भी सामर्थ्याभावसे उपकार न करने वाला । इनमेंसे पहिलेको बताते हैं:—जो मित्र होनेके कारण नित्य और शत्रुका भी मित्र होनेके कारण अनित्य, शत्रु और विजिगीषु दोनोंका ही धनादिके द्वारा उपकार न करनेवाला (नित्यानित्योभयरूप) हो, वह उभयभावी मित्र कहाता है ॥ ५६ ॥

विजिगीषोरमित्रं यन्मित्रमन्तर्धितां गतम् ।
उपकारे निविष्टं वा शक्तं वानुपकारि तत् ॥ ५७ ॥

तथा भूम्यनन्तर (अपने देशसे लगे हुए देशका राजा) होनेके कारण विजिगीषुका शत्रुभूत, तथा शत्रु और विजिगीषुके बीचमें होनेके कारण मित्र

बना हुआ, इच्छा होनेपरभी असामर्थ्यके कारण दोनोंका उपकार न करने वाला, भी उभयभावी मित्र कहाता है ॥ ५७ ॥

प्रियं परस्य वा रक्ष्यं पूज्यं संबन्धमेव वा ।
अनुगृह्णाति यन्मित्रं शत्रुसाधारणं हि तत् ॥ ५८ ॥

जो विजिगीषुका मित्र, शत्रुका प्रिय और रक्ष्य (रक्षा किये जाने योग्य) है, तथा शत्रुके साथ जिसका कोई पूज्य सम्बन्ध है, इस प्रकार शत्रु और विजगीषु दोनों का उपकार करनेवाला, दूसरा उभयभावी मित्र कहाता है ॥५८॥

प्रकृष्टभौमं संतुष्टं बलवच्चालसं च यत् ।
उदासीनं भवत्येतद्व्यसनादवमानितम् ॥ ५९ ॥

दूरदेशमें रहनेवाला, सन्तोषी बलवान्, आलसी तथा अन्य द्यूत आदि व्यसनोंके कारण तिरस्कृत हुआ २ मित्र, उपकार करनेके समय उदासीन हो जाता है ॥ ५९ ॥

अरेर्नेतुश्च यद्वृद्धिं दौर्बल्यादनुवर्तते ।
उभयस्याप्यविद्विष्टं विद्यादुभयभावि तत् ॥ ६० ॥

जो मित्र दुर्बल होनेके कारण, शत्रु और विजिगीषु दोनोंकी उन्नतिका अनुगामी होता है । किसीसे द्वेष नहीं करता, प्रत्युत दोनोंका आज्ञाकारी रहता है, वह तीसरे प्रकारका उभयभावी मित्र कहाता है ॥ ६० ॥

कारणाकरणध्वस्तं कारणाकरणागतम् ।
यो मित्रं समपेक्षेत स मृत्युमुपगूहति ॥ ६१ ॥

विनाही कारण छोड़कर चले जानेवाले, तथा विनाही कारण फिर आकर मिल जानेवाले मित्रको जो अपने यहां रख लेता है । वह निश्चय ही मृत्युका आलिङ्गन करता है अर्थात् इस प्रकारके मित्रको रखकर अवश्य धोखा खाता और शीघ्र ही नष्ट कर दिया जाता है ॥ ६१ ॥

क्षिप्रमल्पो लाभश्चिरान्महानिति वा ॥ ६२ ॥ क्षिप्रमल्पो लाभः कार्यदेशकालसंवादकः श्रेयानित्याचार्याः ॥ ६३ ॥

शीघ्र होजानेवाला थोड़ासा लाभ अच्छा, या देरमें होनेवाला महान् लाभ अच्छा ? इसपर विचार किया जाता है ॥ ६२ ॥ प्राचीन आचार्योंका इस विषयमें यह सिद्धान्त है कि शीघ्र होजानेवाला थोड़ासा लाभही अच्छा होता है, क्योंकि शीघ्र लाभ होजानेपर, इस बातका विचार किया जासकता है कि अमुक कार्यसे अमुक देश या समयमें इतना लाभ होजायगा ॥ ६३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६४ ॥ चिरादविनिपाती बीजसधर्मा महांल्लाभः श्रेयान्विपर्यये पूर्वः ॥ ६५ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्यका यह सिद्धान्त नहीं है ॥ ६४ ॥ वह कहता है कि चिरकालमें होनेवाला भी विघ्न रहित धान्य बीज आदिका महान लाभ होना अत्यन्त श्रेष्ठ है। परन्तु महान लाभमें विघ्न होनेकी सम्भावना होनेपर तो पूर्वोक्त आचार्योंका मत ही उपादेय है ॥ ६५ ॥

एवं दृष्ट्वा ध्रुवे लाभे लाभांशे च गुणोदयम् ।
स्वार्थसिद्धिपरो यायात्संहितः सामवायिकैः ॥ ६६ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ मित्रसंधिः हिरण्यसंधिः नवमो ऽध्यायः ॥ ९ ॥

आदितः सप्तशतः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार निश्चयरूपसे अपने लाभको जानकर, थोड़ा लाभ होनेपर मित्रकी प्राप्तिको जानकर, अन्य राजाओंसे सन्धि करके विजिगीषु, सदा अपनी अर्थ सिद्धि करनेमें तत्पर रहे ॥ ६६ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें नौवां अध्याय समाप्त ।

दसवां अध्याय

११६ प्रकरण

भूमिसन्धि ।

त्वं चाहं च भूमिं लभावह इति भूमिसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थः संपन्नां भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥

'तुम और मैं भूमिको प्राप्त करें' इस प्रकार की हुई भूमि निमित्तक सन्धिको 'भूमिसन्धि' कहते हैं। शत्रु और विजिगीषु दोनोंको समान भावसे भूमिकी ही प्राप्ति होनेसे, यह 'समसन्धि' भी कहाती है ॥ १ ॥ शत्रु और विजिगीषु दोनोंमेंसे जो आवश्यक कार्योंमें व्यय करनेके लिये धन और गुणी भृत्य जनोंको शीघ्र उपस्थित कर, सम्पन्न समृद्ध भूमिको प्राप्त करता है, वह विशेष लाभ उठाता है ॥ २ ॥

तुल्ये संपन्नालाभे यो बलवन्तमाक्रम्य भूमिमवाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥३॥ भूमिलाभं शत्रुकर्शनं प्रतापं च हि प्राप्नोति ॥४॥

दोनोंको समानरूपसे समृद्ध भूमिके प्राप्त होनेपर भी, वही विशेष

लाभ उठाता है, जो बलवान् शत्रुपर आक्रमण करके, उसे दबाकर भूमिको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे भूमिका लाभ भी होता है, और शत्रुका नाशभी, तथा सर्वत्र अपने प्रतापका विस्तार भी होजाता है ॥ ४ ॥

दुर्बलाद्भूमिलाभे सत्यं सौकर्यं भवति ॥ ५ ॥ दुर्बल एव च भूमिलाभः तत्सामन्तश्च मित्रममित्रभावं गच्छति ॥ ६ ॥

यद्यपि दुर्बलसे भूमि प्राप्त करना निस्सन्देह सुकर है ॥ ५ ॥ परन्तु इस प्रकारका भूमिलाभ अत्यन्त निकृष्ट होता है, क्योंकि यह एक दुर्बलकी हिंसा करके प्राप्त किया जाता है। तथा दुर्बलका पड़ौसी राजा भूम्यनन्तर होनेसे उसका शत्रुभूत, और विजिगीषुका मित्र, विजिगीषुकी इस कार्यवाहीको देखकर उसका शत्रु बनजाता है। क्योंकि उसके हृदयमें यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि अब इसने दुर्बलको दबाया है, फिर यह मुझपरभी आक्रमण कर देगा। यह सोचकर वह दुर्बलका सहायक बनजाता है। और विजिगीषुका शत्रु बनकर उसके लिये अनर्थ खड़ाकर सकता है। इसलिए दुर्बलसे भूमिलेना श्रेयस्कर नहीं ॥ ६ ॥

तुल्ये बलीयस्त्वे यः स्थितशत्रुमुत्पाट्य भूमिमवाप्नोति सोऽतिसंधत्ते ॥ ७ ॥ दुर्गावाप्तिर्हि स्वभूमिरक्षणं मित्राटवीप्रतिषेधं च करोति ॥ ८ ॥

दो शत्रुओंके समान बलशाली होनेपर, जो विजिगीषु स्थायी शत्रुको उच्छिन्न करके भूमिलाभ करता है, वही विशेष लाभ उठाता है ॥ ७ ॥ क्योंकि शत्रुके दुर्ग आदि अपने हाथमें आजानेपर, अपनी भूमिकी रक्षा तथा अन्यशत्रु और आटविकोंका प्रतीकारभी सरलतासे किया जासकता है ॥ ८ ॥

चलामित्राद्भूमिलाभे शक्यसामन्ततो विशेषः ॥९॥ दुर्बलसामन्ता हि क्षिप्राप्यायनयोगक्षेमा भवन्ति ॥ १० ॥ विपरीता बलवत्सामन्ता कोशदण्डावच्छेदिनी च भूमिर्भवति ॥ ११ ॥

अस्थिर (जिसके पास अपना दुर्ग आदि नहीं है) शत्रुसे समानरूपसे भूमिलाभ करनेपर भी उसी अवस्थामें विशेष लाभ रहता है, जबकि अस्थिर शत्रुका पड़ोसी दुर्बल हो ॥ ९ ॥ क्योंकि ऐसी भूमि (दुर्बलसामन्ता=जिसका सामन्त दुर्बल हो; उसका पड़ोसी राजा विजिगीषुके प्रति सामन्त कहाजाता है), विजिगीषुके लिये शीघ्रही योग क्षेमको बढ़ानेवाली होती है ॥ १० ॥ परन्तु जिस भूमिका सामन्त बलवान् हो, वह सर्वथा इसके विपरीत होती है। विजिगीषु के कोश और बलको क्षीणकरने वाली होती है ॥ ११ ॥

संपन्ना नित्यामित्रा मन्दगुणा वा भूमिरनित्यामित्रेति ॥१२॥ संपन्ना नित्यामित्रा श्रेयसी भूमिः ॥ १३ ॥ संपन्ना हि कोश-दण्डौ संपादयति ॥१४॥ तौ चामित्रप्रतिघातकावित्याचार्याः ॥१५॥

विजिगीषुके लिये अत्यन्त समृद्धिशाली पर नित्य शत्रुसे युक्त भूमि लेनी श्रेयस्कर है, अथवा अत्यल्प समृद्धिशाली अनित्य शत्रुसे युक्त भूमि श्रेयस्कर है ? ॥ १२ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है कि अत्यन्त समृद्धिशाली नित्यशत्रुयुक्त भूमिही श्रेयस्कर है ॥ १३ ॥ क्योंकि सम्पन्न भूमिके द्वारा कोश और सेना दोनोंका संग्रह किया जासकता है ॥ १४ ॥ तथा ये दोनों शत्रुओंके नाशक हैं, अर्थात् कोश और सेनाके द्वारा फिर शत्रुओंका उच्छेद किया जासकता है ॥ १५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १६ ॥ नित्यामित्रलाभे भूयांश्छत्रुलाभो भवति ॥ १७ ॥ नित्यश्च शत्रुरुपकृते चापकृते च शत्रुरेव भवति ॥ १८ ॥ अनित्यस्तु शत्रुरुपकारादनपकाराद्वा शाम्यति ॥१९॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता ॥१६॥ वह कहता है कि नित्यशत्रुयुक्त भूमिके प्राप्त होनेपर अत्यधिक शत्रुका विरोध होजाता है । अर्थात् शत्रुता बढ़ती जाती है ॥ १७ ॥ क्योंकि जो नित्य शत्रु है, उसका चाहे उपकार कियाजाय, या अपकार; वह शत्रुही रहता है । अपनी सहज शत्रुताको कभी छोड़ नहीं सकता ॥ १८ ॥ परन्तु अनित्य शत्रुमें यह बात नहीं देखीजाती, उसके साथ उपकार या अपकार करनेसे वह अवश्यही शान्त हो जाता है । वह विजिगीषुका फिर अपकार नहीं करसकता ॥ १९ ॥

यस्या हि भूमेर्बहुदुर्गाश्चोरगणैर्म्लेच्छाटवीभिर्वा नित्याविरहिताः प्रत्यन्ता सा नित्यामित्रा विपर्यये त्वनित्यामित्रेति ॥२०॥

जिस भूमिके सीमा प्रान्तोंमें होनेवाले बहुतसे दुर्ग, चोरों म्लेच्छों तथा आटविकोंसे सदा घिरे हुए रहते हों, वह भूमि 'नित्यामित्रा' कहाती है। और इससे विपरीत भूमि, अर्थात् जिसके सीमा प्रान्तके दुर्गोंमें चोर आदि न रहते हों, वह 'अनित्यामित्रा' कही जाती है ॥ २० ॥

अल्पा प्रत्यासन्ना महती व्यवहिता वा भूमिरिति ॥ २१ ॥ अल्पा प्रत्यासन्ना श्रेयसी ॥ २२ ॥ सुखा हि प्राप्तुं पालयितुमभिसारयितुं च भवति ॥ २३ ॥ विपरीता व्यवहिता ॥ २४ ॥

प्राप्त होनेवाली भूमियोंमें समीपकी थोड़ी भूमि अच्छी होती है, या दूरकी बहुतसी भूमि ? ॥ २१ ॥ समीपकी थोड़ीभी भूमि श्रेयस्कर होती है

॥ २२ ॥ क्योंकि सुकरतासे उसकी प्राप्ति और रक्षा की जासकती है तथा विपत्ति कालमें उसका सहारा भी लिया जासकता है ॥ २३ ॥ परन्तु बहुत दूर की भूमि इसके विपरीत ही होती है ॥ २४ ॥

व्यवहिताव्यवहितयोरपि दण्डधारणात्मधारणा वा भूमिरिति ॥ २५ ॥ आत्मधारणा श्रेयसी ॥ २६ ॥ सा हि स्वसमुत्थाभ्यां कोशदण्डाभ्यां धार्यते ॥ २७ ॥ विपरीता दण्डधारणा दण्डस्थानमिति ॥ २८ ॥

दूर और समीपकी भूमिमें भी, लेनेके लिये पररक्षित भूमि अच्छी होती है, या स्वयं सुरक्षित भूमि अच्छी होती है ? ॥ २५ ॥ स्वयं सुरक्षित भूमिही अच्छी होती है ॥ २६ ॥ क्योंकि स्वयं स्थापित कियेहुए कोश और सेनाके द्वारा उसकी सुव्यवस्था की जासकती है ॥ २७ ॥ परन्तु पररक्षित भूमि इसके विपरीत होती है । दूसरे से स्थापित कियेहुए कोश और सेनाके द्वारा उसकी व्यवस्था कीजाती है । वह केवल अपनी रक्षाके लिये दूसरेसे स्थापित कीहुई सेनाके निवासका एक स्थानमात्र होती है २८ ॥

बालिशात्प्राज्ञाद्वा भूमिलाभ इति ॥ २९ ॥ बालिशाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३० ॥ सुप्राप्यानुपाल्या हि भवत्यप्रत्यादेया च ॥ ३१ ॥ विपरीता प्राज्ञादनुरक्तेति ॥ ३२ ॥

मूर्ख शत्रुसे भूमिका लाभ होना अच्छा है या बुद्धिमान्से ? ॥ २९ ॥ मूर्ख शत्रु राजासे भूमिका मिलना श्रेयस्कर है ॥ ३० ॥ क्योंकि वह बड़ी सरलतासे प्राप्त होजाती है । और उसकी रक्षाभी सुखपूर्वक की जासकती है । तथा उसके फिर वापस लौटनेकीभी शङ्का नहीं रहती ॥ ३१ ॥ परन्तु बुद्धिमान्से प्राप्त हुई भूमि सर्वथा इसके विपरीत होती है । क्योंकि उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन, तथा अन्य प्रजावर्ग, उसमें सदा अनुराग रखनेवाले होते हैं । ऐसी अवस्थामें यदि वह भूमि किसी तरह कठिनतासे लेभी लीजाय फिरभी उसके वापस होनेकी शङ्का बनी ही रहती है ॥ ३२ ॥

पीडनीयोच्छेदनीययोरुच्छेदनीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३३ ॥ उच्छेदनीयो ह्यनपाश्रयो दुर्बलापाश्रयो वाभियुक्तः कोशदण्डावादायापसर्तुकामः प्रकृतिभिः त्यज्यते ॥ ३४ ॥ न पीडनीयो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्ध इति ॥ ३५ ॥

पीडनीय (शत्रु आदिके द्वारा पीडित किया जानेवाला) और उच्छेद-

नीय (सर्वथा उच्छिन्न किया जानेवाला) इन दोनोंमेंसे उच्छेदनीयसे भूमिका लाभ होना श्रेयस्कर है ॥ ३३ ॥ क्योंकि निराश्रय या दुर्बलका आश्रय प्राप्त किये हुए उच्छेदनीयके ऊपर जब आक्रमण किया जाता है, तो वह कोश और सेना लेकर अपने स्थानसे भाग जानेकी इच्छा करता है। ऐसी अवस्थामें प्रकृति जन उसकी सहायता नहीं करते, उसे छोड़ देते हैं ॥ ३४ ॥ परन्तु पीडनीय, दुर्ग और मित्रोंकी सहायता प्राप्त करके, अपने स्थानपर ही स्थित रहता है, इसी लिये प्रकृतिजन उसका त्याग नहीं करते ॥ ३५ ॥

दुर्गप्रतिस्तब्धयोरपि स्थलनदीदुर्गीयाभ्यां स्थलदुर्गीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥ ३६ ॥ स्थलीयं हि सुरोधावमर्दास्कन्दमनिस्राविशत्रु च ॥ ३७ ॥ नदीदुर्गं तु द्विगुणक्लेशकरमुदकं च पातव्यं वृत्तिकरं चामित्रस्य ॥ ३८ ॥

दुर्गोंसे सुरक्षित हुए हुओंमेंसे भी स्थलदुर्गमें रहनेवालेसे भूमिलाभ होना अच्छा है, या नदीदुर्गमें रहनेवालेसे ? स्थलदुर्गमें रहनेवालेसे ही भूमिलाभ होना अच्छा है ॥ ३६ ॥ क्योंकि स्थलमें रहनेवाले दुर्गको बड़ी सरलतासे घेरा जा सकता है, उच्छिन्न किया जा सकता है, तथा शत्रुको भी उसके भीतरसे निकल भागनेका सुयोग प्राप्त नहीं होसकता। अतएव शीघ्र ही वह आधीनता स्वीकार करता है। इसलिये इससे भूमिलाभ करना सरल और श्रेयस्कर है ॥ ३७ ॥ नदीदुर्ग तो दुगने कष्ट उठाकर भी वशमें नहीं आता। वहांपर पीने योग्य जलके होनेसे, तथा जलाधीन अन्न फल आदिके होजानेसे, शत्रुके निर्वाहमें कोई हानि नहीं पड़ती। अतएव इसका उच्छेद करना अत्यन्त कठिन होता है ॥ ३८ ॥

नदीपर्वतदुर्गीयाभ्यां नदीदुर्गीयाद्भूमिलाभः श्रेयान् ॥३९॥ नदीदुर्गं हि हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुबन्धनौभिः साध्यमनित्यगाम्भीर्यमपस्राव्युदकं च ॥ ४० ॥

नदीदुर्ग और पर्वत दुर्गमें रहने वालोंमेंसे, नदीदुर्गमें रहनेवालेसे भूमिलाभ होना अच्छा है ॥ ३९ ॥ क्योंकि नदीदुर्ग, हाथी लकड़ीके खम्भे आदि, पुल, बांधों तथा नावोंके द्वारा जलपार करके हस्तगत किया जा सकता है। जल भी उसमें सदा अधिक नहीं रहता, तथा किनारोंको तोड़कर जल निकाला भी जासकता है। अतएव इससे भूमिलाभ करना सरल है ॥ ४० ॥

पार्वतं तु स्वारक्षं दुरवरोधि कृच्छ्रारोहणं भग्ने चैकस्मिन्न सर्ववधः ॥ ४१ ॥ शिलावृक्षप्रमोक्षश्च महापकारिणाम् ॥ ४२ ॥

परन्तु पर्वत प्रदेशका दुर्ग अत्यन्त सुरक्षित पत्थर आदिसे बना हुआ सुदृढ़ होता है, इसको न सरलतासे घेरा जासकता है, और न इसपर चढ़ा जासकता है। अश्मोंके द्वारा एकके नष्ट होनेपर भी शेष सब सुरक्षित रहते है। उनकी कुछ हानि नहीं होती ॥ ४१ ॥ यदि कोई अत्यन्त बलशाली शत्रु उनपर आक्रमण करे, तो ऊपरसे उसपर शिला तथा वृक्ष आदि गिराकर बड़ी सरलतासे वे उसका प्रतीकार कर सकते हैं ॥ ४२ ॥

निम्नस्थलयोधिभ्यो निम्नयोधिभ्यो भूमिलाभः श्रेयान् ॥४३॥ निम्नयोधिनो ह्युपरुद्धदेशकालाः ॥ ४४ ॥ स्थलयोधिनस्तु सर्वदेशकालयोधिनः ॥ ४५ ॥

निम्नयोधी (नौका आदिमें बैठकर युद्ध करने वाले) और स्थलयोधी शत्रुओंमेंसे, निम्नयोधी शत्रुसे भूमिलाभ होना अच्छा है ॥ ४३ ॥ क्योंकि निम्नयोधी किसी विशेष देश या कालमें ही युद्ध कर सकते हैं, सर्वदा नहीं कर सकते। इसलिये उनसे भूमि लेना आसान है ॥ ४४ ॥ परन्तु स्थलयोधी सब देश और सब कालमें युद्ध कर सकते हैं, इसलिये उनको शीघ्र वशमें करना दुष्कर है ॥ ४५ ॥

खनकाकाशयोधिभ्यः खनकेभ्यो भूमिलाभः श्रेयान् ॥४६॥ खनका हि खातेन शस्त्रेण चोभयथा युध्यन्ते ॥ ४७ ॥ शस्त्रेणैवाकाशयोधिनः ॥ ४८ ॥

खनक योधी (खाई खोदकर उसमेंसे युद्ध करनेवाले) और आकाश योधी शत्रुओंमेंसे, खनकयोधी शत्रुसे भूमिलाभ करना अच्छा है ॥ ४६ ॥ क्यों कि वे युद्धके लिये खाई और शस्त्र दोनोंकी ही अपेक्षा रखते हैं, कभी कहीं खाईके योग्य उचित स्थान न मिलनेपर वे युद्ध नहीं कर सकते, अतः सबदेश और सब कालमें युद्ध न कर सकनेके कारण वे शीघ्र ही सरलतासे वशमें आ जाते हैं ॥ ४७ ॥ परन्तु आकाशयोधी शत्रुओंको युद्ध करनेके लिये केवल शस्त्र की ही अपेक्षा होती है। वे सबदेश और सबकालमें युद्ध कर सकते हैं। अतएव उनको वशमें करना अत्यन्त कठिन है ॥ ४८ ॥

एवंविधेभ्यः पृथिवीं लभमानोऽर्थशास्त्रवित् ।
संहितेभ्यः परेभ्यश्च विशेषमधिगच्छति ॥ ४९ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ भूमिसंधिः दशमो ऽध्यायः ॥ १० ॥ आदितो ऽष्टशतः ॥ ११८ ॥

अर्थशास्त्रको जाननेवाला विजिगीषु, उक्त प्रकारके सन्धि किये हुए तथा अन्य शत्रु राजाओंसे पृथ्वीका लाभ करता हुआ, सदा उन्नतिको प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें दसवां अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवां अध्याय

११६ प्रकरण

अनवसित सन्धि

निश्चयरूपसे किसी विशेष कार्यका नाम न लेकर, सामान्य रूपसे शून्य स्थानोंको नगर खान लकड़ीके जङ्गल आदिके द्वारा बसानेकी शर्त करके जो सन्धि की जाती है, उसे अनवसित सन्धि कहते हैं। जिस सन्धिमें दुर्ग आदि कार्योंका निश्चितरूपसे नाम लेदिया जाता है, वह 'कर्म सन्धि' अगले अध्यायमें बतलाई जावेगी। इन दोनों सन्धियोंमें केवल यही भेद है।

त्वं चाहं च शून्यं निवेशयावह इत्यनवसितसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थो यथोक्तगुणां भूमिं निवेशयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २ ॥

'आओ तुम और मैं शून्य स्थानोंको नगर आदिके द्वारा बसावें' इस प्रकार जो सन्धि की जाय, उसे अनवसित सन्धि कहते हैं ॥ १ ॥ उन दोनोंमेंसे जो, पूर्ण सामग्रीसे युक्त हुआ २, जनपदनिवेश आदि प्रकरणोंमें बताये हुए गुणोंसे सम्पन्न भूमिको बसाता है, वह दूसरेकी अपेक्षा विशेष लाभको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

तत्रापि स्थलमौदकं वेति ॥ ३ ॥ महतः स्थलादल्पमौदकं श्रेय सातत्यादवस्थितत्वाच्च फलानाम् ॥ ४ ॥

यथोक्त गुण सम्पन्न होनेपर भी, स्थल अर्थात् जहां केवल वृष्टिसे ही जल प्राप्त हो सके, ऐसी भूमि अच्छी है, या औदक अर्थात् जहां सदा जलसे भरे तलाब अथवा नदी हों, ऐसी भूमि अच्छी है ॥ ३ ॥ बड़ी अधिक भी स्थल भूमिसे थोड़ी औदक भूमि अच्छी है। क्योंकि वहां सर्वदा निश्चित रूपसे फलों आदिकी उत्पत्ति हो सकती है ॥ ४ ॥

स्थलयोरपि प्रभूतपूर्वापरसस्यमल्पवर्षपाकमसक्तारम्भं श्रेयः

॥ ५ ॥ औदकयोरपि धान्यवापमधान्यवापाच्छ्रेयः ॥ ६ ॥

दो स्थल भूमियोंमें भी वही भूमि उत्तम होती है, जहां बराबर आगे पीछे होनेवाली वसन्त तथा शरद्‌की फ़सलें बहुत अच्छी होती हों, तथा थोड़ी ही वृष्टिसे अन्न आदि सरस होकर पकजाते हों । और जो ऊबड़ खाबड़ तथा कंकरीली पथरीली न होनेसे अच्छी तरह जोती बोई जासके ॥ ५ ॥ दो औदक भूमियोंमें भी वही भूमि उत्तम है, जहां गेहूँ धान आदि अच्छी तरह बोये जासकें । जहां ये अन्न न हों वह भूमि अच्छी नहीं ॥ ६ ॥

तयोरल्पबहुत्वे धान्यकान्तादल्पान्महदधान्यकान्तं श्रेयः ॥७॥ महत्यवकाशे हि स्थाल्याश्चानूप्याश्चौषधयो भवन्ति ॥ ८ ॥ दुर्गादीनि च कर्माणि प्राभूत्येन क्रियन्ते ॥ ९ ॥ कृत्रिमा हि भूमिगुणाः ॥ १० ॥

उसमें भी थोड़ी या बहुतका विचार करनेपर, धान्य आदिसे युक्त थोड़ी भूमिसे, धान्य आदि पैदा न करनेवाली भी बहुत भूमि श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ क्योंकि अधिक भूमिका विस्तार होनेपर उसमें कहीं न कहीं स्थल तथा जलप्राय प्रदेशोंमें अनेक प्रकारके अन्न आदि उत्पन्न किये जासकते हैं ॥ ८ ॥ और दुर्ग आदि राज्यके स्थायी साधनोंको अधिक संख्यामें बनाया जासकता है ॥ ९ ॥ क्योंकि वस्तुतः भूमि सम्बन्धी गुण अपनी इच्छाके अनुसार बनाये जासकते हैं । तात्पर्य यह है, कि करनेवाला, भूमिको जैसा चाहे वैसा बना सकता है, इस लिये अधिकसे अधिक भूमिका हाथमें आजाना अच्छा है ॥ १० ॥

खनिधान्यभोगयोः खनिभोगः कोशकरः ॥११॥ धान्यभोगः कोशकोष्ठागारकरः ॥ १२ ॥ धान्यमूलो हि दुर्गादीनां कर्मणामारम्भः ॥१३॥ महाविषयविक्रमो वा खनिभोगः श्रेयान् ॥१४॥

खान्युक्त तथा धान्ययुक्त स्थानोंमेंसे पहिला स्थान केवल कोशकी वृद्धि करसकता है ॥ ११ ॥ परन्तु दूसरा धान्योपयोगी स्थान कोश और कोष्ठागार (अनाज रखनेके बड़े २ स्थान) दोनोंको बढ़ाता है ॥ १२ ॥ क्योंकि दुर्ग आदि कार्योंका आरम्भभी धान्य मूलक ही होता है । इसलिये धान्योपयोगी स्थान श्रेयस्कर है ॥ १३ ॥ अथवा खानोंका स्थानभी उत्तम है, क्योंकि वहांसे उत्पन्न हुई वस्तुओंका बड़ाभारी व्यापार किया जासकता है ॥ १४ ॥

द्रव्यहस्तिवनभोगयोर्द्रव्यवनभोगः सर्वकर्मणां योनिः प्रभूतनिधानक्षमश्च ॥१५॥ विपरीतो हस्तिवनभोग इत्याचार्याः ॥१६॥

बढ़िया लकड़ीके जंगल और हाथियोंके जंगलोंमेंसे कौनसा उत्तम होता है ? आचार्योंका सिद्धान्त है कि, लकड़ीके लिये उपयोगी जंगल ही अच्छा होता है। क्योंकि दुर्ग आदि सभी कार्योंमें लकड़ी की अत्यन्त आवश्यकता होती है। तथा उसका अधिकसे अधिक संचयभी सरलता से किया जासकता है ॥ १५ ॥ परन्तु हाथीके जंगलोंमें यह बात नहीं होती, इसलिये पहिलाही उत्तम है ॥ १६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १७ ॥ शक्यं द्रव्यवनमनेकमनेकस्यां भूमौ वापयितुं न हस्तिवनम् ॥ १८ ॥ हस्तिप्रधानो हि परानीकवध इति ॥ १९ ॥

कौटल्य इस उपर्युक्त सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता ॥ १७ ॥ उसका कहना है कि तरह २ की लकड़ीके जंगल अनेक स्थानोंमें अपनी इच्छाके अनुसार लगाये जा सकते हैं। परन्तु हाथियोंके जंगल स्वयं उत्पन्न नहीं किये जा सकते; हाथी किसी २ जंगलमेंही उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ और शत्रुकी सेनाको नाश करनेके लिये हाथी एक प्रधान वस्तु है इसलिये हाथियोंकी उत्पत्तिका उपयोगी जंगलही उत्तम समझना चाहिये ॥ १९ ॥

वारिस्थलपथभोगयोरनित्यो वारिपथभोगो नित्यः स्थलपथभोग इति ॥ २० ॥

वारिपथ (जलका मार्ग) और स्थलपथ (स्थलका मार्ग), यदि ये दोनोंही अनित्य (कादाचित्क=कभी २ होने वाले) हों, तो इनमेंसे वारिपथ के लिये उपयोगी स्थानही उत्तम होताहै। यदि दोनोंही नित्य (सदा होने वाले) हों, तो स्थलपथ का स्थानही श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ २० ॥

भिन्नमनुष्या श्रेणीमनुष्या वा भूमिरिति ॥ २१ ॥ भिन्नमनुष्या श्रेयसी ॥ २२ ॥

भिन्न मनुष्यों (आपसमें मिलकर न रहनेवाले मनुष्यों) से युक्त भूमि अच्छी होती है, अथवा श्रेणी मनुष्यों (सदा आपसमें मिलकर रहनेवाले मनुष्यों) से युक्त भूमि अच्छी होती है ? ॥२१॥ भिन्न मनुष्योंसे युक्त भूमिही श्रेयस्कर होती है ॥ २२ ॥

भिन्नमनुष्या भोग्या भवत्यनुपजाप्या चान्येषामनापत्सहा तु ॥ २३ ॥ विपरीता श्रेणीमनुष्या कोपे महादोषा ॥ २४ ॥

क्योंकि ऐसी भूमि शीघ्रही अपने अधीन होजाती है, अर्थात् विजिगीषु ऐसी भूमिको शीघ्रही अपने अधिकारमें कर लेता है। तथा अन्य शत्रुओंके

द्वारा यह बहकाई भी नहीं जासकती, क्योंकि यहांके मनुष्य आपसमें मिलतेही नहीं। इसलिये आपत्तियोंको सहन करनेके लिये भी ये लोग कभी तयार नहीं हो सकते ॥ २३ ॥ परन्तु श्रेणीमनुष्य भूमि, इसके सर्वथा विपरीत होती है। वह शत्रुके द्वारा बहकाई भी जासकती है, मिलकर रहनेके कारण वहांके मनुष्य हर तरहकी आपत्ति सहनेके लिये भी तयार होजाते हैं। और कुपित होनेपर राजाका भी उच्छेद कर सकते हैं ॥ २४ ॥

तस्यां चातुर्वर्ण्याभिनिवेशं सर्वभोगसहत्वादवरवर्णप्राया श्रेयसी ॥ २५ ॥ बाहुल्याद्ध्रुवत्वाच्च कृष्याः कर्षणवतीः॥ २६ ॥

उस भूमिमें चारों वर्णोंके निवासके सम्बन्धमें विचार होनेपर, यही निश्चय समझना चाहिये कि सब तरहके सुख दुःखादिका सहन करनेके कारण शूद्र, ग्वाले आदि नीच जातिके मनुष्योंसे युक्त भूमिही श्रेष्ठ होती है ॥ २५ ॥ खेतीके बहुत होनेसे, तथा निश्चित ही फलदायक होनेसे खेतीके योग्य भूमि श्रेयस्कर होती है ॥ २६ ॥

कृष्या चान्येषां चारम्भाणां प्रयोजकत्वात् गोरक्षकवती ॥२७॥ पण्यनिचयर्णानुग्रहादाढ्यवणिग्वती ॥ २८ ॥

कृषि सम्बन्धी व्यापार तथा अनेक कार्योंका निर्भर भी गाय या गोपालोंके ऊपर है। इसलिये गाय और गोपालोंसे युक्त भूमि भी उत्तम होती है ॥ २७ ॥ व्यापारके लिये धान्य आदि वस्तुओंका सञ्चय करने, तथा ब्याजपर ऋण आदि देकर उपकार करनेके कारण व्यापारी और धनिक पुरुषोंसे युक्त भूमि भी श्रेष्ठ होती है ॥ २८ ॥

भूमिगुणानामपाश्रयः श्रेयान् ॥ २९ ॥ दुर्गापाश्रया पुरुषापाश्रया वा भूमिरिति ॥ ३० ॥

भूमिके उपर्युक्त सबही गुणोंमेंसे केवल आश्रय देना या रक्षा करनाही सबसे श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥ दुर्गोंका आश्रय देनेवाली भूमि अच्छी होती है, या मनुष्योंका आश्रय देनेवाली ? तात्पर्य यह है कि दुर्गोंके सहारे किसी भूमिमें आश्रय लेना अच्छा है, या पुरुषोंके सहारे ॥ ३० ॥

पुरुषापाश्रया श्रेयसी ॥ ३१ ॥ पुरुषवद्धि राज्यम् ॥ ३२ ॥ अपुरुषा गौर्वन्ध्येव किं दुहीत ॥ ३३ ॥

पुरुषोंका आश्रय देनेवाली भूमिही उत्तम होती है। अर्थात् जहां पुरुषोंका सहारा मिलसके, वही स्थान श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ क्योंकि राज्य वस्तुतः

उसीका नाम है, जहां बहुत पुरुषोंका संयोग हो ॥ ३२ ॥ पुरुषहीन भूमि, वन्ध्या गौके समान क्या उपयोग देसकती है ? ॥ ३३ ॥

महाक्षयव्ययनिवेशात्तु भूमिमवाप्तुकामः पूर्वमेव क्रेतारं पणेत ॥ ३४ ॥ दुर्बलमराजबीजिनं निरुत्साहमपक्षमन्यायवृत्तिं व्यसनिनं दैवप्रमाणं यत्किंचनकारिणं वा ॥ ३५ ॥

जन धनका अत्यधिक व्यय करके बसाई जाने योग्य भूमिको यदि विजिगीषु प्राप्त करना चाहे, तो उसे चाहिये कि प्राप्तिके पहिले ही निम्न प्रकारके आठ राजाओंमेंसे किसीको उस भूमिका खरीदार तैयार करे ॥ ३४ ॥ दुर्बल, अराजबीजी (जो किसी राजवंशमें उत्पन्न हुआ २ न हो) उत्साहहीन, अपक्ष (जिसकी सहायता करनेवाला कोई पक्ष न हो), अन्यायवृत्ति (प्रजापर अन्याय करनेवाला), व्यसनी (शिकारी या शराबी आदि), भाग्यके भरोसेही सब काम करनेवाला, तथा जो कुछ चित्तमें आजाय, विना विचारे वही कर डालनेवाला (यत्किञ्चनकारी)। (तात्पर्य यह है कि इनमेंसे किसीको वह ज़मीन ख़रीदवाकर, जब वह अपना धन-जन आदि व्यय करके उसे बसाले, तब उसके क्षीण होनेपर विजिगीषु उस भूमिपर अपना अधिकार जमालेवे। इसी बातको अगले सूत्रोंमें बताया जाता है) ॥ ३५ ॥

महाक्षयव्ययनिवेशायां हि भूमौ दुर्बलो राजबीजी निविष्टः सगन्धाभिः प्रकृतिभिः सह क्षयव्ययेनावसीदति ॥ ३६ ॥

जन-धन आदिका अत्यधिक व्यय करके बसाई जाने योग्य भूमिमें जब बलहीन, राजवंशमें उत्पन्न हुआ २ राजा, निवास बनादे, अर्थात् जब उस भूमिको बसादेता है, तो अत्यधिक पुरुषोंका क्षय और धनका व्यय होनेके कारण, अपनी सहायता करनेवाले सजातीय अमात्य आदि प्रकृति जनोंके साथ ही वह क्षीण होजाता है ॥ ३६ ॥

बलवानराजबीजी क्षयभयादसगन्धाभिः प्रकृतिभिस्त्यज्यते ॥ ३७ ॥ निरुत्साहस्तु दण्डवानपि दण्डस्याप्रणेता सदण्डः क्षयव्ययेनावभज्यते ॥ ३८ ॥

राजवंशमें उत्पन्न न हुए २ बलवान् राजाको, पुरुषोंके क्षय और धनके व्यय होजानेके भयसे विजातीय अमात्य आदि सहायक प्रकृति जन छोड़ देते हैं ॥ ३७ ॥ उत्साहहीन राजा सेनाके होते हुए भी, उसका उचित रीतिसे उपयोग नहीं कर सकता; इसलिये सेनाके सहित ही, जन-धनका क्षय व्यय होजानेके कारण नष्ट होजाता है ॥ ३८ ॥

कोशवानप्यपक्षः क्षयव्ययानुग्रहहीनत्वान्न कुतश्चित्प्राप्नोति ॥ ३९ ॥ अन्यायवृत्तिं निविष्टमप्युत्थापयेत् ॥ ४० ॥ स कथमनिविष्टं निवेशयेत् ॥ ४१ ॥

कोश रहते हुए भी मित्र रहित राजा, क्षय व्यय (योग्य पुरुषोंके नाशका नाम क्षय, और धनका न्यून होजाना व्यय कहाता है) में सहायता न मिलनेके कारण किसी तरहभी सिद्धिको प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ३९ ॥ प्रजापर अन्याय करनेवाले बसे हुए भी राजाको जब प्रजा उखाड़ देती है, तो नये प्रदेशको वह कैसे बसा सकता है ? ॥ ४०-४१ ॥

तेन व्यसनी व्याख्यातः ॥ ४२ ॥ दैवप्रमाणो मानुषहीनो निरारम्भो विपन्नकर्मारम्भो वावसीदति ॥ ४३ ॥

व्यसनी राजाका भी यही हाल होता है ॥ ४२ ॥ केवल भाग्यपर भरोसा करनेवाला राजा भी पौरुषहीन हुआ २ किसी कार्यको प्रारम्भ नहीं करता, यदि करभी देता है, तो प्रारम्भ किये कार्यमें विघ्न आजानेपर उसे छोड़ बैठता है, और इस प्रकार जन-धनका नाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

यत्किंचनकारी न किंचिदासादयति ॥४४॥ स चैषां पापिष्ठतमो भवति ॥ ४५ ॥ यत्किंचिदारभमाणो हि विजिगीषोः कदाचिच्छिद्रमासादयेदित्याचार्य्याः ॥ ४६ ॥

विना विचारे इच्छानुसार कार्य करनेवाला राजा कभी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता ॥ ४४ ॥ परन्तु इन उपर्युक्त सभी राजाओंमेंसे वह विजिगीषुके लिये अत्यन्त हानिकारक हो सकता है ॥ ४५ ॥ क्योंकि जिस किसी कार्यका आरम्भ करता हुआ शत्रु, कदाचित् विजिगीषुके किसी दोषका पता लगा लेवे, और उसके द्वारा विजिगीषुको हानि पहुंचा सके। क्योंकि विजिगीषु उसे मूर्ख समझकर उसकी ओरसे उपेक्षा दृष्टि रखता है। यह प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ४६ ॥

यथा छिद्रं तथा विनाशमप्यासादयेदिति कौटल्यः ॥४७॥ तेषामलाभे यथा पार्ष्णिग्राहोपग्रहे वक्ष्यामस्तथा भूमिमवस्थापयेदित्यभिहितसंधिः ॥ ४८ ॥

परन्तु कौटल्यका मत है कि वह विजिगीषुके दोषोंको जाननेकी तरह अपने विनाशको भी प्राप्त कर सकता है, क्योंकि विजिगीषु तो इसके अनेक

दोषोंसे परिचित रहता है। इसलिये उसे जब चाहे दबा सकता है ॥ ४७ ॥ यदि इन उपर्युक्त राजाओंमेंसे कोई भी उस भूमिको खरीदनेवाला न मिले, तो जिस प्रकार पार्ष्णिग्राहके साथ सन्धि आदिके प्रकरणमें (देखो–अधि. ७, अध्या. १३) बताया जायगा, उसहीके अनुसार भूमिके बसाने आदिकी व्यवस्था करे। इसीका नाम 'अभिहितसन्धि' है। क्योंकि भूमिके लेने और देनेसे उत्पन्न होनेके कारण यह विचलित नहीं होती, बराबर बनी रहती है ॥ ४८ ॥

गुणवतीमादेयां वा भूमिं बलवता क्रयेण याचितः संधिमवस्थाप्य दद्यादित्यनिभृतसंधिः ॥ ४९ ॥

विशेष गुणयुक्त भूमिको, जो कि खरीदनेवालेकी उपेक्षासे कालान्तरमें अपनेही पास फिर वापस आजानेवाली हो, बलवान् सामन्त यदि क्रयके द्वारा मांगे, अर्थात् खरीदना चाहे, तो उसके साथ 'अवसर होनेपर तुम मेरी सहायता करोगे' इस प्रकार सामान्यसन्धि की स्थापना करके, वह भूमि उसके हाथ बेच देवे। इसका नाम 'अनिभृतसन्धि' कहाता है। क्योंकि प्रबल सामन्त, दुर्बलके प्रति अविश्वास कर सकता है, और अपनी प्रतिज्ञात सन्धिको तोड़ सकता है ॥ ४९ ॥

समेन वा याचितः कारणमवेक्ष्य दद्यात् ॥ ५० ॥ प्रत्यादेयो मे भूमिर्वश्या वानया प्रतिबद्धः परो मे वश्यो भविष्यति भूमिविक्रयाद्वा मित्रहिरण्यलाभः कार्यसामर्थ्यकरो मे भविष्यतीति ॥ ५१ ॥ तेन हीनः क्रेता व्याख्यातः ॥ ५२ ॥

यदि बराबर शक्तिवाला राजा, उस भूमिको क्रय करना चाहता है, तो निम्नलिखित कारणोंको अच्छी तरह सोच विचारकर, वह भूमि उसको बेच देवे ॥ ५० ॥ वे कारण ये हैं:—'बेचदेनेपर भी यह भूमि कालान्तर में मेरे पास आसकेगी; अथवा मेरे उपयोगमें आती रहेगी, अर्थात् बेचनेपरभीमैं इससे लाभ उठाताही रहूंगा, अथवा समशक्ति राजाके साथ इसके द्वारा सम्बन्ध होने पर दूसरा शत्रु मेरे अधीन होजायगा, अथवा भूमिके बेचनेसे, प्रत्येक कार्योंके पूर्ण करनेमें समर्थ, मित्र और धन सम्पत्तिका लाभ होगा'। इन्हीं सब कारणों को विचार पूर्वक निश्चय करके वह भूमि बेचदेवे ॥५१॥ इसीप्रकार अपनेसे हीन शक्ति क्रेताके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये ॥ ५२ ॥

एवं मित्रं हिरण्यं च सजनामजनां च गाम् ।
लभमानो ऽतिसंधत्ते शास्त्रवित्सामवायिकान् ॥ ५३ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ अनवसितसंधिः एकादशो ऽध्यायः ॥ ११ ॥ आदितो नवशतः ॥ १०९ ॥

अर्थशास्त्रको जाननेवाला राजा, इस प्रकार मित्र, धन सम्पति, तथा आबाद एवं उजाड़ भूमिको प्राप्त करता हुआ, अपने साथी दूसरे राजाओंकी अपेक्षा सदाही विशेषलाभ उठाता है ॥ ५३ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

बारहवां अध्याय

११६ प्रकरण

कर्म सन्धि ।

त्वं चाहं च दुर्गं कारयावह इति कर्मसंधिः ॥ १ ॥ तयोर्यो दवकृतमविषह्यमल्पव्ययारम्भं दुर्गं कारयति सो ऽतिसंधत्ते ॥२॥

'तुम और मैं मिलकर दुर्ग बनवायें' इसप्रकार निश्चित रूपसे कार्यवस्तु कानाम लेकर जो सन्धि कीजाती है, उसे 'कर्मसन्धि' कहते हैं ॥ १ ॥ विजिगीषु और उसके साथी, दोनोंमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है जो स्वभावसेही दुर्गम स्थानमें, अतएव शत्रुओंसे दुर्भेद्य, थोड़ाही धन व्ययकरके अपना दुर्ग बनवाता है ॥ २ ॥

तत्रापि स्थलनदीपर्वतदुर्गाणामुत्तरोत्तरं श्रेयः ॥ ३ ॥ सेतुबन्धयोरप्याहार्योदकात्सहोदकः श्रेयान् ॥ ४ ॥ सहोदकयोरपि प्रभूतवापस्थानः श्रेयान् ॥ ५ ॥

ऐसे दुर्गोंमेंभी स्थलमें बनेहुए दुर्गकी अपेक्षा, नदीका दुर्ग अच्छा होता है, और उससेभी अच्छा पर्वत प्रदेशमें बनाहुआ दुर्ग होता है ॥३॥ (पक्के बांध लगाकर जलका रोकना सेतुबन्ध कहाता है) सेतुबन्धोंमेंभी केवल वर्षा ऋतुमें जल इकट्ठा होनेवालेकी अपेक्षा स्वभावसे ही जलयुक्त सेतुबन्ध उत्तम होता है ॥ ४ ॥ उनमें भी वह श्रेष्ठ है, जहां खेती करनेके लिए स्थान पर्याप्त हो ॥ ५ ॥

द्रव्यवनयोरपि यो महत्सारवद्द्रव्याटवीकं विषयान्ते नदीमातृकं द्रव्यवनं छेदयति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥ नदीमातृकं हि स्वाजीवमपाश्रयश्चापदि भवति ॥ ७ ॥

अनेक पदार्थोंके उत्पत्ति स्थान बन प्रदेशोंमें भी, जो राजा अपने सीमा प्रान्तमें नदियोंसे सींचेजाने वाले, तथा अच्छीतरह फल आदि उत्पन्न करनेवाले जंगलोंको ठीक कर लेता है वह विशेषलाभ प्राप्त करलेता है ॥६॥ क्योंकि नदीसे

सींचेजानेवाले स्थान सुखपूर्वक आजीविकाके साधन होते हैं और विपत्ति पड़ने पर उनमें आश्रयभी लिया जासकता है ॥ ७ ॥

हस्तिमृगवनयोरपि यो बहुशूरमृगं दुर्बलप्रतिवेशमनन्तावक्रोशि विषयान्ते हस्तिवनं बध्नाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ ८ ॥

हाथियोंके जंगलोंमें भी, जो राजा अनेक शक्तिशाली जंगली जानवरों (हाथियों) से युक्त, दुर्बलोंके लिये भी नियत स्थानवाले तथा अत्यधिक आनेजानेके मार्गोंसे युक्त, हाथियोंके जंगलोंको अपने सीमाप्रान्तमें बसाता है, वही लाभमें रहता है ॥ ८ ॥

तत्रापि बहुकुण्ठाल्पशूरयोरल्पशूरं श्रेयः ॥ ९ ॥ शूरेषु हि युद्धम् ॥ १० ॥ अल्पाः शूरा बहून्शूरान्भञ्जन्ति ते भग्नाः स्वसैन्यावघातिनो भवन्तीत्याचार्याः ॥ ११ ॥

इस प्रकारके हाथियोंके जंगलोंमें भी, जिसमें संख्यामें अधिक पर शक्तिहीन हाथी हों, उसकी अपेक्षा शक्तिशाली थोड़े हाथियोंका जंगल उत्तम है ॥ ९ ॥ क्योंकि शक्तिशाली हाथियोंके भरोसेपर ही युद्ध होता है ॥ १० ॥ थोड़े भी शक्त, बहुतसे अशक्तों को भगा देते हैं । और वह विशृंखलित (तितर बितर) हुए २ हाथी अपनी ही सेनाको कुचल डालते हैं । यह आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ११ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १२ ॥ कुण्ठा बहवः श्रेयाँसः स्कन्धविनियोगादनेकं कर्म कुर्वाणाः स्वेषामपाश्रयो युद्धे ॥१३॥ परेषां दुर्धर्षा विभीषणाश्च ॥ १४ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ १२ ॥ उसके सिद्धान्त में शक्तिहीन भी बहुत हाथियोंका होना श्रेयस्कर है । क्योंकि सेनाके अनेक विभागोंमें पृथक् २ अनेक कार्य उनसे लिये जासकते हैं । इसलिये युद्धमें वे अपने अच्छे सहायक होते हैं ॥ १३ ॥ तथा शत्रुको घबड़ादेनेवाले, और इसी लिये उनके वशमें न आनेवाले होते हैं । तात्पर्य यह है कि शत्रु उनकी अधिक संख्याको देखकरही डरजाता है । और मैदानसे भागजाता है ॥ १४ ॥

बहुषु हि कुण्ठेषु विनयकर्मणा शक्यं शौर्यमाधातुम् ॥१५॥ न त्वेवाल्पेषु शूरेषु बहुत्वमिति ॥ १६ ॥

संख्यामें अधिक हाथी यदि कुण्ठ (युद्ध आदि करनेमें चतुरता न रखने वाले, सामर्थ्यहीन) भी हों, तोभी कोई हानि नहीं, क्योंकि युद्ध सम्बन्धी विविध शिक्षाओंके द्वारा उन्हें सुचतुर तथा समर्थ बनाया जासकता है ॥१५॥

परन्तु शक्तिशाली थोड़े हाथियोंके होनेपर, उनकी संख्याको सहसा बढ़ाया नहीं जा सकता है ॥ १६ ॥

खन्योरपि यः प्रभूतसारामदुर्गमार्गामल्पव्ययारम्भां खनिं खानयति सोऽतिसंधत्ते ॥ १७ ॥ तत्रापि महासारमल्पमल्पसारं वा प्रभूतमिति ॥ १८ ॥

खानोंमें भी, जो राजा अधिक बढ़िया माल देनेवाली, अति दुर्गम मार्गोंसे युक्त, तथा थोड़ाही धन व्ययकरके खानोंको खुदवाता है, वही विशेष लाभ उठाता है ॥ १७ ॥ खानोंमेंभी, बहुमूल्य मणि आदि श्रेष्ठ वस्तुओंको थोड़े परिमाणमें उत्पन्न करनेवाली खान अच्छी है, अथवा अल्पमूल्यकी, परिमाणमें अत्यधिक वस्तुओंको उत्पन्न करनेवाली अच्छी है ? ॥ १८ ॥

महासारमल्पं श्रेयः ॥ १९ ॥ वज्रमणिमुक्ताप्रवालहेमरूप्य-धातुर्हि प्रभूतमल्पसारमत्यर्घेण ग्रसत इत्याचार्याः ॥ २० ॥

अनेक आचार्योंका मत है कि बहुमूल्य, श्रेष्ठ, थोड़ी वस्तुकी ही उत्पत्ति उत्तम है ॥ १९ ॥ क्योंकि हीरा, मणि, मोती, मूंगा, सोना, चांदी आदि बहु-मूल्य पदार्थ, अपने मुकाबलेमें अल्पमूल्य अत्यधिक पदार्थकोभी मूल्यकी तुलना होनेपर दबालेते हैं । अर्थात् थोड़ेभी हीरा, मणि आदिका मूल्य अन्य अधिक वस्तुओंके मूल्यसे अधिकही रहता है ॥ २० ॥

नेति कौटल्यः ॥२१॥ चिरादल्पो महासारस्य क्रेता विद्यते ॥ २२ ॥ प्रभूतः सातत्यादल्पसारस्य ॥ २३ ॥ एतेन वणिक्पथो व्याख्यातः ॥ २४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्यका यह सिद्धान्त नहीं है ॥ २१ ॥ वह कहता है कि बहुमूल्य वस्तुका खरीदनेवाला, बहुतसमयमें कोई विरलाही आदमी मिलता है ॥ २२ ॥ परन्तु अल्पमूल्य वस्तुओंको खरीदनेवाले, सदाही बहुत मिलते हैं ॥ २३ ॥ इससे व्यापारी मार्गोंका बनानाभी समझलेना चाहिये । अर्थात् जिस प्रकार व्यापारी मार्गोंके बनानेपर विशेषलाभ होसके, उसी तरह उनका निर्माण किया जावे ॥ २४ ॥

तत्रापि वारिस्थलपथयोर्वारिपथः श्रेयान् ॥ २५ ॥ अल्प-व्ययव्यायामः प्रभूतपण्योदयश्चेत्याचार्याः ॥ २६ ॥

इनमेंभी जलीयमार्ग और स्थलमार्गोंमेंसे जलीयमार्गही श्रेयस्कर है ॥ २५ ॥ क्योंकि वह थोड़ासा धनव्यय करनेपर, थोड़ेही परिश्रमसे तैयार किया

जासकता है । तथा जलमार्गसे मालभी बड़ी आसानीके साथ लाया लेजाया जासकता है । इस लिये इनमार्गोंसे बहुत लाभ होनेकी सम्भावना रहती है । यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ २६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २७ ॥ संरुद्धगतिरसार्वकालिकः प्रकृष्टभययोनिर्निष्प्रतिकारश्च वारिपथः, विपरीतः स्थलपथः ॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ २७ ॥ क्योंकि जलका मार्ग, विपत्ति में सब ओरसे रुक सकता है, वृष्टि आदिके समयमें उससे जाना आनाभी नहीं होसकता, इसलिये सब ऋतुओंके लिये उपयोगी भी नहीं । तथा स्थलमार्गकी अपेक्षा अधिक भयजनक है (क्योंकि जलमें डूबने आदिका डर बहुत रहताहै), और जल मार्गमें भय उपस्थित होने पर उसका प्रतीकारभी नहीं किया जासकता । परन्तु स्थलमार्ग इससे बिल्कुल विपरीत होता है । इसलिये दोनोंमेंसे स्थलमार्गकोही उत्तम समझना चाहिये ॥२८॥

वारिपथे तु कूलसंयानपथयोः कूलपथः पण्यपट्टणबाहुल्याच्छ्रेयान्नदीपथो वा सातत्याद्विषह्याबाधत्वाच्च ॥ २९ ॥

जलीयमार्ग भी दो प्रकारके होते हैं, एक जलके किनारे २ का मार्ग (कूलपथ), और दूसरा जलके मध्यका मार्ग (संयानपथ=समुद्र आदि, निरन्तर जलही जलमें जाना) इन दोनों मार्गोंमेंसे भी प्रथम जलीयमार्ग अच्छा होता है । क्योंकि ऐसे मार्गोंपर व्यापारी नगर बहुत होते हैं, और उनसे बहुत लाभ उठाया जासकता है । अथवा नदीके द्वारा जो जलमार्ग नियत किये जाते है, वे भी उत्तम समझने चाहियें । क्योंकि नदीजलकी धारा निरन्तर बनी रहती है, और उस मार्गमें कोई उत्कटबाधा भी उपस्थित नहीं होती ॥ २९ ॥

स्थलपथेऽपि हैमवतो दक्षिणापथाच्छ्रेयान् ॥ ३० ॥ हस्त्यश्वगन्धदन्ताजिनरूप्यसुवर्णपण्याः सारवत्तरा इत्याचार्याः ॥३१॥

स्थलमार्गमें भी दक्षिण ओरके मार्गकी अपेक्षा उत्तरका मार्ग श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ क्योंकि इस ओर हाथी, घोड़े, कस्तूरी, दान्त, चर्म, चांदी और सोना आदि बहुमूल्य विक्रेय वस्तुऐं बहुतायतसे मिल जाती हैं, यह आचार्यों-का मत है ॥ ३१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ कम्बलाजिनाश्वपण्यवर्जाः शङ्खवज्रमणिमुक्ताः सुवर्णपण्याश्च प्रभूततरा दक्षिणापथे ॥ ३३ ॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहींमानता ॥ ३२ ॥ वह कहता है कि कम्बल, चर्म तथा घोड़े आदि इन विक्रेय वस्तुओंको छोड़कर शेष हाथी

आदि सबही वस्तुऐं, तथा शङ्ख, हीरा, मणि, मोती, सुवर्ण आदि अन्य अनेक विक्रेय वस्तुऐं उत्तरकी अपेक्षा दक्षिणकी ओर ही अधिक होती हैं। इसलिये दक्षिणकी ओरका मार्गही श्रेयस्कर है ॥ ३३ ॥

दक्षिणापथेऽपि बहुखनिः सारपण्यः प्रसिद्धगतिरल्पव्यायामो वा वणिक्पथः श्रेयान् ॥ ३४ ॥ प्रभूतविषयो वा फल्गुपण्यः ॥ ३५ ॥ तेन पूर्वः पश्चिमश्च वणिक्पथो व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

दक्षिण मार्गमें भी बहुत खानोंसे युक्त, बहुमूल्य विक्रेय वस्तुओंवाला, तथा निर्विघ्न आनेजानेके लिये उपयोगी और थोड़ेही परिश्रमसे सिद्धहोने वाला व्यापारी मार्ग उत्तम समझना चाहिये ॥ ३४ ॥ अथवा वह मार्ग श्रेष्ठ समझना चाहिये, जिसपर थोड़ी कीमतकी भी चीजें बहुत अधिक परिमाणमें होती हों, या जहां कमकीमतकी भी वस्तुओंको खरीदनेवाले बहुत अधिक हों ॥ ३५ ॥ इससे पूर्व और पश्चिमके व्यापारी मार्गोंको भी समझ लेना चाहिये ॥ ३६ ॥

तत्रापि चक्रपादपथयोश्चक्रपथो विपुलारम्भत्वाच्छ्रेयान् ॥३७॥ देशकालसंभावनो वा खरोष्ट्रपथः॥ ३८ ॥ आभ्यामंसपथो व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

इन व्यापारी मार्गोंमें भी, पैदलके मार्गकी अपेक्षा गाड़ी आदिका मार्ग अधिक उत्तम समझना चाहिये। क्योंकि ऐसे मार्गोंके द्वारा बहुत अधिक व्यापार किया जासकता है। विक्रेय वस्तुएं अधिक तादादमें लाई लेजाई जासकती हैं ॥ ३७ ॥ देशकालके अनुसार गधे और ऊंटोंका मार्गभी श्रेष्ठ समझना चाहिये क्योंकि इनके द्वारा भी, व्यापार अधिक परिमाणमें किया जासकता है ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार कंधोंपर भार ढोनेवाले बैल आदिके, व्यापारीमार्गोंका विवरणभी समझलेना चाहिये ॥ ३९ ॥

परकर्मोदयो नेतुः क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।
तुल्ये कर्मपथे स्थानं ज्ञेयं स्वं विजिगीषुणा ॥ ४० ॥

शत्रुका अपने कार्योंसे लाभ होना ही, विजिगीषुका क्षय समझना चाहिये। तथा अपने कार्योंके सफल होनेपर ही वृद्धि समझनी चाहिये। यदि कार्योंका फल दोनोंको बराबर ही हो, तो विजिगीषुको बराबर ही समझना चाहिये। कि मैं अपने उसी स्थानपर अवस्थित हूं। मैंने उन्नति या अवनति कुछ नहीं की ॥ ४० ॥

अल्पागमातिव्ययता क्षयो वृद्धिर्विपर्यये ।
समायव्ययता स्थानं कर्मसु ज्ञेयमात्मनः ॥ ४१ ॥

थोड़ी आय और अधिक व्यय हो तो क्षय; और इससे विपरीत होनेपर वृद्धि समझनी चाहिये । तथा कार्योंमें बराबर आय और व्यय होनेपर समान अवस्था समझनी चाहिये ॥ ४१ ॥

तस्मादल्पव्ययारम्भं दुर्गादिषु महोदयम् ।
कर्म लब्ध्वा विशिष्टः स्यादित्युक्ताः कर्मसंधयः ॥४२॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधौ कर्मसंधिर्द्वादशो ऽध्यायः ॥ १२ ॥ आदितो दशशतः ॥ ११० ॥

इसलिये विजिगीषुको उचित है, कि वह दुर्ग आदि कार्योंमें थोड़ा व्यय करके ही महानफलको प्राप्त करनेका यत्न करे । बड़े फल वाले कार्यको प्राप्त करके ही विजिगीषु शत्रुसे बढ़ सकता है । इसप्रकार यहांतक कर्मसन्धियोंका निरूपण किया गया ॥ ४२ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें बारहवां अध्याय समाप्त ।

तेरहवां अध्याय

११७ प्रकरण

पार्ष्णिग्राह चिन्ता

{ पृष्ठ स्थित शत्रुको पार्ष्णिग्राह कहते हैं । ऐसी अवस्थामें विजिगीषुको क्या करना चाहिये, इसी बातका विचार इस अध्यायमें कियागया है ।

संहत्यारिविजिगीष्वोरमित्रयोः पराभियोगिनोः पार्ष्णिं गृह्णतोर्यः शक्तिसंपन्नस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १ ॥

विजिगीषु और शत्रु मिलकर, जब पृष्ठवर्ती होकर किसी राजापर आक्रमण करें, तो इनमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है, जो कि अपने शत्रुभूत, दूसरेके साथ युद्ध करनेमें लगे हुए दो राजाओंमेंसे शक्ति सम्पन्न राजाकी पार्ष्णिको ग्रहण करता है ॥ १ ॥

शक्तिसंपन्नो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ २ ॥

क्योंकि शक्तिसम्पन्न राजाही अपने शत्रुका उच्छेद करके पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है । तात्पर्य यह है:—जब शत्रु अपने शत्रुके साथ युद्ध

करता हुआ हो, तबही विजिगीषु और शत्रुको मिलकर उनपर आक्रमण करना चाहिये। क्योंकि यदि पार्ष्णिग्राह बनेहुए विजिगीषुका शत्रु अपने शत्रुको जीत लेगा तो अधिक बलवान् होकर विजिगीषुको भी पीछेसे नष्ट करडालेगा। इस लिये विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने शत्रुके साथ युद्ध करते हुएही शत्रुपर आक्रमण करके उसके विजयमें विघ्न डालदे, जिससे कि वह शत्रुको जीतकर बलवान् न होसके। ऐसी अवस्थामें यथोक्त विजिगीषु और शत्रुमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है, जो युद्ध करते हुए बलवान् शत्रुका पार्ष्णिग्राह बनता है। क्योंकि उसहीसे अपने उच्छेदकी अधिक आशङ्का रहती है। दुर्बल शत्रु, विजिगीषुका कुछ नहीं बिगाड़ सकता ॥ २ ॥

न हीनशक्तिरलब्धलाभ इति ॥ ३ ॥

हीनशक्ति, शत्रुराजा तो अपने शत्रुका उच्छेद करनेमें असमर्थ होनेके कारण बलयुक्त नहीं होसकता, इसीलिये उसकी ओरसे कोई शङ्का नहीं हो सकती। अतएव उसको पार्ष्णिको ग्रहण करनेवाले विजिगीषु या शत्रुको कोई विशेष लाभ नहीं होता ॥ ३ ॥

शक्तिसाम्ये यो विपुलारम्भस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ ४ ॥

यदि शत्रु समान शक्तिके हों, तो जो अन्न आदि खाद्य पदार्थ तथा युद्ध सम्बन्धी अन्य सब प्रकारकी सामग्रीसे सम्पन्न हो (विपुलारम्भ), उसहीके पार्ष्णिको जो ग्रहण करता है, वह विशेष लाभमें रहता है ॥ ४ ॥

विपुलारम्भो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नाल्पारम्भः सक्तचक्र इति ॥ ५ ॥

क्योंकि विपुल युद्धयात्रा सम्बन्धी सामग्रीसे सम्पन्न हुआ २ शत्रु राजा, अपने शत्रुका उच्छेद करके पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है। इसलिये ऐसे शत्रुको कभी बढ़ने न देना चाहिये। जिसके पास युद्धयात्रा सम्बन्धी कोई विशेष सामग्री नहीं है, अपनी बिखरी हुई सेनाको अभी इकट्ठा करनेमें ही लगा है, वह न अपने शत्रुका उच्छेद कर सकता है, और न उससे विजिगीषुको भय होना चाहिये। इसलिये ऐसे राजाके पार्ष्णिपर आक्रमण करना लाभदायक नहीं होता ॥ ५ ॥

आरम्भसाम्ये यः सर्वसंदोहेन प्रयातस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ ६ ॥

यदि युद्धयात्रा सम्बन्धी सामग्री भी समानही हो, तो उन राजाओंमेंसे

ऐसे राजाके पार्ष्णिको ग्रहण करनेपर ही विशेष लाभ हो सकता है, जो अपने सम्पूर्ण सैन्यको लेकर शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये चढ़गया हो ॥ ६ ॥

शून्यमूलो ह्यस्य सुकरो भवति नैकदेशबलप्रयातः कृतपार्ष्णिप्रतिविधान इति ॥ ७ ॥

क्योंकि मूलस्थानमें रक्षक सेनाके न होनेसे, इसको वशमें करना अत्यन्त सुकर है, किन्तु जो अपनी थोड़ीसी सेनाको साथ लेजाकर शेषको मूलस्थानकी रक्षाके लिये छोड़ देता है; उसके पार्ष्णि ग्रहण करनेमें लाभ नहीं होता, क्योंकि वह पार्ष्णिग्राहका अच्छी तरह प्रतीकार कर सकता है ॥ ७ ॥

बलोपादानसाम्ये यश्चलामित्रं प्रयातस्य पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥८॥ चलामित्रं प्रयातो हि सुखेनावाप्तसिद्धिः पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्न स्थितामित्रं प्रयातः ॥ ९ ॥ असौ हि दुर्गप्रतिहतः पार्ष्णिग्राहे च प्रतिनिवृत्तस्थितेनामित्रेणावगृह्यते ॥ १० ॥

बराबर सेनाओंको लेजाने वाले राजाओंमेंसे भी उसहीका पार्ष्णि ग्रहण करनेमें विशेष लाभ हो सकता है; जिसने अपने दुर्ग रहित शत्रुपर आक्रमण किया हो ॥ ८ ॥ क्योंकि दुर्ग रहित शत्रुपर आक्रमण करनेवाला राजा, सहजमें ही उसे अपने अधीन करके अधिक बलवान् बन सकता है। और फिर वह पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है। परन्तु दुर्गोंसे सम्पन्न राजाके ऊपर चढ़ाई करनेपर ऐसा नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ क्योंकि दुर्गोंके द्वारा उसका अच्छी तरह प्रतीकार किया जासकता है। इसलिये ऐसे राजाके पार्ष्णिपर आक्रमण करनेमें कोई लाभ नहीं। प्रत्युत हानिकी ही सम्भावना की जासकती है। क्योंकि जब वह दुर्गसम्पन्न राजाके साथ अपना वश न चलनेपर खिसियाया हुआ घरकी ओर वापस लौटता है, तो पार्ष्णिग्राहके साथही युद्ध करनेके लिये सन्नद्ध होजाता है। और ऐसी अवस्थामें पार्ष्णिग्राहको हानिही होती है, लाभ कुछ नहीं ॥ १० ॥

तेन पूर्वे व्याख्याताः ॥ ११ ॥

दुर्गसम्पन्न शत्रुपर आक्रमण करनेवालेके पार्ष्णिका ग्रहण करनेवालेकी तरह, हीनशक्तिके पार्ष्णिग्राही, अल्पारम्भ (५ सूत्रदेखो) के पार्ष्णिग्राही, तथा कुछ सेना लेजानेवालेके पार्ष्णिग्राही राजाओंकी अवस्था भी समझ लेनी चाहिये ॥११॥

शत्रुसाम्ये यो धार्मिकाभियोगिनः पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥१२॥ धार्मिकाभियोगी हि स्वेषां च द्वेष्यो भवति ॥१३॥ अधार्मिकाभियोगी संप्रियः ॥ १४ ॥

सर्वथा समानशक्ति शत्रुओंमेंसे उसहीका पार्ष्णिग्राह होनेमें विशेष लाभ होता है, जिसने अपने किसी धर्मात्मा शत्रुपर आक्रमण किया हुआ हो ॥ १२ ॥ क्योंकि ऐसा करनेपर अपने और पराये सभी उसके साथ द्वेष करने लगते हैं, ऐसी अवस्थामें पार्ष्णिग्राह, सरलतासेही उसे अपने वशमें कर सकता है ॥ १३ ॥ परन्तु अधर्मात्मा शत्रुपर आक्रमण करनेवाला राजा सभीका प्रिय होजाता है, उसका अपने शत्रुपर जयलाभ करना निश्चित है, इसलिये ऐसे राजाके पार्ष्णिका ग्रहण करना लाभदायक नहीं होता ॥ १४ ॥

तेन मूलहरतादात्विककदर्याभियोगिनां पार्ष्णिग्रहणं व्याख्यातम् ॥ १५ ॥

इससे मूलहर तादात्विक तथा कदर्य राजाओंपर आक्रमण करनेवालेके पार्ष्णिग्रहणका भी लाभालाभ समझ लेना चाहिये । तात्पर्य यह है:—पितृ पैतामह परम्पराप्राप्त सम्पत्तिको अन्यायपूर्वक खानेवाले राजाका नाम 'मूलहर' है। समय २ पर प्राप्त हुई सम्पत्तिको व्यर्थ व्ययकरने वाला 'तादात्विक' कहाता है। भृत्यों तथा अपने आपको पीड़ा पहुंचाकर सम्पत्ति इकट्ठा करनेवाले राजाको 'कदर्य' कहते हैं ॥ इस प्रकार मूलहर और तादात्विक राजाओंपर आक्रमण करनेवालोंमेंसे, मूलहरपर आक्रमण करनेवालेके पार्ष्णिको जो ग्रहण करता है, वही विशेष लाभमें रहता है । क्योंकि अर्थकष्टमें पड़ेहुए मूलहर राजाको उच्छेद कर, वह पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद करसकता है । अतः पार्ष्णिग्राह यदि बीचमें ही विघ्न डालदे, तो उसका अपनी रक्षा होजाना ही विशेष लाभ होता है । इसी तरह तादात्विक और कदर्य राजाओंपर आक्रमण करनेवालोंमेंसे कदर्यपर आक्रमण करनेवाले राजाके पार्ष्णिको जो दबाता है । वही लाभमें रहता है । क्योंकि कंजूस राजा कभी नौकरोंकी भलाई नहीं करता । इस लिये उसका सरलतासे उच्छेद करके, शत्रु, पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है । अतः उसके विजयमें विघ्नडालना विजिगीषुके लिये अत्यन्त आवश्यक है ॥ १५ ॥

मित्राभियोगिनोः पार्ष्णिग्रहणे त एव हेतवः ॥१६॥ मित्रममित्रं चाभियुञ्जानयोर्योऽमित्राभियोगिनः पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥ १७ ॥ मित्राभियोगी हि सुखेनावाप्तसंधिः पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात् ॥ १८ ॥

मित्र राजाओंपर आक्रमण करनेवालोंके पार्ष्णिका ग्रहण करनेमेंभी वेही कारण समझने चाहियें, जोकि ये अतिसन्धिके कारण निर्देश किये गये हैं ॥ १६ ॥ मित्र और शत्रुपर आक्रमण करनेवाले राजाओंमेंसे जो मित्रपर आक-

मण करनेवाले राजाके पार्ष्णिका ग्रहण करता है, वह विशेष लाभमें रहता है ॥ १७ ॥ क्योंकि मित्रपर आक्रमण करने वाला सहज ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, और फिर बलवान् होकर पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद कर सकता है ॥ १८ ॥

सुकरो हि मित्रेण संधिर्नामित्रेणेति ॥ १९ ॥

क्योंकि मित्रके साथ सन्धि होजाना बहुत सुकर है। शत्रुके साथ सन्धि, कुछ कठिनतासे ही होसकती है, अतः शत्रुपर आक्रमण करनेवाला राजा, सिद्धि लाभ न करता हुआ, पार्ष्णिग्राहका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ॥ १९ ॥

मित्रममित्रं चोद्धरतोर्योऽमित्रोद्धारिणः पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसंधत्ते ॥२०॥ वृद्धमित्रो ह्यमित्रोद्धारी पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यान्नेतरः स्वपक्षोपघाती ॥ २१ ॥

मित्र और शत्रुका उद्धार (उन्मूलन=उच्छेद) करनेवाले राजाओंमें से जो शत्रुका उद्धार करनेवाले राजाके पार्ष्णिका ग्रहण करता है, वही विशेषलाभ में रहता है ॥ २० ॥ क्योंकि शत्रुका उद्धार करनेवाला राजा, स्वपक्ष या मित्र के बढ़जानेपर अधिक बलवान् हुआ २ पार्ष्णिग्राहका भी उच्छेद करसकता है। परन्तु दूसरा, मित्रकाही उद्धार करनेवाला राजा, अपनेही पक्षका घातक होनेके कारण हीन हुआ २ कभीभी पार्ष्णिग्राहका उच्छेद नहीं करसकता, इसीलिये इस की ओरसे तो कोई भय रखनाही नहीं चाहिये ॥ २१ ॥

तयोरलब्धलाभापगमने यस्यामित्रो महतो लाभाद्वियुक्तः क्षयव्ययाधिको वा स पार्ष्णिग्राहो ऽतिसंधत्ते ॥ २२ ॥

मित्र और शत्रुका उद्धार करनेवाले राजाओंके कुछ विशेष लाभ प्राप्त किये बिनाही लौट आनेपर, जिसका शत्रु बड़े लाभसे रहित हो, तथा जिसके पुरुषोंका क्षय और धनका भी पर्याप्त व्यय होगया हो, ऐसे शत्रुपर आक्रमण किये हुए राजाका पार्ष्णिग्राह विशेष लाभमें रहता है। क्योंकि यह शत्रुको क्षीण करके पार्ष्णिग्राहको भी हानि पहुंचानेका यत्न करसकता है ॥ २२ ॥

लब्धलाभापगमने यस्यामित्रो लाभेन शक्त्या हीनः स पार्ष्णिग्राहो ऽतिसंधत्ते ॥ २३ ॥ यस्य वा यातव्यः शत्रुर्विग्रहापकारसमर्थः स्यात् ॥ २४ ॥

तथा विशेष लाभ प्राप्त करके ही लौटनेपर जिसका शत्रु लाभसे और शक्तिसे हीन हो, ऐसे आक्रमणकारी राजाका पार्ष्णिग्राह लाभमें रहता है।

क्योंकि दूसरा, लाभ और शक्तिसे सम्पन्न शत्रुको वशमें न करसकनेके कारण पार्ष्णिग्राहका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ॥ २३ ॥ अथवा जिसका यातव्य (जिसके ऊपर आक्रमण किया जाय, ऐसा शत्रु), शत्रु विजिगीषु रूप शत्रु, अर्थात् विजिगीषु) के साथ युद्ध करके, उसका अपकार करनेमें समर्थ हो, उसके पार्ष्णिको दबानेवाला राजाभी विशेष लाभमें रहता है ॥ २४ ॥

पार्ष्णिग्राहयोरपि यः शक्यारम्भबलोपादानाधिकः स्थितशत्रुः-पार्श्वस्थायी वा सो ऽतिसंधत्ते ॥ २५ ॥

दो पार्ष्णिग्राह राजाओंमेंसे भी, जोकि सब गुणोंमें समान हैं, वही पार्ष्णिग्राह विशेष लाभमें रहता है, जिसके पास सिद्ध होने योग्य कार्योंको प्रारम्भ करनेके लिये, दूसरेकी अपेक्षा अधिक सेना एकत्रित हो, तथा जो स्थित शत्रु अर्थात् दुर्ग आदिसे सम्पन्न शत्रु हो, अथवा जो यातव्यके समीप ही रहने वाला हो ॥ २५ ॥

पार्श्वस्थायी हि यातव्याभिसारो मूलाबाधकश्च भवति, मूलाबाधक एव पश्चात्स्थायी ॥ २६ ॥

क्योंकि समीप रहनेवाले (पार्श्वस्थायी) को यही विशेष लाभ होता है, कि यातव्यके साथ मिल सकता है; और विजिगीषुके मूलस्थानको बाधा पहुंचा सकता है परन्तु दूर रहनेवाला विजिगीषुके मूलस्थानको किसीतरह भी बाधा नहीं पहुंचा सकता ॥ २६ ॥

पार्ष्णिग्राहास्त्रयो ज्ञेयाः शत्रोश्चेष्टानिरोधकाः ।
सामन्तात्पृष्ठतो वर्गः प्रतिवेशौ च पार्श्वयोः ॥ २७ ॥

शत्रुके प्रत्येक व्यापार या कार्यको रोकनेवाले, ये पार्ष्णिग्राह तीन प्रकार के होते हैं:—(१) आक्रमण करनेवाले राजाके देशके समीप रहनेवाले, (२) पीछे अर्थात् व्यवहित देशमें रहनेवाले, (३) इधर उधर पार्श्वमार्गोंमें रहने वाले ॥ २७ ॥

अरेर्नेतुश्च मध्यस्थो दुर्बलो ऽन्तर्धिरुच्यते ।
प्रतिघातो बलवतो दुर्गाटव्यपसारवान् ॥ २८ ॥

आक्रमणकारी विजिगीषु और उसके शत्रुके मध्यमें होनेवाला दुर्बल राजा अन्तर्धि कहाता है । (यह अशक्त होनेके कारण 'पार्ष्णिग्राह' नहीं हो सकता । अतएव इसका पृथक् ही निरूपण किया है) यह केवल, बलवान्‌का मुकाबला होनेपर, दुर्ग अथवा अटवी (वने जंगल) में भागकर छिपजाता है । इसी लियेही इसका अन्वर्थ नाम 'अन्तर्धि' रक्खा गया है ॥ २८ ॥

मध्यमं त्वरिविजिगीष्वोर्लिप्समानयोर्मध्यमस्य पार्ष्णि गृह्णतोर्लब्धलाभापगमने यो मध्यमं मित्राद्वियोजयत्यमित्रं च मित्रमाप्नोति सो ऽतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

मध्यमको वशमें करनेकी इच्छा रखनेवाले शत्रु और विजिगीषुमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है, जो कि मध्यमके पार्ष्णिको ग्रहण करता हुआ, वहांसे कुछ लाभ प्राप्त करके भी, मध्यम राजाको उसको अपने मित्रसे वियुक्त कर देता है। तथा स्वयं अपने शत्रुकोभी अपना मित्र बना लेता है ॥ २९ ॥

संधेयश्च शत्रुरुपकुर्वाणो न मित्रं मित्रभावादुत्क्रान्तम् ॥३०॥ तेनोदासीनलिप्सा व्याख्याता ॥ ३१ ॥

उपकार करने वाले शत्रुके साथभी सन्धि कर लेनी चाहिये। तथा मित्र भावसे रहित हुए २ अर्थात् अपकार करनेवाले मित्रकोभी छोड़देना चाहिये ॥ ३० ॥ मध्यमको वशमें करनेकी तरह, उदासीनको वशमें करनाभी समझ लेना चाहिये ॥ ३१ ॥

पार्ष्णिग्रहणाभियानयोस्तु मन्त्रयुद्धादभ्युच्चयः ॥ ३२ ॥ व्यायामयुद्धे हि क्षयव्ययाभ्यामुभयोरवृद्धिः ॥३३॥ जित्वापि हि क्षीणदण्डकोशः पराजितो भवतीत्याचार्याः ॥ ३४ ॥

पार्ष्णिग्राह और और आक्रमणकारी इन दोनों राजाओंमेंसे वही अधिक उन्नत होसकता है, जो मन्त्रयुद्धसे शत्रुका नाश करता है। (साधारणतया युद्ध दो प्रकारका होता है— १) व्यायामयुद्ध, (२) मन्त्रयुद्ध। युद्धभूमिमें प्रवेश करके शस्त्रास्त्र आदिके प्रयोगोंके द्वारा शत्रुका नाश करदेना 'व्यायामयुद्ध' कहाता है। युद्धभूमिमें न जाकरही सत्री, रसद और तीक्ष्ण आदि गूढपुरुषोंके द्वारा शत्रुका नाश करदेना 'मन्त्रयुद्ध' कहाता है। इन दोनोंमेंसे मन्त्रयुद्धका अनुष्ठान करनेसे ही वृद्धि हो सकती है ॥ ३२ ॥ क्योंकि व्यायामयुद्धके करने पर मनुष्योंका क्षय और धनका अत्यधिक व्यय होनेके कारण, दोनों कीही हानि होती है ॥ ३ ॥ तथा युद्धमें विजय प्राप्त होजानेपर भी सेना और कोशके क्षीण होजानेके कारण, वह राजा प्रायः पराजितसाही होजाता है। यह प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ ३४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३५ ॥ सुमहतापि क्षयव्ययेन शत्रुविनाशोऽभ्युपगन्तव्यः ॥ ३६ ॥

परन्तु कौटल्य इसको नहीं मानता ॥ ३५ ॥ वह कहता है कि, चाहे कितनाही मनुष्योंका क्षय और धनका व्यय होजाय, शत्रुका नाश करनाही हर हालतमें अभिमत होना चाहिये ॥ ३६ ॥

तुल्ये क्षयव्यये यः पुरस्ताद्दूष्यबलं घातयित्वा निःशल्यः पश्चाद्वश्यबलो युध्येत सो ऽतिसंधत्ते ॥ ३७ ॥

मनुष्य तथा धनकी बराबर हानि होनेपर जो राजा पहिले अपने दूष्य-बल (वह सेना, जो अपने राजाके साथ द्रोह करनेवाली हो, तथा वशमें न रहती हो) को मरवाकर, निष्कण्टक होकर, पीछेसे अपने वशमें रहनेवाली सेनाको लेकर युद्ध करता है, वही विशेष लाभमें रहता है ॥ ३७ ॥

द्वयोरपि पुरस्ताद्दूष्यबलघातिनोर्यो बहुलतरं शक्तिमत्तरमत्यन्तदूष्यं च घातयेत्सो ऽतिसंधत्ते ॥३८॥ तेनामित्राटवीबलघातो व्याख्यातः ॥ ३९ ॥

यदि दोनों राजाही पहिले अपने दूष्यबलको ही मरवावें, तो उनमेंसे वही विशेष लाभमें रहता है, जो संख्यामें अधिक, शक्तिशाली, अत्यन्तदूष्य-बलको पहिले मरवाता है ॥ ३८ ॥ दूष्यबलकी तरह शत्रुबल और अटवीबलका मरवाना भी समझलेना चाहिये ॥ ३९ ॥

पार्ष्णिग्राहो ऽभियोक्ता वा यातव्यो वा यदा भवेत् ।
विजिगीषुस्तदा तत्र नैत्रमेतत्समाचरेत् ॥ ४० ॥

विजिगीषु जब पार्ष्णिग्राह, अभियोक्ता (आक्रमणकारी) अथवा यातव्य (जिसपर आक्रमण कियाजाय) हो, उस अवस्थामें उसे यह निम्न निर्दिष्ट नेतृत्व का कार्य करना चाहिये ॥ ४० ॥

पार्ष्णिग्राहो भवेन्नेता शत्रोर्मित्राभियोगिनः ।
विग्राह्य पूर्वमाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहाभिसारिणा ॥ ४१ ॥

विजिगीषुको उचित है कि अपने (विजिगीषुके) मित्रके ऊपर आक्र-मण करनेवाले शत्रुके पश्चात् स्थित मित्रको (आक्रन्द) पहिले अपने मित्रकी सेनाके साथ युद्ध कराके, फिर स्वयं उसके पार्ष्णिका ग्रहण करे ॥ ४१ ॥

आक्रन्देनाभियुञ्जानः पार्ष्णिग्राहं निवारयेत् ।
तथाक्रन्दाभिसारेण पार्ष्णिग्राहाभिसारिणम् ॥ ४२ ॥

यदि विजिगीषु स्वयंही अभियोक्ता अर्थात् आक्रमण करनेवाला हो, तो वह अपने पार्ष्णिग्राहको मित्रके द्वारा निवारण करे । तथा पार्ष्णिग्राहकी सेनाका

मुकाबला मित्रकी सेनाके द्वाराही करे ॥ ४२ ॥

अरिमित्रेण मित्रं च पुरस्तादवघट्टयेत् ।
मित्रमित्रमरेश्चापि मित्रमित्रेण वारयेत् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार अपने पीछेकी ओरका प्रबन्ध करके, सामनेकी ओरसे यदि शत्रुका मित्र मुकाबलेमें आवे, तो उससे अपने मित्रको भिड़ा देवे । यदि शत्रुके मित्रका मित्र आवे, तो उसका निवारण अपने मित्रके मित्रके द्वारा करे ॥ ४३ ॥

मित्रेण ग्राहयेत्पार्ष्णिमभियुक्तो ऽभियोगिनः ।
मित्रमित्रेण चाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहं निवारयेत् ॥ ४४ ॥

यदि विजिगीषु स्वयं अभियुक्त हो अर्थात् उसके ऊपरही कोई चढ़ाई करनेवाला हो, तो आक्रमणकारीके पार्ष्णिको मित्रके द्वारा ग्रहण करावे, अर्थात् विजिगीषुका मित्र, आक्रमणकारीका पार्ष्णिग्राह बनजावे । यदि आक्रमणकारीका कोई मित्र पार्ष्णिग्राहका मुकाबला करनेके लिये आजावे, तो मित्रके मित्रके द्वारा अर्थात् पार्ष्णिग्राहके मित्रके द्वारा उसका निराकरण करे ॥ ४४ ॥

एवं मण्डलमात्मार्थं विजिगीषुर्निवेशयेत् ।
पृष्ठतश्च पुरस्ताच्च मित्रप्रकृतिसंपदा ॥ ४५ ॥

इस प्रकार विजिगीषु, मित्ररूप प्रकृति (अर्थशास्त्र प्रसिद्ध सात प्रकृतियोंमेंसे मित्रभी अन्यतम प्रकृति है) की पूर्वोक्त गुणसमृद्धिसे युक्त राजमण्डलको अपनी सहायताके लिये आगे और पीछे ठीक तौरपर स्थापित करे ॥ ४५ ॥

कृत्स्ने च मण्डले नित्यं दूतान्गूढांश्च वासयेत् ।
मित्रभूतः सपत्नानां हत्वा हत्वा च संवृतः ॥ ४६ ॥

अपनी सहायताके लिये स्थापित किये हुए इस सम्पूर्ण राजमण्डलमें, दूतों और गुप्तचरोंका सदाही प्रबन्ध रक्खे । तथा शत्रुओंके साथ ऊपरसे मित्रता रखकर, उन्हें एक एकको मारदेवे, और अपने आप ऊपरसे उदासीनसा ही बनारहे, अर्थात् इस प्रकारके अपने आन्तरिक भावोंको प्रकट न होनेदे ॥ ४६ ॥

असंवृतस्य कार्याणि प्राप्तान्यपि विशेषतः ।
निःसंशयं विपद्यन्ते भिन्नः प्लव इवोदधौ ॥ ४७ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे पार्ष्णिग्राहचिन्ता त्रयोदशो ऽध्यायः ॥१३॥
आदितः ऽकादशशतः ॥ १११ ॥

जो राजा अपने आन्तरिक विचारों या मन्त्रणाओंको छिपाकर नहीं रखसकता, उसके उन्नत अवस्थाको प्राप्त हुए २ भी कार्य निस्सन्देह नष्ट हो

जाते हैं । समुद्रमें नौकाके फटजानेपर पुरुषकी जो अवस्था होती है, ठीक वही अवस्था मन्त्रके फूटजानेपर राजाकी होजाती है । इसलिये विजिगीषुको उचित है कि वह सदा अपने मन्त्रको सुरक्षित रक्खे ॥ ४७ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें तेरहवां अध्याय समाप्त ।

चौदहवां अध्याय

११८ प्रकण

हीनशक्ति—पूरण ।

सामवायिकैरेवमभियुक्तो विजिगीषुर्यस्तेषां प्रधानस्तं ब्रूयात् ॥ १ ॥ त्वया मे संधिः ॥ २ ॥

यदि बहुतसे राजा मिलकर, विजिगीषुपर आक्रमण करदें, तो विजिगीषु अपनी रक्षा और वृद्धिका विचार करके, उन इकट्ठे हुए राजाओंके मुखिया राजाको इस प्रकार कहे, कि ॥ १ ॥ तुम्हारे साथ मेरी सन्धि रही; (इतनी बात केवल उसी समय कही जासकती है, जब कि वह मुखिया धर्मात्मा हो; यदि लोभी हो, तो कहे कि:—) ॥ २ ॥

इदं हिरण्यम् ॥ ६ ॥ अहं च मित्रम् ॥ ४ ॥ द्विगुणा ते वृद्धिः ॥५॥ नार्हस्यात्मक्षयेण मित्रमुखानमित्रान्वर्धयितुम् ॥६॥ एते हि वृद्धास्त्वामेव परिभविष्यन्तीति ॥ ७ ॥

यह हिरण्य है ॥ ३ ॥ और मैं तुम्हारा मित्र हूँ ॥ ४ ॥ तुम्हारी दुगुनी वृद्धि होगई है; (क्योंकि एक तो मुझ अभियोक्तासे तुम्हें पर्याप्त धन मिल गया; और आपत्तिमें सहायता देनेवाला मैं एक मित्र मिलगया) ॥ ५ ॥ इस लिये अपने जन और धनका नाश करके, ऊपरसे मित्रता दिखाने वाले इन शत्रुओंको बढ़ाना आपके लिये युक्त नहींहै ॥ ६ ॥ क्योंकि ये वृद्धिको प्राप्त होकर तुमकोही दबावेंगे । अर्थात् तुम्हारी सहायतासे पहिले मेरा उच्छेद करके, फिर तुम्हारा तिरस्कार करेंगे । इसलिये तुम्हें इनका साथ नहीं देना चाहिये ॥ ७ ॥

भेदं वा ब्रूयात् ॥ ८ ॥ अनपकारो यथाहमेतैः संभूयाभियुक्तस्तथा त्वामप्येते संहितबलाः स्वस्था व्यसने वाभियोक्ष्यन्ते ॥९॥ बलं हि चित्तं विकरोति ॥१०॥ तदेषां विघातयेति ॥११॥

अथवा उनमें आपसमें ही भेद डलवा देवे, (यह उसी समय करना

चाहिये, जब कि वह मुखिया पहिली बातको स्वीकार न करे) । भेद डलवानेके लिये कहे कि ॥ ८ ॥ जिस प्रकार निरपराध मुझपर इन सबने मिलकर आक्रमण किया है, इसीप्रकार ये सब इकट्ठे होकर अपनी उन्नत अवस्थामें अथवा तुम्हारे आपद्ग्रस्त होनेपर अवश्यही तुमपर आक्रमण करेंगे ॥९॥ क्योंकि एकत्रित हुआ २ बल अवश्यही चित्तको विकृत अर्थात् गर्वित बनादेता है ॥ १० ॥ इस लिये आपको उचित है, कि आप अभीसे इनके बलको छिन्नभिन्न करदें ॥ ११ ॥

भिन्नेषु प्रधानमुपगृह्य हीनेषु विक्रमयेत् ॥ १२ ॥ हीनाननुग्राह्य वा प्रधाने ॥ १३ ॥ यथा वा श्रेयोऽभिमन्यते तथा, वैरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत् ॥ १४ ॥

इसप्रकार आपसमें उनका भेद पड़जाने पर, प्रधानकी सहायता लेकर अन्य सब हीन राजाओंपर आक्रमण करदेवे ॥ १२ ॥ अथवा उपर्युक्त प्रकारसे हीनोंमें साम आदिका प्रयोग करके, उनकी सहायता लेकर प्रधान राजापर आक्रमण करदेवे ॥ १३ ॥ अथवा जिस प्रकार अपना कल्याण समझे, उसीप्रकार कार्य करे । अथवा दूसरोंके साथ एक एकका विरोध कराके आपसमेंही भिड़ादे । (यह कार्य उसी समय किया जाता है, जब विजिगीषु स्वयं युद्ध करना न चाहता हो या न कर सकता हो) ॥ १४ ॥

फलभूयस्त्वेन वा प्रधानमुपजाप्य संधिं कारयेत् ॥ १५ ॥ अथोभयवेतनाः फलभूयस्त्वं दर्शयन्तः सामवायिकानतिसंहिताः स्थ इत्युद्दूषयेयुः ॥ १६ ॥

अथवा बहुतसा धन आदि देनेकी प्रतिज्ञा करके, प्रधान राजाको उधरसे तोड़कर, उसीके द्वारा अन्य राजाओंके साथ सन्धि करलेवे ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर उभयवेतन गुप्त पुरुष दोनों ओरसे वेतन लेनेवाले, अर्थात् जो गूढपुरुष अन्दरसे तो विजिगीषुके आदमी हों, परन्तु ऊपरसे अपने आपको, पूर्णतया दूसरोंका बतलावें, वे) उन सामवायिक (एकत्रित=इकट्ठे) राजाओंको, प्रधानके लिये भारी रक़म मिलनेकी बातको कहते हुए, 'तुम सबको उसने ठगलिया है' इसप्रकार भड़कावें ॥ १६ ॥

दुष्टेषु संधिं दूषयेत् ॥ १७ ॥ अथोभयवेतना भूयो भेदमेषां कुर्युरेवं तद्यदस्माभिर्दर्शितमिति ॥ १८ ॥ भिन्नेष्वन्यतमोपग्रहेण वा चेष्टेत ॥ १९ ॥

जब वे सब राजा, प्रधानसे विरुद्ध होजावें, तब वह प्रधानके साथ कीहुई सन्धिको तोड़ देवे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर फिर उभयवेतन गूढपुरुष,

इनका आपसमें भेद डालें, और कहें कि देखो, हमने पहिलेही कहा था कि इस प्रधान राजाको भारी रक़म मिलने वाली है, अब उसीमें कुछ गड़बड़ हो-जानेके कारण, इसने विजिगीषुके साथ कीहुई सन्धिको तोड़दिया है। पहिले कही हुई हमारी बात, इसकी इस कार्यवाहीसे बिल्कुल स्पष्ट होगई है ॥ १८ ॥ इन उपायोंसे आपसमें उनके भिन्न होजानेपर, दोनोंमेंसे किसी एकका सहारा लेकर, दूसरेके साथ युद्ध प्रारम्भ करदेवे ॥ १९ ॥

प्रधानाभावे सामवायिकानामुत्साहयितारं स्थिरकर्माणमनुरक्तप्रकृतिं लोभाद्भयाद्वा संघातमुपागतं विजिगीषोर्भीतं राज्यप्रतिसंबन्धं मित्रं चलामित्रं वा पूर्वानुत्तराभावे साधयेत् ॥ २०॥

यदि उन सामवायिक राजाओंका कोई एक प्रधान राजा न हो, तो उनमेंसे जो सबको उत्साहित करनेवाला, स्थिरकर्मा (कार्यको परिणामतक पहुँचानेका साहस रखनेवाला=शत्रुका उच्छेद किये विना पीछे न हटनेवाला), अनुरक्त प्रकृति (जिसके अमात्य, तथा, प्रजाजन जिसमें अनुराग रखते हों), लोभसे राजाओंके संघमें आकर मिला हुआ, अथवा भयसे उनमें आकर मिला हुआ, विजिगीषुसे डरा हुआ, अपने राज्यके साथ कुछ सम्बन्ध रखनेवाला, अपनाही मित्र (जो कि सामवायिक राजाओंके साथ जाकर मिलगया हो), और चलामित्र अर्थात् दुर्ग आदि रहित शत्रु हो; इनको ही अपने वशमें करे। परन्तु इन नौओं प्रकारके राजाओंमेंसे, अगलेके न होनेपरही पहिलेको वशमें करनेका यत्न करे। जैसे—उत्साहयिता और स्थिरकर्मा इन दोनोंमेंसे, स्थिरकर्माके न होनेपरही उत्साहयिताको वशमें करे, अन्यथा तो स्थिरकर्माको ही वशमें करनेका यत्न करे। इसीतरह आगेभी समझना चाहिये ॥ २० ॥

उत्साहयितारमात्मनिसर्गेण स्थिरकर्माणं सान्त्वप्रणिपातेनानुरक्तप्रकृतिं कन्यादानयापनाभ्यां लुब्धमंशद्वैगुण्येन भीतमेभ्यः कोशदण्डानुग्रहेण स्वतो भीतं विश्वासयेत् प्रतिभूप्रदानेन राज्यप्रतिसंबन्धमेकीभावोपगमनेन मित्रमुभयतः प्रियहिताभ्यामुपकारत्यागेन वा चलामित्रमवधृतमनपकारोपकाराभ्याम् ॥ २१ ॥

विजिगीषुको उचित है कि वह उत्साहयिताको 'मैं अमात्य और पुत्रादिके सहित तुम्हारे अधीन हूँ, तुम अपनी इच्छानुसार जिसकार्यपर चाहो मुझे लगासकते हो, परन्तु मेरा उच्छेद न करो' इसप्रकार आत्मसमर्पण करके वशमें करे। स्थिरकर्माको 'आपने मुझे जीतलिया है, आप सब गुणोंमें उत्कृष्ट हैं' इसप्रकार कहकर प्रणिपात अर्थात् उसके सामने अपना सिर झुकाकर वशमें करे।

अनुरक्तप्रकृति राजाको कन्या ले या देकर वशमें करे । लोभीराजाको दूना हिस्सा देकर वशमें करे । सामवायिक राजाओंसे डरे हुएको सेना और धनकी सहायता देकर वशमें करे । अपने आपसे डरे हुएको, बीचमें किसी अन्य राजाको साक्षी बनाकर उसे इसतरहका विश्वास कराकर कि मैं तुम्हारा कोई अपकार नहीं करूँगा, अपने अनुकूल बनावे । अपने राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाले राजाको 'मैं और तुम एकही हैं, मेरे पराजयमें तुम्हारा भी पराजय है, दूसरोंके साथ मिलकर मुझपर आक्रमण करना तुम्हारे लिये युक्त नहीं' इसप्रकार एकताका भाव दिखाकर अपने वशमें करे, मित्रराजाको, प्रिय और हितवचनों से तथा जो कर उससे अभी तक लिया जाता था उसे छोड़ देनेसे अपने वशमें करे । और अस्थिर शत्रु राजाको उसका उपकार करने और अपकार न करनेकी प्रतिज्ञासे विश्वस्त बनाकर अनुकूल बनावे ॥ २१ ॥

यो वा यथायोगं भजेत तं तथा साधयेत् ॥ २२ ॥ सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्यामः ॥ २३ ॥

अथवा इन सामवायिक राजाओंमेंसे, जो भी जिस प्रकारसे भेदको प्राप्त होसके, उसी तरह उसे वशमें करनेका यत्न कियाजाय ॥ २२ ॥ अथवा साम, दान, भेद और दण्ड इन सबही उपायोंसे उनको अपने अधीन करनेका यत्न करे, जैसा कि हम आपत् प्रकरणमें कथन करेंगे । (देखो—९ अधि०, ५ अध्याय) ॥ २३ ॥

व्यसनोपघातत्वरितो वा कोशदण्डाभ्यां देशे काले कार्ये वावधृतं संधिमुपेयात् ॥ २४ ॥ कृतसंधिहीनमात्मानं प्रतिकुर्वीत ॥ २५ ॥

अथवा विजिगीषु अपने ऊपर आई हुई विपत्तिको शीघ्रही नष्ट करनेकी इच्छा रखता हुआ, सामवायिक राजाओंके साथ; सेना और धनके द्वारा अमुक देश, काल तथा कार्यके उपस्थित होनेपर परस्पर सहायताके लिये शपथ आदि करके निश्चित सन्धि करलेवे ॥ २४ ॥ और इस प्रकार सन्धि करनेके अनन्तर अपनी क्षीणशक्तिको पूर्ण उन्नत बनानेका यत्न करता रहे ॥ २५ ॥

पक्षे हीनो बन्धुमित्रपक्षं कुर्वीत ॥ २६ ॥ दुर्गमविषह्यं वा ॥ २७ ॥ दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो हि स्वेषां परेषां च पूज्यो भवति ॥ २८ ॥

अपने पक्ष अर्थात् मित्रसे रहित विजिगीषु, बन्धु और मित्ररूप पक्षको अच्छी तरह बनावे । अर्थात् जहांतक होसके, राजाओंको अपना मित्र बनावे

॥ २६ ॥ अथवा शत्रुओंसे अभेद्य दुर्ग बनवावे ॥ २७ ॥ क्योंकि इस प्रकार दुर्ग और मित्रोंसे युक्त हुआ २ विजिगीषु, अपने और पराये सबहीका पूज्य होजाता है। अर्थात् फिर उसके विरोधमें सहसा कोईभी शत्रु खड़ा नहीं हो सकता ॥ २८ ॥

मन्त्रशक्तिहीनः प्राज्ञपुरुषोपचयं विद्यावृद्धसंयोगं वा कुर्वीत ॥ २९ ॥ तथा हि सद्यःश्रेयः प्राप्नोति ॥ ३० ॥

मन्त्रशक्ति अर्थात् बुद्धिबलसे हीन राजा, बुद्धिमान् पुरुषोंका संग्रह और विद्या वृद्ध अनुभवी पुरुषोंके साथ संगति करे ॥ २९ ॥ इस प्रकार करनेसे राजा, शीघ्रही कल्याणको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

प्रभावहीनः प्रकृतियोगक्षेमसिद्धौ यतेत ॥ ३१ ॥ जनपदः सर्वकर्मणां योनिः ॥ ३२ ॥ ततः प्रभावः ॥ ३३ ॥ तस्य स्थानमात्मनश्च आपदि दुर्गम् ॥ ३४ ॥

प्रभाव अर्थात् प्रभुशक्तिसे हीन राजा, अमात्य आदि प्रकृति अथवा प्रजाओंके योग क्षेमको सिद्ध करनेमें महान यत्नकरे ॥ ३१ ॥ क्योंकि जनपद सबही कार्योंका मूलकारण है; उसहीसे कोश और सेनाकी उत्पत्ति होसकती है और दुर्गोंका भी निर्माण किया जासकता है ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सर्वत्र प्रभाव भी होसकता है ॥३३॥ उस प्रभावका मूल निवासस्थान दुर्गही है; और आपत्तिकालमें, दुर्गके द्वारा अपनीभी रक्षा होसकती है ॥ ३४ ॥

सेतुबन्धः सस्यानां योनिः ॥ ३५ ॥ नित्यानुषक्तो हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु ॥ ३६ ॥

सेतुबन्ध (बड़े २ बांध लगाकर बनाये हुए जलाशय), अन्न आदिकी उत्पत्तिका प्रधान कारण है ॥ ३५ ॥ क्योंकि जो अन्न आदि, वृष्टिके द्वारा हमें कभी२ प्राप्त होसकते हैं, वे इन जलाशयोंके समीप बोई हुई भूमिमें सदाही प्राप्त होते रहते हैं। अर्थात् सेतुबन्धोंके द्वारा प्रत्येक ऋतुमें अन्न आदि पदार्थ प्राप्त किये जासकते हैं ॥ ३६ ॥

वणिक्पथः परातिसंधानस्य योनिः ॥ ३७ ॥ वणिक्पथेन हि दण्डगूढपुरुषातिनयनं शस्त्रावरणयानवाहनक्रयश्च क्रियते॥३८॥ प्रवेशो निर्नयनं च ॥ ३९ ॥

व्यापारी मार्ग शत्रुओंको धोखा देनेका प्रधान कारण हैं ॥ ३७ ॥ क्यों कि सेना और तीक्ष्ण, रसद आदि गूढ़ पुरुषोंको शत्रु देशमें पहुंचाना; तथा

हर तरहके हथियार, कवच, सवारी और घोड़े आदि वस्तुओंको क्रय विक्रय व्यवहार सब व्यापारी मार्गोंके द्वाराही किया जाता है ॥ ३८ ॥ तथा दूसरे देशकी वस्तुओंको अपने देशमें लाना और अपने देशकी वस्तुओंको दूसरे देशमें भेजना भी इन्हीं मार्गोंके द्वारा होता है ॥ ३९ ॥

खनिः संग्रामोपकरणानां योनिः ॥ ४० ॥ द्रव्यवनं दुर्गकर्मणाम् ॥ ४१ ॥ यानरथयोश्च ॥ ४२ ॥

संग्रामके प्रत्येक उपकरणों (हथियार आदि साधनों) का प्रधानकारण खानही है ॥ ४० ॥ लकड़ियोंका जंगल, दुर्गों और राजप्रासाद आदि कार्योंका प्रधान कारण है ॥ ४१ ॥ और रथ तथा इसी तरहकी अन्य सवारियोंका भी यही कारण होता है ॥ ४२ ॥

हस्तिवनं हस्तिनाम् ॥ ४३ ॥ गवाश्वरथोष्ट्राणां च व्रजः ॥ ४४ ॥ तेषामलाभे बन्धुमित्रकुलेभ्यः समार्जनम् ॥ ४५ ॥

हाथियोंका जंगल, हाथियोंकी उत्पत्तिका प्रधान कारण है ॥ ४३ ॥ और हाथी, घोड़े, गधे तथा ऊंटोंकी उत्पत्तिका कारण व्रज अर्थात् गोशाला हैं। (यद्यपि 'व्रज' शब्दका अर्थ गोष्ठ या गोशाला है, परन्तु यहांपर यह शब्द सब ही पालतू पशुओंके रक्षा स्थानके लिये प्रयुक्त किया गया है) ॥ ४४ ॥ यदि ये उपर्युक्त सबही पदार्थ अपने यहां नहों, तो अपने बन्धु और मित्रोंके कुलोंसे इनका संग्रह करना चाहिए ॥ ४५ ॥

उत्साहहीनः श्रेणीप्रवीरपुरुषाणां चोरगणाटविकम्लेच्छजातीनां परापकारिणां गूढपुरुषाणां च यथालाभमुपचयं कुर्वीत ॥ ४६ ॥ परमित्रप्रतीकारमाबलीयसं वा परेषु प्रयुञ्जीत ॥ ४७ ॥

उत्साह हीन राजा, अपनी उत्साह शक्तिको पूरा करनेके लिये, श्रेणी पुरुषों (देखो; अधि० ९ अध्याय २), शूरवीर पुरुषों, तथा शत्रुओंका अपकार करनेमें कटिबद्ध हुए २ चोरों, आटविकों और म्लेच्छ जातिके पुरुषों, एवं गूढ़ पुरुषोंका अपने लाभके अनुसार अच्छी तरह संग्रह करलेवे ॥ ४६ ॥ शत्रुओंका ऊपरसे बनावटी मित्र बनकर उनका प्रतीकार करता रहे । अथवा आबलीयस अधिकरणमें (बारहवां अधिकरण) बताये हुए प्रतीकारोंका शत्रुओंपर प्रयोग करे ॥ ४७ ॥

एवं पक्षेण मन्त्रेण द्रव्येण च बलेन च ।
संपन्नः प्रतिनिर्गच्छेत्परावग्रहमात्मनः ॥ ४८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे हीनशक्तिपूरणं चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

आदितो द्वादशशतः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार बन्धु और मित्ररूप पक्षसे, विद्यावृद्ध आदि पुरुषोंके संगति रूप मन्त्रसे, दुर्ग सेतुबन्ध आदिके द्वारा उत्पन्न हुए २ द्रव्यसे, और श्रेणी आदि बलसे, अपनी शक्तिको पूर्ण करता हुआ विजिगीषु सदा शत्रुका प्रतीकार करता रहे ॥ ४८ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें चौदहवां अध्याय समाप्त ।

पन्द्रहवा अध्याय

११९-१२० प्रकरण

प्रबल शत्रुके साथ विरोध करके दुर्ग प्रवेशके कारण, और विजित शत्रुका व्यवहार

दुर्बलो राजा बलवताभियुक्तः तद्विशिष्टबलमाश्रयेत यमितरो मन्त्रशक्त्या नातिसंदध्यात् ॥ १ ॥

यदि कोई बलवान् राजा, दुर्बल राजापर आक्रमण करे, तो वह आक्रमणकारी राजासे भी और अधिक बलशाली किसी राजाका आश्रय लेलेवे। जिसको कि, वह आक्रमणकारी राजाभी, मन्त्र शक्तिसे किसी तरहकाभी धोखा न देसके ॥ १ ॥

तुल्यमन्त्रशक्तीनामायत्तसंपदो वृद्धसंयोगाद्वा विशेषः ॥२॥

यदि आश्रय लेनेके योग्य, बराबर सैनिक शक्ति और मन्त्रशक्ति वाले अनेक राजा हों, तो उनमेंसे उसही का आश्रय लेवे, जिसके अमात्य आदि अत्यन्त बुद्धिमान् हों। यदि इस तरहके भी बहुतसे राजा आश्रय लेनेके योग्य मिल जावें- तो उनमेंसे उसहीका आश्रय लेवे, जो राजा, अत्यन्त अनुभवी विद्वानोंसे युक्त होवे ॥ २ ॥

विशिष्टबलाभावे समबलैस्तुल्यबलसङ्घैर्वा बलवतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभावशक्तिभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ३ ॥

यदि आक्रमणकारी राजासे विशेष शक्तिशाली कोई राजा आश्रय लेनेके लिये न मिले, तो अपने समानशक्ति वाले अथवा अपनी सेनाके बराबरही सेना रखने वाले बहुतसे राजाओंके साथ मिलकर, प्रबल शत्रुका उस समय तक मुकाबला करे, जब तककि वह (अभियोक्ता-प्रबल शत्रु), मिले हुए राजाओंको मन्त्र तथा प्रभाव शक्तिके द्वारा भेद डालकर पृथक् न करदे ॥३॥

तुल्यमन्त्रप्रभावशक्तीनां विपुलारम्भतो विशेषः ॥ ४ ॥

यदि इस प्रकारके राजाभी आश्रय लेनेके योग्य, बहुतसे मिल जावें, तो उनमेंसे विपुलारम्भ राजाही विशेष होता है । अर्थात् उन सबमेंसे विपुलारम्भ राजाकाही आश्रय लेना चाहिये । (जिस राजाके पास अन्न तथा अन्य सब युद्ध सम्बन्धी सामग्री बहुत अधिक तादादमें विद्यमान हो, वह राजा 'विपुलारम्भ' कहाता है ॥ ४ ॥

समबलाभावे हीनबलः शुचिभिरुत्साहिभिः प्रत्यनीकभूतैर्बलवतः संभूय तिष्ठेद्यावन्न मन्त्रप्रभावोत्साहशक्तिभिरतिसंदध्यात् ॥ ५ ॥

यदि कोई समशक्ति राजाभी आश्रयके लिये न मिले, तो पवित्र हृदय, उत्साही बलवान शत्रुके अत्यन्त विरोधी, बहुतसे हीनशक्ति राजाओंके साथ मिलकरही उस समय तक उस प्रबल शत्रुका मुकाबला करे, जब तक कि वह, अपनी सहायता करने वाले इन राजाओंमें, मन्त्र अभाव तथा उत्साह शक्तिके द्वारा भेद डालकर अपनेसे पृथक् न करदे ॥ ५ ॥

तुल्योत्साहशक्तीनां स्वयुद्धभूमिलाभाद्विशेषः ॥ ६ ॥ तुल्यभूमीनां स्वयुद्धकाललाभाद्विशेषः ॥ ७ ॥

यदि इस प्रकारकेभी बहुतसे राजा आश्रयके योग्य मिलें, तो उनमेंसे वही विशेष है, जिसके पास युद्धके योग्य अपनी भूमि हो। अर्थात् जिसके पास अपनाही युद्धके योग्य देश मिल सके, उसी राजाका आश्रय लेलेवे ॥ ६ ॥ यदि इस प्रकार युद्ध योग्य भूमिभी अनेक राजाओंके पास मिलती हो, तो उनमेंसे उसहीका आश्रय लेवे, जिसके सहारे पर अपने अनुकूल युद्धके योग्य समयभी मिल सके ॥ ७ ॥

तुल्यदेशकालानां युग्यशस्त्रावरणतो विशेषः ॥ ८ ॥

यदि देश और काल दोनोंही चीजें अनेक राजाओंके पास मिल सकती हों, तो उनमेंसे उसी राजाका आश्रय लेवे जिसके पास बैल, घोड़े, ऊंट आदि सवारीके जानवर, हर तरहके हथियार और कवच आदि अधिक संख्यामें हों। अर्थात् उपर्युक्त युद्ध सामग्री जिसके पास अधिकहो वही सबमें विशेष है,उसी का आश्रय लेवे ॥ ८ ॥

सहायाभावे दुर्गमाश्रयेत यत्रामित्रः प्रभूतसैन्योऽपि भक्तयवसेन्धनोदकोपरोधं न कुर्यात् ॥ ९ ॥ स्वयं च क्षयव्ययाभ्यां युज्येत ॥ १० ॥

यदि कोईभी सहायता करनेवाला न मिले, तो दुर्गका आश्रय लेवे, जहांपर शत्रु, अत्यधिक सेनासे युक्त हुआ २ भी, अपने लिये अपेक्षित, भक्ष्यपदार्थ, और पशुओंके खानेके पदार्थ (यवस), ईंधन और जल आदिकी रुकावट किसी तरहभी न करसके ॥ ९ ॥ और स्वयं ही शत्रु, मनुष्योंके नाश तथा धनके व्ययसे युक्त होजाय । अर्थात् शत्रुके जनधनका जहां अच्छी तरह सफ़ाया होता रहे ॥ १० ॥

तुल्यदुर्गाणां निचयापसारतो विशेषः ॥ ११ ॥ निचयापसारसंपन्नं हि मनुष्यदुर्गमिच्छेदिति कौटल्यः ॥ १२ ॥

यदि उपर्युक्त प्रकारके बहुतसे दुर्ग आश्रयके योग्य मिलते हों, तो उन मेंसे वही दुर्ग विशेष है, जहां तेल नमक आदि नित्य उपयोगकी वस्तुओंका अच्छा संचयहो तथा अवसर आनेपर जहांसे निकल जानेका मार्गभी ठीक हो ॥ ११ ॥ क्योंकि आचार्य कौटल्यका मत है कि ऐसाही दुर्ग मनुष्योंके आश्रयके योग्य होसकता है, जोकि निचय (तेल, नमक आदि नैत्यिक सामग्री) और अपसार (निकलनेका मार्ग) से सम्पन्न हो । आश्रयके लिये राजा सदा ऐसेही दुर्गकी इच्छा करे ॥ १२ ॥

तदेभिः कारणैराश्रयेत ॥ १३ ॥

इन निम्न लिखित कारणोंमेंसे कोई एक कारण होनेपर दुर्गका आश्रय लेवे । (इस अध्यायके ३० वें सूत्रतक इन्हीं कारणों या प्रयोजनोंका निरूपण किया गया है, इनमेंसे कोईसी एक बात होनेपर, राजा दुर्गका आश्रय लेलेवे) ॥ १३ ॥

पार्ष्णिग्राहमासारं मध्यममुदासीनं वा प्रतिपादयिष्यामि ॥१४॥

यदि विजिगीषु यह समझे, कि मैं पार्ष्णिग्राह, मित्रबल, मध्यम अथवा उदासीन राजाको अपने शत्रुके मुक़ाबलेमें युद्ध करनेके लिये खड़ा करसकूँगा, तो दुर्गका आश्रय लेवे । (यह पहिला प्रयोजन है, इसीप्रकार कुल मिलाकर १६ प्रयोजनहैं । प्रत्येकके आदिमें अथवाके आगे 'जब यह समझे, कि' यह वाक्य, और अन्तमें 'तो दुर्गका आश्रय लेवे' यह वाक्य जोड़ लेना चाहिये) ॥१४॥

सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनास्य राज्यं हारयिष्यामि घातयिष्यामि वा ॥ १५ ॥

अथवा यह समझे, कि सामन्त, आटविक अथवा आक्रमणकारीके विरोधी उसीके किसी वंशजके द्वारा, उसका राज्य हरण कराऊंगा, या उसको मरवा डालूंगा ॥ १५ ॥

कृत्यपक्षोपग्रहेण वास्य दुर्गे राष्ट्रे स्कन्धावारे वा कोपं समुत्थापयिष्यामि ॥ १६ ॥

अथवा अभियोक्ता (आक्रमणकारी) के कर्मचारीवर्गको साम आदि उपायोंके द्वारा अपने अधीन करके, दुर्गमें, राष्ट्रमें अथवा छावनीमें विप्लव (कोप) खड़ा करवादूंगा ॥ १६ ॥

शस्त्राग्निरणप्रणिधानैरौपनिषदिकैर्वा यथेष्टमासन्नं हनिष्यामि ॥ १७ ॥

अथवा हथियार, अग्नि या विष आदिसे मारनेवाले गुप्तचरोंके द्वारा, या औपनिषदिक प्रकरणमें बताये हुए योगोंके द्वारा, समीप आये हुए अभियोक्ता शत्रुको इच्छानुसार मरवाडालूंगा ॥ १७ ॥

स्वयमधिष्ठितेन वा योगप्रणिधानेन क्षयव्ययमेनमुपनेष्यामि ॥ १८ ॥

अथवा विश्वासी घातक पुरुषोंका स्वयं प्रयोग करते हुए उसके पुरुषोंका क्षय और धनका व्यय अच्छी तरह करवा सकूंगा ॥ १८ ॥

क्षयव्ययप्रवासोपतप्ते वास्य मित्रवर्गे सैन्ये वा क्रमेणोपजापं प्राप्स्यामि ॥ १९ ॥

अथवा मनुष्योंके नाश, धनके व्यय और प्रवास (यात्रा) के दुःखके कारण, इसके मित्रवर्ग और सैन्यके दुःखी होनेपर, धीरे २ इनमें परस्पर अच्छी तरह भेद डलवा सकूंगा ॥ १९ ॥

वीवधासारप्रसारवधेन वास्य स्कन्धावारावग्रहं करिष्यामि ॥ २० ॥

अथवा अभियोक्ताके अपने देशसे आनेवाले खाद्यपदार्थ, मित्रबल, तथा घास भूसा और ईंधन आदिको बीचमेंही नष्ट करके, इसकी छावनीको अत्यन्त पीड़ा पहुंचा सकूंगा ॥ २० ॥

दण्डोपनयेन वास्य रन्ध्रमुत्थाप्य सर्वसंदोहेन प्रहरिष्यामि ॥ २१ ॥

अथवा अपनी कुछ सेनाको, अभियोक्ताकी छावनीमें छिपेतौरपर लेजाकर, इसके दोषों अर्थात् निर्बलताओंको अच्छीतरह मालूम करके, फिर बहुत अधिक सैन्य समुदायके साथ, इसके ऊपर प्रहार कर सकूंगा ॥ २१ ॥

प्रतिहतोत्साहेन वा यथेष्टं संधिमवाप्स्यामि, मयि प्रतिबन्धस्य वा सर्वतः कोपाः समुत्थास्यन्ति ॥ २२ ॥

अथवा किसीतरह अभियोक्ताके उत्साहको नष्ट करके, फिर उसके साथ इच्छानुसार सन्धि कर सकूंगा। अथवा मुझपर आक्रमण करनेवाले अभियोक्ता के ऊपर चारों ओरसे सबही राजालोग कुपित हो उठेंगे ॥ २२ ॥

निरासारं वास्य मूलं मित्राटवीदण्डैरुद्घातयिष्यामि ॥ २३ ॥ महतो वा देशस्य योगक्षेममिहस्थः पालयिष्यामि ॥ २४ ॥

अथवा इसके मित्रबलको पृथक् रोककर, उसकी सहायता न पहुंचनेपर इसके मूलस्थान (प्रधान राजधानी) को अपने मित्रबल और आटविकोंके द्वारा नष्ट करादूंगा ॥ २३ ॥ अथवा अपने बड़ेभारी देशके योगक्षेमका, यहींपर रहकर मैं पूर्णतया पालन करसकूंगा ॥ २४ ॥

स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं वा मे सैन्यमिहस्थस्यैकस्थमविषह्यं भविष्यति ॥ २५ ॥

अथवा यहींपर रहते हुए मेरे, अपने कार्यके लिये या मित्रके कार्यके लिये अन्यत्र भेजी हुई सेना यहांपर मेरेसाथ एकत्रित होकर, कदापि शत्रुके वशमें न होसकेगी ॥ २५ ॥

निम्नखातरात्रियुद्धविशारदं वा मे सैन्यं पथ्याबाधमुक्तमासन्ने कर्माणि करिष्यति ॥ २६ ॥

अथवा नीचे (मैदानमें), खाई खोदकर, और रात्रिके समय युद्ध करनेमें अत्यन्त चतुर मेरी सेना, क़िलेमें रास्तेकी थकावटको दूर करके, अवसर आनेपर खूब अच्छीतरह कार्य कर सकेगी ॥ २६ ॥

विरुद्धदेशकालमिहागतो वा स्वयमेव क्षयव्ययाभ्यां न भविष्यति ॥ २७ ॥

अथवा अभियोक्ता, अपनी सेनाके लिये प्रतिकूल देश और कालमें यहां आनेपर, हमारे यत्नके विनाही अपने आप मनुष्योंका क्षय तथा धनका व्यय होनेसे नष्ट होजायगा ॥ २७ ॥

महाक्षयव्ययाभिगम्यो ऽयं देशो दुर्गाटव्यपसारबाहुल्यात् ॥ २८ ॥

अथवा इसदेशमें वही राजा आक्रमण कर सकेगा, जो अपना महान क्षय और व्यय करनेके लिये तैयार होगा। क्योंकि यहां दुर्ग जंगल तथा अपसार (बाहर निकलजानेके) स्थान बहुत हैं ॥ २८ ॥

परेषां व्याधिप्रायः सैन्यव्यायामानामलब्धभौमश्च तमापद्गतः प्रवेक्ष्यति ॥२९॥ प्रविष्टो वा न निर्गमिष्यतीति ॥ ३० ॥

और परदेशसे आनेवाले लोगोंके लिये यह स्थान व्याधि-जनक है। सेना-ओंकी कवायद आदिके लिये भी यहां पर्याप्त भूमि नहीं मिल सकती । इसलिये जो भी आक्रमणकारी यहां आवेगा, वह अवश्यही आपद्ग्रस्त होगा ॥ २९ ॥ यदि किसीतरह वह यहां आ भी गया, तो फिर वहांसे उसका कल्याण पूर्वक निकलना कठिन होजायगा, इसप्रकार जब विजिगीषु समझे; तो अवश्यही दुर्ग-का आश्रय लेलेवे ॥ ३० ॥

कारणाभावे बलसमुच्छ्रये वा परस्य दुर्गमुन्मुच्यापगच्छेत् ॥ ३१ ॥ अग्निपतङ्गवदमित्रे वा प्रविशेत् ॥ ३२ ॥ अन्यतरसिद्धिर्हि त्यक्तात्मनो भवतीत्याचार्याः ॥ ३३ ॥

यदि ये उपर्युक्त कारण नहीं, और शत्रुकी सेना अत्यन्त बलवान् तथा बहुत अधिक हो तो फिर क्या करना चाहिये ? इस विषयमें आचार्योंका मत है, कि दुर्गको छोड़कर चले जाना चाहिये ॥ ३१ ॥ अथवा अग्निमें पतङ्गके समान, शत्रुपर आक्रमण करदेना चाहिये ॥ ३२ ॥ क्योंकि अपना मोह छोड़कर इसप्रकार आक्रमण करनेपर कभी २ विजय लाभ भी होजाता है । अर्थात् जैसे दीपकके ऊपर गिरा हुआ पतङ्ग, कभी २ उसे बुझाभी देता है, इसीतरह आक्र-मणकारी प्रबल शत्रुभी, कभी २ पराजित होजाता है, और दुर्बल विजिगीषु भी अद्भुत पराक्रमके द्वारा विजयलाभ करता है ॥ ३३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३४ ॥ संधेयतामात्मनः परस्य चोपलभ्य संदधीत ॥३५॥ विपर्यये विक्रमेण सिद्धिमपसारं वा लिप्सेत ॥३६॥

परन्तु कौटल्य इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ ३४ ॥ वह कहता है कि सबसे प्रथम अपनी और शत्रुकी सन्धि विषयक योग्यताको देखकर सन्धिही करलेनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि जहांतक होसके, प्रथम, शत्रुके साथ सन्धि करनेकाही यत्न करे ॥ ३५ ॥ यदि किसीतरहभी सन्धि होनेकी सम्भावना न हो, तो फिर पराक्रमके द्वारा सिद्धिलाभ करे । (किसी पुस्तकमें 'सिद्धिं' के स्थान-पर 'सन्धिं' भी पाठान्तर है, उसका अर्थ इसप्रकार समझना चाहियेः—विक्र-मके द्वारा सन्धिका लाभ करे, अर्थात् युद्ध प्रारम्भ करदेनेपर शत्रुके क्षय व्यय होनेसे, उसे इतना तंग करदे, कि वह दुःखी होकर सन्धि करनेके लिये तैयार होजाय) । अथवा जब समझे कि सन्धि होना सर्वथा असम्भव है, तो स्थानको छोड़कर चलाजावे ॥ ३६ ॥

{ यहांतक प्रबल शत्रुके साथ विरोध करके दुर्ग प्रवेशके कारणोंका निरूपण किया गया । अब इसके आगे बिजित शत्रुका व्यवहार बताया जावेगा ।

संधेयस्य वा दूतं प्रेषयेत् ॥ ३७ ॥ तेन वा प्रेषितमर्थमानाभ्यां सत्कृत्य ब्रूयात् ॥ ३८ ॥ इदं राज्ञः पण्यागारमिदं देवीकुमाराणां देवीकुमारवचनादिदं राज्यमहं च त्वदर्पण इति ॥३९॥

अथवा जब सन्धि सर्वथा असम्भव हो, तो सन्धेय अर्थात् धर्मविजयी शक्तिशाली अभियोक्ता राजा के, पास अपना दूत भेजे ॥ ३७ ॥ अथवा उसके भेजे हुए दूतको धन और मानसे सत्कृत करके यह कहे, कि ॥ ३८ ॥ राजाके लिये (विजेता राजाके लिये) यह बहुमूल्य भेंट है; और यह, देवी (रानी) तथा कुमारों (राजकुमारों) के कथनानुसार, उनके देवी और कुमारोंके लिये भेंट है । यह सम्पूर्ण राज्य और मैं सर्वथा तुम्हारे ही अर्पण हैं । अर्थात् इस राज्यके और मेरेभी, आपही हरतरह मालिक हैं ॥ ३९ ॥

लब्धसंश्रयः समयाचारिकवद्भर्तरि वर्तेत ॥ ४० ॥ दुर्गादीनि च कर्माण्यावाहविवाहपुत्राभिषेकाश्वपण्यहस्तिग्रहणसत्त्रयात्राविहारगमनानि चानुज्ञातः कुर्वीत ॥ ४१ ॥

इसप्रकार दूत आदि भेजनेके द्वारा, विजेताका आश्रय मिलजानेपर, नियमानुसार सेवकोंकी भांतिही उसके पास रहता हुआ, उसीतरहका वर्त्ताव करे ॥ ४० ॥ और दुर्ग आदि बनवाना, कन्या देना या लेना, (अर्थात् कन्या और पुत्रका विवाह), यौवराज्याभिषेक, घोड़ोंका ख़रीदना, हाथियोंका पकड़ना, यज्ञ, कहीं जाना आना, या उद्यान आदिमें क्रीडाके लिये जाना, इत्यादि सबही कार्योंको, उसकी (विजेता राजाकी) अनुमति लेकर करे ॥ ४१ ॥

स्वभूम्यवस्थितप्रकृतिसंधिमुपघातमपसृतेषु वा सर्वमनुज्ञातः कुर्वीत ॥४२॥ दुष्टपौरजानपदो वा न्यायवृत्तिरन्यां भूमिं याचेत ॥ ४३ ॥

अपने ही देशमें रहते हुए अमात्य आदि प्रकृतियोंके साथ सन्धि, या अपने देशसे भागकर दूसरी जगह गये हुए उनके लिये दण्डकी व्यवस्था, यह सब कुछभी, विजेता राजाकी अनुमतिसे ही करे ॥ ४२ ॥ स्वयं न्यायानुकूल आचरण करता हुआ राजा, (किसी पुस्तकमें 'न्यायावृत्ति' ऐसा पाठान्तर है । वह 'भूमि' का विशेषण समझना चाहिये) नगरनिवासी और जनपदनिवासी लोगोंके दुष्ट अर्थात् अपने विरोधी या अन्यायवृत्ति होजानेपर, विजेतासे अपने विश्वासके लिये अन्य भूमिकी याचना करे । अर्थात् ऐसी अवस्थामें वंशपरम्परागत भी अपनी भूमिको छोड़कर, निवासके लिये दूसरी भूमि विजेतासे मांगे ॥ ४३ ॥

दूष्यवदुपांशुदण्डेन वा प्रतिकुर्वीत ॥ ४४ ॥ उचितां वा मित्राद्भूमिं दीयमानां न प्रतिगृह्णीयात् ॥ ४५ ॥

अथवा अन्य भूमिको न मांगता हुआही, दूष्योंके समान, उपांशुदण्डसे उन दुष्ट अन्याश्रयवृत्ति पुरुषोंका प्रतीकार करे ॥ ४४ ॥ यदि विजेता राजा, अपने (विजितके) ही किसी मित्रसे छीनकर, अनुकूल भूमि उसे देना चाहे, तो उस भूमिको कदापि लेना स्वीकार न करे ॥ ४५ ॥

मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतममदृश्यमाने भर्तरि पश्येत् ॥ ४६ ॥

और अपने मन्त्री, पुरोहित, सेनापति तथा युवराज इनमेंसे किसीकोभी भर्त्ता (विजेता राजा) की उपस्थितिमें न देखे । (इसका अभिप्राय यही है कि जिससे अपने नौकर, भर्त्ताकी उपस्थितिमें अपने आपको सेवककी अवस्थामें न देखसकें। अर्थात् अपने सेवक, अपनेको जब देखें, तब राजाकी हैसियतमेंही देखें, सेवकी नहीं) ॥ ४६ ॥

यथाशक्ति चोपकुर्यात् ॥ ४७ ॥ दैवतस्वस्तिवाचनेषु तत्परा आशिषो वाचयेत् ॥ ४८ ॥ सर्वत्रात्मनिसर्गं गुणं ब्रूयात् ॥४९॥

तथा यथाशक्ति अपने मालिकका, समय २ पर भेंट आदि देकर उपकार करता रहे ॥ ४७ ॥ देवताओंके आराधन और माङ्गलिक कृत्योंके अवसरों पर, अपने मालिकके लिये आशीर्वाक्योंको कहलवाये ॥ ४८ ॥ सबके सन्मुख, अपने आपको स्वामीके समर्पण करनेका, तथा उसके गुणोंका कीर्त्तन करे ॥४९॥

संयुक्तबलवत्सेवी विरुद्धः शङ्कितादिभिः ।
वर्तेत दण्डोपनतो भर्तर्येवमवस्थितः ॥ ५० ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे बलवता विगृह्योपरोधहेतवः दण्डोपनतवृत्तं पञ्चदशो ऽध्यायः ॥ १५ ॥ आदितस्त्रयोदशशतः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार विजित राजा, अपने विजेता राजाकी सेवामें रहता हुआ, उसके बलशाली अमात्य आदिके साथभी सदा अनुकूल वर्त्ताव रक्खे । तथाजो विजेताके विरोधी, या जिनपर वह सन्देह करता हो, उनसे सदा विरुद्ध होकर ही रहे ॥ ५० ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ।

सोलहवा अध्याय

१२१ प्रकरण

विजेता विजिगीषुका व्यवहार ।

अनुज्ञातस्ताद्धिरण्योद्वेगकरं बलवान्विजिगीषुमाणो यतः सुभूमिः स्वर्तुवृत्तिश्च स्वसैन्यानामदुर्गापसारः शत्रुरपार्ष्णिरनपसारश्च ततो यायात् ॥ १ ॥

सन्धि करनेके समयमें 'मैं तुमको इतना हिरण्य आदि दूंगा' इसप्रकार देनेकी प्रतिज्ञा किये हुए धनको न देनेके कारण दुःखी करनेवाले यातव्य शत्रुको विजय करनेकी इच्छा रखता हुआ बलवान् राजा, उसही देशपर आक्रमणकरे, जहांपर जानेके लिये मार्गकी भूमि अपने ही अधिकारमें हो, तथा अपनी सेनाओंके लिये अनुकूल समय, और खाने पीने आदिके सब तरहके सुभीते जहां होसकें, तथा शत्रु, जहां दुर्ग और अपसार (अपसरण मार्ग=निकल भागनेका रास्ता) से रहित हों, तथा विजिगीषुके ऊपर पार्ष्णिग्राहको भी न भेजसके, और जिसका मित्रबलभी कुछ न हो ॥ १ ॥

विपर्यये कृतप्रतीकारो यायात् ॥ २ ॥ सामदानाभ्यां दुर्बलानुपनमयेत् ॥ ३ ॥ भेददण्डाभ्यां बलवतः ॥ ४ ॥

यदि उपर्युक्त किसी तरहके भी सुभीते न हों, और शत्रुभी दुर्ग तथा अपसार आदिसे युक्तहो, तो इन सबका प्रतिविधान (प्रतीकार) करकेही, यात्रा का आरम्भ करे ॥ २ ॥ दुर्बल राजाओंको साम दानसे ही अपने अधीन करलेना चाहिये ॥ ३ ॥ तथा बलवान् राजाओंको भेद और दण्डके द्वारा अधीन करे ॥ ४ ॥

नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपायानामनन्तरैकान्तराः प्रकृतीः साधयेत् ॥ ५ ॥

साम आदि उपायोंके नियोग, विकल्प और समुच्चयसे, शत्रुप्रकृति (शत्रुरूप प्रकृति=शत्रुओं) और मित्रप्रकृति (मित्ररूप प्रकृति=मित्रों) को अपने वशमें करे । ('इस विशेष पुरुषमें साम आदि चारों उपायोंमेंसे अमुक एक उपायकाही प्रयोग किया जासकता है' इस प्रकारका निर्धारण करना 'नियोग' कहाता है । तथा 'इस उपायका प्रयोग किया जाय या उसका' इस तरहके ज्ञानको 'विकल्प' और 'अमुक अमुक उपायोंका इकट्ठा ही प्रयोग करना

चाहिये ' इसको, ' समुच्चय ' कहते हैं। मूल सूत्रमें, अनन्तरप्रकृति=शत्रु-प्रकृति=शत्रु, और एकान्तरप्रकृति=मित्रप्रकृति=मित्र कहे गये हैं।) ॥ ५ ॥

ग्रामारण्योपजीविव्रजवणिक्पथानुपालनमुज्झितापसृतापकारिणां चार्पणमिति सान्त्वमाचरेत् ॥ ६ ॥ भूमिद्रव्यकन्यादानमभयस्य चेति दानमाचरेत् ॥ ७ ॥

गांव या जंगलमें रहनेवाली गाय भैंसों आदिकी, तथा जल और स्थलके व्यापारी मार्गोंकी रक्षा करना; और दूसरे राजाके डरसे अथवा अपना अपकार करके भागे हुए, तथा दूष्य अमात्य आदि भृत्य वर्गोंका अन्वेषण करके देना; इत्यादि रूपसे दुर्बल राजाके साथ सामका प्रयोग करे ॥ ६ ॥ भूमिदान, द्रव्यदान, कन्या दान, तथा शत्रुओंकी ओरसे भय उपस्थित होनेपर अभयदान देना, इस प्रकारसे दुर्बल राजाके सम्बन्धमें दान रूप उपायका प्रयोग करे ॥ ७ ॥

सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमोपग्रहेण कोशदण्डभूमिदाययाचनमिति भेदमाचरेत् ॥ ८ ॥

सामन्त, आटविक, उस (यातव्य शत्रु) के अपने कुलमें उत्पन्न हुए २ किसी सम्बन्धी, तथा किसी नजरबन्द किये हुए यातव्यके पुत्र, इनमेंसे किसी एकको अपने अधीन करके, उसके द्वारा कोश, सेना, भूमि तथा अपने दायभागकी याचना करवाकर, बलवान् राजा और उसके सामन्त आदिमें भेद डलवा देवे। तात्पर्य यह है, कि विजिगीषुके बहकानेसे, सामंत आदि, बलवान् राजासे कोश आदिकी याचना करें, उनके न देनेपर, विजिगीषु उनमें भेदरूप उपायका प्रयोग करे ॥ ८ ॥

प्रकाशकूटतूष्णींयुद्धदुर्गलम्भोपायैरमित्रप्रग्रहणमिति दण्डमाचरेत् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार प्रकाशयुद्ध (देश और कालकी सूचनाको देकर किया जानेवाला युद्ध), कूट युद्ध (देश कालकी सूचनाके बिनाही किये जानेवाला युद्ध), और तूष्णींयुद्ध (छिपे तौरपर गूढपुरुष आदिके द्वारा शत्रुका मरवा देना) इन ३ प्रकारके युद्धोंके द्वारा; तथा दुर्गलम्भोपाय (१३ अधि०) अधिकरणमें बतायेहुए विषदान आदि उपायोंके द्वारा शत्रुके वशमें करना चाहिये। यही दण्डरूप उपायके प्रयोगका प्रकार है ॥ ९ ॥

एवमुत्साहवतो दण्डोपकारिणः स्थापयेत् ॥ १० ॥ स्वप्रभाववतः कोशोपकारिणः प्रज्ञावतो भूम्युपकारिणः ॥ ११ ॥

इस प्रकार उक्त उपायोंके द्वारा अपने अधीन हुए राजाओंमेंसे उत्साही तथा अपनी सेनाका उपकार करनेवाले पुरुषोंको सेनासम्बन्धी कार्योंपर नियुक्त किया जाय ॥ १० ॥ इसी प्रकार प्रभुशक्तियुक्त अर्थात् कोश सम्पन्न, कोश देकर उसका उपकार करनेवाले पुरुषोंको कोश सम्बन्धी कार्योंपर; तथा बुद्धिमान् मन्त्रशक्तियुक्त, भूमि देकर उसकी वृद्धि करनेवाले पुरुषोंको भूमि सम्बन्धी कार्यों पर नियुक्त किया जाय। जो कि इनकी उचित व्यवस्था करसकें ॥ ११ ॥

तेषां पण्यपत्तनग्रामखनिसंजातेन रत्नसारकुप्येन द्रव्यहस्तिवनव्रजसमुत्थेन यानवाहनेन वा यद्बहुश उपकरोति तच्चित्रभोगम् ॥ १२ ॥

दण्ड आदि उपायोंके द्वारा वशमें किये हुए मित्रभूत राजाओंमेंसे, जो राजा बड़े २ बाजारों, गावों तथा सुवर्ण आदिके उत्पत्ति स्थानोंसे बढ़ेहुए, मणि मुक्ता आदि रत्न, चन्दन आदि सारद्रव्य, शंख आदि फल्गुद्रव्य तथा वस्त्र आदि द्रव्योंको देकर अथवा लकड़ियोंके जंगल, हाथियोंके जंगल तथा गाय आदि पशुओंसे, बनाये या उत्पन्न हुए रथ आदि यानों तथा हाथी आदि वाहनोंको देकर, विजिगीषुका अत्यन्त उपकार करता है। वह मित्र 'चित्रभोग' कहा जाता है। क्योंकि उससे तरह तरहके भोगोंकी प्राप्ति होती रहती है ॥ १२ ॥

यद्दण्डेन कोशेन वा महदुपकरोति तन्महाभोगम् ॥ १३ ॥ यद्दण्डकोशभूमीरुपकरोति तत्सर्वभोगम् ॥ १४ ॥

जो मित्र राजा सेना और कोशके द्वारा विजिगीषुका महान उपकार करता है, वह 'महाभोग' कहाता है ॥ १३ ॥ तथा जो राजा, सेना कोश और भूमि इन सब चीजोंको देकर विजिगीषुका महान उपकार करता है, वह 'सर्वभोग' कहाजाता है ॥ १४ ॥

यदमित्रमेकतः प्रतिकरोति तदेकतोभोगि ॥ १५ ॥

अर्थ देकर उपकार करनेवाले मित्रोंका निरूपण करके, अब अनर्थका निवारण करके उपकार करनेवाले मित्रोंको बताते हैं:—उनमेंसे जो मित्र राजा, एकही शत्रुका प्रतीकार करके विजिगीषुका उपकार करता है, वह 'एकतोभोगी' कहाता है ॥ १५ ॥

यदमित्रमासारं चोपकरोति तदुभयतोभोगि ॥ १६ ॥ यदमित्रासारप्रतिवेशाटविकान्सर्वतः प्रतिकरोति तत्सर्वतोभोगि ॥१७॥

जो मित्र राजा, शत्रु और आसार अर्थात् शत्रुमित्र (शत्रुका मित्र) इन

दोनोंका प्रतीकार करके विजिगीषुका उपकार करता है, वह 'उभयतोभोगी' कहाता है ॥१६॥ तथा जो मित्रराजा, शत्रु, शत्रुमित्र, प्रतिवेश (पड़ौसका शत्रु-राजा) तथा आटविक इन सबका प्रतीकार करके विजिगीषुका उपकार करता है, वह 'सर्वतो भोगी' कहाजाता है ॥ १७ ॥

पार्ष्णिग्राहश्चाटविकः शत्रुमुख्यः शत्रुर्वा भूमिदानसाध्यः कश्चिदासाद्येत ॥ १८ ॥ निर्गुणया भूम्यैनमुपग्राहयेत् ॥ १९ ॥ अप्रतिसंबद्धया दुर्गस्थम् ॥ २० ॥

यदि पार्ष्णिग्राह, आटविक, शत्रुके अमात्य आदि मुख्यपुरुष, अथवा शत्रुही, भूमि देनेपर, अपने अधीन होनेके लिये तैयार हों, तो ॥ १८ ॥ गुण रहित भूमि देकरही उन्हें अपने अधीन करे ॥ १९ ॥ यदि पार्ष्णिग्राह आदि, दुर्गमें रहनेवाला हो, तो उसे दुर्गसे किसी तरहका सम्बन्ध न रखने वाली दूरदेशकी भूमि देकर वशमें करे ॥ २० ॥

निरुपजीव्ययाटविकम् ॥ २१ ॥ प्रत्यादेयया तत्कुलीनम् ॥ २२ ॥ शत्रोरुपच्छिन्नया शत्रोरुपरुद्धम् ॥ २३ ॥

आटविकको, जीवनके योग्य, धान्य आदि जिसमें उत्पन्न न होसकें, ऐसी भूमि देकर वशमें करे ॥ २१ ॥ शत्रुकुलमें उत्पन्न हुए व्यक्तिको ऐसी भूमि देवे, जो फिर वापस अपनेही पास लौटाई जासके, अर्थात् जिसका फिर स्वयं अपहरण कर सके ॥ २२ ॥ नज़रबन्द किये हुए शत्रुके पुत्र आदिको, पहिले कभी शत्रुसे छीनी हुई भूमिको ही देवे ॥ २३ ॥

नित्यामित्रया श्रेणीबलम् ॥ २४ ॥ बलवत्सामन्तया संहत-बलम् ॥ २५ ॥ उभाभ्यां युद्धे प्रतिलोमम् ॥ २६ ॥

श्रेणीबल (नेता रहित मनुष्योंका समूह=सेनाविशेष) को ऐसी भूमि देवे, जिसमें चोर आटविक आदि, नित्यही उपद्रव करते रहते हों ॥ २४ ॥ संहतबल (नेताके सहित मनुष्योंका समूह=सेनाविशेष) को ऐसी भूमि देवे, जिसका सामन्त (समीप लगे हुए देशका राजा) अत्यधिक बलवान् हो ॥२५॥ युद्धमें कुटिलता करनेवाले अर्थात् कूटयुद्ध करनेवाले शत्रुको, ऐसी भूमि देवे, जहां चोर और आटविक आदिका भी सदाही उपद्रव रहता हो, तथा सामन्त भी जिसका अधिक बलवान् हो ॥ २६ ॥

अलब्धव्यायामयोत्साहिनम् ॥ २७ ॥ शून्ययारिपक्षीयम् ॥ २८ ॥ कर्शितयापवाहितम् ॥ २९ ॥

उत्साहशील शत्रु आदिको ऐसी भूमि देवे, जिसमें सेनाओंकी क़वायद

आदिके लिये योग्य स्थान न हो ॥ २७ ॥ शत्रुपक्षके किसी पुरुषको शून्यभूमि ही देवे । अर्थात् जिससे किसी तरहका फल प्राप्त न होसके ऐसी भूमि देकर उसे वशमें करे ॥२८॥ सन्धि करके फिर उसे तोड़देने वाले राजाको ऐसी भूमि देवे, जिसमें सदाही शत्रु सेना और आटविक आदिका उपद्रव बना रहता हो ॥२९॥

महाक्षयव्ययनिवेशया गतप्रत्यागतम् ॥ ३० ॥ अनपाश्रयया प्रत्यपसृतम् ॥ ३१ ॥ परेणानाधिवास्यया स्वयमेव भर्तारमुपग्राहयेत् ॥ ३२ ॥

एकवार शत्रुसे मिलकर जो फिर अपनेसे मिलना चाहे, उसे ऐसी भूमि देकर वशमें करे, जिस भूमिमें नई बसावट करनेके लिये अत्यधिक पुरुषोंका क्षय और धनका व्यय होजाय ॥ ३० ॥ शत्रुके डरसे, अपने देशसे भागे हुए पुरुषको, ऐसी भूमि देकर वशमें करे, जो कि दुर्ग आदिसे सर्वथा रहित हो ॥ ३१ ॥ जिस भूमिपर, उसके असली मालिकके सिवाय कोई नहीं रह सकता, ऐसी भूमि उस व्यक्तिको देकर वशमें करे, जो कि इस भूमिका पुराना असली मालिक हो ॥ ३२ ॥

तेषां महोपकारं निर्विकारं चानुवर्तयेत् ॥ ३३ ॥ प्रतिलोममुपांशुना साधयेत् ॥ ३४ ॥

दण्ड आदि उपायोंके द्वारा अपने वशमें किये हुए राजाओंमेंसे, जो राजा अपना (विजेताका) महान उपकार करता हो, तथा उसकी ओरसे अपने चित्तमें किसी तरहका विकार न रखता हो, उसके साथ ऐसा व्यवहार रक्खे जिससे कि उसे कभी किसी प्रकारकी हानि न हो ॥ ३३ ॥ परन्तु जो अपनेसे प्रतिकूल आचरण करे, उसे उपांशुदण्डसे (छिपे तौरपर उचित दण्ड आदि देकर) सीधा करे । क्योंकि प्रकट दण्ड देनेसे अन्य वशीभूत राजाओंमें उद्वेग फैलजानेका भय रहता है ॥ ३४ ॥

उपकारिणमुपकारशक्त्या तोषयेत् ॥ ३५ ॥ प्रयासतश्चार्थमानौ कुर्यात् ॥ ३६ ॥ व्यसनेषु चानुग्रहं स्वयमागतानां यथेष्टदर्शनं प्रतिविधानं च कुर्यात् ॥ ३७ ॥

अपना उपकार करनेवाले राजाको अपनी शक्तिके अनुसार सदा सन्तुष्ट रक्खे ॥ ३५ ॥ और उनके परिश्रमके अनुसार उन्हें धन देवे, तथा उनका अच्छीतरह सत्कार करे ॥ ३६ ॥ उनके ऊपर किसी तरहकी कोई विपत्ति आनेपर, सान्त्वना आदि देकर सदा उनपर अनुग्रह करता रहे । और यदि वे स्वयं ही अर्थात् बिना बुलायेही अपने यहां आजावें, तो उनके साथ अच्छीतरह प्रेम

पूर्वक मिले मिलावे । परन्तु उनकी ओरसे यदि किसी बुराईकी आशङ्का हो तो उससे अपनी रक्षा करनेके लिये सदा तैयार रहे ॥ ३७ ॥

परिभवापघातकुत्सातिवादांश्चैषु न प्रयुञ्जीत ॥३८॥ दत्त्वा चाभयं पितेवानुगृह्णीयात् ॥ ३९ ॥ यश्चास्यापकुर्यात्तद्दोषमभिविख्याप्य प्रकाशमेनं घातयेत् ॥ ४० ॥

तथा इन दण्डोपनत (दण्ड आदि उपायोंसे अपने अधीन किये हुए) राजाओंके विषयमें, तिरस्कार, कटुवाक्य, निन्दा या अतिस्तुति आदिका प्रयोग कभी न करे ॥ ३८ ॥ और उन्हें अभय देकर, पुत्रोंपर पिताके समान, सदा उनपर अनुग्रह करता रहे ॥ ३९ ॥ परन्तु उनमेंसे जो इसका (विजेताका) अपकार करे, उसके उस अपराधको सर्वत्र प्रकाशित करके प्रकटरूपमें उसका वध करवा देवे ॥ ४० ॥

परोद्वेगकारणाद्वा दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेत ॥४१॥ न च हतस्य भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत ॥ ४२ ॥ कुल्यानप्यस्य स्वेषु पात्रेषु स्थापयेत् ॥ ४३ ॥

यदि इस बातका भय हो, कि प्रकट दण्ड देनेसे अन्य दण्डोपनत राजा उद्विग्न हो उठेंगे, तो दाण्डकर्मिक प्रकरणमें (८९ प्रकरण) बताये हुए उपायोंका प्रयोग करे। अर्थात् ऐसी अवस्थामें उपांशुदण्डका प्रयोग करे ॥ ४१ ॥ तथा इसप्रकार मारे हुए दण्डोपनत राजाके भूमि, द्रव्य, पुत्र और स्त्री आदिपर कभी अधिकार न करे। अर्थात् उनका स्वयं अपहरण न करे ॥ ४२ ॥ किन्तु इनको, और इनके वंशके अन्य व्यक्तियोंको भी, उनके अपने उचित राज्य स्थानोंपर नियुक्त करदे। अर्थात् उनकी योग्यताके अनुसार अवश्य ही राज्यके भिन्न २ अधिकार पदोंपर उनकी स्थापना करे ॥ ४३ ॥

कर्मणि मृतस्य पुत्रं राज्ये स्थापयेत् ॥ ४४ ॥ एवमस्य दण्डोपनताः पुत्रपौत्राननुवर्तन्ते ॥ ४५ ॥

यदि किसी राजाको वशमें करनेके लिये किये जाने वाले युद्धमें वह राजा मारा जावे, तो उसके पुत्रकोही राज्याधिकार पर स्थापित करे। अर्थात् उसेही राजा बनावे ॥ ४४ ॥ विजिगीषुके इस प्रकार आचरण करनेसे, दण्डोपनत राजा न केवल विजिगीषुके ही अधीन रहते हैं, किन्तु उसके पुत्र और पौत्र आदिके भी अनुगामी बने रहते हैं ॥ ४५ ॥

यस्तूपनतान्हत्वा बध्वा वा भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत तस्योद्विग्नं मण्डलमभावायोत्तिष्ठते ॥ ४६ ॥

परन्तु जो विजिगीषु, दण्डोपनत राजाओंको मारकर अथवा कैदमें डालकर, उनके भूमि, द्रव्य, पुत्र और स्त्री आदिको अपने अधिकारमें कर लेता है, उससे कुपित हुआ राज मण्डल (बारह प्रकारके राजाओंमेंसे विजिगीषुको छोड़कर अन्य ग्यारह प्रकारके राजा) उसका (विजिगीषुका) विध्वंस करनेके लिये तैयार होजाता है । (बारह प्रकारके राजा ये हैं:—विजिगीषु, शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार, मध्यम, और उदासीन । देखो—अधि० ६, अध्याय २) ॥ ४६ ॥

ये चास्यामात्याः स्वभूमिष्वायत्तास्ते चास्योद्विग्ना मण्डलमाश्रयन्ते ॥ ४७ ॥ स्वयं राज्यं प्राणान्वास्याभिमन्यन्ते ॥ ४८ ॥

और जो विजिगीषुके अमात्य, अपने २ अधिकार पदोंपर कार्य करते हुए रहते हैं, वे भी इससे कुपित होकर, इसको दबानेके लिये तैयार हुए २ राजमण्डलके साथ मिलजाते हैं ॥ ४७ ॥ अथवा स्वयंही इसके राज्य या प्राणों पर अपना अधिकार करलेते हैं । अर्थात् इसके राज्यको अपहरण करलेते हैं, अथवा इसे मारडालते हैं ॥ ४८ ॥

स्वभूमिषु च राजानः तस्मात्साम्नानुपालिताः ।
भवन्त्यनुगुणा राज्ञः पुत्रपौत्रानुवर्तिनः ॥ ४९ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे दण्डोपनायिवृत्तं षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥
आदितश्चतुर्दशशतः ॥ ११४ ॥

इस लिये जो राजा, अपनी २ भूमियोंमें राज्यका उपभोग करते रहते हैं, और विजिगीषु सामके द्वारा ही उनकी रक्षा करता है, वे विजिगीषुके अनुकूल रहते हुए, उसके पुत्र पौत्र आदिके भी अनुगामी बने रहते हैं ॥ ४९ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें सोलहवां अध्याय समाप्त

सत्रहवां अध्याय

१२२, १२३ प्रकरण

सन्धिका दृढ़ करना; और विश्वासके लिये, रक्खे हुए राजपुत्र आदिका छुड़ाना।

शमः संधिः समाधिरित्येकोऽर्थः ॥ १ ॥ राज्ञां विश्वासोपगमः शमः संधिः समाधिरिति ॥ २ ॥

शम, सन्धि, और समाधि ये तीनों शब्द एक ही अर्थको कहते हैं ॥ १ ॥ और वह है, राजाओंके परस्पर विश्वास दृढ़ होजानेका कारण। अर्थात् सत्य, शपथ और ज़ामिन, तथा राजपुत्र आदिका लेना, इत्यादि कारणोंसे, राजाओंको जो परस्पर दृढ़ विश्वास होजाता है, वही शम, सन्धि या समाधि कहाता है ॥ २ ॥

सत्यं शपथो वा चलः संधिः ॥ ३ ॥ प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा स्थावरः इत्याचार्याः ॥ ४ ॥

आचार्योंका मत है, कि जो सन्धि 'यह ऐसा ही होगा, अन्यथा नहीं होगा' इस प्रकार सत्यता पूर्वक वचन मात्रसेही की जाती है, अथवा अपने पूज्य पिता आदिके पैर या सुवर्ण आदिको छूकर शपथ पूर्वक कीजाती है, वह सन्धि स्थिर नहीं होती ॥ ३ ॥ और जो सन्धि प्रतिभू (जामिन) के द्वारा, और विश्वासके लिये राजपुत्र आदिको लेकर कीजाती है, वह स्थावर अर्थात् स्थायी=अत्यन्त विश्वसनीय होती है ॥ ४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ५ ॥ सत्यं वा शपथो वा परत्रेह च स्थावरः संधिः ॥ ६ ॥

परन्तु कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ ५ ॥ वह कहता है कि जो सन्धि सत्यता पूर्वक और शपथ पूर्वक कीजाती है, वह अत्यन्त विश्वासके योग्य तथा स्थायी होती है। क्योंकि उसमें सन्धि करनेवालोंको इस बातका भय रहता है कि यदि इस सन्धिका हम उल्लंघन करेंगे, तो परलोकमें नरकमें पड़ेंगे और इस लोकमें झूठे कहलाकर बदनाम होंगे ॥ ६ ॥

इहार्थ एव प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा बलापेक्षः ॥ ७ ॥

परन्तु प्रतिभू और प्रतिग्रह (राजपुत्र आदिका लेना) पूर्वक की हुई सन्धिको तोड़देनेपर केवल इसी लोकमें कुछ थोड़ाबहुत अनर्थ होसकता है, परलोकमें नहीं होसकता; इस लिये इसके तोड़नेमें भय कम रहता है। तथा प्रतिभू भी उसी समय विश्वसनीय होता है जबकि वह बलवान् हो; और प्रतिग्रह भी उसी समय विश्वसनीय समझा जाता है, जब कि वह देनेवालेका प्रेममात्र हो ॥ ७ ॥

संहिताः स्म इति सत्यसंधाः पूर्वे राजानः सत्येन संदधिरे ॥ ८ ॥ तस्यातिक्रमे शपथेन अग्न्युदकसीताप्राकारलोष्टहस्तिस्कन्धाश्वपृष्ठरथोपस्थशस्त्ररत्नबीजगन्धरससुवर्णहिरण्यान्यालेभिरे॥९॥ हन्युरेतानि त्यजेयुश्चैनं यः शपथमतिक्रामेदिति ॥ १० ॥

सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले पहिले राजा लोग 'हम सन्धि करते हैं' इस प्रकार सत्यके द्वाराही दृढ़सन्धि करलेते थे ॥ ८ ॥ सत्यका अतिक्रमण करनेपर अग्नि, जल, भूमि, मकान, हाथीका कन्धा, घोड़ेकी पीठ, रथमें बैठनेकी जगह, हथियार, रत्न, धान आदिके बीज, चन्दन आदि गन्ध, घृत आदि रस, सुवर्ण और हिरण्य इन चीज़ोंका स्पर्श करते थे ॥ ९ ॥ और 'ये चीज़ें उस व्यक्तिको नष्ट करदें या त्यागदें, जो इस प्रतिज्ञाका अतिक्रमण करे' इस प्रकार शपथपूर्वक सन्धि करलेते थे ॥ १० ॥

शपथातिक्रमे महतां तपस्विनां मुख्यानां वा प्रातिभाव्यबन्धः प्रतिभूः ॥ ११ ॥ तस्मिन्यः परावग्रहसमर्थान्प्रातिभुवो गृह्णाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १२ ॥ विपरीतोऽतिसंधीयते ॥ १३ ॥

शपथका भी अति क्रमण करदेनेपर बड़े २ तपस्वी अथवा ग्रामादिके मुख्य पुरुषोंको प्रतिभू बनाकर सन्धि करना उचित है। सन्धिके दृढ़ रखनेका उत्तरदायित्व इन्हीं पुरुषोंपर रहता है ॥ ११ ॥ प्रतिभू बनाकर सन्धि करने वाले राजाओंमेंसे वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जो कि प्रतिज्ञा या सन्धि को तोड़नेवाले शत्रुओंके निग्रह अर्थात् दमन करनेमें समर्थ पुरुषको अपना प्रतिभू बनाता है ॥ १२ ॥ इससे दूसरा राजा, अवश्यही अपने शत्रुसे धोखा खाता है ॥ १३ ॥

बन्धुमुख्यप्रग्रहः प्रतिग्रहः ॥ १४ ॥ तस्मिन्यो दूष्यादूष्यामात्यं दूष्यापत्यं वा ददाति सो ऽतिसंधत्ते ॥ १५ ॥ विपरीतो ऽतिसंधीयते॥ १६ ॥

दूसरेके वचनपर विश्वासके लिये, उससे उसके बन्धु बान्धव या मुख्य पुरुषोंको लेलेना प्रतिग्रह कहाता है ॥ १४ ॥ इसप्रकार प्रतिग्रह (बन्धु बान्धवको देने) के द्वारा सन्धि करनेवाले राजाओंमेंसे वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जो अपने दूष्य अमात्य या दूष्य पुत्रादिको देदेता है ॥ १५ ॥ और दूसरा राजा (दूष्य अमात्य आदिको लेनेवाला) ऐसी अवस्थामें अवश्यही अपने शत्रुसे धोखा खाता है ॥ १६ ॥

प्रतिग्रहग्रहणविश्वस्तस्य हि परः छिद्रेषु निरपेक्षः प्रहरति ॥ १७ ॥

क्योंकि लेनेवाला तो यह समझता है कि मेरे पास इसके अमात्य आदि हैं, यह मेरे विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता, इसलिये उसपर विश्वास करता है; परन्तु दूसरा देनेवाला, उसकी निर्बलताओंको ढूंढता हुआ, दोषोंके मिलजाने

पर, दियेहुए दूष्य अमात्य आदिकी कुछ अपेक्षा न करता हुआ उसपर प्रहार अर्थात् क्रमण कर देता है ॥ १७ ॥

अपत्यसमाधौ तु कन्यापुत्रदाने ददत्तु कन्यामतिसंधत्ते ॥ १८ ॥ कन्या ह्यदायादा परेषामेवार्थाय क्लेशाय च विपरीतः पुत्रः ॥ १९ ॥

पुत्र आदिको देकर सन्धि करनेवाले राजाओंमेंसे, वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जो कि पुत्र और कन्या दोनोंमेंसे किसी एकको दिये जानेके प्रसंगमें कन्याको देदेता है ॥ १८ ॥ क्योंकि कन्या दायकी अधिकारिणी नहीं होती, तथा वह दूसरों हीके उपभोगके लिये होती है। और पिताके लिये तो धनादि व्ययके द्वारा दुःखदेनेवाली ही होती है। परन्तु पुत्र ऐसा नहीं होता, वह दायभोगी, पिताके अपने लिये और उसके क्लेशोंको दूर करनेके लिये होता है ॥ १९ ॥

पुत्रयोरपि जात्यं शूरं प्राज्ञं कृतास्त्रमेकपुत्रं वा ददाति सोऽतिसंधीयते ॥ २० ॥ विपरीतोऽतिसंधत्ते ॥ २१ ॥ जात्यादजात्यो हि लुप्तदायादसंतानत्वादाधातुं श्रेयान् ॥ २२ ॥

पुत्रोंको देकर सन्धि करनेवाले राजाओंमेंसे, वह राजा अवश्यही अपने शत्रुसे धोखा खाता है, जो कि अपने कुलीन, बुद्धिमान्, शूर, अस्त्रादि चलानेमें चतुर पुत्रको, अथवा अकेलेही पुत्रको देदेता है ॥ २० ॥ इससे दूसरा राजा (अकुलीन=दासी आदिसे उत्पन्न, बुद्धिहीन पुत्रादिको देनेवाला) अवश्य ही फ़ायदेमें रहता है ॥ २१ ॥ इसलिये समान जातीय पुत्रकी अपेक्षा, असमान जातीय पुत्रको देदेनाही अच्छा है, क्योंकि उसकी सन्तान सम्पत्तिकी दायभागी नहीं होसकती ॥ २२ ॥

प्राज्ञादप्राज्ञो मन्त्रशक्तिलोपात् ॥ २३ ॥ शूरादशूर उत्साहशक्तिलोपात् ॥२४॥ कृतास्त्रादकृतास्त्रः प्रहर्तव्यसंपल्लोपात् ॥२५॥ एकपुत्रादनेकपुत्रो निरपेक्षत्वात् ॥ २६ ॥

बुद्धिमान् पुत्रकी अपेक्षा बुद्धिहीन पुत्रका देदेना इसलिये अच्छा होता है कि उसमें अपनी मन्त्रशक्ति कुछ नहीं होती। अतएव अपनी मन्त्रणासे शत्रुको कुछ लाभ नहीं पहुंचा सकता ॥ २३ ॥ शूर पुत्रकी अपेक्षा भीरु पुत्रका देदेना इसीलिये अच्छा है कि उसमें उत्साह शक्ति बिल्कुल नहीं होती। वह शत्रुका लाभ या अपनी हानि कुछ नहीं कर सकता ॥ २४ ॥ शस्त्रादि चलानेमें

चतुर पुत्रकी अपेक्षा इससे विपरीत पुत्रका देदेना इसीलिये अच्छा है कि वह आक्रमण करनेकी शक्तिसे सर्वथा रहित होता है ॥ २५ ॥ एकलौते पुत्रकी अपेक्षा अनेक पुत्रोंमेंसे एकको देदेना इसीलिये अच्छा है, कि उसके विनाभी काम चल सकता है ॥ २६ ॥

जात्यप्राज्ञयोरजात्यमप्राज्ञमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्त्तते ॥२७॥ प्राज्ञमजात्यं मन्त्राधिकारः ॥२८॥ मन्त्राधिकारे ऽपि वृद्धसंयोगाज्जात्यः प्राज्ञमतिसंधत्ते ॥ २९ ॥

जात्य (समान जातीय=कुलीन) और प्राज्ञ (बुद्धिमान्) पुत्रोंमेंसे, जात्य पर प्रज्ञाहीन पुत्रका ऐश्वर्य प्रकृति अनुगमन करती है। अर्थात् बुद्धिहीन होनेपर भी समान जातीय होनेसे सम्पूर्ण राज्य सम्पत्तिका वही उत्तराधिकारी होता है, इसलिये राज्यका दायभागी होना उसका विशेष गुण है ॥ २७॥ और जो असमान जातीय, पर बुद्धिमान् है, मन्त्रशक्ति उसका अनुगमन करती है। अर्थात् उसके राज्याधिकारी न होनेपर भी मन्त्रशक्तिसे युक्त होना उसका एक विशेष गुण है ॥ २८ ॥ इन दोनों पुत्रोंमेंसे, मन्त्रशक्तिसे युक्त होनेपर भी अजात्य प्राज्ञकी अपेक्षा जात्य अप्राज्ञ पुत्रही श्रेष्ठ होता है। क्योंकि वह राज्याधिकारी होकर विचार स्थानोंपर वृद्ध अनुभवी बुद्धिमान् पुरुषोंको नियुक्त करके अपनी उस कमीको पूरा कर सकता है ॥ २९ ॥

प्राज्ञशूरयो प्राज्ञमशूरं मतिकर्मणां योगो ऽनुवर्तते ॥ ३० ॥ शूरमप्राज्ञं विक्रमाधिकारः ॥ ३१ ॥ विक्रमाधिकारेऽपि हस्तिनमिव लुब्धकः प्राज्ञः शूरमतिसंधत्ते ॥ ३२ ॥

इसीप्रकार बुद्धिमान् और शूर पुत्रोंमेंसे, बुद्धिमान्, शूरताहीन पुत्रका, बुद्धिपूर्वक किये कार्य अनुगमन करते हैं। अर्थात् वह बुद्धिपूर्वक कार्योंको कर सकता है ॥ ३० ॥ और बुद्धिहीन शूर पुत्र पराक्रमके कार्योंको कर सकता है। ॥ ३१ ॥ इन दोनों पुत्रोंमेंसे, शूर किन्तु बुद्धिहीन पुत्रके पराक्रमी होनेपर भी उसकी अपेक्षा, पराक्रमहीन बुद्धिमान् पुत्रही श्रेष्ठ होता है। जैसेएक बुद्धिमान् शिकारी, शक्तिशाली भी हाथीको अपने वशमें करलेता है। इसीप्रकार बुद्धिमान् पुत्र अपने बुद्धिबलसे, शूरको भी अपने वशमें कर सकता है ॥ ३२ ॥

शूरकृतास्त्रयोः शूरमकृतास्त्रं विक्रमव्यवसायोऽनुवर्तते ॥३३॥ कृतास्त्रमशूरं लक्षलम्भाधिकारः ॥ ३४ ॥ लक्षलम्भाधिकारेऽपि स्थैर्यप्रतिपत्त्यसंमोहैः शूरः कृतास्त्रमतिसंधत्ते ॥ ३५

शूर और कृतास्त्र (शस्त्रास्त्र चलानेमें अत्यन्त चतुर) पुत्रोंमेंसे, शस्त्रादि न चला सकनेवाला किन्तु शूरपुत्र, केवल पराक्रमके कार्योंको अच्छीतरह कर सकता है ॥ ३३ ॥ और शूरताहीन पर शस्त्रादि चलानेमें चतुर पुत्र, अपने लक्ष्य-को अच्छीतरह भेदन करनेकी शक्ति रखता है ॥ ३४ ॥ इन दोनोंमेंसे, लक्ष्यको ठीक भेदन करनेवाले पराक्रमहीन पुत्रकी अपेक्षा, पराक्रमी पुत्रही श्रेष्ठ होता है । क्योंकि वह अवसर आनेपर, अपनी स्थिरता, विपत्तिके समय भी तत्क्षण प्रतीकारके उपायोंका कर डालना, तथा अपनी रक्षा करनेमें सदा सावधान रहना, इत्यादि गुणोंसे कृतास्त्रको भी अपने आधीन कर सकता है ॥ ३५ ॥

बह्वैकपुत्रयोर्बहुपुत्र एकं दत्त्वा शेषवृत्तिस्तब्ध संधिमति-क्रामति नेतरः ॥ ३६ ॥

एक पुत्र और बहुत पुत्रोंमेंसे, बहुत पुत्रोंका होनाही अच्छा है। क्योंकि सन्धिकी दृढ़ता दिखानेके लिये, उनमेंसे एक पुत्रको देकर भी, शेष पुत्रोंके भरोसेपर अभिमान रखता हुआ राजा, अवसर आनेपर की हुई सन्धिको तोड़ सकता है, परन्तु जिसके एकही पुत्र हो, वह ऐसा नहीं कर सकता ॥ ३६ ॥

पुत्रसर्वस्वदाने संधिश्चेत्पुत्रफलतो विशेषः ॥ ३७ ॥ सम-फलयोः शक्तप्रजननतो विशेषः ॥ ३८ ॥ शक्तप्रजननयोरप्युप-स्थितप्रजननतो विशेषः ॥ ३९ ॥

यदि सन्धि करनेवाले दोनों राजाओंके एक एकही पुत्र हो, और उनके देदेनेपर ही सन्धि दृढ़ होती हो, तो दोनोंमेंसे वही राजा विशेष लाभमें रहता है, जिसके पुत्रका भी पुत्र होगया हो । क्योंकि सन्धि टूटनेपर पुत्रके नष्ट होने-पर भी पौत्र राज्यसिंहासनपर बैठ सकता है ॥ ३७ ॥ यदि सन्धि करनेवाले दोनोंही राजाओंके पुत्रोंके पुत्र विद्यमान हों, तो उनमेंसे वही विशेष है, जिसका पुत्र अभी युवा है, अर्थात् और पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति रखता है ॥ ३८ ॥ यदि दोनोंही अन्य पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति रखते हों, तो उनमेंसे वही विशेष है, जोकि आसन्नतर भविष्यमें (जल्दीसे जल्दी) पुत्र उत्पन्न कर सकता हो। परन्तु यथाशक्ति पुत्रको देना नहीं चाहिए ॥ ३९ ॥

शक्तिमत्येकपुत्रे तु लुप्तपुत्रोत्पत्तिरात्मानमादध्यान्नचैकपुत्र-मिति ॥ ४० ॥

पुत्रोत्पादनकी अथवा राज्यभारको वहन करनेकी, शक्ति रखनेवाले एक ही पुत्रके होनेपर, स्वयं पुत्रोत्पादन शक्तिसे हीन हुए २ अपने आपको ही सन्धिकी दृढ़ताके लिये देदेवे। उपर्युक्त गुणोंसे युक्त एकलौते पुत्रको कभी न देवे।

यहांतक सन्धिकर्म अर्थात् सन्धिके दृढ़ करनेके उपायोंका निरूपण किया गया ॥ ४० ॥

अभ्युच्चीयमानः समाधिमोक्षं कारयेत् ॥४१॥ कुमारासन्नाः सत्रिणः कारुशिल्पिव्यञ्जनाः कर्माणि कुर्वाणाः सुरङ्गया रात्रावुपखानयित्वा कुमारमपहरेयुः ॥ ४२ ॥

सन्धिके कारण अच्छी तरह अपनी शक्ति बढ़ जानेपर, विश्वासके लिये दूसरे राजाके यहां रक्खे हुए राजपुत्र आदिको वहांसे मुक्त करालेवे ॥ ४१ ॥ उसको (राजपुत्र आदिको) वहांसे छुड़ानेके निम्नलिखित उपाय समझने चाहियें; राजकुमारके पास रहनेवाले अपने गूढ़ पुरुष, बढ़ई लुहार सुनार या मिस्त्री आदिके वेषमें रहनेवाले अपने अन्य गुप्त पुरुष, वहांपर अपने २ कार्योंको करते हुएही, राज कुमारके निवासके समीपसे एक सुरङ्ग खोदकर रात्रिमें उसही मार्गसे उसे लेकर भाग आवें ॥ ४२ ॥

नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिका वा पूर्वप्रणिहिताः परमुपतिष्ठेरन् ॥ ४३ ॥ ते कुमारं परम्परयोपतिष्ठेरन् ॥ ४४ ॥

अथवा नट (अभिनय करनेवाला), नर्त्तक (नाचनेवाला), गायक (गानेवाला), वादक (बजानेवाला), वाग्जीवन (कथा आदि कहकर अपनी जीविका करनेवाला , कुशीलव (श्लोक पाठक अथवा स्तुतिपाठक), प्लवक (तलवार आदिके खेल दिखानेवाला), सौभिक (आकाशमें उड़नेवाला', ये आठ प्रकारके वेषोंमें विजिगीषुके द्वारा भेजे हुए गुप्तचर पहिले शत्रु राजाके पास आवें। ॥ ४३ ॥ फिर वे धीरे २ वहीं रहते हुए कुमार तक पहुंचे ॥ ४४ ॥

तेषामनियतकालप्रवेशस्थाननिर्गमनानि स्थापयेत् ॥ ४५ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत ॥ ४६ ॥ तेन रूपाजीवा भार्याव्यञ्जनाश्च व्याख्याताः ॥ ४७ ॥

वह राजकुमार राजाकी अनुमतिसे, अपनी इच्छानुसार चाहे जिससमय अपने घरमें उन (नट आदि) को आनेजाने और ठहरनेकी व्यवस्था करा लेवे ॥४५॥ फिर उनहीमें से किसीका वेश बनाकर, रात्रिमें वहांसे निकल आवे। और उनके साथ २ ही अपने देशको चलाजावे ॥ ४६ ॥ इसी प्रकार वेश्या अथवा भार्याके वेशमें गये हुए गुप्त पुरुषभी, राजकुमारको वहांसे छुड़ा लानेका उपाय करें ॥ ४७ ॥

तेषां वा तूर्यभाण्डफेलां गृहीत्वा निर्गच्छेत् ॥ ४८ ॥ सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारकैर्वा द्रव्य वस्त्रभाण्डफेलाशयनासनसंभोगैर्निर्ह्रियेत् ॥ ४९ ॥

अथवा नट नर्त्तक आदिके बाजों या आभरणों (अभिनयके समय सजने के लिये वस्त्र आभूषण आदि) की पेटीको उठाकर उनके साथही बाहर निकल जावे ॥ ४८ ॥ अथवा सूद (रसोईया), आरालिक (मिष्ट आदि बनानेवाला), स्नापक (स्नान आदि करानेवाला), संवाहक (शरीरको दबानेवाला), आस्तरक (बिस्तर आदि बिछानेवाला), कल्पक (नाई), प्रसाधक (वस्त्र आदि धारण करानेवाला), और उदक परिचारक (जल आदि देनेवाला), इन लोगोंके द्वारा जब कोई वस्तु (भक्ष्य आदि , वस्त्र आभूषणों की पेटी या बिस्तर आदि अपने काममें आनेवाली चीज बाहर लेजाई जावे, तब उसके साथ ही अवसर पाकर राजकुमारभी बाहर निकल जावे ॥ ४९ ॥

परिचारकच्छद्मना वा किंचिद्रूपवेलायामादाय निर्गच्छेत् ॥ ५० ॥ सुरङ्गामुखेन वा निशोपहारेण ॥ ५१ ॥ तोयाशये वा वारुणं योगमातिष्ठेत् ॥ ५२ ॥

अथवा राजकुमार, नौकरके बहानेसे अन्धकारके समयमें कोई वस्तु लेकर बाहर निकलजावे ॥ ५० ॥ अथवा रातमें भूतबली (भूतोंके उद्देश्यसे भेंट आदि करना) आदि देनेका बहाना करके सुरङ्गके रास्तेसे बाहर निकल जावे ॥५१॥ अथवा नदी, तालाव आदि किसी बड़े जलाशयमें वारुण योगका (जलके भीतर बैठेरहनेवाले या वहां चलने फिरनेका उपाय विशेष । देखो:—(अधि० १६, अध्याय १, सूत्र १३, १४) अनुष्ठान करके समयपर बाहर निकल जावे ॥ ५२ ॥

वैदेहकव्यञ्जना वा पक्वान्नफलव्यवहारेणारक्षिषु समवचारयेयुः ॥ ५३ ॥ दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणनिमित्तमारक्षिषु मदनयोग युक्तमन्नपानं रसं वा प्रयुज्यापगच्छेत् ॥ ५४ ॥

अथवा व्यापारीके भेसमें रहनेवाले गुप्तपुरुष, पकेहुए अन्न या फल आदिके व्यवहार (प्रयोग) से पहरदारों को विष देदेवें । अर्थात् राजकुमारपर पहरा देनेवाले लोगोंको, गुप्तपुरुष, अन्नादिके द्वारा विष देदेवें । और जब वे बेहोश होजावें, गुप्तपुरुष राजकुमारको लेकर बाहर निकल जावें ॥ ५३ ॥ अथवा देवताकी भेंट श्राद्ध या प्रीतिभोजन के निमित्तसे, बेहोश करनेवाली औषधियों

से युक्त अन्न या पीनेकी वस्तुओंका पहरेदारोंपर प्रयोग करके, राजकुमार उनके संज्ञाहीन होनेपर बाहर निकल जावे ॥ ५४ ॥

आरक्षकप्रोत्साहनेन वा ॥ ५५ ॥ नागरककुशीलवचिकित्सकापूपिकव्यञ्जना वा रात्रौ समृद्धगृहाण्यादीपयेयुः॥ ५६ ॥

अथवा अपने रक्षापुरुषों (पहरेदारों) को बहुतसा धनदेनेकी प्रतिज्ञासे उन्हें सन्तुष्ट करके, राजकुमार बाहर निकलजावे ॥ ५५ ॥ अथवा नगररक्षक नट, चिकित्सक और आपूपिक (खोमचा आदिसे मिठाई, या अन्य प्रकारकी खाद्य वस्तुओंको फेरी लगाकर बेचनेवाले) के वेषमें, रात्रिकेसमय इधर उधर घूमनेवाले गुप्तचर पुरुष रातमें ही धनी लोगोंके घरोंमें आग लगा देवें ॥ ५६ ॥

आरक्षिणो वैदेहकव्यञ्जना वा पण्यसंस्थामादीपयेयुः ॥ ५७ ॥ अन्यद्वा शरीरं निक्षिप्य स्वगृहमादीपयेदनुपातभयात्ततः संधिच्छेदखातसुरङ्गाभिरपगच्छेत् ॥ ५८ ॥

रक्षापुरुष अथवा व्यापारियोंके भेसमें रहनेवाले गुप्तचर पुरुष बाज़ारमें दूकानोंमें आग लगादेवें । आग लगनेके कारण जब सब लोगोंमें गड़बड़ फैलजावे, तो राजकुमार अवसर पाकर बाहर निकलजावे ॥ ५७ ॥ अथवा राजकुमार अपने ही घरमें आग लगादेवे, और वहां अन्य किसीका शरीर (शव) डालदेवे, जिस से कि शत्रु शवको देखकर यह समझ लेवे कि राजकुमार जल गया है, और उसके विषयमें किसी तरहका अन्वेषण न करे, तथा स्वयं राजकुमार, पहिलेसे भीतके छेद अथवा सुरंगसे बाहर निकल जावे ॥ ५८ ॥

काचकुम्भभाण्डभारव्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत ॥ ५९ ॥ मुण्डजटिलानां प्रवासनान्यनुप्रविष्टो वा रात्रौ तद्व्यञ्जनः प्रतिष्ठेत ॥ ६० ॥

अथवा लकड़हारों (काचभारः), कहार (कुम्भभारः), या साईस (भाण्ड भारः घोड़ेके साज आदिको संभालने वाला) के वेषमें, राजकुमार रात्रिके समय बाहर निकल जावे ॥ ५९ ॥ अथवा विजिगीषु जब मुण्ड और जटिलोंको कभी बाहरभेजे, तो राजकुमारभी छिपकर उनमें मिलजावे, और रातमें उन्हींकासा भेस बनाकर, उनके साथही बाहर निकल जावे ॥ ६० ॥

विरुपव्याधिकरणारण्यचरच्छद्मनामन्यतमेन वा ॥ ६१ ॥ प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निह्रियेत ॥६२॥ प्रेतं वा स्त्रीवेषेणानुगच्छेत् ॥ ६३ ॥

अथवा औपनिषदिक प्रकरणमें बतायेहुए उपायोंसे अपनी शकलको बिल्कुल बदलकर, या रोगीकासा भेस बनाकर या जंगली भील कोल आदिका भेस बनाकर, राजकुमार चुपचाप रातमें बाहर निकल जावे ॥ ६१ ॥ अथवा राजकुमारको मुर्दोंकी शकलमें अपने कन्धोंपर रखकर, गूढ़पुरुष बाहर ले जावें ॥ ६२ ॥ अथवा किसी मुर्देके पीछे २ स्त्रीका वेश बनाकर, राजकुमार बाहर निकल जावे ॥ ६३ ॥

वनचरव्यञ्जनाश्चैनमन्यतो यान्तमन्यतो ऽपदिशेयुः ॥६४॥ ततो ऽन्यतो गच्छेत् ॥ ६५ ॥ चक्रचराणां वा शकटवाटैरपगच्छेत् ॥ ६६ ॥

राजकुमारके बाहर निकल जानेपर, जब उसका अन्वेषण करनेवाले राजपुरुष इधर उधर जावें, तो जंगलियोंके भेसमें रहनेवाले (राजकुमार पक्षके) गुप्तपुरुष, इन ढूंढने वाले पुरुषोंको दूसराही रास्ता बतलादेवें। अर्थात् जिस रास्तेसे राजकुमार जारहा हो उससे बिल्कुल उलटा रास्ता उन्हें बतादेवें ॥६४॥ और राजकुमार, अन्वेषकोंको बतलाये हुए मार्गसे भिन्न मार्गके द्वाराही जावे ॥ ६५ ॥ अथवा गाड़ी चलानेवाले पुरुषोंकी गाड़ियोंके झुण्डके साथ २ ही जावे ॥ ६६ ॥

आसन्ने चानुपाते सत्त्रं वा गृह्णीयात् ॥ ६७ ॥ सत्त्राभावे हिरण्यं रसविद्धं वा भक्षजातमुभयतः पन्थानमुत्सृजेत् ॥ ६८ ॥ ततो ऽन्यतोऽपगच्छेत् ॥ ६९ ॥

यदि अपने ढूंढनेवाले पुरुष, बहुतही समीप आजावे, तो कहीं घने जंगलमें छिप जावे ॥ ६७ ॥ यदि छिपनेके लिये कहीं घना जंगल न मिले, तो हिरण्य, अथवा विषयुक्त खाद्यवस्तु, रास्तेके दोनों ओर डालदेवे ॥ ६८ ॥ और फिर दूसरे किसी रास्तेसे निकल जावे ॥ ६९ ॥

गृहीतो वा सामादिभिरनुपातमतिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ रसविद्धेन वा पथ्य (पाथेय) दानेन ॥ ७१ ॥

अथवा यदि ढूंढनेवाले पुरुष इसको पकड़ लेवें, तो सामदान आदि उपायोंके द्वारा उसको धोखा देकर निकल जावे ॥ ७० ॥ अथवा विषयुक्त पाथेय (मार्गमें खानेके लिये लेजाया हुआ खाद्यपदार्थ) देकर उनको मार देवे, या मूर्च्छित करदेवे; और स्वयं वहांसे निकल भागे ॥ ७१ ॥

वारुणयोगाग्निदाहेषु वा शरीरमन्यदाधाय शत्रुमभियुञ्जीत पुत्रो मे त्वया हत इति ॥ ७२ ॥

पकड़े जानेके डरसे छिपे हुए राजकुमारको भगालेजानेका एक. यह भी उपाय है, कि पूर्वोक्त वारुणयोग और अग्निदाहके अवसरोंपर, दूसरे किसी शरीरको वहां डालकर, विजिगीषु शत्रुके ऊपर अभियोग करे, कि तुमने मेरे पुत्रको मारडाला है। इस अभियोगसे, शत्रु यह समझकर कि राजकुमार मरगया है, उसका ढूंढना बन्द करदेगा। तथा राजकुमार निश्चिन्ततासे अपने देशमें चला जावे ॥ ७२ ॥

उपाचच्छन्नशस्त्रो वा रात्रौ विक्रम्य रक्षिषु ।
शीघ्रपातैरपसरेद्गूढप्रणिहितैः सह ॥ ७३ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे संधिकर्मसंधिमोक्षः सप्तदशो ऽध्यायः ॥१७॥
आदितः पञ्चदशशतः ॥ ११५ ॥

अथवा पूर्वोक्त कोई भी उपाय यदि न किया जासके, तो राजकुमारको चाहिये, कि वह रातमें छिपेतौर पर हथियारोंको लेकर अपने पहरेदारोंके ऊपर आक्रमण करके या उन्हें मारकर शीघ्रगामी घोड़े आदि सवारियोंके द्वारा, गूढ पुरुषोंके साथ २ बाहर निकलजावे ॥ ७३ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ।

अठारहवां अध्याय ।

१२४—१२६ प्रकरण

मध्यम, उदासीन और अन्य राजमण्डलके प्रति विजिगीषुका व्यवहार ।

**मध्यमस्यात्मतृतीया पञ्चमी च प्रकृती प्रकृतयः ॥ १ ॥
द्वितीया च चतुर्थी षष्ठी च विकृतयः ॥ २ ॥**

मध्यम, स्वयं और तीसरी तथा पांचवी प्रकृति अर्थात् मित्र और मित्रका मित्र, ये तीनों (आत्मा, मित्र, मित्रमित्र), मध्यमकी प्रकृति कहाती हैं। (मध्यमके अच्छीतरह सहायक होनेके कारण, ये उसके 'प्रकृति' कहे जाते हैं।) ॥ १ ॥ शत्रु, शत्रुका मित्र, और शत्रुके मित्रका मित्र, ये तीनों मध्यमकी 'विकृति' कहे जाते हैं। क्योंकि ये मध्यमका विरोध करनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

तच्चेदुभयं मध्यमो ऽनुगृह्णीयाद्विजिगीषुर्मध्यमानुलोमः स्यात् ॥ ३ ॥ न चेदनुगृह्णीयात्प्रकृत्यनुलोमः स्यात् ॥ ४ ॥

मध्यमको चाहिये कि वह दोनों प्रकार के (प्रकृति और विकृतिरूप) राजाओंपर पूर्ण अनुग्रहबुद्धि रक्खे । और विजिगीषुको चाहिये कि वह सदा मध्यमराजाके अनुकूल बनारहे ॥ ३ ॥ यदि मध्यम दोनों प्रकारके राजाओंपर अनुग्रह न कर सके, तो अपनी प्रकृति अर्थात् आत्मा, मित्र और मित्रका मित्र इनको तो अवश्यही अपने अनुकूल बनाये रक्खे ॥ ४ ॥

मध्यमश्चेद्विजिगीषोर्मित्रं मित्रभावि लिप्सेत मित्रस्यात्मनश्च मित्राण्युत्थाप्य मध्यमाच्च मित्राणि भेदयित्वा मित्रं त्रायेत ॥५॥

यदि मध्यम विजिगीषुके मित्रभावि मित्र (देखो—अधि. ७, अध्या. ९ सूत्र ५५) को अपने अधीन करना चाहे, तो उस समय विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने मित्रोंके मित्र और अपने मित्रोंको सहारा देकर, तथा मध्यमके मित्रोंका उससे भेद डलवाकर अपने मित्रकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

मण्डलं वा प्रोत्साहयेत् ॥ ६ ॥ अतिप्रवृद्धोऽयं मध्यमः सर्वेषां नो विनाशायाभ्युत्थितः संभूयास्य यात्रां विहनाम इति ॥ ७ ॥ तच्चेन्मण्डलमनुगृह्णीयान्मध्यमावग्रहेणात्मानमुपबृंहयेत् ॥ ८ ॥

यदि विजिगीषु ऐसा न कर सके, तो मध्यमके विरुद्ध अन्य राजमण्डलको इसप्रकार प्रोत्साहित करदे, कि ॥ ६ ॥ देखो, बहुत उन्नत हुआ २ यह मध्यम, हम सबकाही नाश करनेके लिये उठ खड़ा हुआ है । हमको चाहिये, कि हम सब मिलकर इसके आक्रमणको रोकें ॥ ७ ॥ यदि इसप्रकार प्रोत्साहित किया हुआ राजमण्डल, अपनी (विजिगीषुकी) सहायता करनेके लिये तैयार होजाय, तो उनकी सहायतासे मध्यमका निग्रह करके अपने आपको अच्छीतरह उन्नत बनावे ॥ ८ ॥

न चेदनुगृह्णीयात्कोशदण्डाभ्यां मित्रमनुगृह्य ये मध्यमद्वेषिणो राजानः परस्परानुगृहीता वा बहवस्तिष्ठेयुरेकसिद्धौ वा बहवः सिद्ध्येयुः परस्पराद्वा शङ्किता नोत्तिष्ठेरंस्तेषां प्रधानमेकमासन्नं वा सामदानाभ्यां लभेत ॥ ९ ॥

यदि राजमण्डल विजिगीषुकी सहायता न करे, तो वह धन और सेनाके द्वारा अपने मित्रकी सहायता करके; जो बहुतसे राजा मध्यमके साथ द्वेष रखनेवाले हों, अथवा जो आपसमें एक दूसरेकी सहायता करके मध्यमका अपकार करना चाहते हों, या जो मध्यमके शत्रु, एकके अनुकूल (विजिगीषुके अनुकूल) होजानेपर सब अनुकूल होजावें, अथवा मिलकर सिद्धिलाभकी कामना रहते हुए

भी परस्पर एक दूसरेके भयसे जो आक्रमणके लिए तैयार न होते हों, ऐसे मध्यमके शत्रु राजाओंमेंसे एक प्रधान राजाको, अथवा अपने देशके समीपके राजाको साम और दानके द्वारा अपने वशमें करे, अर्थात् अपने अनुकूल बनावे ॥ ९ ॥

द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम् ॥ १० ॥ एवमभ्युच्चितो मध्यममवगृह्णीयात् । ॥ ११ ॥

इसप्रकार दूसरे राजाकी सहायता मिलनेपर विजिगीषु द्विगुणबलशाली होजाता है। यदि इसीतरह तीसरे राजाकी और सहायता मिलजावे, तो विजिगीषुका, तिगुना बल होजाता है ॥ १० ॥ इसप्रकार अपनी शक्तिको बढ़ाकर विजिगीषु, मध्यमका निग्रह करे ॥ ११ ॥

देशकालातिपत्तौ वा संधाय मध्यमेतरमित्रस्य साचिव्यं कुर्यात् दूष्येषु वा कर्मसंधिम् ॥ १२ ॥

अथवा मध्यमके शत्रुओंकी सहायता लेनेके पहिलेही, देशकालके अनुसार विजिगीषु सीधा मध्यमके साथही सन्धि करे, और फिर अपने उस मित्र (मित्रभावि मित्र) के साथ भी मध्यमकी सन्धि कराकर उसकी सहायता करे। यदि ऐसा सम्भव न हो, अर्थात् मध्यम यदि सन्धि न करना चाहे, तो मध्यमके दूष्य पुरुषों (ऐसे प्रधान कर्मचारी, जो भीतरही भीतर मध्यमसे शत्रुता रखते हों) के साथ कर्म सन्धि करे । अर्थात् उनसे कहे कि तुम लोग अमुक स्थान आदिमें आग लगवादो, या इसीप्रकारका अन्य कोई उपद्रव खड़ा करदो, अनन्तर मैं इसके साथ युद्ध करूंगा, इसप्रकार दूष्योंसे सन्धि करे ॥ १२ ॥

अपने मित्रभावि मित्रको अधीन करनेके लिये तैयार हुए २ मध्यमके साथ विजिगीषुको क्या व्यवहार करना चाहिये, यह कहदिया गया। अब कर्शनीय मित्र (ऐसा मित्र जो विजिगीषुके विरुद्ध रहता हो, और इसीलिये विजिगीषु उसके धन और सेनाका क्षय करके जिसे कृश बनाना चाहता हो) को अधीन करनेके लिये प्रयत्न करते हुए मध्यमके साथ विजिगीषुको क्या व्यवहार करना चाहिये, यह बताते हैं:—

कर्शनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत प्रतिस्तम्भयेदेनमहं त्वा त्रायेय इत्याकर्शनात् ॥ १३ ॥ कर्शितमेतं त्रायेत ॥ १४ ॥

विजिगीषुके कर्शनीय मित्रको यदि मध्यम अपने अधीन करना चाहे तो विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने उस मित्रको अपनी ओरसे यह कहकर,

अभय करदे, कि मैं मध्यमसे तुम्हारी रक्षा करूंगा, घबड़ाओ नहीं। परन्तु यह अभयवचन उसी समयतक होता है, जबतक कि मध्यमके द्वारा यह कृशताको प्राप्त करा दिया जाय। अर्थात् दुर्बल बना दिया जाय ॥ १३ ॥ कृशताको प्राप्त होनेपर तो इसकी रक्षा, विजिगीषुको अवश्यही करनी चाहिये। अर्थात् जब यह दुर्बल बना दिया जाय, तो विजिगीषु अवश्य इसकी रक्षा करे ॥ १४ ॥

उच्छेदनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत कर्शितमेतं त्रायेत मध्यमवृद्धिभयात् ॥ १५ ॥ उच्छिन्नं वा भूम्यनुग्रहेण हस्ते कुर्यादन्यत्रापसारभयात् ॥ १६ ॥

यदि विजिगीषुके उच्छेदनीय मित्रको मध्यम अपने अधीन करनाचाहे तो विजिगीषुको चाहिये कि वह अपने उच्छेदनीय मित्रकी उसी समय रक्षा करे, जबकि मध्यम, उसको अच्छी तरह कष्ट पहुंचा चुका हो; परन्तु अभीतक उच्छेद न किया हो। क्योंकि उसके उच्छेद करनेपर तो मध्यम और भी शक्तिशाली होसकता है, तथा विजिगीषुको भी हानि पहुंचा सकता है ॥ १५ ॥ अथवा उच्छिन्न हुए २ उस मित्रको अपनी ओरसे कुछ भूमि देकर अपने वशमें कर लेवे, अन्यथा यह सम्भव होसकता है कि वह शत्रु पक्षमें जाकर मिलजाये ॥ १६ ॥

कर्शनीयोच्छेदनीययोश्चेन्मित्राणि मध्यमस्य साचिव्यकराणि स्युः पुरुषान्तरेण संधीयेत ॥ १७ ॥ विजिगीष्वोस्तयोर्मित्राण्यवग्रहसमर्थानि स्युः संधिमुपेयात् ॥ १८ ॥

यदि कर्शनीय और उच्छेदनीय राजाओंके अन्य मित्र मध्यमकीही सहायता करनेवाले हों, तो विजिगीषु को चाहिये कि वहभी अपने राजकुमार अथवा अमात्य आदिको उपस्थित करके (मध्यमके पास विश्वासकी दृढ़ताके लिये आधिरूपमें रखकर) मध्यमसे सन्धि करलेवे ॥ १७ ॥ विजिगीषुके कर्शनीय और उच्छेदनीय राजाओंके मित्र, यदि मध्यमका मुकाबला करनेमें समर्थ हों, तो विजिगीषुको चाहिये कि वह मध्यमके साथ सन्धि करलेवे। यहांतक विजिगीषुके अपने मित्रोंपर अभियोग करनेवाले मध्यमके साथ विजिगीषु का क्या व्यवहार होना चाहिये, इस बातका निरूपण किया गया। अब विजिगीषुके शत्रुओंपर अभियोग करनेवाले मध्यमके साथ विजिगीषुके व्यवहारका निरूपण करते हैं ॥ १८ ॥

अमित्रं वास्य मध्यमो लिप्सेत संधिमुपेयात् ॥ १९ ॥ एवं स्वार्थश्च कृतो भवति मध्यमस्य प्रियं च ॥ २० ॥

यदि विजिगीषुके किसी शत्रुको, मध्यम अपने अधीन करना चाहे; तो विजिगीषुको यह चाहिये कि वह मध्यमके साथ सन्धि कर लेवे ॥ १९ ॥ क्योंकि ऐसा करनेसे दोनों बातें सिद्ध हो जाती हैं। एक तो अपने शत्रुका नाश हो जानेसे अपना कार्यसिद्ध होजाता है, और मध्यमका भी प्रिय होजाता है ॥ २० ॥

मध्यमश्चेत्स्वामित्रं मित्रभावि लिप्सेत पुरुषान्तरेण संदध्यात् ॥ २१ ॥ सापेक्षं वा नार्हसि मित्रमुच्छेत्तुमिति वारयेदुपेक्षेत वा मण्डलमस्य कुप्यतु स्वपक्षवधादिति ॥ २२ ॥

यदि मध्यम अपने ही किसी मित्रभावी मित्रको अपने अधीन करना चाहे, तो विजिगीषुको चाहिये कि अपने सेनापति आदिको भेजकर मध्यमकी सहायता करे ॥ २१ ॥ अथवा उस मित्रसे अपनी अर्थसिद्धिको देखता हुआ, मध्यमको उसपर आक्रमण करनेसे यह कहकर रोकदेवे, कि मित्रका उच्छेद करना अच्छा नहीं होता'। ऐसा करनेसे विजिगीषु, अन्य राजाओंका अधिक विश्वस्त होजाता है। अथवा यह सोचकर इसकी उपेक्षा ही करदेवे, कि मध्यम यदि अपने मित्र परही आक्रमण करेगा, तो इसका राजमण्डल ही इससे, यह जानकर कुपितहो जायगा, कि यह अपने मित्रकाही वध करनेके लिये तैयार होगया है ॥ २२ ॥

अमित्रमात्मनो वा मध्यमो लिप्सेत ॥ २३ ॥ कोशदण्डाभ्यामेनमदृश्यमानो ऽनुगृह्णीयात् ॥ २४ ॥ उदासीनं वा मध्यमो लिप्सेत ॥ २५ ॥ उदासीनाद्भिद्यतामिति ॥२६॥ मध्यमोदासीयोर्यो मण्डलस्याभिप्रेतस्तमाश्रयेत ॥ २७ ॥

यदि मध्यम अपने किसी शत्रुको ही अपने अधीन करना चाहे ॥२३॥ तो विजिगीषुको चाहिये कि वह धन और सेनाके द्वारा छिपे तौरपर ही मध्यमके शत्रुकी सहायता करे ॥ २४ ॥ यदि मध्यम, किसी उदासीन राजाको अपने अधीन करना चाहे, तो विजिगीषु यह सोचकर कि 'मध्यम उदासीनसे सर्वथा भेदको प्राप्त होजाय' मध्यम और उदासीन दोनोंमेंसे जो राजमण्डलका अधिक प्रियहो उसहीके साथ मिल जावे। और उसकी सहायतामें लगजावे ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥

मध्यमचरितेनोदासीनचरितं व्याख्यातम् ॥ २८ ॥ उदासीनश्चेन्मध्यमं लिप्सेत यतः शत्रुमतिसंदध्यान्मित्रस्योपकारं कुर्या-

दुदासीनं वा दण्डोपकारिणं लभेत ततः परिणमेत ॥२९॥ एव-मुपबृह्यात्मानमरिप्रकृतिं कर्शयेन्मित्रप्रकृतिं चोपगृह्णीयात् ॥३०॥

मध्यमके चरितके समान, उदासीनका भी चरित समझ लेना चाहिये ॥ २८ ॥ यदि उदासीन राजा किसी मध्यम राजाको अपने अधीन करना चाहे तो विजिगीषुको चाहिये, कि वह इन दोनोंमेंसे, उस राजाके साथ मिलजावे, जिसके साथ मिलनेसे अपने शत्रुका उच्छेद और मित्रका उपकार करसके अथवा मध्यम वा उदासीनको सेनाकी सहायता देकर अपने वशमें करसके ॥ २९ ॥ इस प्रकार विजिगीषु अपनी वृद्धि करके शत्रुरूप प्रकृति अर्थात् शत्रुका नाशकरे और मित्ररूप प्रकृतिका उपकार करे ॥ ३० ॥

सत्यप्यमित्रभावे तस्यानात्मवान्नित्यापकारी शत्रुः शत्रुसहितः पार्ष्णिग्राहो वा व्यसनी यातव्यो व्यसने वा नेतुरभियोक्तेत्यरि-भाविनः ॥ ३१ ॥

शत्रु शब्दसे कहे जानेवाले सामन्त तीन प्रकारके होते हैं। शत्रुभावी मित्रभावी, तथा भृत्यभावी, इन सबका क्रमपूर्वक निरूपण करते हैंः— अपने राज्यके साथ लगेहुए होनेके कारण, विजिगीषुके प्रति शत्रुभावकी समता होनेपर भी, यह सामन्त निम्न रीतिके अनुसार आठ प्रकारका कहा जाता हैः —अजितेन्द्रिय, सदा अपकार करनेवाला, शत्रु अर्थात् बिना ही कारण द्वेष करनेवाला, शत्रुकी सहायतासे युक्त (अर्थात् विजिगीषुके शत्रुकी सहायतासे युक्त), पार्ष्णिग्राह (किसी दूसरे राजा पर चढ़ाई करनेपर पीछेसे उपद्रव करने वाला), और बन्धु आदिकी मृत्युसे दुःखी, यातव्य (जिस पर आक्रमण किया जाय), विजिगीषुको व्यसनमें फंसा देखकर उस पर आक्रमण करने वाला, यह शत्रुभावी सामन्त कहाता है ॥ ३१ ॥

एकार्थाभिप्रयातः पृथगर्थाभिप्रयातः संभूययात्रिकः संहित-प्रयाणिकः स्वार्थाभिप्रयातः सामुत्थायिकः कोशदण्डयोरन्यतरस्य क्रेता विक्रेता द्वैधीभाविक इति मित्रभाविनः ॥ ३२ ॥

तथा विजिगीषुके साथ एकही अर्थकी सिद्धिके लिये यात्रा करनेवाला, अर्थात् जिस भूमि आदि अर्थकी सिद्धिके लिये विजिगीषु एक ओर जावे, उसी अर्थकी सिद्धिके लिये दूसरी ओर को जानेवाला, अथवा विजिगीषुके भूमिके लिये जानेपर स्वयं हिरण्यके लिये जानेवाला; विजिगीषुके साथ २ ही यात्रा अर्थात् किसीपर आक्रमण करनेवाला, विजिगीषुके साथ सन्धि करके, तू इधरको जा, मैं इधरको जाऊंगा' इसप्रकार कहकर यात्रा करनेवाला, विजिगीषु

के ही किसी कार्यको सिद्ध करनेके लिये यात्रा करनेवाला, विजिगीषुसे मिलकर शून्य स्थानोंके बसानेके लिये प्रवृत्त हुआ २ धन और सेना इन दोनोंमेंसे किसी एकको एक दूसरेके बदलेमें खरीदने या बेचनेवाला, द्वैधीभाव गुणसे उपयोग लेने वाला, ये सब आठ प्रकारके मित्रभावी सामन्त कहाते हैं ॥ ३२ ॥

सामन्तो बलवतः प्रतिघातोऽन्तर्धिः प्रतिवेशो वा बलवतः पार्ष्णिग्राहो वा स्वयमुपनतः प्रतापोपनतो वा दण्डोपनत इति भृत्यभाविनः सामन्ताः ॥३३॥ तैर्भूम्येकान्तरा व्याख्याताः॥३४॥

और सामन्त, बलवान् राजाका मुकाबला करनेवाला, अन्तर्धि, प्रतिवेश (पड़ोसी), बलवान् राजापर पीछेसे आक्रमण करनेवाला, स्वयंही आकर आश्रित हुआ २ अथवा अपने प्रतापसे आश्रित किया हुआ या बलपूर्वक अपने अधीन किया हुआ; ये आठ प्रकारके ही भृत्यभावी सामन्त कहलाते हैं ॥ ३३ ॥ इन तीन प्रकारके (३१, ३२, ३३, सूत्रमें कहे हुए) शत्रुओंके समानही, भूम्येकान्तर (एक देशके व्यवधानसे राज्य करनेवाले) मित्रोंकेभी भेद समझ लेने चाहियें। अर्थात् जिसतरह शत्रु, शत्रुभावी, मित्रभावी और भृत्यभावी ये तीन प्रकारके होते हैं, इसीतरह मित्रभी, शत्रुभावी, मित्रभावी और भृत्यभावी ये तीन प्रकारके ही होते हैं ॥ ३४ ॥

तेषां शत्रुविरोधे यन्मित्रमेकार्थतां व्रजेत् ।
शक्त्या तदनुगृह्णीयाद्विषहेत यया परम् ॥ ३५ ॥

उन भूम्येकान्तर मित्रोंमेंसे किसीके ऊपर यदि शत्रु आक्रमण करदेवे, तो उस मित्रके साथ जो सन्धिकरे, वह धन और सेनाकी, उसको इतनी सहायता पहुंचावे, जिससे वह शत्रुको दबासके ॥ ३५ ॥

प्रसाध्य शत्रुं यन्मित्रं वृद्धं गच्छेदवश्यताम् ।
सामन्तैकान्तराभ्यां तत्प्रकृतिभ्यां विरोधयेत् ॥ ३६ ॥

जो मित्र अपने शत्रुको जीतकर वृद्धिको प्राप्त हुआ २, वशमें (अर्थात् विजिगीषुके वशमें) नहीं रहता, उसके सामन्त और भूम्येकान्तर मित्रोंके तथा उनकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके साथ किसी तरह उसका विरोध करादेवे ॥ ३६ ॥

तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां भूमिं वा तस्य हारयेत् ।
यथा वानुग्रहापेक्षं वश्यं तिष्ठेत्तथा चरेत् ॥ ३७ ॥

अथवा उसे अवश्य (अपने=विजिगीषुके वशमें न रहनेवाले) मित्रके पारिवारिक बन्धुबान्धवों तथा नजरबन्द कियेहुए पुत्रादिके द्वारा उसकी भूमिका

अपहरण करावे। अथवा अपनी सहायता चाहता हुआ वह जिस तरहभी वशमें रहसके, उसीतरह उसके साथ व्यवहार कियाजाय ॥ ३७ ॥

नोपकुर्यादमित्रं वा गच्छेद्यदातिकर्शितम् ।
तदहीनमवृद्धं च स्थापयेन्मित्रमर्थवित् ॥ ३८ ॥

जो मित्र क्षीण अवस्थाको प्राप्त हुआ २ अपने (विजिगीषुका) कोई उपकार न करसके, अथवा शत्रुके साथ जाकर मिलजावे, अपने अर्थको सिद्ध करनेवाले विजिगीषुको चाहिये, कि इस प्रकारके मित्रको ऐसीही अवस्थामें रक्खे, जिससे कि वह न सर्वथा उच्छिन्न ही होजाय, और न अपनी वृद्धि ही करसके ॥ ३८ ॥

अर्थयुक्त्या चलं मित्रं संधिं यदुपगच्छति ।
तस्यापगमने हेतुं विहन्यान्न चलेद्यथा ॥ ३९ ॥

जो चल मित्र लोभके कारण सन्धि करता है, वह कदाचित् सन्धि तोड़ न देवे, इस विचारसे, विजिगीषुको चाहिये कि उसके अर्थ लिप्सारूपी सन्धि विच्छेदके कारणको, स्वयं ही कुछ धन आदि देकर नष्टकरदेवे। जिससे कि वह फिर सन्धि न तोड़सके ॥३९ ॥

अरिसाधारणं यद्वा तिष्ठेत्तदरितः शठम् ।
भेदयेद्भिन्नमुच्छिन्द्यात्ततः शत्रुमनन्तरम् ॥ ४० ॥

जो धूर्त्तमित्र, अपने (विजिगीषुके) शत्रुके साथ मिलकर रहता हो, पहिले उसका शत्रुसे भेद करावे। और भेद कराकर उसका उच्छेद करदे। तदनन्तर शत्रुकाभी उच्छेद करदे ॥ ४० ॥

उदासीनं च यत्तिष्ठेत्सामन्तस्तद्विरोधयेत् ।
ततो विग्रहसंतप्तमुपकारे निवेशयेत् ॥ ४१ ॥

जो मित्र, शत्रु और विजिगीषु दोनोंकी ओरसे उदासीन रहे, विजिगीषु को चाहिये कि सामन्तोंके साथ उसका विरोध करादे। जब सामन्त उसके साथ युद्ध छेड़दे, और वह लड़ाईसे बहुत तंग आजावे, तब उसको अपने उपकारमें लगावे। अर्थात् उसको योग्य बनादेवे, जिससे किवह अपने द्वाराकिये जानेवाले उपकारकी अपेक्षाको अच्छीतरह समझने लगे ॥ ४१ ॥

अमित्रं विजिगीषुं च यत्संचरति दुर्बलम् ।
तद्बलेनानुगृह्णीयाद्यथा स्यान्न पराङ्मुखम् ॥ ४२ ॥

जो दुर्बल मित्र अपनी शक्ति बढ़ानेके लिये, शत्रु और विजिगीषु दोनों का आश्रय लेना चाहता है। विजिगीषुको चाहिये कि ऐसे दुर्बल मित्रको सेना

आदिकी सहायता देकर सदा उपकृत करता रहे, जिससे कि वह पराङ्मुख न होवे; अर्थात् शत्रुसे जाकर न मिलजावे ॥ ४२ ॥

अपनीय ततो ऽन्यस्यां भूमौ वा संनिवेशयेत् ।
निवेश्य पूर्वं तत्रान्यद्दण्डानुग्रहहेतुना ॥ ४३ ॥

अथवा उसको, उसकी अपनी भूमिसे हटाकर किसी अन्य भूमिपर स्थापित करदे, अथवा जहां शत्रुकी सहायताकी कोई अपेक्षा नहो ऐसी अपनी भूमिमें ही रहनेदे । और उसकी भूमिमें उसके जानेसे पहिलेही सेनाके द्वारा सहायता पहुंचानेके लिये, इस कार्यके करनेमें समर्थ किसी अन्य व्यक्तिको स्थापित करदे ॥ ४३ ॥

अपकुर्यात्समर्थं वा नोपकुर्याद्यदापदि ।
उच्छिन्द्यादेव तन्मित्रं विश्वस्याङ्कमुपस्थितम् ॥ ४४ ॥

जो मित्र विजिगीषुका अपकार करे, तथा विजिगीषुके ऊपर कोई आपत्ति आनेपर, प्रतीकार करनेमें समर्थ हुआ २ भी उसको सहायता न देवे; विजिगीषुको चाहिये कि ऐसे मित्रको, पहिले खूब विश्वस्त बनाकर अपनी मुठ्ठीमें आजानेपर उच्छिन्न करदेवे ॥ ४४ ॥

मित्रव्यसनतो वारिरुत्तिष्ठेद्यो ऽनवग्रहः ।
मित्रेणैव भवेत्साध्यः छादितव्यसनेन सः ॥ ४५ ॥

यदि विजिगीषुका शत्रु, विजिगीषुके मित्रपर कोई आपत्ति आजानेके कारण बिनाही किसी रुकावटके अपनी उन्नति करलेवे, तो विजिगीषुको चाहिये कि वह अपने मित्रकी आपत्तिके हट जानेपर अथवा आपत्तिको अप्रकाशित करके ही अर्थात् उसे बीचमेंही दबाकर उस मित्रके द्वाराही शत्रुको वशमें करने का यत्न करे ॥ ४५ ॥

अमित्रव्यसनान्मित्रमुत्थितं यद्विरज्यति ।
अरिव्यसनसिद्ध्या तच्छत्रुणैव प्रसिद्ध्यति ॥ ४६ ॥

इसी प्रकार जो मित्र, अपने शत्रुपर आपत्ति आजानेसे उन्नत होकर विजिगीषुसे अपरक्त होजाता है; अर्थात् उच्छृंखल होकर विजिगीषुके अनुकूल नहीं रहता विजिगीषुको चाहिये कि ऐसे मित्रको, शत्रुकी आपत्तिके दूर होजाने पर उसीके द्वारा वशमें करे ॥ ४६ ॥

वृद्धिं क्षयं च स्थानं च कर्शनोच्छेदनं तथा ।
सर्वोपायान्समादध्यादेतान्यश्चार्थशास्त्रवित् ॥ ४७ ॥

अर्थशास्त्र जाननेवाले राजाको उचित है, कि वह वृद्धि, क्षय, स्थान (उन्नति अवनतिसे रहित एकही अवस्थामें रहना), कर्शन और उच्छेदन, इनका तथा सब ही साम दान आदि उपायोंका अच्छी तरह विचार पूर्वक प्रयोग करें ॥ ४७ ॥

एवमन्योन्यसंचारं षाड्गुण्यं यो ऽनुपश्यति ।
स बुद्धिनिगलैर्बद्धैरिष्टं क्रीडति पार्थिवैः ॥ ४८ ॥

इति षाड्गुण्ये सप्तमे ऽधिकरणे मध्यमचरितमुदासीनचरितं मण्डल-
चरितमष्टादशोऽध्यायः ।
आदितः षोडशशतः ॥ ११६ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य षाड्गुण्यं सप्तममधिकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार जो राजा, आपसमें जकड़े हुए इन छः गुणोंको अच्छीतरह विचारपूर्वक प्रयुक्त करता है । वह निश्चय ही अपनी बुद्धिरूपी संकलसे बांधेहुए अन्य राजाओंके साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥ ४८ ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरणमें अठारहवां अध्याय समाप्त ।

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरण समाप्त ।
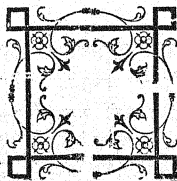
व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण ।

पहिला अध्याय

१२७ प्रकरण

प्रकृतिव्यसनवर्ग

व्यसनयौगपद्ये सौकर्यतो यातव्यं रक्षितव्यं चेति व्यसनचिन्ता ॥ १ ॥ दैवं मानुषं वा प्रकृतिव्यसनमनयापनयाभ्यां संभवति ॥ २ ॥

जब शत्रु और विजिगीषु दोनोंपर समान ही विपत्ति हों, और शत्रुपर आक्रमण तथा अपनी रक्षा करनेमें भी समानता ही दीखती हो, तब उस अवस्थामें शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये, या अपनी रक्षा करनी चाहिये, यह विचार किया जाता है। इसलिये सबसे प्रथम इस अध्यायमें व्यसनों (विपत्तियों) का चिन्तन किया जाता है। कौनसा व्यसन बड़ा या कौनसा छोटा होता है ॥ १ ॥ व्यसन दो प्रकारका होता है, एक दैव और दूसरा मानुष। अमात्य आदि प्रकृति वर्गके ये व्यसन अनय और अपनयसे ही पैदा होते हैं। सन्धि आदिकी उचित व्यवस्था न करना अनय, और शत्रुसमूहसे पीड़ित होते रहना अपनय कहाता है ॥ २ ॥

गुणप्रातिलोम्यमभावः प्रदोषः प्रसङ्गः पीडा वा व्यसनम् ॥३॥ व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम् ॥ ४ ॥

महाकुलीनता आदि गुणोंकी प्रतिकूलता, इसी प्रकारके अन्य गुणोंका न होना, अथवा सन्धि आदि गुणोंका उचित उपयोग न करना, कोप आदि दोषोंका बढ़जाना, विषयोंमें अति आसक्ति होना, और शत्रुओंके द्वारा पीड़ित रहना, ये पांच प्रकारके व्यसन कहाते हैं। अर्थात् उक्त प्रकारसे राजापर विपत्तिका आना ही व्यसन कहाता है ॥ ३ ॥ व्यसनका शब्दार्थ भी यही है कि जो

पुरुषको कल्याण मार्गसे भ्रष्ट करदेवे। जो कार्य राजाको उन्नत अवस्थासे नीचे गिराने वाला हो, वही उसके लिये व्यसन कहाजाता है ॥ ४ ॥

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डामित्रव्यसनानां पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः ॥ ५ ॥

आचार्योंका मत है कि स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र, इनपर विपत्ति आनेपर, अगलेकी अपेक्षा पहिलेपर विपत्तिका आना अत्यन्त कष्टकर है। अर्थात् राजा और अमात्य इन दोनोंपर आपत्ति आने पर राजाकी आपत्ति अधिक भयावह है, इसी तरह आगे भी समझ लेना चाहिये ॥ ५ ॥

नेति भारद्वाजः ॥ ६ ॥ स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ७ ॥ मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कर्मानुष्ठानमायव्ययकर्म दण्डप्रणयनमामित्राटवीप्रतिषेधो राज्यरक्षणं व्यसनप्रतीकारः कुमाररक्षणमभिषेकश्च कुमाराणामायत्तममात्येषु ॥ ८ ॥

परन्तु भारद्वाज (द्रोण) आचार्य, इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ ६ ॥ उसका कहना है कि, यदि स्वामी और अमात्यपर एक साथ ही व्यसन आपड़े, तो अमात्यका व्यसन ही अधिक भयावह या कष्टकर है ॥ ७ ॥ क्योंकि प्रत्येक कार्यका विचार, उनके फलाफलकी प्राप्तिका विचार, निश्चित कार्योंका करना, आय और व्ययकी व्यवस्था, सेनाकी व्यवस्था (अर्थात् सेनाका संग्रह करना और उचित स्थानोंपर उसका उपयोग करना), शत्रु और आटविकों (मारधाड़ करने वाले, या सीमा प्रान्तोंपर छापा मारने वाले जंगली आदि) का निराकरण करना, अपने राज्यकी रक्षा करना, विपत्तियोंका प्रतीकार करना, राजकुमारोंकी रक्षा और उनका अभिषेक करना, इत्यादि सब ही कार्य अमात्योंपर ही निर्भर होते हैं। इसलिये उनपर व्यसन आना अधिक भयावह होता है ॥ ८ ॥

तेषामभावे तदभावच्छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशो व्यसनेषु चासन्नाः परोपजापाः ॥ ९ ॥ वैगुण्ये च प्राणबाधः प्राणान्तिकचरत्वाद्राज्ञ इति ॥ १० ॥

इसप्रकारके अमात्योंके न रहनेपर ये सब ही कार्य नष्टप्राय होजाते हैं। और पंख कटे हुए पक्षीके समान राजाके भी सम्पूर्ण कार्यक्रमोंका नाश होजाता है, तथा व्यसनोंके उपस्थित होनेपर वहां शत्रु अपने षड्यन्त्रोंका जाल फैलाने लगता है ॥ ९ ॥ तथा अमात्योंके विगुण अर्थात् व्यसनी या विपरीत होजानेपर

तो राजाओंके प्राणोंका भी भय उपस्थित होजाता है, क्योंकि अमात्य ही राजाओं के सबसे उत्तम रक्षक होनेके कारण प्राणोंके समान होते हैं ॥ १० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ११ ॥ मन्त्रिपुरोहितादिभृत्यवर्गमध्यक्षप्रचारं पुरुषद्रव्यप्रकृतिव्यसनप्रतीकारमेधनं च राजैव करोति ॥१२॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भारद्वाजके इस सिद्धान्तको नहीं मानता ॥ ११ ॥ क्योंकि वह कहता है कि मन्त्री और पुरोहित आदि भृत्यवर्ग तथा अन्य संपूर्ण विभागोंके अध्यक्षोंके कार्यक्रमको, और पुरुषप्रकृति अर्थात् अमात्य तथा सेना पर, आई हुई विपत्ति, एवं द्रव्यप्रकृति अर्थात् जनपद, कोश और दुर्ग आदि पर, आई हुई विपत्तियोंके प्रतीकारको और उनकी उन्नतिको राजा ही स्वयं कर सकता है ॥ १२ ॥

व्यसनिषु वामात्येष्वन्यानव्यसनिनः करोति ॥१३॥ पूज्यपूजने दूष्यावग्रहे च नित्ययुक्तास्तिष्ठति ॥१४॥ स्वामी च संपन्नः स्वसंपद्भिः प्रकृतीः संपादयति ॥ १५ ॥

अमात्योंपर यदि विपत्ति आपड़ी है, अर्थात् वे व्यसनी होगये हैं, तो उनके स्थानपर दूसरे व्यसनी अमात्योंको राजा नियुक्त कर सकता है ॥ १३ ॥ और राजा ही पूज्य व्यक्तियोंके सत्कार तथा दुष्ट व्यक्तियोंके निग्रहमें सदा तत्पर रहता है ॥ १४ ॥ राजा राजसम्पत्तिसे अर्थात् राजयोग्य गुणोंसे युक्त होनेपर, अमात्य आदि प्रकृतियोंको भी गुणसम्पन्न बना सकता है ॥ १५ ॥

स्वयं यच्छीलस्तच्छीलाः प्रकृतयो भवन्ति ॥ १६ ॥ उत्थाने प्रमादे च तदायत्तत्वात् ॥१७॥ तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ॥१८॥

क्योंकि स्वयं राजाका जैसा स्वभाव होता है। प्रकृतियां भी उसी स्वभावकी बन जाती हैं ॥ १६ ॥ तथा अमात्य आदि प्रकृतियोंका अभ्युदय और अधःपात राजाके ही अधीन होता है ॥ १७ ॥ क्योंकि सातों प्रकारकी प्रकृतियोंमें, राजा सबका कूटस्थानीय अर्थात् प्रधान कारण होता है। इसलिये मूलप्रकृतिका जैसा स्वभाव हो, उसकी विकृतियोंका भी वैसा ही स्वभाव होजाता है ॥ १८ ॥

अमात्यजनपदव्यसनयोर्जनपदव्यसनं गरीय इति विशालाक्षः ॥ १९ ॥ कोशो दण्डः कुप्यं विष्टिर्वाहनं निचयाश्च जनपदादुत्तिष्ठन्ते ॥ २० ॥ तेषामभावो जनपदाभावे स्वाम्यमात्ययोश्चानन्तर इति ॥ २१ ॥

विशालाक्ष आचार्यका मत है, कि अमात्यके व्यसनकी अपेक्षा जनपद पर आया हुआ व्यसनही अधिक भयावह होता है ॥ १९ ॥ क्योंकि कोश, सेना,

वस्त्र तथा लोहा तांबा आदि, सेवक या भृत्यवर्ग, घोड़े ऊँट आदि सवारियां, अन्न तथा घृत तैल आदि सभी सामान जनपदसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ जनपदपर विपत्ति आनेसे जनपदका नाश होनेपर इन सब वस्तुओंका भी नाश होजाता है, तथा इनके प्राप्त न होनेपर फिर अमात्य और राजाका भी उच्छेद होजाता है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ अमात्यमूलाः सर्वारम्भाः ॥ २३ ॥ जनपदस्य कर्मसिद्धयः स्वतः परतश्च योगक्षेमसाधनं व्यसनप्रतीकारः शून्यनिवेशोपचयौ दण्डकरानुग्रहश्चेति ॥ २४ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य विशालाक्षके इस मतको नहीं मानता ॥ २२ ॥ क्योंकि वह कहता है कि सबही कार्योंका निर्भर अमात्योंपर है। अर्थात् अमात्योंके द्वारा ही सब कार्योंका आरम्भ किया जाता है ॥ २३ ॥ जनपदके दुर्ग तथा कृषि आदि कार्योंकी सिद्धि, राजकीय परिवार और अन्तपाल तथा आटविकोंकी ओरसे योगक्षेमका साधन, आपत्तियोंका प्रतीकार, निर्जन प्रदेशोंका बसाना और उनकी वृद्धि करना, अपराधियोंको दण्ड देना तथा राजकरका संग्रह करना इत्यादि सब कार्य अमात्योंके ही करनेके हैं। उनपर विपत्ति आने पर जनपद सम्बन्धी ये कार्य सम्पादन नहीं किये जासकते। इसलिये जनपदकी विपत्तिकी अपेक्षा अमात्योंपर विपत्तिका आनाही अधिक भयावह होता है ॥२४॥

जनपददुर्गव्यसनयोर्दुर्गव्यसनमिति पाराशराः ॥ २५ ॥ दुर्गे हि कोशदण्डोत्पत्तिरापदि स्थानं च जनपदस्य शक्तिमत्तराश्च पौरजानपदेभ्यो नित्याश्चापदि सहाया राज्ञो जानपदास्त्वमित्रसाधारणा इति ॥ २६ ॥

पराशर मतानुयायी आचार्योंका मत है कि जनपद और दुर्ग इनदोनों पर साथही विपत्ति आनेपर, जनपदकी विपत्तिकी अपेक्षा दुर्गपर आई हुई विपत्ति ही अधिक भयावह होती है ॥२५॥ क्योंकि कोश और सेनाको दुर्गमें ही सुरक्षित रक्खा जा सकता है। शत्रुके द्वारा जनपदपर कोई विपत्ति आनेपर दुर्ग ही आश्रयस्थान होता है। नगर तथा जनपदों (अर्थात् वहां रहनेवाले पुरुषों) की अपेक्षा दुर्ग अधिक शक्तिशाली तथा स्थायी होते हैं, तथा किसी प्रकारकी भी आपत्ति आनेपर हर तरहसे राजाके सहायक होते हैं। इनके (दुर्गोंके) मुकाबले में जानपदों (अर्थात् जनपद निवासी पुरुषों) को तो शत्रुके समान ही समझना चाहिये। क्योंकि किसी प्रकार शत्रुके वहां आजानेपर,

उसकोभी वे कर आदि देकर उसकी सहायता के लिये भी तैयार होसकते हैं। इस लिये जनपदकी विपत्तिकी अपेक्षा दुर्गकी विपत्तिको ही अधिक भयावह समझना चाहिये ॥ २६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २७ ॥ जनपदमूला दुर्गकोशदण्डसेतुवार्तारम्भाः शौर्यं स्थैर्यं दाक्ष्यं बाहुल्यं च जानपदेषु ॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य पाराशरोंके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ २७ ॥ क्योंकि वह कहता है कि दुर्ग, कोश, सेना सेतुबन्ध और कृषि आदि सबही कार्य, जनपदके ऊपर ही निर्भर हैं। तथा शूरता, स्थिरता, चतुरता और संख्याकी अधिकता भी जानपदों (जनपद निवासी पुरुषों) में ही हो सकती है ॥ २८ ॥

पर्वतान्तर्द्वीपाश्च दुर्गा नाध्युष्यन्ते जनपदाभावत् ॥ २९ ॥ कर्षकप्राये तु दुर्गव्यसनमायुधीयप्राये तु जनपदे जनपदव्यसनमिति ॥ ३० ॥

यदि जनपद पर आपत्ति आनेसे उसका नाश होजाय, तो पर्वतों और नदी जलाशयों आदिके भीतर बने हुए, अत्यन्त दृढ़ दुर्गभी सूने पड़े रहते हैं। अर्थात् जनपदके न होनेपर उनका कुछभी उपयोग नहीं हो सकता। इस लिये दुर्ग व्यसन की अपेक्षा जनपद व्यसनको ही अधिक भयावह समझना चाहिये ॥ २९ ॥ परन्तु इसमें इतना विशेष है कि जैसे जनपद रहित दुर्ग सूना पड़ा रहता है, ऐसे ही दुर्ग राहित जनपदमें भी निवास होना दुष्कर ही है। इस लिये यहां इतना विवेक करना चाहिये, कि जो कृषि प्रधान प्रदेश हैं वहां दुर्गपर आपत्ति आना अधिक भयावह है। तथा जो आयुधप्रधान देश हों अर्थात् जहां सबल योद्धा ही अधिक बसते हों, वहां जनपदपर विपत्तिका आना अधिक भयावह है। क्योंकि ऐसे प्रदेशमें दुर्गकी विपत्तिका तो योद्धा जन अच्छीतरह प्रतीकार करसकते हैं ॥ ३० ॥

दुर्गकोशव्यसनयोः कोशव्यसनमिति पिशुनः ॥ ३१ ॥ कोशमूलो हि दुर्गसंस्कारो दुर्गरक्षणं च ॥ ३२ ॥ दुर्गः कोशादुपजाप्यः परेषाम् ॥ ३३ ॥

पिशुन (नारद) आचार्यका मत है कि दुर्ग और कोश इनपर साथ ही विपत्ति आनेपर दुर्गकी आपत्तिकी अपेक्षा कोशपर आईहुई विपत्ति ही अधिक भयावह होती है ॥ ३१ ॥ क्योंकि दुर्गकी मरम्मत और उनकी रक्षा, कोशपर ही निर्भर है ॥ ३२ ॥ कोशके सहारेसे शत्रुओंके दुर्गका उच्छेद भी किया जा

सकता है। तात्पर्य यह है, कि शत्रुदुर्गस्थित पुरुषों को धनादिके द्वारा अपनी ओर मिलाकर शत्रु-दुर्गका निराकरण या विध्वंस किया जा सकता है ॥ ३३ ॥

जनपदमित्रामित्रनिग्रहो देशान्तरितानामुत्साहनं दण्डबलव्यवहारः ॥ ३४ ॥ कोशमादाय च व्यसने शक्यमपयातुं न दुर्गमिति ॥ ३५ ॥

कोशके द्वारा ही जनपद, मित्र तथा शत्रुका निग्रह भी किया जा सकता है। इसीके सहारे देशान्तरित (दूर देशमें रहनेवाले) राजाओं को भी अपनी सहायताके लिये प्रोत्साहित किया जासकता है। तथा सैनिक शक्तिका उपयोग भी कोशपर ही निर्भर है ॥ ३४ ॥ यदि अचानक कोई विपत्ति आपड़े तो कोशको अपने साथ लेकर भागाभी जासकता है। परन्तु ऐसी अवस्थामें दुर्गको अपने साथ नहीं लेजाया जासकता। येही बातें हैं जिनसे मालूम होता है कि दुर्गव्यसनको अपेक्षा कोशव्यसन अधिक कष्टकर है ॥ ३५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३६ ॥ दुर्गार्पणः कोशो दण्डस्तूष्णींयुद्धं स्वपक्षनिग्रहो दण्डबलव्यवहार आसारप्रतिग्रहः परचक्राटवीप्रतिषेधश्च ॥ ३७ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य नारदके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥३६॥ क्योंकि वह कहता है कि हमारे कोश और सेना दोनोंकी रक्षा दुर्गके द्वाराही हो सकती है। तूष्णींयुद्ध, अर्थात् गूढ़ पुरुष आदिके द्वारा चुपचाप किसीका बध कराना, अपने पक्षके दूष्य (राजद्रोही) पुरुषोंका निग्रह करना, सैनिक शक्तिकी व्यवस्था अर्थात् उसका ठीक २ उपयोग करना, मित्र सेनाका प्रतिग्रह (स्वीकार) अर्थात् उसे आश्रय देना, और शत्रु समूह तथा आटविकोंका निराकरण करना ये सब बातें दुर्गके द्वारा ही की जासकती हैं ॥ ३७ ॥

दुर्गाभावे च कोशः परेषाम् ॥ ३८ ॥ दृश्यते हि दुर्गवतामनुच्छित्तिरिति ॥ ३९ ॥

तथा दुर्गपर विपत्ति आनेसे उसका नाश हो जानेपर, यह भी सम्भव है कि हमारे कोशको शत्रु छीनकर लेजावे। क्योंकि उसकी रक्षाके लिये हमारे पास कोई साधन नहीं ॥ ३८ ॥ और यह देखा जाता है कि जिनके पास कोई अधिक भारी कोश नहीं है, परन्तु दुर्ग उनके पास अत्यन्त दृढ़ हैं, उनका उच्छेद नहीं किया जासकता। इस लिये कोशव्यसनकी अपेक्षा दुर्गव्यसन ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३९ ॥

कोशदण्डव्यसनयोर्दण्डव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ४० ॥ दण्डमूलो हि मित्रामित्रनिग्रहः परदण्डोत्साहनं स्वदण्डप्रतिग्रहश्च ॥ ४१ ॥ दण्डाभावे च ध्रुवः कोशविनाशः ॥ ४२ ॥

कौणपदन्त (भीष्म) आचार्यका मत है कि कोश और सेना दोनोंपर व्यसन (विपत्ति) आनेपर, कोश व्यसनकी अपेक्षा सेनाका व्यसनही अधिक कष्टकर होता है ॥ ४० ॥ क्योंकि शत्रु और मित्रका निग्रह सेनाके द्वारा ही होसकता है। दूसरेकी आईहुई सेनाको सेनाके द्वारा ही प्रोत्साहित किया जासकता है, अर्थात् कार्यपर लगाया जासकता है। तथा अपनी सेनाका अधिक संग्रह भी सेनाके द्वारा ही किया जासकता है। क्योंकि अपना सैनिक बल न होनेपर, शत्रुके आगे विजिगीषु कभी अपनी सेना बढ़ा नहीं सकता ॥ ४१ ॥ यदि सेनापर विपत्ति आजानेसे वह नष्ट होजाय, तो निश्चय ही कोशका नाश होजाता है। क्योंकि उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं रहता ॥ ४२ ॥

कोशाभावे च शक्यः कुप्येन भूम्या परभूमिस्वयंग्रहेण वा दण्डः पिण्डयितुम् ॥ ४३ ॥ दण्डवता च कोशः ॥ ४४ ॥ स्वामिनश्चासन्नवृत्तित्वादमात्यसधर्मा दण्ड इति ॥ ४५ ॥

कोशके न होनेपर भी वस्त्राभरण आदिके द्वारा, भूमिके द्वारा, अथवा बलपूर्वक ग्रहण कियेहुए शत्रुके द्रव्यके द्वारा सेनाका संग्रह अच्छी तरह किया जासकता है ॥ ४३ ॥ तथा सेनाका संग्रह होनेपर कोश भी इकट्ठा किया जा सकता है ॥ ४४ ॥ सदा स्वामी (राजा) के समीप रहनेके कारण, सेनाको अमात्योंके समान ही समझना चाहिये। अर्थात् जैसे राजाके पास रहताहुआ अमात्य, उसकी हरतरहसे भलाई करता है, इसीप्रकार राजाके समीप रहती हुई सेना भी सदा राजाका उपकार करती है। इसलिये कोशव्यसनकी अपेक्षा सेनाका व्यसन अधिक भयावह है ॥ ४५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४६ ॥ कोशमूलो हि दण्डः ॥ ४७ ॥ कोशाभावे दण्डः परं गच्छति ॥४८॥ स्वामिनं वा हन्ति ॥४९॥ सर्वाभियोगकरश्च ॥ ५० ॥ कोशो धर्मकामहेतुः ॥ ५१ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भीष्मके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥४६॥ वह कहता है कि सेनाकी स्थिति कोशपर ही निर्भर है ॥ ४७ ॥ कोशके न होनेपर सेना, या तो शत्रुके अधीन होजाती है ॥ ४८ ॥ या अपने स्वामीका

ही वध कर डालती है ॥ ४९ ॥ सब सामन्तोंके साथ विजिगीषुका विरोध भी सेना करासकती है। क्योंकि अर्थ (धन) के देनेपर सब ही वशमें करालिये जाते हैं ॥ ५० ॥ चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), के अङ्गभूत धर्म और कामकी प्राप्ति भी कोश (अर्थ) के ही द्वारा होसकती है। कोश ही इनका कारण है। तात्पर्य यह है:-इस लोकमें होनेवाले धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गके बीचमें अर्थ बैठाहुआ है, वह इधर उधर लगेहुए धर्म और काम दोनोंको सिद्ध करता है। अर्थात् दोनोंका निर्भर केन्द्रस्थित अर्थपर ही है ॥ ५१ ॥

देशकालकार्यवशेन तु कोशदण्डयोरन्यतरः प्रमाणीभवति ॥ ५२ ॥ लब्धपालनो हि दण्डः कोशस्य ॥ ५३ ॥ कोशः कोशस्य दण्डस्य च भवति ॥ ५४ ॥ सर्वद्रव्यप्रयोजकत्वात्कोशव्यसनं गरीय इति ॥ ५५ ॥

किन्तु इनमें इतना विशेष समझना चाहिये, कि देश, काल तथा कार्यके अनुसार कोश और सेना इन दोनोंमेंसे किसी भी एकको प्रधान माना जासकता है, जिसके कि भरोसेपर विजिगीषुका निर्वाह होसके ॥ ५२ ॥ परन्तु सेनाकी प्रधानता बतलाने वाले आचार्यने पीछे जो यह बात कही है, कि सेनाके न होनेपर निश्चय ही कोशका विनाश होजावेगा; यह ठीक नहीं। क्योंकि सेना केवल कोशकी ही रक्षा करसकती है ॥ ५३ ॥ परन्तु कोश, सेना और कोश दोनोंकी रक्षा करसकता है ॥ ५४ ॥ इसलिये सब द्रव्यप्रकृतियों (दुर्ग आदि) के निर्वाहका कारण होनेके कारण कोशके ऊपर आईहुई विपत्ति, अत्यन्त कष्टकर होती है ॥ ५५ ॥

दण्डामित्रव्यसनयोर्मित्रव्यसनमिति वातव्याधिः ॥ ५६ ॥ मित्रमभृतं व्यवहितं च कर्म करोति ॥ ५७ ॥ पार्ष्णिग्राहमासारममित्रमाटविकं च प्रतिकरोति ॥ ५८ ॥ कोशदण्डभूमिश्चोपकरोति व्यसनावस्थायोगामिति ॥ ५९ ॥

वातव्याधि (उद्धव) आचार्यका मत है कि अपनी सेना और अपने मित्र दोनोंपर एकसाथ विपत्ति आनेपर अपने मित्रपर आईहुई विपत्ति, सेनाकी विपत्तिकी अपेक्षा अधिक भयावह होती है ॥ ५६ ॥ क्योंकि मित्र दूर रहताहुआ भी, बिना ही कुछ वेतन लियेहुए विजिगीषुके कार्यको करदेता है। परन्तु सेनाके लिये वेतन और निगरानी दोनोंकी जरूरत पड़ती है ॥५७॥ और मित्र, पार्ष्णिग्राहका, पार्ष्णिग्राहके मित्रबलका, शत्रु तथा आटविकका

प्रतीकार करनेके लिये सदा तैयार रहता है, या प्रतीकार करसकता है ॥५८॥ कोश, सेना और भूमिके द्वारा, विजिगीषुका बराबर उपकार करता रहता है। तथा विजिगीषुकी विपत्ति अवस्थामें भी उसका साथ नहीं छोड़ता। इसलिये सेनाके व्यसनकी अपेक्षा मित्रका व्यसन अधिक कष्टकर होता है ॥ ५९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६० ॥ दण्डवतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्यमित्रो वा मित्रभावे ॥ ६१ ॥ दण्डमित्रयोस्तु साधारणे कार्ये सारतः स्वयुद्धदेशकाललाभाद्विशेषः ॥ ६२ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य वातव्याधिके इस सिद्धान्तको ग्राह्य नहीं समझता ॥ ६० ॥ वह कहता है कि जिसके पास सेनाकी अच्छी शक्ति होती है, उसके मित्र तो मित्र बने ही रहते हैं, किन्तु शत्रु भी मित्र बनजाते हैं ॥ ६१ ॥ सेना और मित्र इनके साधारण कार्यमें, लाभके अनुसार अपने युद्ध, देश, और कालकी अपेक्षासे विशेषता समझनी चाहिये ॥ ६२ ॥

शीघ्राभियाने त्वमित्राटविकाभ्यन्तरकोपे च न मित्रं विद्यते ॥६३॥ व्यसनयौगपद्ये परवृद्धौ च मित्रमर्थयुक्तौ तिष्ठति ॥ ६४॥ प्रकृतिव्यसनसंप्रधारणमुक्तमिति ॥ ६५ ॥

कहीं शीघ्र आक्रमण करनेपर अथवा शत्रु और आटविकोंके द्वारा अभ्यन्तरकोप (विजिगीषुके अपने देश या अमात्य आदि प्रकृतियोंमें परस्परके कोप) के उत्पन्न करादेनेपर, इसका प्रतीकार करनेके लिये मित्रका कुछ भी उपयोग नहीं होसकता। ऐसे अवसरोंपर अपनी सेना ही काम देती है ॥६३॥ एकसाथ आपत्ति आजानेपर अथवा शत्रुके बढ़जानेपर मित्र ही अर्थसिद्धिमें सहायक होता है ॥६४॥ यहां तक प्रकृतिव्यसनका निर्णय करदिया गया ॥६५॥

प्रकृत्यवयवानां तु व्यसनस्य विशेषतः ।
बहुभावोऽनुरागो वा सारो वा कार्यसाधकः ॥ ६६ ॥

स्वामी अमात्य आदि प्रकृतियोंके जो अवयव होते हैं (जैसे—स्वामी प्रकृतिके अवयव राजा युवराज आदि; अमात्य प्रकृतिके मन्त्री मन्त्रपरिषद् आदि; जनपदके किसान आयुधजीवी आदि; दुर्गके धान्वन वन आदि; कोशके रत्न सार फल्गु आदि; दण्डके मौल भृत आदि; मित्रके सहज तथा कृत्रिम आदि अवयव होते हैं) उनके एककी अपेक्षा दूसरेपर विशेष व्यसनके आपड़नेपर भी, जिस प्रकृतिपर व्यसन पड़ा है, उसकी अधिक संख्या, स्वामी में भक्ति और विशेष गुणोंसे युक्त होना, ये बात कार्यको सिद्ध करने वाली होती हैं. तात्पर्य यह है कि यदि शत्रुपर दुर्ग व्यसन आकर पड़ता है और

विजिगीषुपर जनपदव्यसन; तो दुर्गव्यसनसे जनपदव्यसन यद्यपि गुरुतर अर्थात् अधिक हानिकर है, फिर भी यदि जनपदकी संख्या बहुत अधिक है, और वह अपने स्वामीमें भक्ति रखनेवाला तथा गुणशाली है; और शत्रुके दुर्गोंमें यह बात नहीं है, तो विजिगीषुको शत्रुपर आक्रमण करदेना चाहिये, इस प्रकारकी अवस्था विजिगीषुके लिये अवश्य सिद्धिकर होती है ॥ ६६ ॥

द्वयोस्तु व्यसने तुल्ये विशेषो गुणतः क्षयात् ।
शेषप्रकृतिसाद्गुण्यं यदि स्यान्नाभिधेयकम् ॥ ६७ ॥

यह उपर्युक्त कथन शत्रु और विजिगीषुपर भिन्न २ व्यसन होनेके सम्बन्धमें किया गया है, यदि दोनोंपर समान ही व्यसन हो, तो एकके गुणशाली और दूसरेके गुणहीन होनेपर ही विशेषता होती है। (मानलिया जाय, कि शत्रु और विजिगीषु दोनोंपर जनपदव्यसन आपड़ा है, यदि विजिगीषुके जनपदके अवयवोंकी संख्या बहुत है, वे स्वामिभक्त और गुणशाली हैं; तथा ये बातें शत्रुके जनपदमें नहीं है, तो विजिगीषुको शत्रुपर आक्रमण करदेना चाहिये, उसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। परन्तु जिस प्रकृतिपर व्यसन है उससे अतिरिक्त शेष सबही प्रकृति यदि अपनी २ ठीक अवस्था में होनेके कारण विशेष शक्तिशाली है, तो यह पूर्वोक्त विशेषता न समझनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि जनपदव्यसनके तुल्य होनेपर भी और उसमें आधिक्य आदि न होनेपर भी यदि शत्रुकी अन्य प्रकृति अच्छी शक्तिशाली हैं, तो ऐसी अवस्थामें विजिगीषुको उसके ऊपर कदापि आक्रमण न करना चाहिये ॥ ६७ ॥

शेषप्रकृतिनाशस्तु यत्रैकव्यसनाद्भवेत् ।
व्यसनं तद्गरीयः स्यात्प्रधानस्येतरस्य वा ॥ ६८ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमेऽधिकरणे प्रकृतिव्यसनवर्गः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितः सप्तदशशतः ॥ ११७ ॥

यदि एक प्रकृतिपर व्यसन आनेसे शेष प्रकृतियोंका भी नाश होता हो, तो चाहे वह व्यसन प्रधानप्रकृति सम्बन्धी हो, या अप्रधान प्रकृति सम्बन्धी हो, उसे सबही व्यसनोंकी अपेक्षा गुरुतर अर्थात् अत्यधिक हानिकर समझना चाहिये। विजिगीषुको आवश्यक है, कि ऐसे व्यसनोंका सबसे प्रथम प्रतीकार करे ॥ ६८ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें पहला अध्याय समाप्त।

दूसरा अध्याय

१२८ प्रकरण

राजा और राज्यके व्यसनोंका विचार

[पिछले प्रकरणमें, स्वामी अमात्य आदि प्रकृतियोंमेंसे दो २ के वर्गको लेकर, उनके व्यसनोंकी परस्पर गुरुता लघुताका विचार किया गया है। इस प्रकरणमें केवल स्वामी रूप प्रधान प्रकृतिको एक ओर और शेष पांच प्रकृतियोंको दूसरी ओर रखकर, इनके व्यसनोंकी गुरुता लघुताका परस्पर विचार किया जावेगा।

राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः ॥ १ ॥ राज्ञो ऽभ्यन्तरो बाह्यो वा कोप इति ॥ २ ॥ अहिभयादभ्यन्तरः कोपो बाह्यको-पात्पापीयान् ॥ ३ ॥

स्वामी आदि सात प्रकृतियोंका यदि संक्षेपमें कथन किया जाय, तो उनको 'राजा और राज्य' इन दो भागोंमें विभक्त किया जासकता है। (राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त हुए २ स्वामीको ही राजा कहते हैं। इसलिये उपर्युक्त सात प्रकृतियोंमेंसे स्वामी [विजिगीषु] और मित्र इन दोनों प्रकृतियोंको 'राजा' तथा शेष अमात्य आदि पांच प्रकृतियोंको 'राज्य' समझना चाहिये) ॥ १ ॥ राजाके प्रति राज्यका दो प्रकारका कोप होसकता है, एक अभ्यन्तर और दूसरा बाह्य ॥ २ ॥ घरमें रहने वाले सांपकी तरह अभ्यन्तरकोप, बाह्य कोपकी अपेक्षा अत्यधिक अनर्थकारी होता है। (अमात्य आदिका कोप अभ्यन्तरकोप, और शत्रु आदिका कोप बाह्यकोप समझना चाहिये) ॥ ३ ॥

अन्तरमात्यकोपश्चान्तःकोपात् ॥४॥ तस्मात्कोशदण्डशक्ति-मात्मसंस्थां कुर्वीत ॥ ५ ॥

अभ्यन्तरकोप भी दो प्रकारका होता है, एक अन्तरमात्यकोप (अर्थात् जो अमात्य आदि सदा अपने पास ही रहते हैं, उनसे उठाहुआ कोप) और दूसरा बाह्यामात्य कोप (अर्थात् अपने राज्यमें ही दूसरे स्थानपर रहने वाले अमात्य आदिसे उठाहुआ कोप)। इन दोनोंमें से भी पहला अन्तरमात्य-कोप, दूसरेकी अपेक्षा अधिक भयावह होता है ॥ ४ ॥ इसलिये विजिगीषुको चाहिये, कि वह कोश और सेनाकी सम्पूर्ण शक्तिको सदा अपने ही हाथमें रक्खे ॥ ५ ॥

द्वैराज्यवैराज्ययोर्द्वैराज्यमन्योन्यपक्षद्वेषानुरागाभ्यां परस्पर-संघर्षेण वा विनश्यति ॥ ६ ॥ वैराज्यं तु प्रकृतिचित्तग्रहणापेक्षि यथास्थितमन्यैर्भुज्यत इत्याचार्याः ॥ ७ ॥

राज्यके कारण राजापर आनेवाले व्यसनका निरूपण करके, अब राजाके कारण राज्यपर आनेवाले व्यसनका निरूपण किया जाता है:—द्वैराज्य (जिस राज्यके दो स्वामी हों, वह द्वैराज्य कहाता है , और वैराज्य (जिस राज्यका अपना स्वामी न हो, अर्थात् किसीका विजित राज्य), इन दोनों प्रकारके राज्योंमें से द्वैराज्य, परस्पर दोनों पक्षोंके द्वेष तथा अनुरागके कारण अथवा परस्परकी स्पर्धाके कारण शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥ परन्तु वैराज्य, प्रजाके विचारोंके अनुसार चलताहुआ (अर्थात् प्रजाके विचारोंके आनुकूल्यकी अपेक्षा करताहुआ) तथा ठीक २ अपनी परिस्थितिमें रहताहुआ प्रजाजनोंसे भोगा जाता है । तात्पर्य यह है कि यदि विजित देशका राजा प्रजाओंके चित्तके अनुसार कार्य करता रहे, तो प्रजा बड़े सुखपूर्वक रह सकती हैं । इसलिये इन दोनों राज्योंमें से वैराज्य ही अच्छा तथा द्वैराज्य अधिक कष्टकर होता है, यह प्राचीन अनेक आचार्योंका मत है ॥ ७ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ८ ॥ पितापुत्रयोर्भ्रात्रोर्वा द्वैराज्यं तुल्य-योगक्षेमममात्यावग्रहं वर्तयेतेति ॥ ९ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस सिद्धान्तको मानता ॥ ८ ॥ क्योंकि द्वैराज्य, पिता पुत्र तथा दो भाइयोंके परस्पर दायभागको झगड़ा होनेपर ही होसकता है, और उनका योग क्षेम समान ही होता है, इसलिये राज्यकार्यकी चिन्ता करने वाले अमात्योंके द्वारा वह झगड़ा शीघ्र ही शान्त किया जासकता है । इसलिये द्वैराज्यमें कोई बड़ा दोष नहीं ॥ ९ ॥

वैराज्ये तु जीवतः परस्याच्छिद्य नैतन्ममेति मन्यमानः कर्शयत्यपवाहयति ॥ १० ॥ पण्यं वा करोति ॥ ११ ॥ विरक्तं वा परित्यज्यापगच्छतीति ॥ १२ ॥

परन्तु वैराज्यमें, जीवित शत्रुको ही उच्छिन्न करके, उससे बलपूर्वक उसके राज्यको छीनकर विजिगीषु 'यह मेरा नहीं है' ऐसा मानताहुआ उसको दण्ड (जुर्माना) तथा कर (टेक्स) आदिके द्वारा बहुत कष्ट पहुंचाता है, दूसरी जगह लेजाता है ॥ १० ॥ अथवा अच्छा मूल्य लेकर किसी के भी हाथ बेच डालता है ॥ ११ ॥ या अपनेमें प्रजाओंको विरक्त जानकर, उसके सर्वस्वको अपहरण करके फिर उसे छोड़कर चला जाता है ॥ १२ ॥

अन्धश्चलितशास्त्रो वा राजेति ॥ १३ ॥ अशास्त्रचक्षुरन्धो यत्किंचनकारी दृढाभिनिवेशी परप्रणेयो वा राज्यमन्यायेनोप हन्ति ॥ १४ ॥ चलितशास्त्रस्तु यत्र शास्त्राच्चलितमतिर्भवति शक्यानुनयो भवतीत्याचार्याः ॥ १५ ॥

अन्ध (शास्त्रोंका अध्ययन न करने वाला, अर्थात् जिसने शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया है), तथा चलितशास्त्र (शास्त्रोंका अध्ययन करके भी जो उसके अनुकूल आचरण नहीं करता), इन दोनों राजाओंमें से कोनसा राजा, प्रजाके लिये अधिक श्रेयस्कर (कल्याण करने वाला) होता है, इस बातका अब निरूपण किया जायगा ॥ १३ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका मत है, कि शास्त्र रूपी चक्षुओंसे हीन होनेके कारण अंधा राजा बिना विचारे ही कार्य करने वाला, हठपूर्वक दुष्कर्म करनेके लिये आग्रह करने वाला, या दूसरेकी बुद्धिके अनुसार कार्य करने वाला होकर अन्यायसे राज्यको नष्ट करदेता है ॥ १४ ॥ चलितशास्त्र (शास्त्रोंको जानकर भी उनपर आचरण न करने वाला) राजा तो, जिस विषयमें शास्त्रसे चलितमति होजाता है; अर्थात् शास्त्रसे विरुद्ध चलता है, बड़ी सरलतासे अनुनय विनय करके उसे उधरसे रोका जासकता है । इसलिये अन्ध राजासे चलितशास्त्र राजा उत्तम होता है ॥ १५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १६ ॥ अन्धो राजा शक्यते सहायसंपदा यत्र तत्र वा पर्यवस्थापयितुमिति ॥ १७ ॥ चलितशास्त्रस्तु शास्त्रादन्यथाभिनिविष्टबुद्धिरन्यायेन राज्यमात्मानं चोपहन्तीति ॥ १८ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ १६ ॥ क्योंकि अन्ध राजाको, अमात्य आदिकी हितकारी सहायक बुद्धिके अनुसार जिधर चाहें उधर अच्छेसे अच्छे मार्गपर सरलतासे चलाया जासकता है ॥ १७ ॥ परन्तु चलितशास्त्र राजा तो शास्त्रसे विरुद्ध करनेमें ही हठबुद्धि होकर (अर्थात् शास्त्रको जानकर भी जानबूझकर उससे विरुद्ध आचरण करनेका हठ रखने वाला होकर), अन्यायसे अपने राज्य और अपने आपको भी नष्ट कर डालता है ॥ १८ ॥

व्याधितो नवो वा राजेति ॥१९॥ व्याधितो राजा राज्योपघातममात्यमूलं प्राणाबाधं वा राज्यमूलमवाप्नोति ॥ २० ॥

नवस्तु राजा स्वधर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिः प्रकृतिरञ्जनोपकारैश्चरतीत्याचार्याः ॥ २१ ॥

अब व्याधिग्रस्त और नये अभिषिक्त (अभिषेक कियेहुए) राजा में से कौनसा उत्तम होता है, इस बातका निरूपण किया जायगा ॥ १९ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका मत है, कि व्याधिग्रस्त राजा, अमात्यमूलक (राजाका भय न होनेके कारण निरंकुश होकर काम करने वाले अमात्योंके द्वारा उत्पन्न हुए २) राज्यनाशको प्राप्त होता है; अथवा राज्यमूलक (अमात्य आदि प्रकृतियोंके द्वारा होनेवाले, अपने) प्राणनाशको प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है; कि व्याधित राजाके अमात्य आदि या तो उसके राज्यको नष्ट करदेते हैं, या उसे ही मार डालते हैं ॥ २० ॥ नया अभिषिक्त राजा तो, शास्त्रोक्त अपने राजधर्मके अनुष्ठान, कोशसे प्रजाकी सहायता करने, कर छोड़ने, दान देने, सत्कार करने और अन्य प्रजाहितकारी कर्म (बाग़ कुंए आदि बनवाना) करनेसे, प्रजाओंमें अनुराग उत्पन्न करने वाले उपायोंके द्वारा व्यवहार करता है। इसलिये व्याधिग्रस्त और नये राजामें से, नया राजा उत्तम समझा जाता है ॥ २१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २२ ॥ व्याधितो राजा यथाप्रवृत्तं राजप्रणिधिमनुवर्तयति ॥२३॥ नवस्तु राजा बलावर्जितं ममेदं राज्यमिति यथेष्टमनवग्रहश्चरति ॥ २४ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ २२ ॥ क्योंकि व्याधिग्रस्त राजा, पहिले क्रमके अनुसार ही राजकीय व्यापारोंको बराबर चलाता रहता है ॥ २३ ॥ किन्तु नया राजा अपने बलसे प्राप्त कियेहुए राज्य को, इसका मैंने स्वयं संग्रह किया है, ऐसा मानताहुआ इच्छानुसार स्वतन्त्रता के साथ भोगता है। अर्थात् उस राज्यके साथ मनमाना बर्ताव करता है ॥ २४ ॥

सामुत्थयिकैरवगृहीतो वा राज्योपघातं मर्षयति ॥ २५ ॥ प्रकृतिष्वरूढः सुखः समुच्छेत्तुं भवति ॥ २६ ॥ व्याधिते विशेषः पापरोग्यपापरोगी च ॥ २७ ॥

अथवा जब अपनी उन्नति करने वाले साथी राजाओंसे घेरा जाता है, तो राज्यके नाशको सहन करलेता है, अर्थात् उसका प्रतीकार नहीं करसकता, और उन राजाओंके द्वारा उस राज्यको नष्ट होता देख, उसकी उपेक्षा करदेता है ॥ २५ ॥ तथा प्रजाओंमें स्नेह न होनेके कारण, शत्रुओंके द्वारा

अनायास ही उखाड़ दियाजाता है, अर्थात् नष्ट करादिया जाता है। ('सुखः समुच्छेत्तुं' इसके स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'सुखमुच्छेत्तुं' भी पाठ है। अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ २६ ॥ इसलिये नये राजाकी अपेक्षा व्याधिग्रस्त राजा ही उत्तम होता है। परन्तु यह विशेषता सामान्य व्याधिसे ग्रस्त राजामें ही समझनी चाहिये। क्योंकि व्याधिग्रस्त राजा दो प्रकारके होसकते हैं, एक पापरोगी (कुष्ठ [कोढ़] आदिके रोगीको पापरोगी कहते हैं) और दूसरे अपापरोगी (साधारण व्याधिसे ग्रस्त राजा)। इनमें से अपापरोगी राजामें ही यह उपर्युक्त विशेषता समझनी चाहिये ॥ २७ ॥

नवे ऽप्यभिजातो ऽनभिजात इति ॥ २८ ॥ दुर्बलोऽभिजातो बलवाननभिजातो राजेति ॥ २९ ॥ दुर्बलस्याभिजातस्योपजापं दौर्बल्यापेक्षाः प्रकृतयः कृच्छ्रेणोपगच्छन्ति ॥ ३० ॥ बलवतश्चानभिजातस्य बलापेक्षाः सुखेनेत्याचार्याः ॥ ३१ ॥

नए राजाओंमें भी उच्च कुलका राजा उत्तम होता है या नीच कुलका? ॥ २८ ॥ तथा इनमें से भी उच्च कुलका दुर्बल राजा उत्तम होता है, या नीच कुलका बलवान् राजा? इसका अब विचार किया जायगा ॥ २९ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका मत है, कि उच्चकुलोत्पन्न दुर्बल राजाके अमात्य आदि प्रकृतिजन तथा प्रजाजन, उसकी दुर्बलताके कारण बड़ी कठिनतासे उसके वशमें होते हैं। अर्थात् उन्हें अनुकूल बनानेके लिये, दुर्बल होनेके कारण राजाको बड़ी कठिनाईयां उठानी पड़ती हैं ॥ ३० ॥ परन्तु नीचकुलोत्पन्न भी बलवान् राजाके बलके दबावके कारण बड़ी सरलतासे ही सम्पूर्ण अमात्य आदि प्रकृतिजन, उसकी अनुकूलताको स्वीकार करलेते हैं, अर्थात् शीघ्र ही उसके अनुरागी बनजाते हैं, इसलिये दुर्बल अभिजात राजाकी अपेक्षा बलवान् अनभिजात राजाको ही उत्तम समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ दुर्बलमभिजातं प्रकृतयः स्वयमुपनमन्ति, जात्यमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तत इति ॥ ३३ ॥ बलवतश्चानभिजातस्योपजापं विसंवादयन्ति अनुरागे सार्वगुण्यमिति ॥३४॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस मतको नहीं मानता ॥ ३२ ॥ क्योंकि जो राजा उच्च कुलोत्पन्न हो, वह चाहे दुर्बल भी हो, प्रकृतिजन अपने आपही उसके आगे झुक जाते हैं, अर्थात् स्वयं ही उसका आश्रय लेलेते हैं। क्योंकि ऐश्वर्यकी योग्यता उच्चकुलोत्पन्न राजाका ही अनुवर्तन करती है। तात्पर्य

यह है, कि उच्च कुलका राजा स्वभावसे ही ऐश्वर्यशाली होता है ॥ ३३ ॥ परन्तु बलवान् भी नीचकुलोत्पन्न राजाकी अनुकूलताको, उसकी प्रजाएं जल्दी ही विफल करदेती हैं। तात्पर्य यह है, कि बलवान् भी नीचकुलोत्पन्न राजाकी प्रजाएं एकवार उसकी अनुकूलताको स्वीकार करके भी, फिर अवसर पाकर जल्दी ही उससे बिगड़ खड़ी होती हैं। क्योंकि उस राजामें प्रजाओंका अनुराग नहीं होता, और अनुरागका होना ही सब गुणोंकी विद्यमानताका द्योतक है। (किसी २ पुस्तकमें यह सूत्र 'अनुयोगे साद्गुण्यम्' इसप्रकारका है। परन्तु यह पाठ 'नयचन्द्रिका' व्याख्याके विरुद्ध है) ॥ ३४ ॥

प्रयासवधात्सस्यवधो मुष्टिवधात्पापीयन् ॥ ३५ ॥ निराजीवत्वादवृष्टिरतिवृष्टित इति ॥ ३६ ॥

बीज न बोनेके कारण जो अन्नकी अप्राप्ति होती है, उसकी अपेक्षा बीज बोनेके बाद तैयार हुए २ अन्नका नाश होजाना अधिक हानिकर होता है, क्योंकि उसके तैयार करनेमें जितना परिश्रम हुआ है, वह सब व्यर्थ ही चला जाता है ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार अधिक वृष्टि होनेकी अपेक्षा, वृष्टिका न होना अधिक हानिकर होता है; क्योंकि प्रायः हर तरहकी जीविकाका प्रबन्ध जलके ही अधीन होता है, और जलके न होनेसे उसका उच्छेद होजाता है ॥ ३६ ॥

द्वयोर्द्वयोर्व्यसनयोः प्रकृतीनां बलाबलम् ।
पारम्पर्यक्रमेणोक्तं याने स्थाने च कारणम् ॥ ३७ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितो ऽष्टादशशतः ॥ ११८ ॥

इसप्रकार दो दो प्रकृतियोंके व्यसनके पारस्परिक बलाबलको, क्रमपूर्वक यान और स्थानमें कारण बताया गया। इसका विवेक इस तरह समझना चाहियेः—विजिगीषु और शत्रुपर व्यसन होनेपर, यदि शत्रुकी अपेक्षा विजिगीषुपर लघुव्यसन हो, तो विजिगीषुको शत्रुपर यान अर्थात् आक्रमण करदेना चाहिये। यदि अवस्था इसके विरुद्ध हो, तो विजिगीषुको स्थानका ही अवलम्ब करना चाहिये; अर्थात् आक्रमण न करना चाहिये ॥ ३७ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

१२९ प्रकरण

पुरुषव्यसनवर्ग ।

{ सर्व साधारण पुरुषोंमें जो व्यसन होते हैं, उनसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंके समूहका इस अधिकरणमें निरूपण किया जायगा ।

अविद्याविनयः पुरुषव्यसनहेतुः ॥ १ ॥ अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति ॥ २ ॥ तानुपदेक्ष्यामः ॥ ३ ॥ कोपजस्त्रिवर्गः ॥ ४ ॥ कामजश्चतुर्वर्गः ॥ ५ ॥

आन्वीक्षिकी आदि विद्याओंकी शिक्षा प्राप्त न करनेसे ही पुरुषोंमें व्यसन उत्पन्न होजाते हैं । अर्थात् शिक्षा ग्रहण न करना, पुरुषके व्यसनोंका हेतु होता है ॥ १ ॥ क्योंकि अशिक्षित पुरुष, व्यसनोंसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको नहीं समझता ॥ २ ॥ अब इस प्रकरणमें उन व्यसनों तथा व्यसनसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका ही निरूपण किया जायगा ॥ ३ ॥ कोपसे उत्पन्न होनेवाले तीन दोष होते हैं, इसलिये उन्हें त्रिवर्ग कहते हैं । (इनका नाम वाक्पारुष्य, अर्थदूषण और अर्थपारुष्य हैं, इनका विवरण यथास्थान किया जायगा) ॥ ४ ॥ इसी प्रकार कामसे उत्पन्न होनेवाले चार दोष होते हैं, इसलिये इन्हें चतुर्वर्ग कहते हैं । (इनका नाम मृगया द्यूत स्त्री और पान हैं) ॥ ५ ॥

तयोः कोपो गरीयान् ॥ ६ ॥ सर्वत्र हि कोपश्चरति ॥७॥ प्रायशश्च कोपवशा राजानः प्रकृतिकोपैर्हताः श्रूयन्ते ॥ ८ ॥ कामवशाः क्षयव्यसननिमित्तमतिव्याधिभिरिति ॥ ९ ॥

दोषोंको उत्पन्न करने वाले काम और क्रोधमें से क्रोधही अधिक बलवान् होता है ॥ ६ ॥ क्योंकि सब जगह क्रोधका ही दौरदौरा है । तात्पर्य यह है कि क्रोध प्रत्येक विषयमें किया जासकता है, और कामके स्त्री आदि नियत ही विषय हैं । इसलिये सार्वत्रिक होनेसे, कामकी अपेक्षा क्रोध ही अधिक बलवान् है ॥ ७ ॥ प्रायः कोपसे वशीभूत हुए २ राजा, अमात्य आदि प्रकृतियोंके कोपसे मारे जातेहुए सुनेगए हैं ॥ ८ ॥ तथा कामके वशीभूत हुए २ राजा, सेना तथा कोश आदिके नष्ट होजानेके कारण, या शारीरिक शक्तिके ह्रास होजानेके कारण, शत्रुओंके तथा व्याधियोंके द्वारा नष्ट किये गये हुए सुनेगये हैं । इसलिये भी कोपको ही अधिक बलवान् कहना चाहिये,

क्योंकि कुपित राजाको उसके अमात्य आदि ही कुपित होकर नष्ट करडालते हैं; और कामी राजा तो अपने बाहरके शत्रु या व्याधियोंसे ही नष्ट होता है ॥ ९ ॥

नेति भारद्वाजः ॥ १० ॥ सत्पुरुषाचारः कोपो वैरायतन-मवज्ञातवधो भीतमनुष्यता च ॥ ११ ॥ नित्यश्च कोपेन संबन्धः पापप्रतिषेधार्थः ॥ १२ ॥

परन्तु इस उपर्युक्त मतको भारद्वाज अर्थात् द्रोणाचार्य मान्य नहीं समझते । तात्पर्य यह है कि वे काम और क्रोधको दोष नहीं मानते ॥ १० ॥ क्योंकि कोप करना, श्रेष्ठ पुरुषोंका ही आचार अर्थात् धर्म है । कोप करनेसे शत्रुओंका प्रतीकार होता है; दूसरेसे कियेहुए तिरस्कारका भी बदला इसीके द्वारा लिया जाता है; और मनुष्य क्रोधी पुरुषकी बुराई करनेसे डरते रहते हैं ॥ ११ ॥ तथा कोई भी पुरुष सदाके लिये क्रोधको नहीं छोड़ सकता, क्योंकि क्रोधके ही द्वारा पापी पुरुषोंका निग्रह किया जाकता है ॥ १२ ॥

कामः सिद्धिलाभः, सान्त्वं त्यागशीलता संप्रियभावश्च ॥ १३ ॥ नित्यश्च कामेन संबन्धः कृतकर्मणः फलोपभोगार्थ इति ॥ १४ ॥

इसी प्रकार काम भी सिद्धिलाभ अर्थात् सुखोंका हेतु होता है । और इसीके कारण पुरुष यथार्थ बोलने वाला अर्थात् मधुरभाषी, त्यागी, तथा सबसे प्रियभाव रखने वाला अर्थात् सौम्य होजाता है ॥ १३ ॥ तथा अपने कियेहुए कार्योंका फलोपभोग करनेके लिये, प्रत्येक पुरुषका कामके साथ सम्बन्ध होना अवर्जनीय है । तात्पर्य यह है, कि अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये, कामका अवलम्बन करना प्रत्येक पुरुषके लिये अवश्यम्भावी है ॥ १४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १५ ॥ द्वेष्यता शत्रुवेदनं दुःखासङ्गश्च कोपः ॥ १६ ॥ परिभवो द्रव्यनाशः पाटच्चरद्यूतकारलुब्धकगाय-कवादकैश्चानर्थ्यैः संयोगः कामः ॥ १७ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भारद्वाजके इस उपर्युक्त मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ १५ ॥ क्योंकि कोप और काम कभी गुण नहीं होसकते, वे अनेक महान अनर्थोंके उत्पन्न करने वाले हैं; कोपके कारण मनुष्य सबका द्वेषी होजाता है, अर्थात् सब उससे द्वेष या उसकी निन्दा करने लगते हैं;

उसके अनेक शत्रु उत्पन्न होजाते हैं; और सदा ही उसके पीछे दुःख लगे रहते हैं। (किसी २ पुस्तकमें 'शत्रुवेदनमनर्थस्य संयोगो दुःखासङ्गश्च' इस प्रकारका सूत्रपाठ है। परन्तु प्राचीन व्याख्याकारोंने 'अनर्थस्य संयोगः' इस पदको सूत्रका अङ्ग नहीं माना॥ १६ ॥ इसी प्रकार कामके कारण भी पुरुषका सर्वत्र तिरस्कार होता है; द्रव्यों (धन आदि) का नाश होजाता है; तथा चोर जुआरी, शिकारी और गाने बजाने वाले अनर्थकारी व्यक्तियोंके साथ सदा सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है। (कामसे उत्पन्न होनेके कारण ही इनको यहां 'काम' शब्दसे कहागया है) ॥ १७ ॥

तयोः परिभवाद्द्वेष्यता गरीयसी ॥ १८ ॥ परिभूतः स्वैः परैश्चापगृह्यते, द्वेष्यः समुच्छिद्यत इति ॥ १९ ॥ द्रव्यनाशाच्छत्रुवेदनं गरीयः ॥ २० ॥ द्रव्यनाशः कोशाबाधकः ॥ २१॥ शत्रुवेदनं प्राणाबाधकमिति ॥ २२ ॥

कामसे उत्पन्न होनेवाले और क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंमें से कामजन्य परिभव दोषकी अपेक्षा क्रोधजन्य द्वेष्यता रूप दोष अधिक हानिकर होता है ॥ १८ ॥ क्योंकि तिरस्कृत पुरुष, अपने और पराये आदमियोंके द्वारा कभी न कभी अनुगामी बना ही लिया जाता है, परन्तु जो सबका द्वेष्य होता है, अर्थात् जिससे सब ही द्वेष करते हैं, उसका तो सर्वथा उच्छेद ही करदिया जाता है। इसलिये तिरस्कृत होनेकी अपेक्षा द्वेष्य होना अधिक कष्टकर है ॥ १९ ॥ द्रव्यनाश होजानेकी अपेक्षा शत्रुओंका पैदा होजाना अधिक हानिकर होता है ॥ २० ॥ क्योंकि द्रव्यका नाश होना केवल कोशमें ही बाधा पहुंचाने वाला होता है, उसमें प्राणोंका भय नहीं; ॥ २१ ॥ परन्तु शत्रुओंका पैदा होजाना, प्राणोंको भी संकटमें डालने वाला होता है ॥ २२ ॥

अनर्थ्यसंयोगाद्दुःखसंयोगो गरीयान् ॥२३॥ अनर्थसंयोगो मुहूर्तप्रीतिकरो दीर्घक्लेशकरो दुःखानामासङ्ग इति ॥ २४ ॥ तस्मात्कोपो गरीयान् ॥ २५ ॥

चोर जुआरी आदि अनर्थकारी व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध होनेकी अपेक्षा, दुःखोंके साथ सम्बन्ध होना अधिक कष्टकर होता है ॥ २३ ॥ क्योंकि चोर जुआरी आदिके साथ सम्बन्ध, परिणाममें दुःखदायी होनेपर भी थोड़े समयके लिये अवश्य ही प्रसन्नताको उत्पन्न करने वाला होता है; किन्तु दुःखोंके साथ सम्बन्ध, लगातार क्लेश ही क्लेश पहुंचाता है। (किसी २

पुस्तकमें 'मुहूर्त्तप्रीतिकरः' के स्थानपर 'मुहूर्त्तप्रतीकार': पाठ है । उसका अर्थ करना चाहियेः—अनर्थ्य पुरुषोंके साथ सम्बन्धका शीघ्र ही प्रतीकार किया जासकता है, परन्तु दुःखोंका संसर्ग, चिरकाल तक क्लेशकर होता है) ॥ २४ ॥ इसलिये कामजन्य दोषोंकी अपेक्षा कोपजन्य दोषोंके अधिक कष्टकर होनेसे, कामके मुकाबलेमें क्रोधको ही अधिक महत्त्व देना चाहिये । अर्थात् कामकी अपेक्षा क्रोधसे अधिक हानि होसकती है, इसलिये क्रोधसे बहुत बचकर रहना चाहिये ॥ २५ ॥

वाक्पारुष्यमर्थदूषणं दण्डपारुष्यमिति ॥ २६ ॥ वाक्पारुष्यार्थदूषणयोर्वाक्पारुष्यं गरीय इति विशालाक्षः ॥ २७॥ परुषमुक्तो हि तेजस्वी तेजसा प्रत्यारोहति ॥ २८ ॥ दुरुक्तशल्यं हृदि निखातं तेजःसंदीपनमिन्द्रियोपतापि चेति ॥ २९ ॥

पहिले कहेहुए कोपजन्य त्रिवर्गके गुरु लघुभावका अब निरूपण करते हैं;—कोपज त्रिवर्ग इस प्रकार हैः—वाक्पारुष्य, अर्थदूषण और दण्डपारुष्य ॥ २६ ॥ आचार्य विशालाक्षका मत है, कि वाक्पारुष्य और अर्थदूषण इन दोनोंमें से वाक्पारुष्य ही बलवान् है ॥ २७ ॥ क्योंकि अपने तिरस्कारको सहन न करने वाले किसी पुरुषके साथ कठोर वाक्योंका व्यवहार किया जानेपर वह अवश्य ही कठोरताका व्यवहार करने वाले पुरुषपर अपने तेजके द्वारा आक्रमण करता है ॥ २८ ॥ दुर्वचन (कठोर वाक्य) रूपी शल्य (बाण=तीर), हृदयमें गढ़ाहुआ, आन्तरिक तेजको दीप्त करने वाला और इन्द्रियोंको संताप पहुंचाने वाला होता है । इसलिये अर्थदूषणकी अपेक्षा वाक्पारुष्यको ही अधिक बलवान् अर्थात् कष्टकर या हानिकर समझना चाहिये ॥ २९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३० ॥ अर्थपूजा वाक्छल्यमपहन्ति, वृत्तिविलोपस्त्वर्थदूषणम् ॥ ३१ ॥ अदानमादानं विनाशः परित्यागो वार्थस्येत्यर्थदूषणम् ॥ ३२ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य विशालाक्षके इस मतको ग्राह्य नहीं समझता ॥ ३० ॥ वह कहता है कि अर्थके द्वारा कियाहुआ सत्कार, दुर्वचन रूपी शल्यको नष्ट करदेता है । परन्तु वाणी द्वारा कीहुई पूजा अर्थदूषणको नहीं हटा सकती । किसीकी जीविकाका मारना ही अर्थदूषण कहाता है । प्रियवचन बोलनेपर भी जीविकाका विघात पूरा नहीं किया जासकता ॥ ३१ ॥ अर्थदूषण चार प्रकारका होता है, अदान (कार्य करनेपर भी कर्मचारीको वेतन न

देना), आदान (दण्ड आदिके द्वारा धन ग्रहण करना), विनाश (देशको पीड़ा पहुंचाना), और अर्थका परित्याग (अर्थात् रक्षा करने योग्य अर्थकी रक्षा न करना)। इन पूर्वोक्त युक्तियोंसे वाक्पारुष्यकी अपेक्षा अर्थदूषणको ही बलवान् समझना चाहिये ॥ ३२ ॥

अर्थदूषणदण्डपारुष्ययोरर्थदूषणं गरीय इति पाराशराः॥३३॥ अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥ ३४ ॥ अर्थप्रतिबन्धश्च लोको वर्तते ॥ ३५ ॥ तस्योपघातो गरीयानिति ॥ ३६ ॥

पाराशर (पराशरके अनुयायी) आचार्योंका सिद्धान्त है, कि अर्थदूषण और दण्डपारुष्यमें से अर्थदूषण ही बलवान् होता है ॥ ३३ ॥ क्योंकि धर्म और काम दोनों अर्थमूलक ही होते हैं। अर्थात् इन दोनोंका अर्थपर ही निर्भर है ॥ ३४ ॥ लोकनिर्वाह भी अर्थके ही कारण हो सकता है; तात्पर्य यह है, कि संसारमें हरतरहके व्यवहारके लिये धनकी बड़ी आवश्यकता रहती है ॥ ३५ ॥ इसलिये उसका (अर्थका), उपघात (दूषण) होना अत्यन्त कष्टकर या आपज्जनक होता है। अतएव अर्थदूषण और दण्डपारुष्यमें अर्थदूषणको ही बड़ा समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ सुमहताप्यर्थेन न कश्चन शरीरविनाशमिच्छेत् ॥ ३८ ॥ दण्डपारुष्याच्च तमेव दोषमन्येभ्यः प्राप्नोति ॥ ३९ ॥ इति कोपजस्त्रिवर्गः ॥ ४० ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, पाराशर आचार्योंके इस मतको युक्ति संगत नहीं समझता ॥ ३७ ॥ वह कहता है कि महान अर्थ राशिकी प्राप्तिके द्वारा भी कोई पुरुष अपने शरीरका नाश नहीं चाहता। अर्थात् अत्यधिक धन प्राप्तिके बदलेमें अपने आपको कोई नष्ट नहीं करना चाहता ॥ ३८ ॥ प्रत्युत दण्डपारुष्यसे अपने आपको बचानेके लिये पुरुष उतना धन अवश्य दे डालता है। इसलिये अर्थदूषणकी अपेक्षा दण्डपारुष्यको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३९ ॥ यहां तक कोपजन्य त्रिवर्गका निरूपण करदिया गया ॥ ४० ॥

कामजस्तु ॥ ४१ ॥ मृगया द्यूतं स्त्रियः पानमिति चतुर्वर्गः ॥ ४२ ॥ तस्य मृगयाद्यूतयोर्मृगया गरीयसीति पिशुनः ॥४३॥

अब इसके आगे कामजन्य चतुर्वर्गका निरूपण किया जावेगा ॥४१॥ कामजन्य चतुर्वर्ग इसप्रकार है:—मृगया (शिकार खेलना), द्यूत (जुआ), स्त्री, और पान (शराब आदिका पीना) ॥ ४२ ॥ कामजन्य इस चतुर्वर्गके

मृगया और द्यूत नामक दोषोंमें से मृगया दोष ही अधिक कष्टकर होता है; यह पिशुन अर्थात् नारद आचार्यका मत है ॥ ४३ ॥

स्तेनामित्रव्यालदावप्रस्खलनभयदिङ्मोहाः क्षुत्पिपासे च प्राणाबाधस्तस्याम् ॥ ४४ ॥ द्यूते तु जितमेवाक्षविदुषा यथा जयत्सेनदुर्योधनाभ्यामिति ॥ ४५ ॥

क्योंकि मृगयामें; चोर, शत्रु, हिंसक जानवर, जंगलकी आग तथा गिरने (चलनेमें कभी २ असावधानीके कारण गिरजाना=प्रस्खलन) आदिसे सदा ही भय रहता है, दिग्भ्रम (दिशाओंकी वास्तविक परिस्थितिको भूलकर भटकते फिरना), तथा भूख प्यास बहुत तंग करती है, और कभी २ प्राणोंपर भी आबनती है ॥ ४४ ॥ परन्तु जुएमें जो बढ़िया खिलाड़ी होता है, वह जीत ही लेता है, जैसे जयत्सेन और दुर्योधनने नल और युधिष्ठिरको जुएमें जीत ही लिया था। तात्पर्य यह है, कि जुएमें बढ़िया खिलाड़ीकी जीत होही जाती है। इसलिये जुएकी अपेक्षा शिकारमें बहुत अधिक कष्ट होते हैं ॥ ४५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४५ ॥ तयोरप्यन्यतरपराजयोऽस्तीति नलयुधिष्ठिराभ्यां व्याख्यातम् ॥ ४७ ॥ तदेव विजितद्रव्यमामिषं वैरबन्धश्च ॥ ४८ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य पिशुनके इस सिद्धान्तको युक्ति संगत नहीं समझता ॥ ४६ ॥ क्योंकि जिस तरह मृगयामें अनेक दोष हैं, इसी तरह द्यूतमें भी दोषोंकी कमी नहीं है, जुआ खेलने वालोंमें भी एकका पराजय अवश्य ही होता है, जैसे नल और युधिष्ठिर जुएमें हार गये थे। तात्पर्य यह है, कि दोनोंमें से जैसे एकका जय होता है, वैसे ही दूसरेका पराजय भी होता है, परन्तु यह नियत नहीं कि इसीका जय और इसीका पराजय होगा, इसलिये द्यूत भी कष्टकर ही होता है ॥ ४७ ॥ तथा जुएमें जीताहुआ धन, पराये मांसके समान होता है; और जिसका धन जीत लिया जाता है, वह जीतने वालेसे द्वेष भी करने लगता है ॥ ४८ ॥

सतोऽर्थस्य विप्रतिपत्तिरसतश्चार्जनमप्रतिभुक्तनाशो मूत्रपुरीषधारणबुभुक्षादिभिश्च व्याधिलाभ इति द्यूतदोषाः ॥ ४९ ॥

तथा पहिलेसे धर्मपूर्वक कमायेहुए धनका बुरे स्थानमें उपयोग होता है, तथा जुएसे अधर्म पूर्वक नये धनका संग्रह किया जाता है, संग्रह किया हुआ भी वह धन बिना भोग किये ही नष्ट होजाता है, अर्थात् जुएमें फिर

हार दिया जाता है। पेशाब तथा पखाने आदिके रोकने और भूख आदिके रोकनेसे बीमारी भी होजाती है। तात्पर्य यह है कि जुआरी, पेशाब पखानेको रोकेहुए तथा भूख आदिको भी रोकेहुए, खेलनेके कारण लगातार बैठे रहते हैं, इस प्रकार करनेसे उन्हें अनेक बीमारियां होजाती हैं, यह सब जुएका ही दोष है। इसलिये जुएको भी कम कष्ट देने वाला न समझना चाहिये ॥ ४९ ॥

मृगयायां तु व्यायामः श्लेष्मपित्तमेदःस्वेदनाशश्चले स्थिते च काये लक्षपरिचयः कोपभयस्थानेहितेषु च मृगाणां चित्तज्ञानम-नित्ययानं चेति ॥ ५० ॥

प्रत्युत मृगया में ये निम्नलिखित गुण भी होते हैं:—व्यायाम (शारीरिक परिश्रम), कफ़ और पित का नाश, मांस का न बढ़ना, पसीना निकलने से देह का हलका होजाना, चलते हुए तथा स्थिर शरीर पर लक्ष (निशाना मारने) का अभ्यास होना, क्रोध तथा भय के कारण होनेवाली भिन्न २ प्रकार की चेष्टाओं में जंगली जानवरों के चित्त का ज्ञान होना और किसी २ विशेष ऋतु में ही मृगया का होना, ये सब ऐसे गुण हैं जिनका द्यूत में होना सम्भव नहीं, इस लिये मृगया की अपेक्षा द्यूत को ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥५०॥

द्यूतस्त्रीव्यसनयोः कैतवव्यसनमिति कौणपदन्तः ॥ ५१ ॥ सातत्येन हि निशि प्रदीपे मातरि च मृतायां दीव्यत्येव कितवः ॥ ५२ ॥ कृच्छ्रे च प्रतिपृष्टः कुप्यति ॥ ५३ ॥

कौणपदन्त अर्थात् भीष्म आचार्य का मत है कि द्यूतव्यसन और स्त्रीव्यसन में से द्यूतव्यसन ही अधिक कष्टकर होता है ॥ ५१ ॥ क्योंकि जुआरी रात में भी दीपक का प्रकाश करके तथा अपनी माता के मरजाने पर भी बराबर जुआ खेलता ही रहता है (इसका तात्पर्य यह है कि जब स्वाभाविक सूर्य का प्रकाश नहीं रहता, तब भी जुआरी दीवे आदि के कृत्रिम प्रकाश में जुआ खेलता है, और एक ओर माता के मरजाने पर भी उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया की कुछ पर्वाह न करके बराबर जुआ खेलता रहता है, यह व्यसन बहुत ही बुरा होता है) ॥ ५२ ॥ तथा किसी तरह का कार्यसंकट आपड़ने पर उससे कोई कुछ पूछता है तो वह कुपित होने लगता है ॥ ५३ ॥

स्त्रीव्यसनेषु तु स्नानप्रतिकर्मभोजनभूमिषु भवत्येव धर्मार्थप-रिप्रश्नः ॥५४॥शक्या च स्त्री राजहिते नियोक्तुम् ॥५५॥उपांशु-

दण्डेन व्याधिना वा व्यावर्तयितुमवस्रावयितुं वेति ॥ ५६ ॥

स्त्रीव्यसनों में तो, स्त्रीव्यसनी राजा से स्नानभूमि में, वस्त्र आदि धारण करने के समय तथा भोजन आदि के समय धर्म अर्थ के सम्बन्ध में पूछा या बतलाया जासकता है ॥ ५४ ॥ तथा जिस स्त्री पर राजा आसक्त हो उसको भी राजा के कल्याणकारी व्यवहार में अमात्य आदि के द्वारा लगाया जा सकता है ॥ ५५ ॥ अथवा यदि वह स्त्री मन्त्रियों के कथनानुसार राजा के कल्याण की ओर ध्यान न देवे, तो उसे उपांशुदण्ड से (चुपचाप छिपकर मार डालने से) नष्ट किया जा सकता है । यदि उसे नष्ट भी न किया जा सके तो सविष औषधि आदि देने के कारण उत्पन हुई २ व्याधि के बहाने से उसे और किसी स्थान पर लेजाया जा सकता है । तात्पर्य यह है कि स्त्रीव्यसन होने पर भी उसका उक्त रीति से परिहार हो सकता है । इसलिये स्त्रीव्यसन की अपेक्षा द्यूतव्यसन को ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ५६॥

नेति कौटल्यः ॥ ५७ ॥ सप्रत्यादेयं द्यूतं निष्प्रत्यादेयं स्त्रीव्यसनमदर्शनं कार्यनिर्वेदः कालातिपातनादनर्थधर्मलोपश्च तन्त्रदौर्बल्यं पानानुबन्धश्चेति ॥ ५८ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य कौणपदन्त (भीष्म) के इस सिद्धान्त को युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ५७ ॥ क्योंकि जुए में जो चीज हार दी जावे, वह फिर जुएके द्वारा जीती भी जासकती है, परन्तु स्त्रीव्यसनमें ऐसा नहीं होसकता, वहां तो जो चीज एक बार हाथसे निकलगई, बस वह निकली ही समझनी चाहिये । इसके अतिरिक्त स्त्रीव्यसनी राजाका मन्त्रियोंको दर्शनभी नहीं होता; और इसी कारणसे फिर उन लोगोंका कार्य करनेमें उत्साह भी नहीं रहता; इसी प्रकार कालान्तरमें जाकर अर्थ और धर्म दोनोंकी हानि होती है; राज्यतन्त्र दुर्बल होजाता है; और स्त्रीव्यसनमें स्त्रीरमण आदिके सहकारी मद्यपानका व्यसन भी लगजाता है । इसलिये द्यूतव्यसनकी अपेक्षा स्त्रीव्यसनको ही अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥५८॥

स्त्रीपानव्यसनयोः स्त्रीव्यसनमिति वातव्याधिः ॥ ५९ ॥ स्त्रीषु हि बालिश्यमनेकविधं निशान्तप्रणिधौ व्याख्यातम् ॥६०॥ पाने तु शब्दादीनामिन्द्रियार्थानामुपभोगः प्रीतिदानं परिजनपूजनं कर्मश्रमवधश्चेति ॥ ६१ ॥

वातव्याधि (उद्धव) आचार्यका मत है, कि स्त्री-व्यसन और मद्यपानव्यसनमेंसे स्त्री-व्यसनही अधिक कष्टकर होता है ॥ ५९ ॥ क्योंकि स्त्रियोंमें

बहुत तरहकी मूर्खताएं होती हैं, वे अपने भर्त्ताओंका वध तक करनेके लिये तरह २ के उपायोंकी रचना कर डालती हैं, इत्यादि अनेक स्त्रीजन्य बाधाओंका व्याख्यान निशान्त प्रणिधि (अधि. १, अध्या. २०, प्रक. १७) नामक प्रकरणमें अच्छी तरह कर दिया गया है। मद्यपानमें इन आपत्तियोंकी सम्भावना नहीं होती ॥६०॥ मद्यपानमें तो इन्द्रियोंके विषय-भूत शब्द आदिका उपभोग ही किया जाता है। तात्पर्य यह है:—मद्यपान करनेसे चित्तकी एकाग्रता होजानेके कारण इन्द्रियोंके शब्द गन्ध रस आदि अर्थोंका अच्छा अनुभव होता है; प्रीतिदान (प्रेमका विस्तार), परिजनोंका सत्कार और अधिक कार्य करनेसे उत्पन्न हुई २ थकावट दूर होजाती है। इसलिये मद्यपान व्यसनकी अपेक्षा स्त्रीव्यसनको अधिक दुःखदायी समझना चाहिये ॥ ६१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ स्त्रीव्यसने भवत्यपत्योत्पत्तिरात्मरक्षणं चान्तर्दारेषु विपर्ययो वा बाह्येष्वगम्येषु सर्वोच्छित्तिः ॥ ६३ ॥ तदुभयं पानव्यसने ॥ ६४ ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य वातव्याधि (उद्धव) के इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ६२ ॥ क्योंकि स्त्रीव्यसनमें, यदि वह अपनी विवाहिता स्त्रियोंमें ही परिमित होवे, तो पुत्रोंकी उत्पत्ति और उनकी सहायता से अपनी रक्षाका होना, यह बड़ा भारी लाभ है। यदि वह व्यसन गणिका आदि बाह्य स्त्रियोंमें होवे, तो यह लाभ नहीं होता; यदि अन्य कुलीन स्त्रियोंमें होवे, तो राजाके सर्वस्वका ही नाश होजाता है; इसलिये बाह्य स्त्रियों और कुलीन स्त्रियोंमें आसक्ति होना ही स्त्रीव्यसनका दोष है ॥ ६३ ॥ परन्तु मद्यपान व्यसनमें ये दोनों ही दोष रहते हैं, अर्थात् पुत्रादिकी उत्पत्ति भी नहीं होती और सर्वस्वका नाश भी होजाता है। तथा इनके अतिरिक्त और भी अनेक दोष मद्यपानव्यसनमें हैं, इनका विवरण अगले सूत्रमें किया जाता है ॥ ६४ ॥

पानसंपत्–संज्ञानाशो ऽनुन्मत्तस्योन्मत्तत्वमप्रेतस्य प्रेतत्वं कौपीनदर्शनं श्रुतप्रज्ञाप्राणवित्तमित्रहानिः सद्भिर्वियोगो ऽनर्थ्यसंयोगस्तन्त्रीगीतनैपुण्येषु चार्थघ्नेषु प्रसङ्ग इति ॥ ६५ ॥

मद्यपान करनेसे निम्नलिखित दोष उत्पन्न होजाते हैं:—संज्ञा अर्थात् विवेक बुद्धिका लोप होजाता है, अनुन्मत्त पुरुषही उन्मत्तके समान होजाता है, अर्थात् जिसके चित्तमें किसी तरहका भी विकार न हो मद्य पीनेसे उसका भी चित्त विकृत होजाता है; जीता हुआ ही पुरुष मरे हुएके समान

निश्चेष्ट होजाता है; उसके छिपे हुए पापोंका पता लगजाता है; शास्त्रज्ञान, शास्त्रज्ञानसे परिमार्जित बुद्धि, बल, धन और मित्र इन सबही वस्तुओंका नाश होजाता है, सज्जन पुरुषोंके साथ संसर्ग नहीं रहता; सर्वथा अनर्थकारी गाने बजाने वाले आदमियोंके साथ ही उठना बैठना रहता है; तथा धनको नष्ट करने वाले वाद्य और गीत आदिके चातुर्य्यमें ही आसक्ति रहती है; ये सब दोष हैं जो कि मद्यपानके साथ २ होजाते हैं। इसलिये स्त्रीव्यसनकी अपेक्षा मद्यपानको ही अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ ६५ ॥

द्यूतमद्ययोः द्यूतमेकेषाम् ॥६६॥ पणनिमित्तो जयः पराजयो वा प्राणिषु निश्चेतनेषु वा पक्षद्वैधेन प्रकृतिकोपं करोति ॥६७॥

द्यूत और मद्य इन दोनों व्यसनोंमें द्यूत ही अधिक कष्टकर होता है, यह किन्हीं आचार्योंका मत है ॥६६॥ क्योंकि पण (जुएमें बाजीपर लगाये हुए द्रव्यका नाम पण है, उस) के कारण होनेवाले जय और पराजय (जब बाजीपर लगाया हुआ धन अपने हाथमें आजावे तो जय, और दूसरेके हाथमें चला-जावे, तो पराजय समझना चाहिये), प्राणी तथा अप्राणी विषयक दोनों प्रकारके जुओंमें परस्पर विरुद्ध दो पक्षोंका उद्भावन होनेसे प्रकृतियोंमें कोपको उत्पन्न करदेते हैं। तात्पर्य यह है, कि जुआ खेलने वाले दो पक्षोंमें अवश्यही एक जीतने वाला और दूसरा हारने वाला पक्ष होता है, यह जय और पराजय, दोनों पक्षोंके पुरुषोंमें क्रोधको उत्पन्न करदेता है। मद्यमें यह बात नहीं, इसलिये मद्यकी अपेक्षा द्यूतको अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ ६७ ॥

विशेषतश्च सङ्घानां सङ्घधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः, तन्निमित्तो विनाश इति ॥ ६८ ॥ असत्प्रग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति ॥ ६९ ॥

और विशेषकर साथ २ रहने वाले तथा ऐकमत्यसे रहने वाले राजकुलोंका तो द्यूतके ही कारण परस्पर भेद होजाता है; और भेद होनेके कारण फिर उनका नाश होजाता है ॥ ६८ ॥ असत्प्रग्रह (जिस व्यसनमें असज्जन पुरुषोंका ही सत्कार किया जावे, ऐसा) अर्थात् मद्यपानका व्यसन, अन्य सब ही व्यसनोंमें अत्यन्त पापिष्ठ है, क्योंकि इसका सेवन करनेसे सम्पूर्ण राज्यचक्र ही दुर्बल होजाता है; इस हालतमें राज्यकी उचित व्यवस्था नहीं कीजासकती। इसलिये अन्य अनेक आचार्य इसीको सब व्यसनोंमें अत्यधिक हानिकर समझते हैं। (इस सूत्रमें यद्यपि 'यह किन्हीं आचार्योंका मत है' इस अर्थको द्योतन करनेके लिये 'अन्येषां' ये 'अपरेषां' ऐसा कोई पद नहीं दीखता, परन्तु नयचन्द्रिका व्याख्यामें 'अन्येषामिति' यह प्रतीक देकर इस अर्थको

प्रकट किया गया है। उसहीके अनुसार हमने भी यहांपर उपर्युक्त अर्थ किया है। जो कि प्रकरणसे भी संगत मालूम होता है ॥ ६९ ॥

असतां प्रग्रहः कामः कोपश्चावग्रहः सताम् ।
व्यसनं दोषबाहुल्यादत्यन्तमुभयं मतम् ॥ ७० ॥
तस्मात्कोपं च कामं च व्यसनारम्भमात्मवान् ।
परित्यजेन्मूलहरं वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ॥ ७१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे पुरुषव्यसनवर्गस्तृतीयो ऽध्यायः ॥३॥
आदित एकोनविंशतो ऽध्यायः ॥११९॥

काम और क्रोध दोनोंही, गाने बजानेका व्यवसाय करने वाले असत्पुरुषोंके सत्कारके हेतु और सत्पुरुषोंके निग्रह अर्थात् तिरस्कारके हेतु होते हैं। दोषोंकी अधिकताके कारण दोनोंको ही महान व्यसन माना गया है, अर्थात् काम और क्रोध दोनों ही बहुत बड़े व्यसन हैं, क्योंकि ये दोषोंसे भरे हुए हैं ॥ ७० ॥ इसलिये धीर वृद्धसेवी तथा जितेन्द्रिय राजाको चाहिये, कि वह मूलको नष्ट करने वाले (अर्थात प्राणांतक सर्वस्वका ही नाश करने वाले), दुःखजनक काम और क्रोधका सर्वथा परित्याग करदे ॥ ७१ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त।

चौथा अध्याय।

१३०-१३२ प्रकरण।

पीडनवर्ग, स्तम्भवर्ग और कोशसङ्गवर्ग।

राष्ट्रपर आने वाली दैवी तथा मानुषी आपत्तियोंके समूहको 'पीडनवर्ग' कहते हैं। राजकीय धनको राजातक न पहुँचने देनेका नाम 'स्तम्भवर्ग' और कोशके धनको कोशतक न पहुँचने देनेका नाम 'कोशसङ्गवर्ग' है। इस अध्यायमें तीन प्रकणोंसे इन्हीं तीन बातोंका निरूपण किया जायगा।

दैवपीडनमग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरक इति ॥ १ ॥

राष्ट्रपर आने वाली दैवी आपत्ति पांच प्रकारकी होती है:—अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा मरक (महामारी) ॥ १ ॥

अग्न्युदकयोरग्निपीडनमप्रतिकार्यं सर्वदाहि च ॥ २ ॥
शक्योपगमनं तार्याबाधमुदकपीडनमित्याचार्याः ॥ ३ ॥

इन सबमें एक दूसरेकी अपेक्षा, कौनसी आपत्ति अधिक कष्ट देने वाली, तथा कौनसी कम कष्ट देने वाली है, इस बातका अब क्रमशः निरूपण किया जायगा। इस विषयमें अनेक प्रचीन आचार्योंका मत है,कि अग्नि और जल से उत्पन्न होने वाली आपत्तियोंमें अग्निजन्य आपत्तिही अधिक कष्टकर होती है, क्योंकि आग लग जाने पर सरलतासे उसका कोईभी प्रतिकार नहीं किया जासकता, तथा आग सबही वस्तुओंको जलाकर भस्म कर डालती है ॥ २ ॥ परन्तु जलमें यह बात नहीं; क्योंकि जलके शीतल होनेसे उसका स्पर्श सह्य होनेके कारण, जलमें रहकरभी उससे अपना बचाव किया जासकता है; तथा नौका आदि साधनोंके द्वाराभी जलसे बचाव होसकता है। इस लिये जलजन्य आपत्तियोंकी अपेक्षा अग्निजन्य आपत्तिकोही अधिक भयावह समझना चाहिये ॥ ३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४ ॥ अग्निर्ग्राममर्धग्रामं वा दहति ॥५॥ उदकवेगस्तु ग्रामशतप्रवाहीति ॥ ६ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ४ ॥ क्योंकि अग्नि, किसी एकही गांवको या आधेही गांवको जला सकता है ॥ ५ ॥ परन्तु जलप्रवाहका वेग, सैकड़ों गांवोंको एक साथही बहा लेजाता है ॥ ६ ॥

व्याधिदुर्भिक्षयोर्व्याधिः प्रेतव्याधितापसृष्टपरिचारकव्यायामोपरोधेन कर्माण्युपहन्ति ॥ ७ ॥ दुर्भिक्षं पुनरकर्मोपघाति हिरण्यपशुकरदायि चेत्याचार्याः ॥ ८ ॥

व्याधि और दुर्भिक्ष इन दोनों आपत्तियोंमेंसे व्याधिही अधिक कष्ट देनेवाली होती है, यह अनेक प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है। क्योंकि व्याधिके कारण मरे हुए, व्याधिग्रस्त हुए २ तथा रोगी पुरुषोंकी परिचर्यामें लगे हुए होनेके कारण अन्य पुरुषभी कृषि आदि कार्योंको ठीक २ नहीं निबाह सकते। तात्पर्य यह है, कि व्याधिका प्रकोप होनेपर पुरुष, अपने कृषि आदि आवश्यक कार्योंको भी नहीं करसकते, अर्थात् व्याधि होनेसे कृषि आदि कार्य ढीले पड़ जाते हैं ॥ ७ ॥ परन्तु दुर्भिक्ष, आगे किये जाने वाले कार्योंमें कोई बाधा नहीं डालता। तथा दुर्भिक्षके कारण धान्यके न होनेपर भी हिरण्य या पशुके रूपमें, राजाको कर दियाही जासकता है। इसलिये दुर्भिक्ष की अपेक्षा व्याधिकोही अधिक कष्टप्रद समझना चाहिये; यही प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ८ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ९ ॥ एकदेशपीडनो व्याधिः शक्यप्रतीकारश्च ॥ १० ॥ सर्वदेशपीडनं दुर्भिक्षं प्राणिनामजीवनायेति ॥ ११ ॥ तेन मरको व्याख्यातः ॥ १२ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्त को युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ९ ॥ वह कहता है कि व्याधि, किसी एकही प्रदेशमें पीड़ा पहुंचा सकती है, अर्थात् जिस देशमें व्याधि हो, उससे उसही देशको हानि पहुंच सकती है, तथा औषधि आदिके द्वारा व्याधिका प्रतीकारभी अच्छी तरह किया जासकता है ॥ १० ॥ परन्तु दुर्भिक्ष सम्पूर्ण देशको पीड़ा पहुंचानेवाला होता है, और इसके कारण सबही प्राणियोंके जीवनभी संकटमें पड़जाते हैं । इसलिये व्याधिकी अपेक्षा दुर्भिक्षको ही अधिक कष्टप्रद समझना चाहिये ॥ ११ ॥ इसहीसे महामारीकी भी लघुता गुरुताको समझ लेना चाहिये । अर्थात् अत्यधिक प्राणियोंके मरणका हेतु होनेके कारण, महामारी दुर्भिक्षकी भी अपेक्षा अधिक कष्टप्रद होती है ॥ १२ ॥

क्षुद्रकमुख्यक्षययोः क्षुद्रकक्षयः कर्मणामयोगक्षेमं करोति ॥ १३ ॥ मुख्यक्षयः कर्मानुष्ठानोपरोधधर्मेत्याचार्याः ॥ १४ ॥

छोटे कार्यकर्ताओं (काम करनेवाले पुरुषों) और मुख्यकार्यकर्ताओं (काम करवानेवाले पुरुषों) मेंसे छोटे कार्यकर्ताओंका क्षय होना अधिक हानिकर होता है, क्योंकि काम करनेवाले आदिमियोंके न रहनेपर कार्यका योगक्षेम (न चलते हुए कार्यका प्रारम्भ करना=योग; और चलते हुए कार्यकी रक्षा करना=क्षेम; कहाता है) नहीं चलसकता ॥ १३ ॥ परन्तु मुख्यकार्यकर्त्ताओंका क्षय, केवल कामकी निगरानीमें ही रुकावट डालता है । अर्थात् कार्य करानेवाले पुरुषोंकी अनुपस्थितिमें भी, करनेवाले पुरुषोंके रहनेके कारण वह कार्य हो ही सकता है । इसलिये मुख्यकार्यकर्त्ताओंकी अपेक्षा छोटेकार्यकर्त्ताओंका नाश होना अधिक हानिकर होता है; यह अनेक प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ १४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १५ ॥ शक्यः क्षुद्रक्षयः प्रतिसंधातुं बाहुल्यात्क्षुद्रकाणान्न मुख्यक्षयः ॥ १६ ॥ सहस्रेषु हि मुख्यो भवत्येको न वा सत्त्वप्रज्ञाधिक्यात्तदाश्रयत्वात्क्षुद्रकाणामिति॥१७॥

परन्तु कौटल्य, इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ १५ ॥ वह कहता है, कि छोटे कर्मचारियोंकी कमीको, उनके समान काम करनेवालोंकी बहुत अधिक संख्या होनेके कारण दूसरे पुरुषोंकी नियुक्तिके द्वारा पूरा किया जासकता है । परन्तु मुख्य कार्यकर्त्ताका क्षय होनेपर यह बात

नहीं होसकती ॥ १६ ॥ क्योंकि ऐसा मुख्य पुरुष, हजारोंमें एकही मिलता है, या कभी २ वह भी नहीं मिलता, क्योंकि वह बल और बुद्धिके कारण सबसे अधिक या बड़ा होनेसे सबही छोटे कार्यकर्त्ताओंका आश्रयभूत होता है, इसलिये उसका क्षय होनाही छोटे कार्यकर्त्ताओंकी अपेक्षा अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ १७ ॥

स्वचक्रपरचक्रयोः स्वचक्रमतिमात्राभ्यां दण्डकराभ्यां पीडयत्यशक्यं च वारयितुम् ॥ १८ ॥ परचक्रं तु शक्यं प्रतियोद्धुमपसारेण संधिना वा मोक्षयितुमित्याचार्याः ॥ १९ ॥

यहांतक दैवी आपत्तियोंका निरूपण करदिया गया, अब इसके आगे मानुषी आपत्तियोंका निरूपण किया जायगा:—स्वचक्र (अपनेही देशकी राजशक्ति) और परचक्र (परदेशकी राजशक्ति), इन दोनोंमेंसे स्वचक्रही, सीमातीत दण्ड (जुर्माना आदि) और कर (टैक्स) के द्वारा प्रजाको पीड़ा पहुंचाता है; तथा अपनेही देशकी राजशक्ति होनेके कारण इसका निवारण भी नहीं किया जासकता। अर्थात् जब अपना स्वामीही इतना कष्ट पहुंचाने लगे तो उसका प्रतीकार कौन करे ॥ १८ ॥ परन्तु परचक्रका प्रतीकार, उसका देश छोड़ देनेके द्वारा अथवा कुछ धन आदि देकर सन्धि करलेनेके द्वारा किया जासकता है। इसलिये परचक्रकी अपेक्षा स्वचक्रको अधिक कष्टकर समझना चाहिये ; यह सब अनेकों प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ १९ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २० ॥ स्वचक्रपीडनं प्रकृतिपुरुषमुख्योपग्रहविघाताभ्यां शक्यते वारयितुमेकदेशं वा पीडयति ॥२१॥ सर्वदेशपीडनं तु परचक्रं विलोपघातदाहाविध्वंसनोपवाहनैः पीडयतीति ॥ २२ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ २० ॥ वह कहता है, कि स्वचक्रसे पहुंचाई हुई पीडाका, अमात्य आदि मुख्य पुरुषोंको अपने अनुकूल बनाने या उनका नाश करदेनेके द्वारा अच्छीतरह प्रतीकार किया जासकता है। तथा स्वचक्र, धनधान्य आदिसे सम्पन्न अपने किसी एक देशकोही पीड़ा पहुंचाता है ॥ २१ ॥ परन्तु परचक्र, धन आदि लूटने, मारनेधाड़ने, आग लगाकर भस्म करने, अन्य प्रकारोंसे नाश करने, तथा अपने देशसे निकाल देनेके द्वारा, सम्पूर्ण देशकोही पीड़ा पहुंचाता है; इसलिये स्वचक्रकी अपेक्षा परचक्रकोही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ २२ ॥

प्रकृतिराजविवादयोः प्रकृतिविवादः प्रकृतीनां भेदकः पराभियोगानावहति ॥ २३ ॥ राजविवादस्तु प्रकृतीनां द्विगुणभक्तवेतनपरिहारकरो भवतीत्याचार्याः ॥ २४ ॥

प्रकृतिविवाद (अमात्य आदि प्रकृतियों का परस्पर झगड़ा) और राजविवाद (राजाओं का परस्पर झगड़ा), इन दोनों में से प्रकृतिविवाद ही अधिक हानिकर होता है। क्योंकि यह अमात्य आदि में परस्पर फूट डालने वाला, तथा शत्रु के कार्यों को सहारा देने वाला होता है ॥ २३ ॥ परन्तु राजविवाद अमात्य आदि प्रकृतियों के दुगने भत्ते तथा वेतन का और अन्य प्रजाजनों के कर (टैक्स) आदि छोड़देनेका कारण होता है। तात्पर्य यह है, कि राजविवाद होनेपर, अपनी प्रजाओंको सन्तुष्ट करनेके लिये, ये उपर्युक्त कार्य करने पड़ते हैं। इनमें प्रजाकी भलाई ही होती है। इसलिये राजविवादकी अपेक्षा प्रकृतिविवादको ही अधिक हानिकर समझना चाहिये, यह अनेक प्राचीन आचार्योंका सिद्धान्त है ॥ २४ ॥

नेति कौटल्यः ॥ २५ ॥ शक्यः प्रकृतिविवादः प्रकृतिमुख्योपग्रहेण कलहस्थानापनयनेन वा वारयितुम् ॥ २६ ॥ विवदमानास्तु प्रकृतयः परस्परसङ्घर्षेणोपकुर्वन्ति ॥ २७ ॥ राजविवादस्तु पीडनोच्छेदनाय प्रकृतीनां द्विगुणव्यायामसाध्य इति ॥ २८ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इससिद्धान्तको युक्ति-संगत नहीं समझता ॥ २५ ॥ वह कहता है, कि प्रकृतिविवादको, अमात्य आदि मुख्य प्रकृतियोंके अनुकूल बनाने तथा कलहके कारणोंको हटादेनेसे, अच्छीतरह रोका जासकता है ॥ २६ ॥ तथा परस्पर विवाद करते हुए प्रकृतिजन, एक दूसरेकी स्पर्धासे राजाका उपकार ही करते हैं ॥ २७ ॥ परन्तु राजविवाद, प्रजाओंकी पीड़ा और उच्छेदके लिये होता है; अर्थात् प्रजाजनोंकी जितनी शक्ति या समृद्धि होती है, वह सबही इस झगड़ेमें स्वाहा होजाती है। तथा राजविवादको शान्त करनेके लिये, प्रकृतिविवादकी अपेक्षा दुगना प्रयत्न करना पड़ता है; इसलिये राजविवादको ही प्रकृतिविवादसे अधिक हानिकर समझना चाहिये ॥ २८ ॥

देशराजविहारयोः देशविहारस्त्रैकाल्येन कर्मफलोपघातं करोति ॥ २९ ॥ राजविहारस्तु कारुशिल्पिकुशीलववाग्जीवन वैदेहकोपकारं करोतीत्याचार्याः ॥ ३० ॥

देशविहार (साधारण प्रजाजनोंकी क्रीडा अर्थात् मनोविनोदके लिये हंसी खेलकूद आदिका करना) और राजविहार (राजक्रीडा अर्थात् राजाके मनोविनोदके लिये भिन्न २ प्रकारके खेल आदिका किया जाना), इन दोनोंमें से देशविहार अधिक हानिकर होता है, क्योंकि प्रजाजनोंके खेलकूदमें लग-जानेसे तीनों कालोंमें होने वाले कृषि आदि कार्योंका उच्छेद होजाता है। अर्थात् पहिले बोयेहुए खेतोंकी रक्षा नहीं होती, वर्त्तमानमें और खेत बोए नहीं जाते, और आगे बोनेके लिये भूमि तैयार नहीं कीजाती; इसप्रकार तीनों कालोंमें खेतीका नाश होता है। (इसीतरह अन्य कार्योंमें भी समझ लेना चाहिये) ॥२९॥ परन्तु राजविहार, कारु (मोटे कारीगर बढ़ई लुहार आदि), शिल्पी (सूक्ष्म कार्य करनेवाले कारीगर सुनार आदि), कुशीलव (गाने वाले), वाग्जीवन (स्तुतिपाठ करनेवाले, भाट चारण आदि), रूपाजीवा (वेश्या), तथा वैदेहक (अन्य व्यापारी) आदि व्यक्तियोंका अत्यन्त उपकार करने वाला होता है, तात्पर्य यह है, कि राजविहारके लिये जो सामान आदि तैयार कराये जाते हैं, या उसके आगे जैसे कार्यक्रम होते हैं, उनमें हरतरहके कारीगर, गाने बजाने वाले तथा अन्य व्यापारियोंको विशेष लाभ होता है, इसलिये राजविहारकी अपेक्षा देशविहारको अधिक हानिकर समझना चाहिये, यह अनेक प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ३० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३१ ॥ देशविहारः कर्मश्रमवधार्थमल्पं भक्षयति ॥ ३२ ॥ भक्षयित्वा च भूयः कर्मसु योगं गच्छति ॥ ३३ ॥ राजविहारस्तु स्वयं वल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागार-कार्योपग्रहैः पीडयतीति ॥ ३४ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ३१ ॥ वह कहता है, कि देशविहार, कार्य करनेसे उत्पन्न हुई थकावटको दूर करनेके लिये थोड़ा ही व्यय करता है; अर्थात् प्रजाओंका मनोविनोद थोड़े ही व्ययमें होजाता है ॥ ३२ ॥ तथा इतना व्यय करके नई उमंगसे भरेहुए उन प्रजाओंको, फिर अपने २ कृषि आदि कार्योंमें लगादेता है। अर्थात् मनोविनोदके अनन्तर वे पुरुष अच्छीतरहसे फिर अपने २ कार्योंमें लगजाते हैं ॥ ३३ ॥ परन्तु राजविहार स्वयं राजाके द्वारा तथा राजाके अत्य प्रिय पुरुषोंके द्वारा, जनपदकी इच्छाके विरुद्ध उससे धन लेकर, पण्यशालासे तथा अतिरिक्त कार्योंको पूरा करनेके लिये रिश्वत आदिसे धन लेकर प्रजाको बहुत कष्ट पहुंचाता है; इसलिये देशविहारकी अपेक्षा राजविहारको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ३५ ॥

सुभगाकुमारयोः कुमारः स्वयं वल्लभैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागारकार्योपग्रहैः पीडयतीति ॥ ३५ ॥ सुभगा विलासोपभोगेनेत्याचार्याः ॥ ३६ ॥

देवी (रानी=सुभगा) और युवराज इन दोनोंके विहारोंमें से युवराजका विहार, स्वयं युवराजके द्वारा तथा युवराजके अन्य प्रिय पुरुषोंके द्वारा, जनपदकी इच्छाके विरुद्ध उससे धन लेकर, पण्यशालासे तथा अन्य कार्योंको पूरा करनेके लिये रिश्वत आदिसे धन लेकर प्रजाको बहुत कष्ट पहुंचाता है ॥ ३५ ॥ और देवी विलासोपभोगके द्वारा अर्थात् गन्ध माल्य आदि विलासकी सामग्रीके द्वारा ही प्रजाको पीड़ा पहुंचाती है । इसलिये देवीविहारकी अपेक्षा युवराजविहारको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये, यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ३६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३७ ॥ शक्यः कुमारो मन्त्रिपुरोहिताभ्यां वारयितुं न सुभगा बालिश्यादनर्थ्यजनसंयोगाच्चेति ॥ ३८ ॥

परन्तु कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ३७ ॥ वह कहता है, कि युवराजको इस तरहका कार्य करनेसे मन्त्री तथा पुरोहितोंके द्वारा रोका जासकता है; अर्थात् मन्त्री और पुरोहित आदि उच्च राजकर्मचारी, कुमारको समझाकर इसतरहके अनर्थकारी कार्योंके करनेसे पृथक् रख सकते हैं । परन्तु रानियोंके सम्बन्धमें यह बात नहीं होसकती, क्योंकि उनमें प्रायः मूर्खता अधिक होती है, और फिर गाने बजाने आदिका व्यवसाय करनेवाले अनर्थकारी नीच पुरुषोंके साथ ही प्रायः उनका संसर्ग रहता है; इस अवस्थामें उन्हें समझाना भी बहुत कठिन है । इसलिये कुमारविहारकी अपेक्षा देवीविहारको ही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥३८॥

श्रेणीमुख्ययोः श्रेणी बाहुल्यादनवग्रहा स्तेयसाहसाभ्यां पीडयति ॥ ३९ ॥ मुख्यः कार्यानुग्रहविघाताभ्यामित्याचार्याः ॥ ४० ॥

श्रेणी (आयुधजीवी तथा कृषिजीवी पुरुषोंके परस्पर इकट्ठे हुए २ संघका नाम श्रेणी है) और मुख्य (अपनी देखभालमें काम करानेवाले प्रधान राजकर्मचारी) पुरुषोंमेंसे श्रेणीही चोरी तथा डाका आदिसे प्रजाको कष्ट पहुंचाती है, तथा उसकी संख्या बहुत अधिक होनेके कारण उसको रोका भी नहीं जासकता ॥ ३९ ॥ मुख्यपुरुष केवल रिश्वत आदि लेकर ही कार्य करने, तथा रिश्वत न मिलनेपर कार्य बिगाड़ देनेसेही प्रजाको पीड़ा

पहुंचाते हैं। इसलिये मुख्य पुरुषोंकी अपेक्षा श्रेणी पुरुषोंकोही अधिक कष्टप्रद समझना चाहिये ; यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ४० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४१ ॥ सुव्यावर्त्या श्रेणी समानशीलव्यसनत्वात्, श्रेणीमुख्यैकदेशोपग्रहेण वा ॥ ४२ ॥ स्तम्भयुक्तो मुख्यः परप्राणद्रव्योपघाताभ्यां पीडयतीति ॥ ४३ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ४१ ॥ वह कहता है, कि श्रेणीको चोरी डाके आदिसे बड़ी सरलतापूर्वक रोका जासकता है, क्योंकि जिनके यहां वे चोरी आदि करते हैं; वे भी उनके समानही स्वभाव तथा कृषि आदि समान व्यवसायवाले होते हैं। अथवा उनके गिरोहके मुख्य आदमियोंको अपने अनुकूल बना लेनेसेभी उनको चोरी आदिसे रोका जासकता है ॥ ४२ ॥ परन्तु राजकीय मुख्यपुरुष बड़े अभिमानी होते हैं, और वे दूसरोंके प्राण तथा धनका अपहरण करके अत्यन्तकष्ट पहुंचाते हैं; इसलिये श्रेणीकी अपेक्षा मुख्य पुरुषकोही अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ४३ ॥

संनिधातृसमाहर्त्रोस्संनिधाता कृतविदूषणात्ययाभ्यां पीडयति ॥ ४४ ॥ समाहर्ता करणाधिष्ठितः प्रदिष्टफलोपभोगी भवतीत्याचार्याः ॥ ४५ ॥

सन्निधाता और समाहर्त्ता, इन दोनोंमेंसे सन्निधाता (धनको कोषमें रखनेवाला अधिकारी) दीहुई भूषण आदि वस्तुओंके दूसण निकालने और समय बीतजाने आदिका बहाना करके प्रजाको पीड़ा पहुंचाता है ॥ ४४ ॥ परन्तु समाहर्ता अपने ठीक हिसाबके काममें लगा हुआ, अपनी नियमित नौकरीकाही भोगनेवाला होता है। तात्पर्य यह है, कि सन्निधाता तो किसी बहानेसे रिश्वत आदि लेकर प्रजाको पीड़ा पहुंचा सकता है; परन्तु समाहर्त्ता को एक २ पैसेका हिसाब रखना पड़ता है, इसलिये वह केवल अपने वेतनपर ही निर्वाह करता है ; अतएव समाहर्त्ताकी अपेक्षा सन्निधाताही प्रजाको अधिक कष्ट पहुंचाता है, यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ४५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४६ ॥ संनिधाता कृतावस्थमन्यैः कोशप्रवेश्यं प्रतिगृह्णाति ॥ ४७ ॥ समाहर्ता पूर्वमर्थमात्मनः कृत्वा पश्चाद्राजार्थं करोति, प्रणाशयति वा, परस्वादाने च स्वप्रत्ययश्चरतीति ॥ ४८ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ४६ ॥ वह कहता है, कि सन्निधाता तो दूसरे कर्मचारियोंके द्वारा व्यवस्थित कियेहुए कोशमें रखने योग्य धन को ही ग्रहण करता है। अर्थात् जिस वस्तुको कोशमें रखनेके लिये दूसरे अधिकारी निश्चित करदेते हैं; सन्निधाता उसी तरह उसको कोशमें रखदेता है, वह स्वयं किसी वस्तुको लेने या न लेनेका अधिकार नहीं रखता ॥ ४७ ॥ परन्तु समाहर्त्ता (सरकारी टैक्सको वसूल करने वाला अधिकारी) पहिले अपनी रिश्वत आदि लेकर, फिर राजाके धनका संग्रह करता है, अथवा उसमें से भी स्वयं अपहरण करके धनको नष्ट करदेता है। और दूसरोंसे टैक्स वसूल करनेके समय अपनी इच्छाके अनुसार ही सब काम करता है। इसलिये सन्निधाताकी अपेक्षा समाहर्त्ताकोही अधिक पीड़ा पहुंचाने वाला समझना चाहिये ॥ ४८ ॥

अन्तपालवैदेहकयोरन्तपालश्चोरप्रसङ्गदेयात्यादानाभ्यां वणिक्पथं पीडयति ॥ ४९ ॥ वैदेहकास्तु पण्यप्रतिपण्यानुग्रहैः प्रसाधयन्तीत्याचार्याः ॥ ५० ॥

अन्तपाल और वैदेहक, इन दोनोंमें से, अन्तपाल (सीमारक्षक अधिकारी) चोरोंके द्वारा पथिकोंके धनको लुटवाकर तथा मार्गका कर अत्यधिक मात्रामें लेकर, व्यापारी मार्गोंपर चलने वाले पथिकोंको अत्यन्त कष्ट पहुंचाता है ॥ ४९ ॥ परन्तु वैदेहक (व्यापारी पुरुष), पण्य (विक्रेय पदार्थ) और प्रतिपण्य (पण्यके बदलेमें लिये जाने वाला पदार्थ) पर अनुग्रह करनेसे अर्थात् विशेष लाभके पहुंचानेसे व्यापारी मार्गोंको बराबर उन्नत बनाते हैं। इसलिये व्यापारियोंकी अपेक्षा अन्तपालोंको ही अधिक कष्टप्रद समझना चाहिये; यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ५० ॥

नेति कौटल्यः ॥ ५१ ॥ अन्तपालः पण्यसंपातानुग्रहेण वर्तयति ॥ ५२ ॥ वैदेहकास्तु संभूय पण्यानामुत्कर्षापकर्षं कुर्वाणाः पणे पणशतं कुम्भे कुम्भशतमित्याजीवन्ति ॥ ५३ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ५१ ॥ वह कहता है, कि अन्तपाल, एकसाथ लायेहुए विक्रेय पदार्थोंपर उचित वर्त्तनी (व्यापारी मार्गोंका टैक्स) लेकर व्यापारी मार्गोंको उन्नत करताहुआ उन्हें लाभप्रद सिद्ध करता है ॥ ५२ ॥ वैदेहक तो एकसाथ मिलकर अर्थात् आपसमें सलाह करके व्यापारी मालके मूल्यको घटा बढ़ाकर (जिस मालको ख़रीदनाहो उसके मूल्यको घटाकर और जिस माल

को वेचना हो उसके मूल्यको बढ़ाकर) एक पणके सौ पण और एक कुम्भके सौ कुम्भ (घी आदि मालसे भरेहुए वर्त्तन आदिको यहांपर 'कुम्भ' शब्दसे कहागया है) लाभ उठाते हैं । इसलिये अन्तपालकी अपेक्षा व्यापारी बनियोंको ही प्रजाके लिये अधिक कष्टकर समझना चाहिये ॥ ५३ ॥

अभिजातोपरुद्धा भूमिः पशुव्रजोपरुद्धा वेति ॥ ५४ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिः महाफलाप्यायुधीयोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुं व्यसनाबाधभयात् । ५५ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कृषियोग्या क्षमा मोक्षयितुम्, विवीतं हि क्षेत्रेण बाध्यत इत्याचार्याः ॥ ५६ ॥

अब कष्ट पहुंचाने वाली भूमिके छोड़ने न छोड़नेके विषयमें विचार किया जायगा विजिगीषुके वंशके पारिवारिक पुरुषोंसे घेरीहुई भूमिको छोड़ना चाहिये, अथवा गौ आदि पशुओंके समूहसे घेरीहुई भूमिको ? ॥ ५४ ॥ इस विषयमें प्राचीन आचार्योंका निर्णय है, कि अत्यधिक अन्न आदिके द्वारा लाभदायक होनेपर भी यदि वह भूमि सैनिक पुरुषोंको देकर उपकार करने वाली हो, अर्थात् विजिगीषुको उस भूमिसे पर्याप्त संख्यामें सैनिक मिल सकते हैं, तो उस भूमिको न छोड़ना चाहिये; क्योंकि शत्रुके आक्रमण करनेपर सैनिक पुरुषोंके न होने से कष्ट होनेका भय रहता है ॥ ५५ ॥ पशुओंसे घेरीहुई भूमि तो, यदि कृषिके योग्य हो, तो छोड़ी जासकती है, अर्थात् उसमें से चरागाहको उठाकर खेती कराई जासकती है, क्योंकि चरागाहकी अपेक्षा खेतीसे अधिक लाभ होसकता है ॥ ५६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ५७ ॥ अभिजातोपरुद्धा भूमिरत्यन्तमहोपकारापि क्षमा मोक्षयितुम् व्यसनाबाधभयात् ॥ ५८ ॥ पशुव्रजोपरुद्धा तु कोशवाहनोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुमन्यत्र सस्यवापोपरोधादिति ॥ ५९ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस निर्णयको ठीक नहीं मानता ॥ ५७ ॥ वह कहता है, कि विजिगीषुके पारिवारिक पुरुषोंके द्वारा घेरीहुई भूमि, सैनिक पुरुषोंको देकर अत्यन्त उपकार करने वाली होनेपर भी छोड़ी जासकती है । क्योंकि अपने (विजिगीषुके) दोषोंका अन्वेषण करने वाले पारिवारिक पुरुषोंके द्वारा ही आपत्ति आनेका भय रहता है ॥ ५८ ॥ पशुओंसे घिरीहुई चरागाहकी भूमि तो, कोशमें संग्रह करने योग्य घृत आदि तथा बैल आदि वाहनोंको देकर अत्यन्त उपकार करने वाली होती है;

इसलिये वह नहीं छोड़ी जासकती । किन्तु उसके समीप यदि नाजके खेत हों, और चरागाहके कारण उनमें नुकसान होता हो, तो उसे भी छोड़ा जासकता है, अन्यथा नहीं ॥ ५९ ॥

प्रतिरोधकाटविकयोः प्रतिरोधकाः रात्रिसत्त्रपराः शरीराक्रमिणो नित्याः शतसहस्रापहारिणः प्रधानकोपकाश्च ॥ ६० ॥ व्यवहिताः प्रत्यन्तारण्यचराश्चाटविकाः प्रकाशा दृश्याश्चरन्त्येकदेशघातकाश्चेत्याचार्याः ॥ ६१ ॥

प्रतिरोधक और आटविक इन दोनोंमें से, प्रतिरोधक लुटेरे, जो कि भिन्न २ स्थानोंपर रहते हों) रात्रिमें तथा घने जंगलोंमें घूमने वाले, आने जाने वाले पुरुषोंके शरीरोंपर आक्रमण करने वाले, सदा ही समीप रहने वाले, सैकड़ों और हज़ारोंकी संख्यामें धनका अपहरण करने वाले, तथा राष्ट्रके प्रधान २ पुरुषोंको लूट आदिके द्वारा कुपित करने वाले होते हैं ॥६०॥ और आटविक (अपने राज्यकी सीमाके जंगलोंमें रहने वाले लुटेरे) दूर रहने वाले, देशकी सीमाके जंगलोंमें घूमने फिरने वाले, प्रकट रूपमें रहने वाले तथा दृष्टिगोचर होतेहुए घूमते हैं, इसलिये ये देशके एक ही हिस्सेको पीड़ा पहुंचा सकते हैं, और मालूम होनेपर लोग इनसे अपनी रक्षा भी कर सकते हैं । अतएव आटविकोंकी अपेक्षा प्रतिरोधक पुरुष ही प्रजाके लिये अत्यधिक पीड़ा पहुंचाने वाले होते हैं, यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ ६१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६२ ॥ प्रतिरोधकाः प्रमत्तस्यापहरन्ति ॥ ६३ ॥ अल्पाः कुण्ठाः सुखा ज्ञातुं ग्रहीतुं च ॥ ६४ ॥ स्वदेशस्थाः प्रभूता विक्रान्ताश्चाटविकाः ॥ ६५ ॥ प्रकाशयोधिनोऽपहर्तारो हन्तारश्च देशानां राजसधर्माण इति ॥ ६६ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, प्राचीन आचार्योंके इस मतको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥ ६२ ॥ वह कहता है, कि प्रतिरोधक पुरुष प्रमादीके यहांसे ही (अर्थात् जो सावधानता पूर्वक नहीं रहता, उस ही के यहांसे) धन आदिका अपहरण करसकते हैं ॥ ६३ ॥ ये लोग संख्यामें बहुत थोड़े होनेके कारण सब जगह नहीं फैल सकते, इसीलिये ये लोग बड़ी सरलतासे जाने जासकते तथा पकड़े जासकते हैं ॥६४॥ और आटविक अपने देशमें स्थित तथा संख्यामें बहुत होते हैं, बहादुर होनेके कारण बड़ी कठिनतासे पकड़े जासकते हैं ॥ ६५ ॥ प्रकट रूपमें युद्ध करने वाले होते हैं, देश निवासी पुरुषोंके धन तथा

प्राणोंको अपहरण करने वाले होते हैं, तथा निरङ्कुश होनेके कारण इनकी परिस्थिति राजाओंके समान होती है। इसलिये प्रतिरोधक पुरुषोंकी अपेक्षा आटविकोंको ही अधिक पीड़ा पहुंचाने वाला समझना चाहिये ॥ ६६ ॥

मृगहस्तिवनयोः मृगाः प्रभूताः प्रभूतमांसचर्मोपकारिणो मन्दग्रासावक्लेशिनः सुनियम्याश्च ॥ ६७ ॥ विपरीता हस्तिनो गृह्यमाणा दुष्टाश्च देशविनाशायेति ॥ ६८ ॥

मृगवन और हस्तिवन इन दोनोंमें से हस्तिवन (हाथियोंके रहनेका जंगल) अधिक कष्टकर होता है; क्योंकि मृग संख्यामें बहुत अधिक, तथा अत्यधिक मांस और चमड़ेके द्वारा उपकार करने वाले, थोड़ा खाने वाले इसीलिये भागते समय जल्दी थक जाने वाले, तथा पकड़े जाकर बड़ी सरलतासे वशमें आजाने वाले होते हैं ॥ ६७ ॥ हाथी इनसे बिल्कुल विपरीत होते हैं, संख्यामें बहुत थोड़े, बहुत थोड़ा मांस चमड़ा देने वाले, बहुत खानेके कारण जल्दी न थकने वाले, तथा पकड़े जाकर भी दुष्ट होनेपर लोगोंको मार डालने वाले होते हैं ॥ ६८ ॥

स्वपरस्थानीयोपकारयोः स्वस्थानीयोपकारो धान्यपशुहिरण्य-कुप्योपकारो जानपदानामापद्यात्मधारणः ॥ ६९ ॥ विपरीतः परस्थानीयोपकारः, इति पीडनानि ॥ ७० ॥

अपने नगरका उपकार करना और पराये नगरका उपकार करना, इन दोनोंमें से अपने नगरका उपकार करना (प्रत्येक वस्तुके क्रय विक्रय व्यवहारका करना और उससे अपने नगर को लाभ पहुंचाना ही यहां उपकार कहा गया है) अर्थात् धान्य पशु हिरण्य और कुप्य आदि पदार्थों का अपने ही नगरमें क्रय विक्रय करना, जनपद निवासी पुरुषों की आपत्ति (दुर्भिक्ष आदिसे उत्पन्न हुई विपत्ति) के समयमें प्राण धारणका हेतु होता है ॥ ६९ ॥ परन्तु दूसरे के नगरमें क्रय विक्रय व्यवहार करके उसे लाभ पहुंचाने से विपरीत ही परिणाम निकलता है; अर्थात् उससे दूसरेके नगरकी वृद्धि होती है, और वह अपने (क्रय विक्रय व्यवहार करने वाले पुरुष के) देशको कष्ट पहुंचाने वाला होता है। यहांतक पीडनवर्ग अर्थात् देशको पीड़ा पहुंचाने वाले हेतुओंका निरूपण कर दिया गया ॥ ७० ॥

आभ्यन्तरो मुख्यस्तम्भो बाह्यो मित्राटवीस्तम्भ इति स्तम्भवर्गः ॥ ७१ ॥

अपने ही सरकारी मुख्य कर्मचारियोंके द्वारा अर्थ का रोका जाना

'आभ्यन्तर स्तम्भ' और मित्र तथा आटविक पुरुषोंके द्वारा अर्थका रोका जाना 'बाह्य स्तम्भ' कहा जाता है। स्तम्भ दो ही प्रकारका होता है। यह स्तम्भ वर्गका व्याख्यान कर दिया गया ॥ ७१ ॥

ताभ्यां पीडनैर्यथोक्तैश्च पीडितः सक्तो मुख्येषु परिहारोपहतः प्रकीर्णो मिथ्यासंभृतः सामन्ताटवीभृत इति कोशसङ्गाः ॥७२॥

दोनों प्रकारके आभ्यन्तर और बाह्य स्तम्भोंके द्वारा तथा पूर्वोक्त पीडाके हेतुओंके द्वारा पीड़ित हुआ २ अर्थात् उचित आमदनीकी मात्रासे घटाया हुआ, कर देनेवाले पुरुषोंसे वसूल करके मुख्य कर्मचारी पुरुषोंसे उपयोग किया हुआ, अर्थात् गबन किया गया हुआ, राजाकी आज्ञानुसार कर माफ हो जाने के कारण कम हुआ २ इधर उधर बिखरा हुआ, उचित परिमाण से न्यून अथवा अधिक मात्रा में इकट्ठा किया हुआ, तथा सामन्त और आटविक पुरुषोंके द्वारा अपहरण किया हुआ धन खजानेमें नहीं आने पाता; बीचमें ही नष्ट होजाता है। इसीका नाम कोशसङ्ग है। यह कोशसङ्ग वर्गका निरूपण कर दिया गया ॥ ७२ ॥

पीडनानामनुत्पत्तावुत्पन्नानां च वारणे ।
यतेत देशवृद्ध्यर्थं नाशे च स्तम्भसङ्गयोः ॥ ७३ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे पीडनवर्गः स्तम्भवर्गः कोशसङ्गवर्गः चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो विंशतिशतो ऽध्यायः ॥ १२० ॥

पूर्वोक्त पीड़ाओं को उत्पन्न न होने देनेमें, अथवा उत्पन्न होजाने पर उनका निवारण करने में और स्तम्भ तथा कोशसङ्गके नाश करनेमें, राजा को सदा यत्नवान होना चाहिये, जिससे कि वह अपने देश और कोशकी वृद्धि करसके ॥ ७३ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण में चौथा अध्याय समाप्त

पांचवां अध्याय

१३३, १३४ प्रकरण

बलव्यसनवर्ग और मित्रव्यसनवर्ग।

अपनी सेना पर आने वाली विपत्तियों तथा मित्रपर आने वाली विपत्तियोंके समूह का इन दो प्रकरणोंमें यथाक्रम निरूपण किया जायगा।

बलव्यसनानि ॥ १ ॥ अमानितं विमानितमभृतं व्याधितं नवागतं दूरयातं परिश्रान्तं परिक्षीणं प्रतिहतं हताग्रवेगमनृतुप्राप्तमभूमिप्राप्तमाशानिर्वेदि परिसृप्तं कलत्रगर्ह्यन्तःशल्यं कुपितमूलं भिन्नगर्भमपसृतमतिक्षिप्तमुपनिविष्टं समाप्तमुपरुद्धमुपक्षिप्तं छिन्नधान्यपुरुषवीवधं स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं दूष्ययुक्तं दुष्टपार्ष्णिग्राहं शून्यमूलमस्वामिसंहतं भिन्नकूमन्धमिति ॥ २ ॥

सेनापर आने वाले व्यसन, निम्न लिखित प्रकारसे समझने चाहिये ॥ १ ॥ अमानित, निमानित, अभृत, व्याधित, नवागत, दुरायात, परिश्रान्त परिक्षीण, प्रति त, हताग्रवेग, अनृतुप्राप्त, अभूमिप्राप्त, आशानिर्वेदी, परिसृप्त, कलत्रगर्ही, अन्तः शल्य, कुपितमूल, भिन्नगर्भ, अपसृत, अतिक्षिप्त, उपनिविष्ट, समाप्त, उपरुद्ध, परिक्षिप्त, छिन्नधान्य, छिन्नपुरुषवीवध, स्वविक्षिप्त, मित्र-विक्षिप्त, दूष्ययुक्त, दुष्टपार्ष्णिग्राह, शून्यमूल, अस्वामिसंहत, भिन्नकूट और अन्ध; ये चौंतीस प्रकारके व्यसन हैं। (इनके अर्थ और परस्पर गुरु लघुभाव का विचार, यथाक्रम अगले सूत्रोंमें किया जाता है ॥ २ ॥

तेषाममानितविमानितयोरमानितं कृतार्थमानं युध्येत न विमानितमन्तःकोपम् ॥ ३ ॥

इन अमानित आदि चौंतीस प्रकार की विशेषताओंसे युक्त सेनाओं के बीचमें, विमानित (तिरस्कार की हुई) और अमानित (सत्कार न की हुई) सेनाओंमें से, अमानित ही समय पर सत्कार आदि किये जानेपर विजिगीषु की ओरसे युद्ध कर सकती है; विमानित सेना कभी युद्ध करने को तैयार नहीं होती; क्योंकि उसके हृदयमें, पहिले किये हुए तिरस्कारके कारण कोप विद्यमान रहता है ॥ ३ ॥

अभृतव्याधितयोरभृतं तदात्वकृतवेतनं युध्यते न व्याधितमकर्मण्यम् ॥ ४ ॥

अभृत (जिसका वेतन न दिया गया हो) और व्याधित (रोगी) सेनाओंमें से अभृत सेना ही उस समय वेतनके दिये जानेपर विजिगीषु की ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है, व्याधित सेना नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें कार्य करने की शक्ति ही नहीं होती ॥ ४ ॥

नवागतदूरायातयोर्नवागतमन्यत उपलब्धदेशमनवमिश्रं युध्येत न दूरायातमायतगतपरिक्लेशम् ॥ ५ ॥

नवागत (नई आई हुई अर्थात् अभी जल्दी ही आई हुई) और दूरायात (दूरसे आई हुई) सेनाओंमें से नवागत सेना, किन्हीं दूसरे अर्थात् पहिले से ही यहां रहने वाले किन्हीं मनुष्योंसे देशके संबन्धमें जानकारी प्राप्त करके, तथा पुराने आदमियोंके साथ मिलकर विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करने को तैयार हो सकती है; और दूरायात सेना तैयार नहीं हो सकती, क्योंकि वह दूरसे आनेके कारण (लम्बी यात्रा तै करनेके कारण) बहुत थकी हुई होती है ॥ ५ ॥

परिश्रान्तपरिक्षीणयोः परिश्रान्तं स्नानभोजनस्वप्नलब्धविश्रामं युध्येत न परिक्षीणमन्यत्राहवे क्षीणयुग्यपुरुषम् ॥ ६ ॥

परिश्रान्त (ठीक आहार न मिलने तथा दूरकी यात्रा करनेके कारण थकी हुई) और परिक्षीण (दूसरे युद्धमें जिसके योग्य सैनिक पुरुष नष्ट होचुके हैं, ऐसी) सेनाओंमें से परिश्रान्त सेना ही, स्नान भोजन शयन तथा विश्राम आदिकी सुविधा होनेपर हर तरहकी थकावटको दूर करके विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करने को तैयार हो सकती है; परिक्षीण सेना तैयार नहीं हो सकती, क्योंकि दूसरे युद्धमें उसके अनेक योग्य पुरुषों का नाश हो चुका है ॥ ६ ॥

प्रतिहतहताग्रवेगयोः प्रतिहतमग्रपातभग्नं प्रवीरपुरुषसंहतं युध्येत न हताग्रवेगमग्रपातहतप्रवीरम् ॥ ७ ॥

प्रतिहत (युद्धके आरम्भमें ही पराजय को प्राप्त हुई २ सेना), और हताग्रवेग (अपने वीर पुरुषोंके मरजाने के कारण सबसे प्रथम युद्ध करनेमें उत्साह न रखने वाली) सेनाओंमें से, पहिले वारमें हारी हुई प्रतिहत सेना ही अन्य वीर पुरुषोंके साथ मिलकर, विजिगीषुके लिये युद्ध करसकती है; हताग्रवेग सेना युद्ध करनेको तैयार नहीं होसकती, क्योंकि आगे आक्रमण करने के कारण उसके अनेक वीरोंका नाश होचुका होता है ॥ ७ ॥

अनृत्वभूमिप्राप्तयोरनृतुप्राप्तं यथर्तुयोग्यशस्त्रावरणं युध्येत नाभूमिप्राप्तमवरुद्धप्रसारव्यायामम् ॥ ८ ॥

अनृतुप्राप्त (जिसको युद्धके योग्य ऋतु अर्थात् समय प्राप्त न हो) और अभूमि प्राप्त (जिसको कवायद आदिके लिये भूमि प्राप्त न हो), इन दोनोंमें से अनृतुप्राप्त सेना, वर्तमान ऋतुके अनुसार ही सवारी हथियार तथा कवच आदिको लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है, अभूमिप्राप्त सेना तैयार नहीं होसकती; क्योंकि उसके चलने फिरनेके मार्ग तथा युद्ध संबन्धी कार्य सब ही रुके रहते हैं ॥ ८ ॥

आशानिर्वेदिपरिसृप्तयोराशानिर्वेदि लब्धाभिप्रायं युध्येत न परिसृप्तमपसृतमुख्यम् ॥ ९ ॥

आशानिर्वेदी (इच्छित वस्तुके न मिलनेसे निराशा को प्राप्त हुई २ सेना) और परिसृप्त (मुख्यनेतासे रहित सेना) इन दोनोंमें से आशानिर्वेदी सेना, अपनी कामनाको पूरी हुई देखकर विजिगीषु की ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होजाती है, परिसृप्त सेना तैयार नहीं होसकती, क्योंकि उसका मुख्य नेता कोई नहीं होता ॥ ९ ॥

कलत्रगर्ह्यन्तःशल्ययोः कलत्रगर्ह्युन्मुच्य कलत्रं युध्येत नान्तःशल्यमन्तरमित्रम् ॥ १० ॥

कलत्रगर्ही (पोष्यवर्गकी निन्दा करनेवाला, अर्थात् कलत्र आदि मेरे युद्ध संबन्धी कार्योंमें रुकावट डालने वाले हैं, इस प्रकार उनकी निन्दा करनेवाला) और अन्तःशल्य (अन्दरसे शत्रुता रखनेवाला), इन दोनों बलों (सेनाओं) में से कलत्रगर्ही बल अपने कलत्र आदिकी समुचित सुरक्षित स्थानमें व्यवस्था करके विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होसकता है; अन्तःशल्य बल तैयार नहीं होसकता, क्योंकि वह विजिगीषुके साथ अंदर से शत्रुता रखता है ॥ १० ॥

कुपितमूलभिन्नगर्भयोः कुपितमूलं प्रशमितकोपं सामादिभिर्युध्येत न भिन्नगर्भमन्योन्यस्माद्भिन्नम् ॥ ११ ॥

कुपितमूल (प्रायः क्रोध करने वाली सेना) और भिन्नगर्भ (आपसमें ही शत्रुता=फूट रखने वाली सेना), इन दोनोंमें से कुपितमूल सेना को, साम आदिके द्वारा उसका क्रोध शान्त करके युद्ध करनेके लिये तैयार किया जा सकता है; भिन्नगर्भ सेना युद्धके लिये तैयार नहीं होसकती, क्योंकि उनकी आपसमेंही फूट पड़ी रहती है ॥ ११ ॥

अपसृतातिक्षिप्तयोरपसृतमेकराज्यातिक्रान्तममन्त्रव्यायामाभ्यां सात्रिमित्रापाश्रयं युध्येत नातिक्षिप्तमनेकराज्यातिक्रान्तं बह्वाबाधत्वात् ॥ १२ ॥

आपसृत (एकही राज्यमें अन्य सेनाके द्वारा कष्ट पाई हुई सेना) और अतिक्षिप्त (अनेक राज्योंमें अन्य सेनाके द्वारा कष्ट पाई हुई सेना), इन दोनों सेनाओंमेंसे, अपसृत सेना, एकही राज्यमें कष्ट उठानेके कारण, मन्त्र (शास्त्रोंमें बताये हुए विशेष उपाय) और विशेष शिक्षारूप व्यायाम (कवा-

यद) के द्वारा जंगल और मित्रका सहारा लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है। अतिक्षिप्त सेना ऐसी तैयारी नहीं करसकती, क्योंकि वह अनेक राज्योंमें बहुत कष्टोंका अनुभव किये हुए होती है ॥ १२ ॥

उपनिविष्टसमाप्तयोरुपनिविष्टं पृथग्यानस्थानमतिसन्धातारं युध्येत न समाप्तं परिणतैकस्थानयानम् ॥ १३ ॥

उपनिविष्ट (शत्रु-समीप रहने वाली सेना अर्थात् शत्रुसे सम्बन्ध न रखती हुई स्वतन्त्र रूपसे ठहरने तथा आक्रमण करने वाली सेना) और समाप्त (शत्रुके साथ २ ही ठहरने और आक्रमण करने वाली सेना), इन दोनों सेनाओंमेंसे उपनिविष्ट सेना, अपने साथ मुक़ाबला रखनेवाले शत्रुके साथ युद्ध करनेको तैयार होसकती है, क्योंकि भिन्न यान स्थान होनेके कारण, शत्रु उसका भेद नहीं पासकता; समाप्त सेना युद्ध नहीं करसकती , क्योंकि शत्रुके साथ समानही यान स्थान होनेके कारण, वह इसके भेदोंको जाने रहता है ॥ १३ ॥

उपरुद्धपरिक्षिप्तयोरुपरुद्धमन्यतो निष्क्रम्योपरोद्धारं प्रतियुध्येत न परिक्षिप्तं सर्वतः प्रतिरुद्धम् ॥ १४ ॥

उपरुद्ध (एक ओरसे घिरी हुई सेना) और परिक्षिप्त (चारों ओरसे घिरी हुई सेना), इन दोनों सेनाओंमेंसे उपरुद्ध सेना, एक ओरसे निकलकर घेरा डालने वालेका मुक़ाबला करसकती है; परिक्षिप्त सेना ऐसा नहीं करसकती, क्योंकि वह चारों ओरसे घिरी हुई होती है ॥ १४ ॥

छिन्नधान्यपुरुषवीवधयोः छिन्नधान्यमन्यतो धान्यमानीय जङ्गमस्थावराहारं वा युध्येत न छिन्नपुरुषवीवधमनभिसारम् ॥ १५ ॥

छिन्नधान्य (अपने देशसे धान्य आदि मंगानेके लिये जिसका सम्बन्ध टूट गया हो) और छिन्नपुरुषवीवध (जिस सेनाका अपने देशसे सैनिक पुरुष तथा भार ढोनेके साधन बहंगी आदि लाने लेजानेका सम्बन्ध टूट गया हो), इन दोनों सेनाओंमेंसे छिन्नधान्य किसी दूसरे स्थानसे धान्य आदि आहार मंगाकर अथवा जंगम मृग आदि प्राणिओंका मांस खा कर या स्थावर वृक्ष आदिके फल खाकर अपना निर्वाह करती हुई, शत्रुके साथ युद्ध करसकती है। छिन्नपुरुषवीवध सेना ऐसा नहीं करसकती; क्योंकि वह सबतरहसे असहाय होती है। उसको किसी वस्तुकी भी सहायता नहीं पहुंचती ॥ १५ ॥

स्वविक्षिप्तमित्रविक्षिप्तयोः स्वविक्षिप्तं स्वभूमौ विक्षिप्तं सैन्य-

मापदि शक्यमवस्रावयितुं न मित्रविक्षिप्तं विप्रकृष्टदेशकालत्वात् ॥ १६ ॥

स्वविक्षिप्त (अपनेही देशमें किसी कार्यके लिये इधर उधर भेजी हुई सेना) और मित्रविक्षिप्त (मित्रके कार्यके लिये उसके देशमें भेजी हुई सेना), इन दोनों सेनाओंमेंसे, स्वविक्षिप्त सेना, अपनेही देशमें फैली हुई होनेके कारण आपत्तिके समयमें आसानीसेही इकट्ठी कीजासकती है; मित्रविक्षिप्त सेना दूर देशमें रहनेके कारण ठीक समयपर नहीं बुलाई जासकती । क्योंकि दूरसे आनेमें विलम्बकी सम्भावना रहती है ॥ १६ ॥

दूष्ययुक्तदुष्टपार्ष्णिग्राहयोर्दूष्ययुक्तमाप्तपुरुषाधिष्ठितमसंहतं युध्येत न दुष्टपार्ष्णिग्राहं पृष्ठाभिघातत्रस्तम् ॥ १७ ॥

दूष्ययुक्त (राजाको कष्ट पहुंचानेवाले मुख्यकर्मचारियोंको दूष्य कहते हैं, उनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली सेना) और दुष्टपार्ष्णिग्राह (जिसका पार्ष्णिग्राह, पीछेसे आघात करनेके लिये दोष ढूंढनेमेंही लगा रहता है, ऐसी सेना), इन दोनोंमेंसे दूष्ययुक्त सेना, विजिगीषुकी ओरसे युद्ध करनेके लिये तैयार होसकती है, क्योंकि विजिगीषु अपने विश्वस्त पुरुषोंको दूष्योंकी सेवामें नियुक्त करके उनसे सेनाके सम्बन्धको विच्छिन्न करसकता है । किन्तु दुष्टपार्ष्णिग्राह सेना ऐसा नहीं करसकती, क्योंकि उसे पीछेसे आघात होनेका सदाही डर बना रहता है ॥ १७ ॥

शून्यमूलास्वामिसंहतयोः शून्यमूलं कृतपौरजानपदारक्षं सर्वसंदोहेन युध्येत नास्वामिसंहतं राजसेनापतिहीनम् ॥ १८ ॥

शून्यमूल (सम्पूर्ण सैन्यके बाहर चलेजानेपर मूलस्थान [राजधानी] में रही हुई अत्यल्प सेना) और अस्वामिसंहत (राजा तथा सेनापतिसे रहित सेना), इन दोनोंमेंसे शून्यमूल सेना, नगर निवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंसे सहायता दियेजानेपर अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे युद्ध करसकती है। अस्वामिसंहत सेना ऐसा नहीं करसकती, क्योंकि वह राजा या सेनापतिरूप अपने नेतासे सर्वथा रहित होती है ॥ १८ ॥

भिन्नकूटान्धयोर्भिन्नकूटमन्याधिष्ठितं युध्येत नान्धमदेशिकमिति ॥ १९ ॥

भिन्नकूट (शिखरको कूट कहते हैं, उसीके समान जो सब सेनाओंका अध्यक्ष हो उसका नाम भी कूट है, इस प्रकारके अध्यक्षसे रहित सेनाको

भिन्नकूट कहते हैं) और अन्ध (शत्रुके व्यवहारके सम्बन्धमें कुछभी जानकारी न रखने वाली सेना), इन दोनोंमें से भिन्नकूट सेना, दूसरे किसी अध्यक्ष का सहारा लेकर युद्धके लिये तैयार होसकती है। अन्ध सेना शत्रुके व्यवहार को समझाने वाले आदमीके न मिलनेसे ऐसा नहीं करसकती ॥ १९ ॥

दोषशुद्धिर्बलावापः सत्रस्थानातिसंहितम् ।
संधिश्चोत्तरपक्षस्य बलव्यसनसाधनम् ॥ २० ॥

इन सैनिक व्यसनोंके परिहारका उपाय यह समझना चाहियेः—अमानन विमानन आदि दोषोंका प्रायश्चित करना, दोष रहित सेनाको दूसरी सेनाके साथ ठहराना, जंगलमें सेनाकी स्थिति रखना, तथा कूट उपायोंसे शत्रुसेनाका भेद करना, अपनेसे बलवान पक्षके साथ सन्धि करना; ये बल-व्यसनों (सेना संबन्धी आपत्तियों) के हटानेके साधन हैं ॥ २० ॥

रक्षेत्स्वदण्डं व्यसने शत्रुभ्यो नित्यमुत्थितः ।
प्रहरेद्दण्डरन्ध्रेषु शत्रूणां नित्यमुत्थितः ॥ २१ ॥

सदा सजग रहता हुआ विजिगीषु, व्यसन के समयमें शत्रुओंसे अपनी सेनाकी अच्छी तरह रक्षा करे। और बड़ी चतुरतासे शत्रुओं की सेना संबन्धी निर्बलताओंपर सदा प्रहार करता रहे। यहांतक बलव्यसनवर्गका निरूपण किया गया ॥ २१ ॥

अभियातं स्वयं मित्रं संभूयान्यवशेन वा ।
परित्यक्तमशक्त्या वा लोभेन प्रणयेन वा ॥ २२ ॥

अब मित्रव्यसनवर्ग का निरूपण किया जायगाः—अपने प्रयोजनसे अथवा अपने किसी बन्धु आदिके प्रयोजनसे मिलकर शत्रुपर आक्रमण करनेवाले अपने मित्रको, जब विजिगीषु असमर्थ होनेके कारण, लोभ (शत्रुसे धन आदि लेने) के कारण, या स्नेह (शत्रुके साथ मित्रता होजाने) के कारण छोड़ देता है, अर्थात् ऐसे समयमें उसकी सहायता नहीं करता तो वह भिन्न हुआ २ मित्र फिर बड़ी कठिनतासे वशमें आता है। (इस श्लोकका अन्वय २७वें श्लोक के 'कृच्छ्रेण साध्यते' पदके साथ है, वहांतकके इसके आगेके श्लोकों का भी इसी तरह अन्वय समझना चाहिये) ॥ २२ ॥

विक्रीतमभियुञ्जाने संग्रामे वापवर्तिना ।
द्वैधीभावेन वा मित्रं यास्यता वान्यमन्यतः ॥ २३ ॥

युद्धके चलते हुए होनेपर ही, शत्रुसे धन आदि लेकर अपनी सहायताको पूरा न करके बीचमें ही विजिगीषुसे छोड़ा हुआ मित्र, अथवा द्वैधीभावसे अर्थात्

विजिगीषुके द्वारा अपने मित्रके शत्रुके साथ सन्धि करके अपने यातव्य पर आक्रमण करदेनेके कारण बेचा हुआ अर्थात् अपनेपनसे छोड़ा हुआ मित्र; अथवा 'तुम इधरको आक्रमण करो और मैं इधरको करूंगा' इस प्रकार एक दूसरे अपने मित्रके शत्रुके साथ सन्धि करके, किसी दूसरे अपनेही शत्रुपर आक्रमण करनेवाले विजिगीषुसे छोड़ा हुआ मित्र, फिर बड़ी कठिनतासे वशमें होता है ॥ २३ ॥

पृथग्वा सह याने वा विश्वासेनातिसंहितम् ।
भयावमानालस्यैर्वा व्यसनान्न प्रमोक्षितम् ॥ २४ ॥

पृथक् २ आक्रमण करने या साथ ही आक्रमण करनेपर, पहिले विश्वास दिलाकर, फिर छिपे तौरपर मित्रके शत्रुके साथ सन्धि करके विजिगीषुके द्वारा ठगाहुआ, अर्थात् धोखा दियाहुआ मित्र; अथवा मित्रके शत्रुके भयसे, या मित्रके विषयमें तिरस्कार बुद्धि होनेके कारण, या अपने ही आलस्यके कारण, आपत्तिसे न छुड़ाया हुआ मित्र, फिर कठिनतासे ही वशमें आता है ॥ २४ ॥

अवरुद्धं स्वभूमिभ्यः समीपाद्वा भयाद्गतम् ।
आच्छेदनाददानाद्वा दत्त्वा वाप्यवमानितम् ॥ २५ ॥

अपने (विजिगीषुके) देशमें होकर जानेसे रोका हुआ, अथवा अपने (विजिगीषुके) समीपसे ही भय (बध या बन्धन आदिके भय) के कारण गया हुआ मित्र; बलपूर्वक उसके द्रव्यका अपहरण करलेनेसे तिरस्कृत किया हुआ मित्र; देने योग्य वस्तुको न देनेके कारण, अथवा देकर भी फिर तिरस्कृत किया हुआ मित्र बड़ी कठिनतासे वशमें आता है ॥ २५ ॥

अत्याहारितमर्थं वा स्वयं परमुखेन वा ।
अतिभारे नियुक्तं वा भङ्क्त्वा परमवस्थितम् ॥ २६ ॥

अपने आपही (स्वयं विजिगीषुके द्वाराही) अथवा किसी दूसरेके द्वारा, सर्वथा धन अपहरण किया या कराया हुआ मित्र (तात्पर्य यह है, कि जिस मित्रके धनको विजिगीषु स्वयं अपहरण करले या किसीके द्वारा करवा देवे, ऐसा मित्र); अथवा विजिगीषुके शत्रुको जीतकर आया हुआ, तथा उसी समय किसी दूसरे दुस्साध्य कार्यपर लगाया हुआ मित्र, बिगड़ जानेपर बड़ी कठिनतासे वशमें आता है ॥ २६ ॥

उपेक्षितमशक्त्या वा प्रार्थयित्वा विरोधितम् ।
कृच्छ्रेण साध्यते मित्रं सिद्धं चाशु विरज्यति ॥ २७ ॥

सामर्थ्यहीन होनेके कारण उपेक्षा किया हुआ मित्र; अथवा पहिले एकवार मित्रताके लिये प्रार्थना करके फिर विरुद्ध किया हुआ मित्र; बड़ी कठिनतासे वशमें होता है। तात्पर्य यह है-उपर्युक्त रीतिसे विकारको प्राप्त हुए २ ये मित्र बड़ी कठिनतासे वशमें किये जासकते हैं, यदि किसी तरह इनमेंसे कोई फिर विजिगीषुके वशमें हो भी जाय अर्थात् विजिगीषुके अनुकूल बन भी जाय, तो वह शीघ्रही फिर अवसर पाकर विजिगीषुसे विरक्त होजाता है। यहांतक विकृतचित्त मित्रोंकी फिर दुस्साध्यताका निरूपण किया गया है ॥२७॥

कृतप्रयासं मान्यं वा मोहान्मित्रममानितम् ।
मानितं वा न सदृशं शक्तितो वा निवारितम् ॥ २८ ॥

अब इसके आगे उन मित्रोंका निरूपण किया जायगा, जो कि सरलतासेही फिर विजिगीषुके आनुकूल्यको स्वीकार करलेते हैं:—जिसने विजिगीषुके लिये संग्राम आदिमें अत्यन्त परिश्रम किया हो, इसीलिये पूजाके योग्य, भ्रमसे या प्रमादसे तिरस्कृत किया हुआ मित्र; अथवा परिश्रमके अनुकूल सत्कार न किया हुआ मित्र; अथवा विजिगीषुमें अनुराग होनेके कारण, विजिगीषुके शत्रुओंसे दुत्कारा हुआ मित्र;शीघ्रही फिर विजिगीषुके अनुकूल होजाता है॥२८॥

मित्रोपघातत्रस्तं वा शङ्कितं वारिसंहितात्।
दूष्यैर्वा भेदितं मित्रं साध्यं सिद्धं च तिष्ठति ॥ २९ ॥

विजिगीषुके द्वारा किसी दूसरे मित्रपर किये हुए आघातको देखकर डरा हुआ (अर्थात् आज विजिगीषुने अपने अमुक मित्रको धोखा दिया है, अवसर पाकर यह मुझे भी धोखा देसकता है, इस विचारसे डरा हुआ), अथवा शत्रुके साथ सन्धि करलेनेके कारण शङ्कितचित्त हुआ २ मित्र; अथवा दूष्य पुरुषोंके द्वारा भेदको प्राप्त कराया हुआ मित्र, शीघ्रही विजिगीषुके अनुकूल होजाता है। इसप्रकार ये छः तरहके मित्र, विकारको प्राप्त होकर भी फिर विजिगीषुके वशमें होजाते हैं, और उसकी अनुकूलताको फिर छोड़ते भी नहीं ॥ २९ ॥

तस्मान्नोत्पादयेदनान्दोषान्मित्रोपघातकान् ।
उत्पन्नान्वा प्रशमयेद्गुणैर्दोषोपघातिभिः ॥ ३० ॥

इसलिये विजिगीषुको चाहिये, कि वह मित्रोंके साथ भेद डालनेवाले इन दोषोंको कभी उत्पन्न न होने दे; यदि कोई दोष उत्पन्न हो भी जावें, तो उन्हें, दोषोंको नाश करनेवाले गुणोंके द्वारा तत्कालही शान्त करदे ॥३०॥

यतोनिमित्तं व्यसनं प्रकृतीनामवाप्नुयात् ।

प्रागेव प्रतिकुर्वीत तन्निमित्तमतन्द्रितः ॥ ३१ ॥

इति व्यसनाधिकारिके ऽष्टमे ऽधिकरणे बलव्यसनवर्गः, मित्रव्यसनवर्गः पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदित एकविंशतिशतो ऽध्यायः ॥ १२१ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य व्यसनाधिकारिके अष्टममधिकरणम् समाप्तम् ॥ ८ ॥

तथा जिन कारणोंसे, स्वामी अमात्य आदि प्रकृतियोंके सम्बन्धमें जो व्यसनप्राप्त होवे; आलस्यरहित रहते हुए विजिगीषुको चाहिये कि उस व्यसनके उत्पन्न होनेसे पहिलेही उसके कारणोंका प्रतीकार करदे। (इस श्लोक को मूल पुस्तकोंमें मित्रव्यसनवर्गका निरूपण आरम्भ होनेसे पहिलेही रक्खा गया है। परन्तु नयचन्द्रिका व्याख्यामें इसको सबसे अन्तिम श्लोक मानकर अधिकरणके अन्तमेंही इसकी व्याख्या कीगई है। उसहीके अनुसार हमने भी व्याख्यान किया है ॥ ३१ ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण समाप्त।
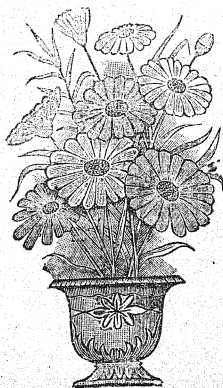
अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरण ।

पहिला अध्याय ।

१३५-१३६ प्रकरण ।

शक्ति, देश-कालके बलाबलका ज्ञान, और यात्रा-काल ।

उत्साह प्रभाव आदि शक्ति, सम विषम आदि देश और शीत उष्ण आदि समयकी अनुकूलताका अपनी सेनाके लिये होना बल, तथा शत्रुकी सेनाके लिये शक्ति आदिका अनुकूल न होना अबल कहाता है; प्रथम प्रकरणमें इन्हींका विचार किया जायगा। तदनन्तर यात्राके समयका निरूपण होगा ।

विजिगीषुरात्मनः परस्य च बलाबलं शक्तिदेशकालयात्राकालबलसमुत्थानकालपश्चात्कोपक्षयव्ययलाभापदां ज्ञात्वा विशिष्टबलो यायात् ॥ १ ॥ अन्यथासीत ॥ २ ॥

विजिगीषुको चाहिये, कि वह अपने और शत्रुके बलाबलको जानकर अर्थात् शक्ति, देश, काल, यात्रा-काल (सेनाके, किसी देशपर आक्रमण करनेका समय), बलसमुत्थानकाल (सेनाकी उन्नतिका समय), पश्चात्कोप (दूसरे देशपर आक्रमण करदेनेके अनन्तर, पीछेसे राजधानी आदिपर पार्ष्णिग्राह आदिके द्वारा आक्रमण किया जाना), क्षय (योग्य पुरुषोंका नाश होजाना), व्यय (धन आदिका नाश होजाना), लाभ (फलसिद्धि), और आपत्ति (बाह्य और आभ्यन्तर दोनों तरहकी विपत्ति=इसका १४३प्रकरणमें निरूपण किया जायगा), इनके सम्बन्धमें शत्रु और अपने बलाबलको जानकर, फिर शत्रुकी अपेक्षा अपनी बहुत अधिक सेना लेकरही उसपर आक्रमण करे ॥ १ ॥ यदि सेनाका अधिक प्रबंध न होसके,तो आक्रमण न करना चाहिये, प्रत्युत आसनका ही अवलम्ब करे; अर्थात् चुपचाप अपने घर बैठा रहे ॥ २ ॥

उत्साहप्रभावयोरुत्साहः श्रेयान् ॥ ३ ॥ स्वयं हि राजा शूरो बलवानरोगः कृतास्त्रो दण्डाद्वितीयो ऽपि शक्तः प्रभाववन्तं राजानं जेतुम्, अल्पो ऽपि चास्य दण्डस्तेजसा कृत्यकरो भवति ॥ ४ ॥ निरुत्साहस्तु प्रभाववान्राजा विक्रमाभिपन्नो नश्यतीत्याचार्याः ॥ ५ ॥

(शक्ति तीन प्रकारकी होती हैः—उत्साह शक्ति, प्रभाव शक्ति और मन्त्र शक्ति; अब इनके पारस्परिक गुरुलघुभावका निरूपण किया जाता हैः—) उत्साह शक्ति और प्रभाव शक्ति इन दोनोंमेंसे उत्साह शक्तिही श्रेष्ठ होती है ॥ ३ ॥ क्योंकि स्वयं शूर, बलवान्, नीरोग, शस्त्रास्त्र विद्याको जानने वाला, केवल अपनीही सेनाकी सहायता रखने वाला (अर्थात् मित्र आदिकी सहायता न होनेपर भी) शक्ति-शाली राजा अकेलाही प्रभाव शक्तिसे युक्त राजाको अच्छी तरह जीत सकता है। और थोड़ी भी इसकी सेना, इसके तेजसे हरतरहका कार्य करनेके लिये तैयार होजाती है ॥ ४ ॥ प्रभावशाली भी उत्साहहीन राजा तो पराक्रमके समय अवश्यही नष्ट होजाता है, अर्थात् पराक्रम करनेका अवसर आनेपर वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता, यह प्राचीन अनेक आचार्योंका मत है ॥ ५ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ६ ॥ प्रभाववानुत्साहवन्तं राजानं प्रभावेनातिसंधत्ते ॥ ७ ॥ तद्विशिष्टमन्यं राजानमावाह्य हृत्वा क्रीत्वा प्रवीरपुरुषान्प्रभूतप्रभावहयहस्तिरथोपकरणसंपन्नश्चास्य दण्डः सर्वत्राप्रतिहतश्चरति ॥ ८ ॥ उत्साहवतश्च प्रभाववन्तो जित्वा क्रीत्वा च स्त्रियो बालाः पङ्गवो ऽन्धाश्च पृथिवीं जिग्युरिति ॥ ९ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं मानता ॥६॥ वह कहता है कि प्रभावशाली राजा, उत्साही राजाको अपने प्रभावके द्वारा दबा लेता है ॥७॥ और उससेभी अधिक उत्साही किसी दूसरे राजाको अपने पक्षमें मिलाकर तथा प्रवीरपुरुषों (बहादुर आदमियों) को भत्ता और वेतन आदि देने अथवा अत्यधिक धन देनेसे अपने वशमें करके और भी अधिक प्रभाव और घोड़े हाथी तथा रथ आदि साधनोंसे युक्त हुई २ इसकी सेना, विना किसी रोक टोकके सब जगह विचरण करती है ॥ ८ ॥ तथा ऐतिह्यभी इस बातमें प्रमाण है, कि स्त्री बालक लंगड़े और अन्धे भी प्रभावशाली राजाओंने अपने प्रभावके कारण उत्साही राजाओंको जीतकर, तथा धन आदिके द्वारा वशमें करके, पृथिवीपर विजयलाभ किया था ॥ ९ ॥

प्रभावमन्त्रयोः प्रभावः श्रेयान् ॥ १० ॥ मन्त्रशक्तिसंपन्नो हि वन्ध्यबुद्धिरप्रभावो भवति ॥ ११ ॥ मन्त्रकर्म चास्य निश्चितमप्रभावो गर्भधान्यमवृष्टिरिवोपहन्तीत्याचार्याः ॥ १२ ॥

प्रभावशक्ति और मन्त्रशक्ति इन दोनोंमेंसे प्रभावशक्तिही अधिक श्रेष्ठ होती है ॥ १० ॥ क्योंकि मन्त्रशक्तिसे सम्पन्न भी राजा, यदि प्रभावशक्तिसे रहित हो, तो उसका मन्त्र कभी सफल नहीं होता; तात्पर्य यह है कि कोई भी प्रभावहीन राजा विचारपूर्वक कार्य नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ प्रभावशक्तिसे हीन राजाका विचारपूर्वक निश्चित किया हुआ भी मन्त्र कर्म (मन्त्र-रूप कार्य) इसीप्रकार नष्ट होजाता है, जैसे गर्भस्थ धान्य (अपनी उत्पत्तिमें वृष्टिकी अपेक्षा करने वाला धान्य) वृष्टिके न होनेसे नष्ट होजाता है। तात्पर्य यह है, कि प्रभाव-हीनता उसी तरह मन्त्रको नष्ट करदेती है, जैसे कि वृष्टिका न होना धान्यको। यह प्राचीन आचार्योंका मत है ॥ १२ ॥

नेति कौटल्यः ॥ १३ ॥ मन्त्रशक्तिः श्रेयसी ॥ १४ ॥ प्रज्ञाशास्त्रचक्षुर्हि राजाल्पेनापि प्रयत्नेन मन्त्रमाधातुं शक्तः परानुत्साहप्रभाववतश्च सामादिभिर्योगोपनिषद्भ्यां चातिसन्धातुम् ॥१५॥ एवमुत्साहप्रभावमन्त्रशक्तीनामुत्तरोत्तराधिको ऽतिसंधत्ते ॥ १६ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, इस सिद्धान्तको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ १३ ॥ वह कहता है कि प्रभावशक्तिकी अपेक्षा, मन्त्रशक्तिही अधिक श्रेष्ठ होती है ॥१४॥ क्योंकि बुद्धि तथा शास्त्ररूपी चक्षुओंसे युक्त राजा, थोड़ा भी प्रयत्न करके अपने मन्त्रका अच्छी तरह अनुष्ठान कर सकता है। और दूसरे अपने प्रतिद्वन्द्वी उत्साही तथा प्रभावशाली राजाओंको भी, साम आदि उपायोंके द्वारा, तीक्ष्ण रसद आदि गूढ पुरुषोंके द्वारा तथा औपनिषदिक प्रकरणमें कहे हुए विष या अग्नि आदिके प्रयोगोंके द्वारा दबा सकता है, अर्थात् उत्साह प्रभावशक्ति के थोड़े होने पर भी मन्त्रशक्ति के द्वारा उनको अपने वशमें कर सकता है ॥ १५ ॥ इस प्रकार उत्साहशक्ति प्रभावशक्ति और मन्त्रशक्तियोंमें से उत्तरोत्तर अधिक शक्ति से युक्त हुआ २ राजा, पूर्व पूर्व शक्ति से युक्त राजा को दबा सकता है। यहां तक शक्ति का निरूपण किया गया ॥ १६ ॥

देशः पृथिवी ॥ १७ ॥ तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजनसहस्रपरिमाणं तिर्यक्चक्रवर्तिक्षेत्रम् ॥ १८ ॥ तत्रारण्यो ग्राम्यः पार्वत औदको भौमः समो विषम इति विशेषाः ॥१९॥

अब इसके आगे देशका निरूपण किया जायगा । पृथिवीका ही नाम देश है ॥ १७ ॥ पृथिवीपर हिमालयसे दक्षिण समुद्र पर्यन्त अर्थात् उत्तर दक्षिणमें हिमालय और समुद्रके बीच का तथा एक हजार योजन तिरछा अर्थात् पूर्व पश्चिमकी ओर एक हजार योजन विस्तारवाला, पूर्व पश्चिम समुद्र की सीमासे युक्त देश चक्रवर्तिक्षेत्र कहाता है । अर्थात् इतने प्रदेश पर शासन करनेवाला राजा चक्रवर्ती होता है ॥ १८ ॥ उस चक्रवर्ती क्षेत्रमें जंगल, आबादी, पहाड़ी इलाका, जलभाग, स्थलप्राय, समतल तथा ऊबड़-खाबड़ ये विशेष भाग होते हैं ॥ १९ ॥

तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत ॥ २० ॥ यत्रात्मनः सैन्यव्यायामानां भूमिरभूमिः परस्य स उत्तमो देशः, विपरीतो ऽधमः, साधारणो मध्यमः ॥ २१ ॥

इन विशेष भूभागों पर, जिस प्रकार अपनी सेना की वृद्धि होसके, उस तरह कार्यों का प्रयोग करे अर्थात् उसी अवस्था में युद्ध आदि कार्यों को करे, जब कि अपना विजय और दूसरे का पराजय निश्चित हो ॥ २० ॥ जिस प्रदेश में अपनी सेना की क़वायद आदिके लिये अच्छी भूमि मिल सके, तथा शत्रु की सेना की क़वायदका कुछ भी सुभीता न हो, उसको उत्तम देश समझना चाहिये । जो इससे विपरीत हो (अर्थात् जिसमें अपनी सेनाकी क़वायदके लिये कुछ भी सुभीता न हो, और शत्रुकी सेना की क़वायदके लिये हर तरहका सुभीता हो) वह अधम, तथा जो अपने और शत्रुके लिये साधारण हो (अर्थात् जिसमें दोनोंके लिये क़वायद आदिका सुभीता होना न होना बराबर हो) वह मध्यम देश होता है । यहांतक देशका निरूपण कर दिया गया ॥ २१ ॥

कालः शीतोष्णवर्षात्मा ॥ २२ ॥ तस्य रात्रिरहः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति विशेषाः ॥ २३ ॥ तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत ॥ २४ ॥ यत्रात्मनः सैन्य-व्यायामानामृतुरनृतुः परस्य स उत्तमः कालो, विपरीतो ऽधमः साधारणो मध्यमः ॥ २५ ॥

अब काल का निरूपण किया जायगा। वह तीन भागोंमें विभक्त है— सरदी, गर्मी, और वर्षा ॥ २२ ॥ उस कालके निम्न लिखित विशेष भेद हैं:—रात, दिन, पक्ष (पाख=पन्द्रह पन्द्रह दिन का शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष) महीना, ऋतु, अयन (छः महीने का एक अयन होता है, एक वर्ष में दो

अयन होते हैं, उत्तरायण और दक्षिणायन), संवत्सर (साल), और युग ॥ २३ ॥ समय के इन विशेष भागों में, विजिगीषु अपनी सेना की वृद्धि करने वाले कार्यौंका अनुष्ठान करे, अर्थात् इस प्रकार के कार्यौंको करे, जिससे अपनीही सेना की वृद्धि हो सके ॥ २४ ॥ जो ऋतु आदि अपनी सेनाके व्यायामके लिये सर्वथा अनुकूल हो और शत्रुकी सेनाके लिये सर्वथा प्रतिकूल हो, वह ऋतु आदि काल उत्तमकाल समझना चाहिये । इससे विपरीतकाल अधम, और अपने तथा शत्रु के लिये साधारण काल मध्यमकाल कहाता है। यहांतक शक्ति देश तथा काल के अवान्तर भेद तथा उनके बलाबल का विचार किया गया ॥ २५ ॥

शक्तिदेशकालानां तु शक्तिः श्रेयसीत्याचार्याः ॥ २६ ॥ शक्तिमान्हि निम्नस्थलवतो देशस्य शीतोष्णवर्षवतश्च कालस्य शक्तः प्रतीकारे भवति ॥ २७ ॥

अब इसके आगे शक्ति देश और काल इन तीनों के परस्पर बलाबल का विचार किया जायगा । आचार्यों का मत है कि शक्ति, देश और काल इन तीनों में से शक्ति ही सब की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होती है ॥ २६ ॥ क्योंकि शक्ति से युक्त राजा, ऊबड़खाबड़ तथा पथरीले प्रतिकूल देश के और सरदी गर्मी तथा वर्षासे युक्त प्रतिकूल कालके प्रतीकार करनेमें अच्छी रतह समर्थ होताहै ॥ २७ ॥

देशः श्रेयानित्येके ॥ २८ ॥ स्थलगतो हि श्वा नक्रं विकर्षति निम्नगतो नक्रः श्वानमिति ॥ २९ ॥

किन्हीं और प्राचीन आचार्यों का मत है कि शक्ति देश और काल इन तीनोंमेंसे देश ही सबकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होता है ॥ २८ ॥ क्योंकि अपने अनुकूल स्थल देशमें खड़ा हुआ कुत्ता, जलचर नक्र (नाकू) को खींच लेता है तथा अपने अनुकूल निम्नस्थल (जलदेश) में खड़ा हुआ नक्र उस देशके ही प्रभावसे कुत्तेको खींच लेता है । तात्पर्य यह है कि अपने २ अनुकूल देशमें ही स्थित होकर प्रत्येक व्यक्ति अपने विरोधीको नीचा दिखा सकता है इस लिये शक्ति आदि तीनोंमेंसे देशको ही प्रधान समझना चाहिये ॥ २९ ॥

कालः श्रेयानित्येके ॥ ३० ॥ दिवा काकः कौशिकं हन्ति रात्रौ कौशिकः काकमिति ॥ ३१ ॥

इसके अतिरिक्त किन्हीं आचार्योंका यहभी मत है, कि कालको ही अन्य सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ ३० ॥ क्योंकि कालके ही प्रभाव-

से दिनमें कौआ उल्लूको मार डालता है, और रात्रिमें उल्लू कौएको मार डालता है। तात्पर्य यह है, कि जिसके अनुकूल जो काल होता है, वह उसके भरोसेपरही अपने बलवान् विरोधीको भी नष्ट कर देता है। इस लिये काल कोही सबकी अपेक्षा प्रधान समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ३२ ॥ परस्परसाधका हि शक्तिदेशकालाः ॥ ३३ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्य, पृथक् २ शक्ति आदिको प्रधान मानने वाले इन आचार्योंके मतको युक्तिसंगत नहीं समझता ॥ ३२ ॥ क्योंकि वह कहता है, कि शक्ति देश और काल ये तीनोंही परस्पर एक दूसरेके साधक होते हैं। इनमेंसे किसी एकको प्रधान और दूसरेको अप्रधान न समझना चाहिये, प्रत्युत तीनोंही एक दूसरेकी अपेक्षा करके कार्यको सिद्ध करने वाले होते हैं, इस लिये सबके ऊपर समानही प्रधानता समझनी चाहिये। यहां तक शक्ति देश और कालके बलाबलका विचार किया गया ॥ ३३ ॥

तैरभ्युच्चितस्तृतीयं चतुर्थं वा दण्डस्यांशमूले पार्ष्ण्यां प्रत्यन्ताटवीषु च रक्षा विधाय कार्यसाधनसहं कोशदण्डं चादाय क्षीणपुराणभक्तमगृहीतनवभक्तमसंस्कृतदुर्गमामित्रं वार्षिकं चास्य सस्यं, हैमनं च मुष्टिमुपहन्तुं मार्गशीर्षीं यात्रां यायात् ॥३४॥

अब इसके आगे यात्राकालका निरूपण किया जायगा; शत्रुको लक्ष्य करके विजिगीषुके द्वारा किये गये आक्रमणका नाम 'यात्रा' है; उसके लिये समुचित कालोंका कथन किया जायगाः—अपने अनुकूल शक्ति देश और कालसे युक्त हुआ २ अर्थात् शक्ति आदि के द्वारा शत्रुकी अपेक्षा अधिक अतिशय को प्राप्त हुआ २ विजिगीषु, आवश्यकतानुसार सेनाके तिहाई अथवा चौथाई हिस्सेको मूल (राजधानी), पार्ष्णि (पृष्ठभाग), और सरहद्दी इलाकोंके जंगलोंमें रक्षाके लिये स्थापित करके, कार्यको सिद्ध करनेमें समर्थ अर्थात् कार्यको पूरा करनेमें उपयोगी कोश (खज़ाना) और सेनाको लेकर, शत्रुको नष्ट करनेके लिये मार्गशीर्ष (मंगसिर=अगहन) महीनेमें शत्रुकी ओर आक्रमण करे। इस समयमें शत्रु पर आक्रमण करनेसे विजिगीषुको बड़ा लाभ रहता है, क्योंकि इस ऋतुमें शत्रुका पुराना संगृहीत किया हुआ अन्न समाप्त हो चुकता है, नई फ़सलके अन्नका अभी तक संग्रह नहीं होता, और वर्षाके अनन्तर किलोंकी मरम्मतभी नहीं हो पाती। तथा वर्षा ऋतुके उत्पन्न हुए २ धान्यको, और आगे हेमन्त ऋतुमें उत्पन्न होने वाली फ़सलको भी नष्ट करनेके लिये यह यात्रा उपयोगी होती है। यह यात्राका पहिला समय है ॥ ३४ ॥

हैमनं चास्य सस्यं वासन्तिकं च मुष्टिमुपहन्तुं चैत्रीं यात्रां यायात् ॥ ३५ ॥ क्षीणतृणकाष्ठोदकमसंस्कृतदुर्गमामित्रं वासन्तिकं चास्य सस्यं वार्षिकीं वा मुष्टिमुपहन्तुं ज्येष्ठामूलीयां यात्रां यायात् ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार, हेमन्तऋतुमें उत्पन्न हुए २ धान्योंको, तथा वसन्तऋतुमें होनेवाली फसलको नष्ट करनेके लिये चैत्र मासमें शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये। यह दूसरा यात्राकाल समझना चाहिये ॥ ३५ ॥ इसी तरह, वसन्त ऋतुमें तैयार किये हुए धान्योंको, तथा आगे वर्षाऋतुमें उपजनेवाली फसल को नष्ट करनेके लिये ज्येष्ठ (जेठके) महीनेमें यात्रा करे। क्योंकि इस ऋतुमें शत्रुके तृण (घास फूंस आदि), काष्ठ (लकड़ी, सोख्ता आदि), तथा जल आदि पदार्थ क्षीण अर्थात् नष्ट या कम होजाते हैं, और इसीलिये वह अपने दुर्ग आदि आदिकी मरम्मत भी नहीं करा सकता। ये तीनों यात्राकाल शत्रुको हानि पहुंचानेके लिये बहुत अच्छे होते हैं। तात्पर्य यह है कि इन यात्राकालोंमें शत्रुपर आक्रमण करके, विजिगीषु शीघ्रही उसको अपने अधीन कर सकता है ॥ ३६ ॥

अत्युष्णमल्पयवसेन्धनोदकं वा देशं हेमन्ते यायात् ॥३७॥ तुषारदुर्दिनमगाधनिम्नप्रायं गहनतृणवृक्षं वा देशं ग्रीष्मे यायात् ॥३८॥ स्वसैन्यव्यायामयोग्यं परस्यायोग्यं वर्षति यायात् ॥३९॥

अब देशोंके अनुसार यात्राकालका निरूपण किया जायगा;—अत्यन्त गरम और थोड़ेही गौत (पशुओंकी खाद्य सामग्रीको गौत कहते हैं, उसके लिये यहां 'यवस' शब्द है), ईंधन तथा जल वाले देशको हेमन्त ऋतुमें जावे; अर्थात् ऐसे देश पर हेमन्त ऋतुमें आक्रमण करना सुखप्रद होता है ॥ ३७ ॥ जिस देशमें लगातार बरफ़ या बारिश पड़ती हो, बड़े २ गहरे तालाब हों, बड़े घने जंगल या घासके मैदान हों; ऐसे देशको ग्रीष्म ऋतुमें जावे। गरमियोंमें आवश्यक सब चीजोंका सुभीता होनेके कारण ऐसे देशों पर गरमी में ही आक्रमण करना सुखकर होता है ॥ ३८॥ अपनी सेनाके लिये क़वायद आदि करनेके योग्य, तथा शत्रुकी सेनाके लिये क़वायद आदि करनेके सर्वथा अयोग्य देश पर, वर्षा ऋतुमें आक्रमण करे। अर्थात् वर्षा ऋतुमें ऐसे देश पर आक्रमण करे, जहां अपनी सेनाके लिये तो क़वायद आदि का सुभीता हो, परन्तु शत्रुकी सेनाके लिये क़वायद आदिका किसी तरहका भी सुभीता न हो ॥ ३९ ॥

मार्गशीर्षी तैषीं चान्तरेण दीर्घकालां यात्रां यायात् ॥४०॥ चैत्रीं वैशाखीं चान्तरेण मध्यमकालां,ज्येष्ठामूलीयामाषाढीं चान्तरेण ह्रस्वकालामुपोषिष्यन् ॥ ४१ ॥

मार्गशीर्ष और पौष इन दोनों महीनोंके बीचमें, दीर्घकालकी अपेक्षा करने वाली यात्राको करे। तात्पर्य यह है, कि जब किसी दूर देश पर आक्रमण करना हो, जहां कि निश्चित रूपसे अधिक समय लग जानेकी सम्भावना है, तो मार्गशीर्ष यात्राको ही करे, अर्थात् मार्गशीर्षमें ही आक्रमण करे. क्योंकि उस समयसे, दूरकी यात्रामें विघ्न करने वाली वर्षा ऋतु बहुत दूर रहती है ॥ ४० ॥ इसी प्रकार चैत्र और वैशाख इन दो महीनोंमें, मध्यमकाल यात्राको करे; अर्थात् जिस आक्रमणके लिये न बहुत अधिक न बहुत न्यून समयकी आवश्यकता हो, वह चैत्र वैशाखके महीनेमें करना चाहिये । और जिस आक्रमणके लिये थोड़े ही समयकी अपेक्षा हो, वह जेठ तथा असाढ़ इन दो महीनों के बीचमें करना चाहिये। क्योंकि जब शत्रुका देशके समीप जाकर केवल आग लगाना,या इसी प्रकारका अन्य उपद्रवही करना हो,जिसके लियेकि बहुत थोड़े समयकी अपेक्षा है; तो इस ऋतुमें जाना अच्छा होता है । क्योंकि युद्ध आदिके लिये तो अधिक समयकी आवश्यता होती है ॥ ४१ ॥

व्यसने चतुर्थीम् ॥४२॥ व्यसनाभियानं विगृह्ययाने व्याख्यातम् ॥ ४३ ॥

यहांतक मार्गशीर्षी आदि यात्राओंका निरूपण करके, अब शत्रुके ऊपर आपत्तिके समयमें,की जानेवाली चौथी यात्राका निरूपण कियाजायगा:—शत्रु पर आपत्ति आनेके समयमें, मार्गशीर्ष आदि काल नियम की कुछ भी अपेक्षा न करने वाली चौथी यात्राका अवलम्ब करना चाहिये । अर्थात् जब कभी भी शत्रुपर व्यसन आवे, उसी समयमें उसपर आक्रमण करदेना चतुर्थी यात्रा कहाती है ॥४२॥ शत्रुपर व्यसन आनेपर उसकी ओर यात्रा करनेका विगृह्ययान प्रकरणमें निरूपण करदिया गया है। (देखो अधि ७, अध्या० ४) ॥ ४३ ॥

प्रायशश्चाचार्याः परव्यसने यातव्यमित्युपदिशन्ति॥ ४४ ॥ शक्त्युदये यातव्यमनैकान्तिकत्वाद्व्यसनानामिति कौटल्यः ॥४५॥

प्रायः प्राचीन आचार्यही यह उपदेश करते हैं, कि शत्रुपर आपत्ति आनेपरही आक्रमण करना चाहिये ॥ ४४ ॥ कौटल्य आचार्यका तो अपना यह सिद्धांत है, कि विजिगीषु की शक्तिका अभ्युदय होनेपरही शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये । अर्थात् शत्रुकी अपेक्षा विजिगीषु जब अधिक शक्तिसम्पन्न

हो तभी उसपर आक्रमण करदेना चाहिये; क्योंकि अपनी शक्तिका अधिक होना अवश्यही कार्य को सिद्ध करने वाला होता है । शत्रुकी आपत्तिका कोई ठिकाना नहीं, यदि शत्रुपर आपत्ति आई हुई भी हो, फिर भी विजिगीषुकी शक्ति बढी हुई न होनेके कारण यह निश्चित नहीं होसकता कि विजिगीषुको विजय लाभ हो ही जावेगा । इसलिये आक्रमण करनेके सम्बन्धमें शत्रुके व्यसनकी अपेक्षा न करके विजिगीषुको अपनी शक्तिके अभ्युदयकीही अधिक अपेक्षा करनी चाहिये ॥ ४५ ॥

यदा वा प्रयातः कर्शयितुमुच्छेत्तुं वा शक्नुयादमित्रं तदा यायात् ॥ ४६ ॥

अथवा जिस किसी समयमें भी आक्रमण करने पर विजिगीषु अपने शत्रुको निर्बल बनासके, या उसका उच्छेद करसके, उसी समय उसपर आक्रमण करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि जब भी विजिगीषु अपने आप को इतना शक्तिसम्पन्न समझे, कि वह शत्रुको दबा या नष्ट कर सके, तभी उसपर आक्रमण करदे, शत्रुके व्यसन और अपने अभ्युदयकी भी विशेष अपेक्षा न करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

अत्युष्णोपक्षीणे काले ऽहस्तिबलप्रायो यायात् ॥ ४७ ॥ हस्तिनो ह्यन्तःस्वेदाः कुष्ठिनो भवन्ति ॥ ४८ ॥ अनवगाहमानास्तोयमपिबन्तश्चान्तरवक्षाराच्चान्धीभवन्ति ॥ ४९ ॥ तस्मात्प्रभूतोदके देशे वर्षति च हस्तिबलप्रायो यायात् ॥ ५० ॥

अब सेनाके अनुसार काल नियमका कथन कियाजायगाः—अत्यधिक उष्णतायुक्त समय में हाथियोंकी सेनाके अतिरिक्त अर्थात् हाथियोंकी सेनाको छोड़कर ऊंट आदिकी सेनाको साथ लेकर ही आक्रमण करना चाहिये ॥ ४७ ॥ क्योंकि हाथी, बाहर न निकलनेके कारण भीतर ही स्थित हुए २ पसीनेके जलोंसे कोढी होजाते हैं, अर्थात् अत्यधिक उष्ण देशमें हाथीकी खाल दूषित हो जाती है, और कुछ रोग सा होजाता है ॥ ४८ ॥ तथा पानीमें न नहानेके कारण और अच्छी तरह जल न पीनेके कारण, अन्दरका दाह अधिक बढ़ जानेसे हाथी अन्धे भी होजाते हैं ॥ ४९ ॥ इसलिये जिस देशमें जल बहुत अधिक हो, और वर्षा ऋतुमें ही, हाथियोंकी सेनाको लेकर आक्रमण करना चाहिये ॥ ५० ॥

विपर्यये खरोष्ट्राश्वबलप्रायः ॥ ५१ ॥ देशमल्पवर्षपङ्कं वर्षति मरुप्रायं चतुरङ्गबलो यायात् ॥ ५२ ॥ समविषमनिम्न

स्थलह्रस्वदीर्घवशेन वाध्वनो यात्रां विभजेत् ॥ ५३ ॥

जहां ऐसा न हो, अर्थात् जलका स्थायी प्रबन्ध भी नहो, और वर्षा ऋतु भी नहो, ऐसे देश तथा समयमें गधे ऊंट तथा घोडोंकी सेनाको लेकर ही आक्रमण करना चाहिये । ऐसी अवस्थामें हाथियोंकी सेनाको कभी न लेजावे ॥ ५१ ॥ जिस देशमें वर्षाके होनेपर भी कीचड़ थोड़ी ही होती हो, ऐसे मरुप्राय प्रदेशमें (रेगिस्तान आदिमें) वर्षा ऋतुमें चतुरंग सेना (हाथी, घोड़े, रथ और पदाति) को लेकर भी आक्रमण किया जासकता है ॥ ५२ ॥ अथवा मार्गके सम विषम निम्न स्थल ह्रस्व तथा दीर्घ होनेके कारण भी यात्रा को विभक्त किया जासकता है । (सम=समतल, एकसी जमीन जो ऊंची नीची नहो, विषम=ऊंची नीची, निम्न=जलप्राय, स्थल=स्थलप्राय, ह्रस्व=थोड़े ही समयमें ते किया जाने वाला, तथा दीर्घ=बहुत समयमें ते किया जाने वाला मार्ग) ॥ ५३ ॥

सर्वा वा ह्रस्वकालाः स्युर्यातव्याः कार्यलाघवात् ।
दीर्घाः कार्यगुरुत्वाद्वा वर्षावासः परत्र च ॥ ५४ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानं यात्राकालाः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितो द्वाविंशशततो ऽध्यायः ॥ १२२ ॥

सबही यात्राएं कार्यके थोड़ा होनेके कारण ह्रस्वकाल होती हैं । अर्थात् कार्य थोड़ा होनेपर, उनके लिये किये जाने वाले आक्रमण थोड़ाही समय लेते हैं । इसीप्रकार जो कार्य बड़े होते हैं, उनके लिये कीजाने वाली यात्रामें बहुत समय लगता है । और कभी २ कार्याधिक्यके कारणही वर्षा ऋतुमें भी (जब कि अपनेही देशमें वास करना चाहिये)दूसरे देशमें निवास करना पड़ता है । इसलिये कार्योंकी गुरुता लघुताके अनुसारही यात्राओंका ह्रस्वकाल तथा दीर्घकाल समझना चाहिये ॥ ५४ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय ।

१३७-१३९ प्रकरण ।

सेनाओंके तैयार होनेका समय, सन्नाहगुण और प्रतिबलकर्म ।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें सेनाओंके तैयार होने या उनको उचित कार्योंपर लगानेके समयका निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें सेनाओंके उद्योगके गुणोंका, तथा तीसरे प्रकरणमें शत्रुकी सेनाके अनुरूपही शक्ति आदिके द्वारा अपनी सेनाको भी बनानेके उपायोंका निरूपण किया जायगा ।

मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीबलानां समुद्दानकालाः ॥१॥

मौलबल (मूलस्थान अर्थात् राजधानीकी रक्षा करने वाली सेना), भृतकबल (नौकरी देकर बनाई हुई सेना), श्रेणीबल (जनपदमें अपना २ काम करने वाले शस्त्रास्त्र विद्यामें निपुण पुरुषोंकी सेना), मित्रबल (मित्रकी सेना), अमित्रबल (शत्रुकी सेना), और अटवीबल (आटविक पुरुषोंकी सेना), इनके युद्धादि कार्योंमें जानेके लिये तैयार होनेके समयका निरूपण किया जायगा । तात्पर्य यह है, कि इन भिन्न २ सेनाओंको किस २ अवसरपर युद्धके लिये तैयार करना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगा ॥ १ ॥

मूलरक्षणादतिरिक्तं मौलबलम् ॥ २ ॥ अत्यावापयुक्ता वा मौला मूले विकुर्वीरन्निति ॥ ३ ॥ बहुलानुरक्तमौलबलः सारबलो वा प्रतियोद्धा व्यायामेन योद्धव्यमिति ॥ ४ ॥

सबसे पहिले मौलबलके तैयार होनेकेही कारणोंको बताया जाता है:— मूलस्थानकी रक्षा करनेके लिये जितनी सेना पर्याप्त है, उससे अधिक मौल सेना हो, तो उसे युद्धमें लेजाना चाहिये ॥ २ ॥ अथवा मौलबल इस समय अत्यन्त द्रोह करनेमें लगा हुआ होनेके कारण, हमारे चले जानेपर मूलस्थान में अवश्यही हमारे विरुद्ध आन्दोलन करेगा; ऐसी अवस्थामें भी मौलबलको अपने साथही युद्ध आदि कार्योंपर लेजाना चाहिये ॥ ३ ॥ अथवा अपना मुकाबला करनेवाला शत्रु, उसमें(शत्रुमें)अत्यन्त अनुराग रखनेवाले मौलबलको लेकर या शक्तिशाली दूसरे सैन्यको लेकर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये आया है, इसलिये उसके साथ बहुत प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना चाहिये;ऐसी अवस्थामें भी विजिगीषु अपने मौलबलको लेकरही उसके साथ मुकाबला करे ॥ ४ ॥

प्रकृष्टे ऽध्वनि काले वा क्षयव्ययसहत्वान्मौलानामिति ॥ ५ ॥ बहुलानुरक्तसंपाते च यातव्यस्योपजापभयादन्यसैन्यानां भृतानामविश्वासे ॥ ६ ॥ बलक्षये वा सर्वसैन्यानामिति मौलबलकालः ॥ ७ ॥

बहुत लम्बा रास्ता तै करनेके बाद, या बहुत समयमें शत्रुके साथ युद्ध करनेकी तैयारी होनेपर क्षय (मनुष्योंका नाश) और व्यय (धनका नाश) अवश्यम्भावी है; मौलबलही उसको सहन कर सकता है, इस कारणसे भी मौलबलको युद्धपर लेजाना चाहिये ॥ ५ ॥ अपने स्वामीमें अत्यन्त अनुराग रखने वाले शत्रुके दूत, यहां आकर अवश्यही मेरी सेनाओंमें भेद डालनेका यत्न करेंगे,इस प्रकार शत्रुके द्वारा भेद डालेजानेके भयसे, और मौल सेनाके अतिरिक्त अन्य भृत आदि सेनाओंपर पूरा विश्वास न होनेके कारण, ऐसे अवसरपर मौलबकोही युद्धके लिये लेजाना चाहिये; क्योंकि मौलबल अत्यन्त विश्वस्त होता है, उसमें भेद नहीं डाला जासकता ॥ ६ ॥ अथवा अन्य सब सेनाओंका क्षय होजानेपर मौलबलको युद्धके लिये लेजावे । तात्पर्य यह है, कि जब अन्य सेनाओंके प्रधान पुरुषोंका नाश होजाय, और विजिगीषुको यह डर हो, कि अब यह सेना कहीं खेत छोड़कर भाग न खड़ी हो, उस समय मौलबलको बुलाकर युद्धके लिये तैयार करदे। ये सब मौलबलके युद्धादि कार्योंपर नियुक्त होनेके अवसर समझने चाहियें ॥ ७ ॥

प्रभूतं मे भृतबलमल्पं च मौलबलमिति ॥ ८ ॥ परस्याल्पं विरक्तं वा मौलबलं फल्गुप्रायमसारं वा भृतसैन्यमिति ॥ ९ ॥ मन्त्रेण योद्धव्यमल्पव्यायामेनेति ॥ १० ॥

अब भृतबलके उन अवसर या कारणोंका निरूपण किया जायगाः— मेरे (विजिगीषुके) पास भृतबल बहुत अधिक है, और मौलबल थोड़ा है, ऐसे अवसर पर भृतबलको ही युद्धपर लेजाना चाहिये ॥ ८ ॥ शत्रुका मौलबल थोड़ा है, तथा उसमें अनुराग भी नहीं रखता, इसलिये मेरा भृतबल ही उसके मुकाबलेमें कार्य सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है; इस कारणसे भी भृतबल को ही युद्धके लिये लेजावे । अथवा शत्रुका भृतसैन्य शक्तिहीन तथा न होनेके बराबर है, अर्थात् बहुत थोड़ा है; तब भी विजिगीषु अपने भृतबल को ही युद्धके लिये तैयार करे ॥ ९ ॥ अथवा मन्त्रसे ही युद्ध करना पड़ेगा, अर्थात् इस समयमें शत्रुके साथ तुष्णींयुद्ध ही करना पड़ेगा, उसमें थोड़े ही श्रमसे कार्य हो सकता है, इस कारण से भी भृतबलकोही युद्धके लिये ले जावे ॥ १० ॥

ह्रस्वो देशः कालो वा तनुक्षयव्यय इति ॥ ११ ॥ अल्प-सम्पातं शान्तोपजापं विश्वस्तं वा मे सैन्यमिति ॥ १२ ॥ पर-स्याल्पः प्रसारो हन्तव्य इति भृतबलकालः ॥ १३ ॥

अथवा युद्धके लिये गन्तव्य देश बहुत दूर नहीं है, समय भी थोड़ा लगना है, तथा क्षय और व्यय भी बहुत थोड़ा ही होगा; ऐसा निमित्त होने परभी भृतबलको ही युद्धके लिये लेजावे ॥ ११ ॥ शत्रुके दूत मेरी सेनामें बहुत कम आसकते हैं, तथा वह भेदभी नहीं डाल सकते, यदि थोड़ा बहुत डाल भी दें, तो उसको अच्छी तरह शान्त भी किया जासकता है, क्योंकि यह मेरी सेना बहुत विश्वस्त है, ऐसा निमित होने परभी अपने भृतबलको ही युद्धके लिये लेजावे ॥ १२ ॥ शत्रुके थोड़े ही फैलाव का विघात करना है, अर्थात् तृणकाष्ठ आदि साधारण वस्तुओं को ही उसके पासतक न पहुंचने देनेके लिये यत्न करना है, और उसके लिये मेरा भृतबल ही पर्याप्त है; ऐसा अवसर होने परभी भृतबलको ही युद्ध करनेके लिये लेजावे । यहां तक भृत-बलके तैयार होनेके अवसरोंका निरूपण किया गया ॥ १३ ॥

प्रभूतं मे श्रेणीबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमिति ॥१४॥ ह्रस्वः प्रवासः श्रेणीबलप्रायः प्रतियोद्धा मन्त्रव्यायामाभ्यां प्रति-योद्धुकामो दण्डबलव्यवहार इति श्रेणीबलकालः ॥ १५ ॥

अब श्रेणी बलके समयका निरूपण किया जाता है:—मेरे (=विजि-गीषुके) पास श्रेणीबल बहुत अधिक है, उसको मूलस्थानकी रक्षामें भी लगा सकता हूं, और शत्रुके साथ युद्ध करनेके समयमें भी उसे साथ लेजा सकता हूं ॥ १४ ॥ थोड़ी दूरका सफ़र है, मुक़ाबलेमें लड़ने वाला शत्रु भी प्रायः श्रेणीबलको ही लेकर युद्ध करनेको तैयार है, अथवा शत्रु मन्त्र (तूष्णीयुद्ध) या व्यायाम (प्रकाशयुद्ध) के द्वारा मुक़ाबला करना चाहता है, अथवा जब शत्रु दण्डसे डरा हुआ होनेके कारण अपनी सेनाको किसी दूसरे राजाके सुपर्द करके युद्ध व्यापारको चलाने वाला हो; विजिगीषुको चाहिये, कि वह इन सब अवसरोंपर अपने श्रेणीबलका उपयोग करे ॥ १५ ॥

प्रभूतं मे मित्रबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमल्पः प्रवा-सो मन्त्रयुद्धाच्च भूयो व्यायामयुद्धमिति ॥ १६ ॥मित्रबलेन वा पूर्वमटवीनगरस्थानमासारं वा योधयित्वा पश्चात्स्वबलेन योध-यिष्यामि ॥ १७ ॥

अब मित्र सेनाके उपयोगका समय बताते हैं:—मेरे (=विजिगीषुके) पास मित्रसेना बहुत है, मैं उसको मूलस्थानकी रक्षामें भी लगा सकता हूं, और शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये भी लेजा सकता हूं। सफ़र भी बहुत थोड़ा है, मन्त्रयुद्ध (तूष्णीयुद्ध) की अपेक्षा वहां अधिकतर व्यायामयुद्ध (प्रकाशयुद्ध) ही होगा, इसलिये अधिक क्षय व्ययकी भी सम्भावना नहीं है ॥ १६ ॥ अथवा शत्रुकी आटविक सेना या मित्रसेनाको, जो कि उसके नगरमें आकर ठहरी हुई है, पहिले अपनी मित्रसेनाके साथ लड़ाकर, फिर अपनी सेनाके साथ लड़ाऊंगा ॥ १७ ॥

मित्रसाधारणं वा मे कार्यम्, मित्रायत्ता वा मे कार्यसिद्धिः ॥ १८ ॥ आसन्नमनुग्राह्यं वा मे मित्रमत्यावापं वास्य साधयिष्यामीति मित्रबलकालः ॥ १९ ॥

अथवा इस युद्धादि कार्यसे जितना मेरा प्रयोजन है, उतनाही मेरे मित्रका भी है; अथवा इस कार्यकी सिद्धि मित्रके ही अधीन है ॥ १८ ॥ अथवा मेरा मित्र मेरे अत्यन्त समीप या मेरा अन्तरंग है, मुझे अवश्यही इसका कुछ उपकार करना चाहिये। अथवा अपने मित्रके दूष्य बलको (मित्रसे द्रोह रखने वाली सेनाको) शत्रुके साथ भिड़ाकर मरवा डालूंगा, इत्यादि निमित्तोंसे मित्रसेनाको युद्धपर लेजाना चाहिये। अर्थात् मित्रसेनाको युद्धपर लेजानेके लिये उपर्युक्त ये अवसर या समय समझने चाहिये ॥ १९ ॥

प्रभूतं मे शत्रुबलं शत्रुबलेन योधयिष्यामि नगरस्थानमटवीं वा ॥ २० ॥ तत्र मे श्ववराहयोः कलहे चण्डालस्येवान्यतरासिद्धिर्भविष्यति ॥ २१ ॥

अब शत्रुसेनाके समयका निरूपण करते हैं;:—मेरे पास शत्रुसेना बहुत अधिक है, अर्थात् मेरी शक्तिके सामने झुकी हुई बहुतसी शत्रु सेना मेरे वशमें है, जो कि मेरे नगरमें ठहरी हुई है। इसी सेनाको मैं अपने दूसरे शत्रुके साथ लड़ाऊंगा; अथवा आटविक सेनाको शत्रुसेनाके साथ लड़ाऊंगा ॥ २० ॥ इसप्रकार दोनों शत्रुसेनाओंके आपसमेंही भिड़जानेपर, दोनोंमेंसे किसी एकके नाश होनेपर मेरे अभीष्टकी सिद्धि होगी; जैसे कुत्ते और सूअरके आपसमें लड़नेपर, दोनोंमेंसे किसी एकके मरजानेपर, (कुत्ता और सूअर दोनोंको खाजाने वाले) चण्डालका लाभही होता है। इस निमित्तके होनेपर एक शत्रुसेनाकोही दूसरे शत्रुकी सेनाके साथ लड़नेके लिये भेजे ॥ २१ ॥

आसाराणामटवीनां वा कण्टकमर्दनमेतत्करिष्यामि ॥२२॥

अत्युपचितं वा कोपभयान्नित्यमासन्नमरिबलं वासदयेन्यत्राभ्यन्तरकोपशङ्कायाः शत्रुयुद्धावरयुद्धकालश्चेत्यमित्रबलकालः ॥ २३ ॥

अथवा अपने मित्र की सेना तथा आटविक सेनाके कण्टकों (कष्ट देने वालों)का इस रीतिसे उन्मूलन करसकूंगा, तात्पर्य यह है, कि शत्रुकी सेनाके जो व्यक्ति, मित्रसेना तथा आटविक सेनाको कष्ट पहुंचाने वाले हैं, उनका इस रीतिसे उच्छेद कर दिया जाएगा; इस निमित्तसे भी शत्रु सेनाकोही शत्रुके मुक़ाबलेमें युद्धके लिये भेजे ॥ २२ ॥ अथवा अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई २ शत्रु की सेनाको, कुपित होजानेके डरसे विजिगीषु सदा अपने पास रक्खे । परन्तु उसके पास रखनेमें यदि अपने ही अन्तरंग अमात्य पुरोहित आदिके कुपित होजानेका भय हो, तो ऐसा न करे । अर्थात् ऐसी अवस्थामें शत्रु सेनाको अपने समीप न रक्खे । यदि विजिगीषुका शत्रु, अपनेही किसी दूसरे शत्रुके साथ युद्धमें प्रवृत्त होरहा हो, तो उस युद्धके समाप्त होनेपर जो दूसरा युद्धके योग्य समय आवे, उस समय भी शत्रुसेनाकोही दूसरे शत्रुके मुक़ाबलेमें युद्धके लिये भेजे । ये सब अवसर शत्रुसेनाको युद्धपर भेजनेके हैं ॥ २३ ॥

तेनाटवीबलकालो व्याख्यातः ॥ २४ ॥ मार्गदेशिकं परभूमियोग्यमरियुद्धप्रतिलोममटवीबलप्रायः शत्रुर्वा बिल्वं बिल्वेन हन्यतामल्पः प्रसारो हन्तव्य इत्यटवीबलकालः ॥ २५ ॥

इसीके अनुसार आटविक सेनाको युद्धपर भेजनेके समयका भी व्याख्यान समझलेना चाहिये । अर्थात् जो २ कारण शत्रुसेनाके युद्धपर जानेके लिये बताये हैं, वे ही आटविक सेनाके लिये समझने चाहियें ॥२४॥ आटविक सेनाके सम्बन्धमें जो और विशेष बात हैं, उनका यहां निर्देश किया जाता है:—शत्रुके देशपर आक्रमण करनेके समय आटविक सेना मार्गोंको अच्छी तरह पहचान सकती है; आटविक सेना शत्रुकी भूमिमें युद्ध करनेके योग्य आयुधोंकी शिक्षा प्राप्त किये हुये होती है; अथवा शत्रुके साथ युद्ध करनेके सम्बन्धमें विजिगीषुकी आज्ञाके बिनाही आटविक सेना, शत्रुके प्रतिपक्ष रूपमें तैयार रहती है अथवा शत्रु प्रायः आटविक सेनाको लेकरही मुकाबला करनेके लिये तैयार है, इसलिये एक बिल्वफल (बेल) को दूसरे बिल्वफलके साथ टकराकर फोड़ दिया जाता है, वैसेही हमारी ओरसे भी उसके समानजातीय आटविक बलके द्वारा ही आक्रमण किया जाना चाहिये; अथवा शत्रुके तृण काष्ठ आदि छोटे २ पदार्थोंको शत्रु तक न पहुंचने देनेके लिये, अर्थात् इनको बीचमें ही नष्ट करदेनेके लिये आटविक सेनाही उपयुक्त होसकती है, इत्यादि निमित्तोंके होनेपर भी आटविक सेनाको ही शत्रुके मुकाबलेमें लड़नेके लिये भेजना

चाहिये । यहांतक मौल आदि छः प्रकारकी सेनाओंके शत्रुपर आक्रमण करनेके अवसरोंका निरूपण करादिया गया ॥ २५ ॥

सैन्यमनेकमनेकजातीयस्थमुक्तमनुक्तं वा विलोपार्थं यदुत्तिष्ठति तदौत्साहिकम् ॥ २६ ॥ भक्तवेतनाविलोपविष्टिप्रतापकरं भेद्यं परेषामभेद्यं तुल्यदेशजातिशिल्पप्रायं संहतं महदिति बलोपादानकालाः ॥ २७ ॥

इन छः प्रकारकी सेनाओंके अतिरिक्त, एक सातवीं सेना 'औत्साहिक' नाम की होती है । जो सेना एक मुख्य नेतासे रहित, भिन्न २ देशोंमें रहने वाली, राजासे स्वीकार की हुई अथवा स्वीकार न की हुई, केवल दूसरे देशोंको लूटनेके लिये उठ खड़ी होती है, उसी सेनाका नाम 'औत्साहिक' है ॥ २६ ॥ इस सेनाके दो भेद हैं, एक भेद्य और दूसरा अभेद्य । प्रतिदिन भत्ता लेकर, तथा मासके अनन्तर हिरण्य आदिके रूपमें नियत वेतन लेकर, शत्रुके देशमें लूट मचाने वाला, दुर्गोंमें काम करने वाला तथा राजाकी सामयिक आज्ञाका पालन करने वाला औत्साहिक बल 'भेद्य' कहाता है । क्योंकि शत्रु अधिक भत्ता आदि देकर इसको अपनी ओर झुका सकता है । परन्तु जो औत्साहिक सेना प्रायः एक ही देश जातिकी तथा समान व्यवसाय करने वाली होती है, वह अभेद्य कही जाती है, शत्रु उसे अपनी ओर नहीं मिला सकता, क्योंकि वह सेना भत्ता तथा वेतन आदिकी कुछ अपेक्षा नहीं करती, उसे अपने देश आदिका अधिक ध्यान होता है । इसीलिये वह सेना सुसंघटित और शक्तिसम्पन्न समझी जाती है । इसलिये इस सेनाका भी यथावसर संग्रह करना चाहिये । यहांतक सेनाओंके आक्रमणके, समय आदिका निरूपण किया गया ॥ २७ ॥

तेषां कुप्यभृतमामित्राटवीबलं विलोपभृतं वा कुर्यात् ॥२८॥

इन सात प्रकारकी सेनाओंमें से, शत्रु सेना और आटविक सेनाको वस्त्र आस्तरण आदि द्रव्य अथवा शत्रुके देशका जीता हुआ या लूटा हुआ माल ही, वेतनके रूपमें देदिया जावे । तात्पर्य यह है कि शत्रु सेना तथा आटविक सेनाको नियत मासिक न दिया जावे, प्रत्युत वे परदेशमें लूटेहुए मालको ही अपने वेतन रूपमें लेकर कार्य करें ॥ २८ ॥

अमित्रस्य वा बलकाले प्रत्युत्पन्ने शत्रुमवगृह्णीयात् ॥२९॥ अन्यत्र वा प्रेषयेत् ॥ ३० ॥ अफलं वा कुर्यात् ॥ ३१ ॥

विक्षिप्तं वा वासयेत् ॥ ३२ ॥ काले वातिक्रान्ते विसृजेत् ॥३३॥ परस्य चैतद्बलसमुदानं विघातयेत्, आत्मनः संपादयेत् ॥३४॥

पूर्वोक्त जो २ सेना सम्बन्धी समय विजिगीषुके लिये वर्णन किये गये हैं, वे ही यदि शत्रुपर आजांय, अर्थात् उसको भी यह आवश्यकता पड़े, कि अमुक २ अवसर पर मैं अपनी सेनाका संग्रहकर अपने शत्रुपर आक्रमण करूं; उस समय विजिगीषुको चाहिये कि जो शत्रुकी सेना उसके पास सहायताके लिये आईहुई हो, उसको अपने ही अधीन रक्खे; अर्थात् उस मौकेपर उसकी सेना को न छोड़े ॥२८॥ अथवा अपने ही किसी दूसरे कार्यका बहाना करके और किसी जगहपर भेजदे ॥ ३० ॥ यदि ऐसे अवसरपर शत्रुकी सेना जल्दी ही छोड़नी पड़जाय, तो पहिले उसको कार्य करनेके बदलेमें जितनी सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसको न देकर ही छोड़ देवे ॥ ३१ ॥ अथवा उस सेनाको कई जगह बांट २ कर बसावे । अर्थात् थोड़ी २ सेना करके भिन्न २ छावनियोंमें उसके ठहरनेका प्रबन्ध करे ॥ ३२ ॥ अथवा जब शत्रुकी सहायताका समय बीतजावे, अर्थात् जब शत्रुको अपनी सहायताके लिये सेनाकी आवश्यकता थी, वह समय बीतजावे; तब उस सेनाको छोड़े ॥ ३३ ॥ अथवा उपर्युक्त रीतिसे बतायेहुए सेनासंग्रहके अवसरोंके आनेपर, विजिगीषु शत्रुके अवसरोंमें विघ्न डालता रहे, अर्थात् शत्रु जब भी अपनी सेनाओंके संग्रह करनेका इस प्रकार अवसर निकाले, तभी विजिगीषु उसमें कुछ न कुछ रुकावट डालता रहे । और अपनी सेनाका संग्रह सदा करता रहे । तथा शत्रुसे कियेगये विघ्नका प्रतीकार भी करता रहे ॥ ३४ ॥

पूर्वं पूर्वं चैषां श्रेयः संनाहयितुम् ॥ ३५ ॥ तद्भावभावित्वान्नित्यसत्कारानुगमाच्च मौलबलं भृतबलाच्छ्रेयः ॥ ३६ ॥ नित्यानन्तरं क्षिप्रोत्थायि वश्यं च भृतबलं श्रेणीबलाच्छ्रेयः ॥३७॥

यहांतक सेनाओंके संग्रहके विषयमें निरूपण कियागया; अब सेनाओंके उद्योगके गुणोंका, अर्थात् कौनसी सेना किसकी अपेक्षा कार्य करनेमें श्रेष्ठ समझनी चाहिये, इसका निरूपण किया जायगाः—इन मौल आदि औत्साहिक पर्यन्त सात प्रकारकी सेनाओंमें से, उत्तर उत्तरकी अपेक्षा पूर्व पूर्वकी सेनाका संग्रह करना अधिक सिद्धिकर होता है ॥ ३५ ॥ अपने स्वामीके होनेपर होने और न होनेपर न होनेसे, अर्थात् सदा स्वामीके साथ रहनेके कारण, और सदा ही सेनाके विषयमें स्वामीकी आदरबुद्धि होनेके

कारण तथा स्वामीके विषयमें सेनाका अनुराग होनेके कारण, भृतबलकी अपेक्षा मौलबल ही श्रेष्ठ होता है ॥ ३६ ॥ तथा श्रेणीबलकी अपेक्षा भृतबल अधिक श्रेयस्कर होता है क्योंकि वह (भृतबल) राजाके सदा समीप रहता है, बिना किसी विलम्बके बहुत जल्दी ही युद्धके लिये तैयार किया जासकता है, और अपने अधीन भी रहता है, श्रेणीबलमें यह बात नहीं होती, वह दूर भी रहता है तैयार होनेमें देर लगाता, तथा अपने वशमें भी नहीं होता ॥ ३७ ॥

जानपदमेकार्थोपगतं तुल्यसङ्घर्षामर्षसिद्धिलाभं च श्रेणीबलं मित्रबलाच्छ्रेयः ॥ ३८ ॥ अपरिमितदेशकालमेकार्थोपगमाच्च मित्रबलममित्रबलाच्छ्रेयः ॥ ३९ ॥

मित्रबलकी अपेक्षा श्रेणीबल अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि वह अपने मालिकके ही देश का होता है, एक ही प्रयोजनके लिये उनका संग्रह किया जाता है अर्थात् देशके स्वतन्त्र रहनेसे जैसा विजिगीषुको लाभ है, वैसा वहांकी प्रजाको भी, तथा अपने मालिकके समान ही संघर्ष अमर्ष और सिद्धिसे युक्त होता है, तात्पर्य यह है कि मालिक जिसके साथ संघर्ष करना चाहता है, श्रेणीबल भी उसके अनुसार ही चाहता है, मालिकका जिसपर क्रोध होता है, श्रेणीबलको भी उसपर क्रोध होता है, मालिकको जिस प्रकारकी सिद्धि होती है, श्रेणीबलको भी वही सिद्धि अभीष्ट होती है। परन्तु मित्रबलमें ये बात नहीं होसकती ॥ ३८ ॥ मित्रबल भी अमित्रबल (शत्रुसेना) की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि मित्रबलसे अपनी इच्छानुसार प्रत्येक देश तथा प्रतिसमयमें सहायता ली जासकती है, तथा विजिगीषुके प्रयोजनके अनुसार ही मित्रबलका भी प्रयोजन होता है, परन्तु अमित्रबलमें यह बात नहीं होती, क्योंकि उसको स्वतन्त्रतापूर्वक उसकी इच्छानुसार, चाहे जिस देशमें चाहे जिस समय युद्धपर नहीं भेजा जासकता; क्योंकि इसप्रकार शत्रुसेनाको चाहे जहां भेजनेमें डरही रहता है। तथा विजिगीषु और शत्रुसेनाके प्रयोजनमें भी भेद होता है, यह स्पष्ट है। (महामहोपाध्याय त० गणपति शास्त्रीने इस सूत्रके दो भाग करदिये हैं, एक 'अपरिमितदेशकालमेकार्थोपगमाच्च । और दूसरा 'मित्रबलममित्रबलाच्छ्रेयः' । पहिले सूत्रको उन्होंने मित्रबलकी अपेक्षा श्रेणीबलकी श्रेष्ठताहीमें लगाया है, तथा अमित्रबलसे मित्रबलकी श्रेष्ठता बतलानेमें उन्होंने किसी हेतुकी आवश्यकता नहीं समझी; यह व्याख्यान कुछ क्रम-विरुद्धसा प्रतीत होता है। और नयचान्द्रिका व्याख्याके भी विरुद्ध है) ॥ ३९ ॥

आर्याधिष्ठितममित्रबलमटवीबलाच्छ्रेयः ॥ ४० ॥ तदुभयं विलोपार्थम् ॥ ४१ ॥ अविलोपे व्यसने च ताभ्यामाहिभयं स्यात् ॥ ४२ ॥

अमित्रबल भी अटवीबलकी अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि अमित्रबल, आर्य अर्थात् सद्गुणोंसे युक्त विश्वस्त पुरुषोंके नेतृत्वमें रहता है, अटवीबल, ऐसा नहीं होता ॥ ४० ॥ ये दोनों ही प्रकारकी सेनाएं अर्थात् शत्रु-सेना और आटविकसेना, विलोपकेही लिये अर्थात् शत्रुदेशको लूटने आदिकेही लिये प्रयुक्त कीजाती हैं ॥ ४१ ॥ क्योंकि लूट आदिके अतिरिक्त यदि युद्ध आदिमें उन्हें लगाया जाय, तथा अपनी विपत्तिके समयमें उन्हें कहीं कार्यपर लगाया जाय, तो उनसे आस्तीनके सांपकी तरह सदा डरही रहता है। अर्थात् वह अपनेही पक्षमें कुछ झगड़ा आदि करके नया बखेड़ा खड़ा करसकती है ॥४२॥

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रसैन्यानां तेजःप्राधान्यात्पूर्वं पूर्वं श्रेयः। संनाहयितुमित्याचार्याः ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंकी पृथक् २ सेनाओंमें उत्तरोत्तर सेनाकी अपेक्षा पूर्व २ सेना, तेजकी प्रधानता होनेके कारण अधिक श्रेयस्कर होती है। यह आचार्योंका मत है। (यहां तेजकी प्रधानताका तात्पर्य शौर्यकी प्रधानता न लेनी चाहिये, क्योंकि ब्राह्मणमें शौर्यकी अधिकता नहीं होती, इसलिये कृतज्ञता धार्मिकता आदि गुण सम्पत्ति ही तेज शब्दका भाव समझना चाहिये) ॥ ४३ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ४४ ॥ प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं परोऽभिहारयेत् ॥ ४५ ॥ प्रहरणविद्याविनीतं तु क्षत्रियबलं श्रेयः ॥४६॥ बहुलसारं वा वैश्यशूद्रबलमिति ॥ ४७ ॥

परन्तु आचार्य कौटल्यका यह मत नहीं है ॥ ४४ ॥ शत्रु, ब्राह्मणबलको प्रणिपात (नमस्कार, सत्कार या आगे झुकजाना) से ही अपने आधीन करलेता है ॥ ४५ ॥ इसलिये शस्त्रास्त्रकी विद्यामें सुशिक्षित क्षत्रियबलकोही सबकी अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर समझना चाहिये ॥ ४६ ॥ अथवा वैश्य शूद्रबलको भी श्रेयस्कर समझा जासकता है, जब कि उसमें वीर पुरुषोंकी अच्छी तरह अधिकता हो ॥ ४७ ॥

तस्मादेवंबलः परस्तस्यैतत्प्रतिबलमिति बलसमुद्दानं कुर्यात् ॥ ४८ ॥

सेनाओंकी इसतरह परस्पर आपेक्षिक श्रेष्ठताको जानके अनन्तर शत्रु-के पास इसप्रकारकी सेना है, और उसके मुक़ाबलेकी अमुक सेना होसकती है, इसप्रकार विचार करके उपयुक्त सेनाओंका संग्रह करे ॥ ४८ ॥

हस्तियन्त्रशकटगर्भकुन्तप्रासहाटकवेणुशल्यवद्धास्तिबलस्य प्रतिबलम् ॥ ४९ ॥

हस्तिसेनाके मुक़ाबलेके लिये, हाथी, यन्त्र (जामदग्न्य आदि) शक-टगर्भ (जिसका मध्यभाग शकटके समान हो, ऐसा आयुधविशेष), कुन्त (भाला), प्रास (बरछा), हाटक (तीन फलों वाला अर्थात् तीन कांटों वाला भाला; किसी २ पुस्तकमें ' हाटक ' पदके स्थानपर ' खर्वटक ' पाठ है, पर यह पाठ अधिक संगत नहीं मालूम होता), वेणु (लम्बा बेंत या लाठी आदि), शल्प (चारों ओरसे लोहेकी कीलों वाला, लोहेकाही बना हुआ डण्डा), आदि साधनोंसे युक्त सेनाकी आवश्यकता होती है ॥ ४९ ॥

तदेव पाषाणलगुडावरणाङ्कुशकचग्रहणीप्रायं रथबलस्य प्रतिबलम् ॥ ५० ॥

वही सेना, अर्थात् जो सेना, हस्तिसेनाके मुक़ाबलेके लिये बतलाई गई है, यदि पाषाण (बड़ी २ शिलाएं या पत्थर), लगुड (पटे या छोटी २ गदा), आवरण (कवच), अंकुश, और कचग्रहणी (कौंचा=बहुत लम्बी लोहेकी छड़, जिसके आगे बड़ासा हुक्‌ लगा हुआ हो) आदि साधनोंसे युक्त हो, तो रथबल (रथ सवार सेना) को उसे प्रतिबल (मुक़ाबलेमें प्रती-कार करने वाली सेना) समझना चाहिये ॥ ५० ॥

तदेवाश्वानां प्रतिबलम् ॥ ५१ ॥ वर्मिणो वा हस्तिनोऽश्वा वा वर्मिणः कवचिनो रथा आवरणिनः पत्तयश्चतुरङ्गबलस्य प्रतिबलम् ॥ ५२ ॥

हाथीसवार सेनाके मुक़ाबलेकी जो सेना बताई गई है, वही सेना घुड़सवार सेनाका भी मुक़ाबला करने वाली समझनी चाहिये। तात्पर्य यह है, कि अश्वबल का भी वही प्रतिबल समझना चाहिये, जो हस्तिबलका प्रति-बल कहा गया है ॥ ५१ ॥ कवच धारण करने वाले हाथी, इसी प्रकार कवच धारण करने वाले ही घोड़े, तथा मज़बूत लोहेके पत्तरोंसे मढ़े हुए रथ, और कवच धारण करनेवाली ही पैदल सेना; ये साधारणतया यथासंख्य हाथी-सवार घुड़सवार रथसवार तथा पैदल चतुरंग सेनाके प्रतिबल समझने चा-

हियें । अर्थात् चतुरंग सेना का मुकाबला, कवच पहिनने वाले हाथी आदिके द्वारा ही किया जासकता है ॥ ५२ ॥

एवं बलसमुद्दानं परसैन्यनिवारणम् ।
विभवेन स्वसैन्यानां कुर्यादङ्गविकल्पशः ॥ ५३ ॥

इत्याभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे बलोपादानकालाः संनाहगुणाः प्रतिबलकर्म द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितस्त्रयोविंशशतो ऽध्यायः ॥ १२३ ॥

इस पूर्वोक्त रीतिके अनुसार ही, सेनाओंकी पारस्परिक श्रेष्ठता, तथा गुरुता लघुता का विचार करके ही उपयुक्त सेनाओंका संग्रह करे । तथा मौल भृत आदि अपनी सेनाओंकी शक्तिके अनुसार, एवं हाथी घोड़े आदि सेनाओं-के अङ्गभूत पदार्थोंकी बहुलता और अल्पताके कारण किये गये विभागोंके अनु-सार ही शत्रुकी सेनाका निराकरण करना चाहिये । अर्थात् विजिगीषु को चाहिये कि वह यथाशक्ति अपनी सेनाओंका संग्रह करता रहे; तथा शत्रुकी सेनाओंका प्रतीकार करता रहे ॥ ५३ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय

१४०-१४१ प्रकरण

पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्य और अभ्यन्तर प्रकृतिके कोपका प्रतीकार ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं । आगे होने वाले लाभके उद्देश्यसे विजिगीषुके द्वारा शत्रु पर आक्रमण किये जाने पर पीछेसे पा-र्ष्णिग्राह आटविक तथा अन्य दूष्य व्यक्तियोंके द्वारा राजधानीमें जो उपद्रव किया जाता है, उसीका नाम 'पश्चात्कोप' है । पहिले प्रकरणमें आगे होनेवाले लाभकी अपेक्षा पश्चात्कोपके गुरुलघु-भावका विचार किया जायेगा । और दूसरे प्रकरणमें बाह्य तथा अभ्यन्तर प्रकृतिजन्य कोपके प्रतीकारका निरूपण होगा ।

अल्पः पश्चात्कोपो महान्पुरस्ताल्लाभ इति ॥ १ ॥ अल्पः पश्चात्कोपो गरीयान् ॥ २ ॥ अल्पं पश्चात्कोपं प्रयातस्य दूष्या-मित्राटविका हि सर्वतः समेधयन्ति प्रकृतिकोपो वा ॥ ३ ॥

थोड़ा पश्चात्कोप और अत्यधिक, आगे होने वाला लाभ; इन दोनोंमें से कौन गुरुतर है इस बातका विचार किया जायगा। तात्पर्य यह, कि थोड़े पश्चात्कोपके कारण बड़े लाभकी उपेक्षा करदी जावे, या बड़े लाभके कारण थोड़े पश्चात्कोपकी, उपेक्षा करदी जावे ॥ १ ॥ इस विषयमें निर्णय यही है, कि थोड़ा भी पश्चात्कोप, बड़े लाभकी अपेक्षा गुरुतर होता है। अर्थात् थोड़े पश्चात्कोपके कारण, बड़ेभी लाभकी उपेक्षा कीजासकती है ॥ २ ॥ क्योंकि थोड़े भी पश्चात्कोपको, विजिगीषुके बाहर चले जानेपर, दूष्यव्यक्ति शत्रु तथा आटविक पुरुष, चारों ओरसे अच्छी तरह बढ़ा देते हैं। अथवा मन्त्री पुरोहित आदि अभ्यन्तर प्रकृतिसेही उत्पन्न हुआ २ कोप, उस थोड़े भी पश्चात्कोपको और अधिक बढ़ा देता है। इस लिये महान् पुरस्ताल्लाभ (आगे होनेवाले लाभ) की अपेक्षा थोड़े पश्चात्कोपकोही गुरुतर समझना चाहिये ॥ ३ ॥

लब्धमपि च महान्तं पुरस्ताल्लाभम् एवंभूते भृते भृत्यमित्रक्षयव्यया ग्रसन्ते ॥ ४ ॥ तस्मात्सहस्रैकीयः पुरस्ताल्लाभस्यायोगः शतैकीयो वा पश्चात्कोप इति न यायात् ॥ ५ ॥ सूचीमुखा ह्यनर्था इति लोकप्रवादः ॥ ६ ॥

पश्चात्कोपकी पहिले कुछ पर्वाह न करके यदि आक्रमणसे होनेवाले बड़े भारी लाभको प्राप्त कर भी लिया जाय, तो भी इस प्रकारके पश्चात्कोपके बढ़नेपर फिर उसका प्रतीकार करनेके लिये भृत्य और मित्रसम्बन्धी क्षय व्यय उस लाभको बराबर कर देते हैं। अर्थात् जो कुछ लाभ होता है, वह बढ़े हुए पश्चात्कोपको शान्त करने में सब कुछ खर्च होजाता है ॥ ४ ॥ इसलिये जब कि आगे होनेवाले लाभकी सिद्धि, प्रतिसहस्र एक अंश मात्र होनेवाली हो, उसके मुकाबलेमें पश्चात्कोपसे होनेवाला अनर्थ प्रतिशतक एक अंश समझना चाहिये। अर्थात् पश्चात्कोपजन्य अनर्थकी अपेक्षा आगे होनेवाले लाभमें दसगुनी असारता होती है। इसलिये पश्चात्कोपकी आशंका होनेपर कभी यात्रा न करे ॥ ५ ॥ लोकमें कहावत है कि अनर्थ सदा सूचीमुख होते हैं। तात्पर्य यह है कि अनर्थ पहिले तो सुई की नोककी तरह बहुत सूक्ष्म मालूम होते हैं, परन्तु पीछेसे वे सदा बहुत ही भयावह रूप धारण कर लेते हैं ॥ ६ ॥

पश्चात्कोपे सामदानभेददण्डान्प्रयुञ्जीत ॥ ७ ॥ पुरस्ताल्लाभे सेनापतिं कुमारं वा दण्डचारिणं कुर्वीत ॥ ८ ॥

यदि पश्चात्कोपकी अधिक सम्भावना हो तो साम दान भेद और दण्ड, इन सब ही उपायोंका प्रयोग करे। अर्थात् विजिगीषु स्वयं आक्रमणके लिये न जाकर ही पश्चात्कोपको शान्त करनेके लिये साम आदि सब ही उपायोंका प्रयोग करे ॥ ७ ॥ और आक्रमणसे होनेवाले लाभको यदि न छोड़ना हो, तो उसकी भी प्राप्तिके लिये यात्रामें सेनापति अथवा युवराजको ही प्रधान सेनानायक बनाकर भेज देवे। अर्थात् इनमेंसे किसीकी अधीनतामें सेनाको करके उसे युद्धके लिये भेज देवे ॥ ८ ॥

बलवान्वा राजा पश्चात्कोपावग्रहसमर्थः पुरस्ताल्लाभमादातुं यायात् ॥ ९ ॥ अभ्यन्तरकोपशङ्कायां शङ्कितानादाय यायात् ॥ १० ॥

अथवा बलवान् राजा जो कि पश्चात्कोपका प्रतीकार करनेमें समर्थ हो; तात्पर्य यह है कि जिस राजाके पास पर्याप्त सेना हो, और इसीलिये उसके भरोसेपर अपनी अनुपस्थितिमें भी पश्चात्कोपको शान्त कर सकता हो, वह थोड़ीसी सेना पीछे छोड़कर, आगे होनेवाले लाभकी प्राप्तिके लिये स्वयं ही यात्रा कर सकता है ॥ ९ ॥ यदि उसको आभ्यन्तर कोपकी आशंका हो, अर्थात् यह सन्देह हो कि मेरे चले जानेपर अमात्य पुरोहित आदि ही उपद्रव खड़ा करदेंगे; तो उनको अपने साथ लेकर ही शत्रुपर आक्रमण करे। अर्थात् ऐसे शङ्कित व्यक्तियोंको अपने साथ ही युद्धपर लेजावे ॥१०॥

बाह्यकोपशङ्कायां वा पुत्रदारमेषामभ्यन्तरावग्रहं कृत्वा शून्यपालमनेकबलवर्गमनेकमुख्यं च स्थापयित्वा यायान्न यायाद्वा ॥ ११ ॥ अभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयानित्युक्तं पुरस्तात् ॥ १२ ॥

बाह्यकोप (अन्तपाल आटविक आदिके द्वारा, विजिगीषुके बाहर चले जानेपर राजधानी आदिमें जो उपद्रव कियाजाय, उसे बाह्यकोप' कहते हैं; इसका निरूपण इसी अध्यायके २७ वें सूत्र में किया जायगा) की आशंका होनेपर, बाह्यकोपको करनेवाले अन्तपाल आदिके पुत्र तथा स्त्रियोंको अपने अमात्योंके अधीन करके विजिगीषु युद्धपर चलाजावे। बाह्य तथा अभ्यन्तर दोनों ही ओरसे उपद्रवकी आशंका होनेपर तो, अनेक प्रकारकी मौल भृत आदि सेनाओंके समूहसे युक्त, तथा अनेक मुख्य सेनाध्यक्षोंसे युक्त शून्यपाल (शत्रुके मुकाबलेमें विजिगीषुके चले जानेपर पीछेसे स्वामी रहित राजधानीकी रक्षा करनेवाला अधिकारी) को स्थापित करके फिर यात्रा करे। यदि फिर

भी अभ्यन्तर कोपकी आशंका बनी ही रहे, तो विजिगीषु न जावे। (किसी २ पुस्तकमें 'न यायाद्वा' के स्थानपर 'न वा यायात्' ऐसा भी पाठ है, परन्तु अर्थ में कोई किसी तरहका भेद नहीं) ॥ ११ ॥ क्योंकि अभ्यन्तर कोप, बाह्यकोपकी अपेक्षा अत्यधिक हानिकर होता है; इस बातको पहिले कहा जाचुका है ॥ १२ ॥

मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतरकोपोऽभ्यन्तर-कोपः ॥ १३ ॥ तमात्मदोषत्यागेन परशक्त्यपराधवशेन वा साधयेत् ॥ १४ ॥

मन्त्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज इन चारोंमें से किसीके द्वारा किये जानेवाले उपद्रवको 'अभ्यन्तरकोप' कहते हैं ॥ १३ ॥ इस अभ्य-न्तरकोपको यदि विजिगीषु अपने ही किसी दोषसे उत्पन्न हुआ २ समझे, तो उस दोषका परित्यागकर अभ्यन्तर कोपको शान्त करे। यदि मन्त्री पुरोहित आदिके दोषके कारण ही वह उपद्रव उठा हो, तो उनको उनके अपराधके अनुसार वध (प्राणदण्ड) बन्धन (कैदमें रखना) तथा अर्थ-दण्ड (जुरमाना आदि करना) आदिके द्वारा सीधा करे ॥ १४ ॥

महापराधेऽपि पुरोहिते संरोधनमपस्रावणं वा सिद्धिः ॥१५॥ युवराजे संरोधनं निग्रहो वा गुणवत्यन्यस्मिन्सति पुत्रे ॥ १६ ॥ ताभ्यां मन्त्रिसेनापती व्याख्यातौ ॥ १७ ॥

यदि पुरोहित; इसतरहका कोई महान अपराध भी करदे; तो भी उसका वध नहीं होना चाहिये, क्योंकि वह ब्राह्मण होता है, ब्राह्मणका वध निषिद्ध है। इसलिये या तो उसको कैदमें डालदिया जावे, या अपने देशसे बाहर निकाल दिया जावे। उसके लिये यही दण्ड है ॥ १५ ॥ यदि युवराज ही इसप्रकारका महान अपराध करदेवे, तो उसे या तो बन्धनागारमें डाल दिया जावे, या उसका वध करदिया जावे, अर्थात् उसे प्राणदण्ड दियाजावे; परन्तु यह प्राणदण्ड उसी अवस्थामें देना चाहिये, जब कि अत्यन्त गुणी कोई दूसरा पुत्र विद्यमान हो ॥ १६ ॥ पुरोहित और युवराजके समान; अथवा बन्धन और वधके द्वारा मन्त्री और सेनापतिके भी दण्डका व्याख्यान समझ लेना चाहिये। अर्थात् यदि वह ब्राह्मण हो तो अपराधके अनुसार बन्धन या देशनिकाला; और अब्राह्मण हो तो अपराधानुसार बन्धन या बधका दण्ड दियाजावे ॥ १७ ॥

पुत्रं भ्रातरमन्यं वा कुल्यं राज्यग्राहिणमुत्साहेन साधयेत् ॥ १८ ॥ उत्साहाभावे गृहीतानुवर्तनसंधिकर्मभ्यामरिसंधानभयात् ॥ १९ ॥ अन्येभ्यस्तद्विधेभ्यो वा भूमिदानैर्विश्वासयेदेनम् ॥ २० ॥

अपने पुत्र, अपने भाई तथा अपने ही कुलमें उत्पन्न हुए अन्य व्यक्तिको, जो कि राज्य लेनेकी इच्छा रखते हों, उत्साह देकर शान्त करे। अर्थात् उनके योग्य सेनापति आदि पदोंपर उन्हें नियुक्त करके अपने वशमें करे ॥ १८ ॥ यदि उनको उत्साह न देसके, तो जो सम्पत्ति राज्यकी ओरसे उन्हें भोगनेको मिली हुई है, उसे सदाके लिये उन्हें ही देकर तथा और अधिक सम्पत्ति आदि देकर उनसे सन्धि करके अपने वशमें करे। क्योंकि यदि उन्हें अपने वशमें न किया जाय, तो विजिगीषुको इस बातका सदा ही डर बना रहता है, कि कहीं वे मेरे शत्रुके साथ न मिलजावें ॥ १९ ॥ अथवा उसी तरहके दूसरे खानदानी आदमियोंको ज़मीन आदि देकर, इनको अपना विश्वासी बनाले। तात्पर्य यह है कि जो अपना खानदानी आदमी राज्य लेनेकी इच्छा रखता हो, उसको वशमें करनका एक यह भी उपाय है, कि उसी जैसे अपने अन्य खानदानी आदमियोंको भूमि आदि देवे; ऐसा करनेसे यह पुरुष भी अपना विश्वस्त होजायगा ॥ २० ॥

तद्विशिष्टं स्वयंग्राहं दण्डं वा प्रेषयेत् ॥ २१ ॥ सामन्ताटविकान्वा, तैर्विगृहीतमतिसंदध्यात् ॥ २२ ॥ अवरुद्धादानं पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् ॥ २३ ॥ एतेन मन्त्रिसेनापती व्याख्यातौ ॥ २४ ॥

अथवा इसकी अध्यक्षतामें (जो पुरुष राज्य लेना चाहे, उसकी अध्यक्षतामें) स्वयंग्राह सेना (जिस सेनाके सम्बन्धमें यह घोषणा कर दी जावे, कि जो कुछ लूटमें इसको मिलेगा, वह उसीका होगा, इस सेनाको 'स्वयंग्राह सेना' कहते हैं) को देकर कहीं युद्ध करनेके लिए भेज दिया जावे ॥ २१ ॥ अथवा सामन्त और आटविकोंको ही उसकी अध्यक्षतामें कहीं युद्धपर भेज दिया जावे; और उनके साथ (अर्थात् स्वयंग्राह सेना, सामन्त तथा आटविकों के साथ) विरोध कराके अर्थात् किसी बातपर झगड़ा कराके उसे बन्धनमें लेलिया जावे ॥ २२ ॥ जब स्वयंग्राह सेना आदि उसको गिरफ्तार कर लें, तो उनसे विजिगीषु उसे ले लेवे; अथवा दुर्गलम्भोपाय अधिकरणमें बतलाये हुए पारग्रामिक नामक योगका अनुष्ठान

करे। अर्थात् इस योगके द्वारा उसे सीधा करे ॥ २३ ॥ इसीके अनुसार, मन्त्री और सेनापतिके द्वारा उत्पन्न किये हुए कोप, तथा उसके प्रतीकारका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ २४ ॥

मन्त्र्यादिवर्जानामन्तरमात्यानामन्यतमकोपो ऽन्तरमात्य-कोपः ॥२५॥ तत्रापि यथार्हमुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २६ ॥

मन्त्री, पुरोहित, युवराज और सेनापति, इन चारोंके अतिरिक्त, अन्य अन्तरमात्य अर्थात् दौवारिक (द्वारपाल) या अन्तर्वंशिक (महलोंमें काम करने वाले विशेष कर्मचारी) आदि पुरुषोंमेंसे किसी एकके द्वारा उठाये हुए उपद्रवको 'अन्तरमात्यकोप' कहते हैं ॥ २५ ॥ उसके शान्त करनेके लिये भी यथायोग्य उपर्युक्त उपायोंकाही प्रयोग करे। यहांतक अभ्यन्तरकोपके सम्ब-न्धमें निरूपण करदिया गया ॥ २६ ॥

राष्ट्रमुख्यान्तपालाटविकदण्डोपनतानामन्यतमकोपो बाह्य-कोपः ॥ २७ ॥ तमन्योन्येनावग्राहयेत् ॥ २८ ॥

अब बाह्यकोप और उसके परिहारका निरूपण किया जायगा:—राष्ट्रके प्रधान-व्यक्ति, अन्तपाल (सीमारक्षक अधिकारी), आटविक और दण्डोपनत (सैनिक शक्तिके द्वारा अर्थात् बल-पूर्वक अपने अधीन किया हुआ व्यक्ति), इन चारोंमेंसे किसीके द्वारा उठाये हुए उपद्रवको 'बाह्यकोप' कहते हैं ॥२७॥ उस कोपको, आपसमेंही उन्हें एक दूसरेके साथ टकराकर शान्त करे। अर्थात् राष्ट्रमुख्यके कोपको अन्तपाल आदिके द्वारा और अन्तपाल आदिके कोपको राष्ट्र-मुख्यके द्वारा शान्त करवावे ॥ २८ ॥

अतिदुर्गप्रातिस्तब्धं वा सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धाना-मन्यतमेनावग्राहयेत् ॥ २९ ॥ मित्रेणोपग्राहयेद्वा, यथा नामित्रं गच्छेत् ॥ ३० ॥

अथवा प्रबल दुर्गसे युक्त राष्ट्रमुख्य या अन्तपाल आदिको, सामन्त आटविक या उनके कुलमें उत्पन्न हुआ २ कोई रोका हुआ पुरुष (राजपुत्र आदि), इन सबमेंसे किसीके द्वारा पकड़वावे। तात्पर्य यह है, कि बाह्यकोपको उठाने वाले राष्ट्रमुख्य आदिको सामन्त आदिके द्वारा पकड़वा देवे ॥२९॥ अथवा अपने मित्र के साथ उसकी भी मित्रता करवा देवे। जिससे कि वह शत्रुकी ओर जाकर न मिलजावे ॥ ३० ॥

अमित्रात्सत्त्री भेदयेदेनम् ॥ ३१ ॥ अयं त्वां योगपुरुषं मन्यमानो भर्तर्येव विक्रमयिष्यति ॥ ३२ ॥ अवाप्तार्थो दण्ड-

चारिणममित्राटविकेषु कृच्छ्रे वा प्रवासे योक्ष्यति ॥ ३३ ॥

सत्री (गूढ पुरुष=एक विशेष गुप्तचर), इस बाह्य राष्ट्रमुख्य आदिको शत्रुसे सदा भिन्न बनाये रक्खे, अर्थात् इनका आपसमें सदा भेद डलवाये रक्खे ॥ ३१ ॥ क्या कहकर भेद डलवावे, अब इसका निरूपण किया जायगा:— सत्री, राष्ट्रमुख्य आदिको कहे कि तुम जिसके साथ (विजिगीषुके जिस शत्रुके साथ) मिलना चाहते हो, वह तुमको विजिगीषुका गुप्त-पुरुष समझेगा, और यह समझता हुआ तुमको तुम्हारे मालिकके ऊपरही हमला करनेको कहेगा ॥ ३२ ॥ और तुम्हारे मालिकपर किये गये आक्रमणके परिणामको देखकर, तुमको अपनी सेनाका नायक बनाकर अपने शत्रु या आटविकके मुकाबलेमें किसी दुष्कर आक्रमणके लिये नियुक्त करेगा; अर्थात् तुमको किसी दूर देशके कठिन प्रवासके लिये बाध्य करेगा ॥ ३३ ॥

विपुत्रदारमन्ते वा वासयिष्यति ॥ ३४ ॥ प्रतिहतविक्रमं त्वां भर्तरि पण्यं करिष्यति ॥ ३५ ॥ त्वया वा संधिं कृत्वा भर्तारमेव प्रसादयिष्यति ॥ ३६ ॥ मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेदिति ॥ ३७ ॥

अथवा तुमको, तुम्हारे स्त्री पुरुषोंसे वियुक्त करके, अपने सरहद्दी इलाकेमें रक्खेगा । तात्पर्य यह है, कि तुम्हारे स्त्री पुत्रोंको अपनी अधीनतामें रक्खेगा, और तुम्हें किसी सरहद्दी इलाकेमें कार्य करनेके लिये नियुक्त करेगा ॥ ३४ ॥ अथवा अपनेही मालिकके मुकाबलेमें लड़नेके लिये खड़ा हुआ २ तू यदि उससे हार जायगा, तो यह तेरे मालिकसे कीमत लेकर उसीके हाथ तुझे बेच डालेगा । अर्थात् तेरे असफल हो जानेके कारण, तुझपर प्रसन्न न होता हुआ, वह, तेरे मालिकसे कुछ धन लेकर उसीके हाथमें तुझे सौंपदेगा ॥ ३५ ॥ अथवा तुम्हेंही स्वामीको अर्पण करके अर्थात् शर्त्तके तौरपर तुम्हें तुम्हारे मालिकके लिये देकर, सन्धि करके, स्वामीको प्रसन्न करलेगा ॥ ३६ ॥ अथवा तुम्हारी शर्त्त लगाकर अपने किसी मित्रके साथही तुम्हारे स्वामीकी सन्धि करादेगा । इत्यादि बातोंको कहकर सत्री, राष्ट्रमुख्य आदिका शत्रुसे भेद डलवाये रक्खे ॥ ३७ ॥

प्रतिपन्नमिष्टाभिप्रायैः पूजयेत् ॥ ३८ ॥ अप्रतिपन्नस्य संश्रयं भेदयेदसौ ते योगपुरुषः प्रणिहित इति ॥ ३९ ॥

यदि इस भेदके उपदेशको, वह व्यक्ति स्वीकार करले, तो उसे इसकी अभीष्ट वस्तुओंको देकर सत्कृत किया जावे ॥ ३८ ॥ यदि स्वीकार न करे, तो

उसके संश्रय (सन्धि विग्रह आदि छः गुणोंमेंसे एक संश्रय भी होता है । किसी बलवान् राजाके अधीन रहकर अपनी शक्तिको बढ़ाना 'संश्रय' कहाता है । इसलिये जिस राजाके अधीन रहे, उसको भी संश्रय कहदेते हैं) को ही यह कहकर उससे भिन्न करदेवे, कि अमुक पुरुष जो तुम्हारे आश्रित रहनेके लिये उपस्थित होता है, वह दूसरेका भेजा हुआ गुप्तपुरुष है, तुम्हें उससे संभलकर रहना चाहिये ॥ ३९ ॥

सत्त्री चैनमभित्यक्तशासनैर्घातयेत् गूढपुरुषैर्वा ॥ ४० ॥ सहप्रस्थायिनो वास्य प्रवीरपुरुषान्यथाभिप्रायकरणेनावाहयेत् ॥ ४१ ॥

तथा सत्री, अभित्यक्त (वधके लिये निश्चित हुए २) पुरुषोंके हाथ नकली चिट्ठियां भिजवाकर (जिनके लिखित विषयका यह अभिप्राय हो, कि तुम छिपकर शत्रुको मारडालो) शत्रुके मनमें सन्देह डालकर उसके द्वाराही (राष्ट्रमुख्य आदि) व्यक्तिको मरवाडाले । अथवा साक्षात् गूढपुरुषोंके द्वाराही मरवाडाले ॥ ४० ॥ अथवा शत्रुका आश्रय लेनेके लिये,बाह्य (राष्ट्रमुख्य अंत-पाल आदि) के साथ जो वीर पुरुष जानेके लिये तैयार होवें; उनको उनके अभिप्रायके अनुसार कार्य करके अर्थात् उनकी इच्छाकी पूर्त्ति करके अपनी ओर मिला लेवे । ('आवाहयेत्' के स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'वाहयेत्' भी पाठ है, अर्थ दोनोंका समान है) ॥ ४१ ॥

तेन प्रणिहितान्सत्त्री ब्रूयादिति सिद्धिः ॥ ४२ ॥ परस्य चैनान्कोपानुत्थापयेत् ॥ ४३ ॥ आत्मनश्च शमयेत् ॥ ४४ ॥

यदि वे वीर पुरुष अपने पक्षमें आनेके लिये तैयार न होवें, तो सत्री उनके सम्बन्धमें शत्रुसे इसप्रकार कहे, कि ये सब वीर पुरुष विजिगीषुने तुम्हारे मारनेके लिये भेजे हैं, ये सबही गूढपुरुष हैं । इसप्रकार शत्रुको समझाकर और उसकेही द्वारा उन्हें नष्ट करवाकर बाह्यकोपका प्रतीकार करे ॥ ४२ ॥ तथा शत्रुपक्षमें अभ्यन्तरकोप और बाह्यकोपको उत्पन्न करनेके लिये पूरा यत्न करे ॥ ४३ ॥ और अपने पक्षमें शत्रुके द्वारा उत्पन्न किये हुए कोपों-का पूर्ण रीतिसे प्रतीकार करे ॥ ४४ ॥

यः कोपं कर्तुं शमयितुं वा शक्तस्तत्रोपजापः कार्यः ॥४५॥ यः सत्यसंधः शक्तः कर्मणि फलावाप्तौ चानुग्रहीतुं विनिपाते च त्रातुं तत्र प्रतिजापः कार्यः ॥ ४६ ॥ तर्कयितव्यश्च कल्याणबुद्धिरुताहो शठ इति ॥ ४७ ॥

जो कोपको उत्पन्न करने और शान्त करनेमें समर्थ हो, वहींपर उप-जाप (कोपको उत्पन्न करनेके लिये भेद डालने या फूट डालनेको ही 'उप-जाप' कहते हैं) का प्रयोग करना चाहिये । तात्पर्य यह है, कि जो पुरुष इतना सामर्थ्य रखता हो, कि स्वयं खड़े होकर उपद्रव करसके, और दूसरेके द्वारा उठायेहुए उपद्रवको शान्त करसके, उसीपर उपजापका प्रयोग करना चाहिये, अर्थात् उसका दूसरेके साथ भेद डालदिया जावे ॥ ४५ ॥ इसी प्रकार जो पुरुष सत्यप्रतिज्ञ, कार्यके तथा फलसिद्धिके समय अनुग्रह करने और आपत्तिके समय उससे रक्षा करनेमें समर्थ हो; वहांपर प्रतिजाप (उप-जापके स्वीकार करलेनेको 'प्रतिजाप' कहते हैं) का प्रयोग ठीक है । तात्पर्य यह है, कि उपजापको स्वीकार करलेनेसे पहिले यह समझलेना चाहिये, कि यह उपजाप करनेवाला पुरुष सत्यवादी तथा समयपर उपकार करने और रक्षा करनेमें भी समर्थ है, तभी प्रतिजापका होना अर्थात् उपजापको स्वीकार करना ठीक होता है ॥ ४६ ॥ यदि उपजपिता (उपजाप करनेवाले) के सम्बन्धमें प्रतिजपिता (उपजापको स्वीकार करने अर्थात् मानने वाले) को यह आशंका होजावे, कि कहीं यह वञ्चक तो नहीं है ? मुझे ठगनेके लिये ऐसा कह रहा है, तो उसकी कल्याणबुद्धि अथवा शठबुद्धि की परीक्षा करलेवे, कि यह मुझे हितबुद्धिसे ऐसा कह रहा है या ठगना चाहता है ॥ ४७ ॥

शठो हि बाह्यो ऽभ्यन्तरमेवमुपजपति—॥ ४८ ॥ भर्तारं चेद्धत्वा मां प्रतिपादयिष्यति शत्रुवधो भूमिलाभश्च मे द्विविधो लाभो भविष्यति ॥ ४९ ॥

उपजापके दो ही विषय होसकते हैं, या तो बाह्य उपजपिता अभ्य-न्तरके साथ उपजापका प्रयोग करसकता है, या अभ्यन्तर उपजपिता बाह्यके साथ; इनमें से शठबुद्धि उपजपिता किसप्रकार उपजाप करता है, और कल्याणबुद्धि किसप्रकार ? इस बातका विवेचन कियाजायगाः—उनमेंसे शठ-बुद्धि बाह्य, अभ्यन्तरके साथ इसप्रकार उपजाप करता हैः—॥ ४८ ॥ मेरे द्वारा भेदको प्राप्त करायाहुआ मन्त्री, यदि मालिकको मारकर उसके स्थानपर मुझे राजा बनादेगा, तो शत्रुका नाश और भूमिका लाभ, ये दोनों ही फ़ायदे होजायेंगे ॥ ४९ ॥

अथ वा शत्रुरेनमाहनिष्यतीति हतबन्धुपक्षस्तुल्यदोषदण्डेन चोद्विग्नश्च ॥ ५० ॥ मे भूयान् कृत्यपक्षो भविष्यति ॥ ५१ ॥

अथवा यदि शत्रु ही मन्त्रीको मार डालेगा, तो मारेहुए मन्त्रीका बन्धुवर्ग; तथा मन्त्रीके समान ही अपराध करनेवाला क्रुद्ध तथा लुब्धवर्ग

(देखो:-प्रथम अधिकरणका तेरहवां चौदहवां अध्याय), मन्त्रीके वधके कारण, राजासे अत्यन्त उद्विग्न होजावेगा ॥ ५० ॥ इसप्रकार वहांपर मेरा बहुतसा कृत्यपक्ष बनजायगा; अर्थात् मारेहुए मन्त्रीके बन्धुवर्ग आदिको बड़ी सरलतासे मैं अपने वशमें करसकूंगा ॥ ५१ ॥

तद्विधे वान्यास्मिन्नपि शङ्कितो भविष्यति ॥ ५२ ॥ अन्यमन्यं चास्य मुख्यमभिव्यक्तशासनेन घातयिष्यामीति ॥ ५३ ॥

तथा इसप्रकारके अन्य कर्मचारियोंपर भी विजिगीषुको विश्वास नहीं रहेगा। अर्थात् वह अपने दूसरे कर्मचारियोंपर भी सन्देह करने लगेगा ॥ ५२ ॥ इसतरह एक २ करके (राजाके) सब ही मुख्य कर्मचारियोंको, अभित्यक्त पुरुषोंके हाथ नक़ली चिट्ठियां भिजवाकर मरवा डालूंगा। तात्पर्य यह है, कि उन कर्मचारियोंके नाम, विजिगीषुके बध तथा बन्धन आदिके सम्बन्धमें कूट चिट्ठियां लिख २ कर विजिगीषुको उनसे विरुद्ध करादूंगा; और वह विजिगीषु उन सबको नष्ट करदेगा; इसप्रकार मेरी कार्यसिद्धि होजायगी। यहांतक अभ्यन्तर मन्त्री आदिको फाड़नेके लिये बाह्य शठके उपजापका प्रकार बतायागया ॥ ५३ ॥

अभ्यन्तरो वा शठो बाह्यमेवमुपजपति—॥ ५४ ॥ कोशमस्य हरिष्यामि ॥ ५५ ॥ दण्डं वास्य हनिष्यामि ॥ ५६ ॥ दुष्टं वा भर्तारमनेन घातयिष्यामि ॥ ५७ ॥ प्रतिपन्नं बाह्यममित्राटविकेषु विक्रमयिष्यामि ॥ ५८ ॥ चक्रमस्य सज्यताम् ॥ ५९ ॥ वैरमस्य प्रसज्यताम् ॥ ६० ॥ ततः स्वाधीनो मे भविष्यति ॥ ६१ ॥ ततो भर्तारमेव प्रसादयिष्यामि ॥ ६२ ॥

अब इसके आगे अभ्यन्तर शठ, बाह्यको फाड़नेके लिये किसप्रकार उपजाप करता है, इसका निरूपण किया जायगा:-अभ्यन्तर शठ, बाह्यके प्रति इसप्रकारका उपजाप करता है, कि:-॥ ५४ ॥ इस बाह्यके कोशका अपहरण करूंगा ॥ ५५ ॥ अथवा इसकी सेनाको मार डालूंगा ॥ ५६ ॥ अथवा अपने दुष्ट मालिकको इसके द्वारा मरवाऊंगा ॥ ५७ ॥ अथवा जब यह मेरे मालिकको मारनेके लिये स्वीकार करलेगा, तो इस बाह्यको शत्रु तथा आटविकोंके साथ मुक़ाबलेमें युद्ध करनेके लिये भेजूंगा ॥ ५८ ॥ इसकी सेना, शत्रु और आटविकोंके साथ मुक़ाबला करनेमें लगी रहेगी ॥ ५९ ॥ तथा उनके (शत्रु आदिके) साथ इसका बराबर वैर बढ़ता जायगा ॥ ६० ॥ उस अवस्थामें यह, मेरे अपने अधीन होजायगा, अर्थात् मेरा आज्ञाकारी होजायगा ॥ ६१ ॥

इससे मैं अपने मालिकको ही प्रसन्न करलूंगा, अर्थात् बाह्यके अपने वशमें होजानेके कारण, मालिक मुझसे अवश्य प्रसन्न होजायगा ॥ ६२ ॥

स्वयं वा राज्यं ग्रहीष्यामि ॥६३॥ बद्ध्वा वा बाह्यभूमिं भर्तृभूमिं चोभयमवाप्स्यामि ॥६४॥ विरुद्धं वावाहयित्वा बाह्यं विश्वस्तं घातयिष्यामि ॥ ६५ ॥ शून्यं वास्य मूलं हरिष्यामीति ॥६६॥

अथवा मैं स्वयं ही बाह्यके राज्यको लेलूंगा, क्योंकि वह मेरा आज्ञाकारी होगा, मुझे रोक नहीं सकता ॥ ६३ ॥ अथवा बाह्यको बांधकर अर्थात् उसे कैद करके, उसकी भूमिको और अपने मालिककी भूमिको दोनोंको ही प्राप्त करलूंगा; तात्पर्य यह है, कि दोनों राज्योंपर मेरा शासन होगा ॥ ६४ ॥ अथवा बाह्यके किसी विरोधीको बुलवाकर, उसके द्वारा ही इस विश्वस्त (विश्वास करनेवाले) बाह्यको मरवा डालूंगा ॥ ६५ ॥ अथवा इसके शून्य मूलस्थानको लूटलूंगा अर्थात् जब यह, शत्रु या आटविक आदिपर आक्रमण करनेके लिये चलाजायगा, इसकी रिक्त राजधानी आदिका अपहरण करूंगा । यहांतक अभ्यन्तर शत्रुके, बाह्यका उपजाप करनेके प्रकारोंका निरूपण कर दियागया; अर्थात् इन उपर्युक्त प्रकारोंसे अभ्यन्तर शठ, बाह्यको भिन्न करता है ॥ ६६ ॥

कल्याणबुद्धिस्तु सहजीव्यर्थमुपजपति ॥६७॥ कल्याणबुद्धिना संदधीत ॥ ६८ ॥ शठं तथेति प्रतिगृह्यातिसंदध्यात् इति ॥ ६९ ॥

कल्याण बुद्धि तो साथी बनकर ही उपजाप करता है; अर्थात् उपजाप्यके साथ ही साथ अपनी जीवन वृत्तिको समझकर, उसके हितका ध्यान करके ही उपजापका प्रयोग करता है, वह उसका अहित कभी नहीं चाहता ॥ ६७ ॥ इसलिये कल्याणबुद्धिके साथ अवश्य सन्धि करलेनी चाहिये ॥ ६८ ॥ और शठको तो 'जैसा तुमने कहा है, मैं वैसा ही करूंगा; इस प्रकारका वचन देकर पीछेसे धोखा देवे । अर्थात् पहिले उसकी बातको मानकर, फिर अवसर पाकर उसे ठगलेवे ॥ ६९ ॥

एवमुपलभ्यः—

परे परेभ्यः स्वे स्वेभ्यः स्वे परेभ्यः स्वतः परे ।
रक्ष्याः स्वेभ्यः परेभ्यश्च नित्यमात्मा विपश्चिता ॥ ७१ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे पश्चात्कोपचिन्ता, बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारश्च तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितश्चतुर्विंशशततो ऽध्यायः ॥ १२४ ॥

इसप्रकार कल्याणबुद्धि और शठबुद्धिका निश्चय करके ॥ ७० ॥ विद्वान्, कार्यके तत्वको जाननेवाले विजिगीषुको चाहिये, कि वह, जिन दूसरोंके सम्बन्धमें यह जानता है, कि ये शठ हैं, उनकी दूसरोंसे रक्षा करे, अर्थात् उनकी इस बातको किसी तरह भी प्रकाशित न होने दे। इसीप्रकार जो अपने आदमी शठ हों, उनको अपनोंसे ही रक्षा करे, अर्थात् उनके इस भावको अपनोंपर भी प्रकट न होने दे। इसी तरह अपनोंको दूसरोंसे और दूसरोंको अपनोंसे भी रक्षा करे; अर्थात् एक दूसरेके इन भावोंको किसीपर प्रकाशित न करे। तथा अपने और पराये दोनोंसे, अपने आपकी रक्षा करे; अर्थात् अपने परायोंके प्रति कोई भी उनके अनुकूल या प्रतिकूल अभिप्राय अपनी ओरसे प्रकट न करे ॥ ७१ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त।

चौथा अध्याय।

१४२ प्रकरण ।

क्षय व्यय तथा लाभका विचार।

युग्य अर्थात् वाहन और पुरुषोंका नाश होजाना 'क्षय', धान्य हिरण्य आदिका नाश होजाना 'व्यय' और भूमि आदिकी प्राप्ति होना 'लाभ' कहाता है। इन्हींकी परस्पर लघुता गुरुताका विचार इस प्रकरणमें किया जायगा।

युग्यपुरुषापचयः क्षयः ॥ १ ॥ हिरण्यधान्यापचयो व्ययः ॥ २ ॥ ताभ्यां बहुगुणविशिष्टे लाभे यायात् ॥ ३ ॥

हाथी घोड़े आदि सवारियां, तथा कर्मचारी पुरुषोंके नाश होजानेकोही 'क्षय' कहते हैं ॥ १ ॥ हिरण्य (सोने आदिके सिक्के=धन) और धान्य (व्रीही आदि) का नाश होना 'व्यय कहाता है ॥ २ ॥ क्षय और व्ययका ध्यान रखते हुए, जिस समयमें अत्यधिक गुणोंसे युक्त लाभकी सम्भावना हो, उसी समय आक्रमणके लिये जाना चाहिये। (वे गुण कौनसे होते हैं ? इनका निरूपण अगलेही सूत्रमें किया जाता है ॥ ३ ॥

आदेयः प्रत्यादेयः प्रसादकः प्रकोपको ह्रस्वकालस्तनुक्षयोऽल्पव्ययो महान्वृद्ध्युदयः कल्यो धर्म्यः पुरोगश्चेति लाभसंपत् ॥ ४ ॥

वे निम्न-लिखित बारह गुण होते हैं:—आदेय, प्रत्यादेय, प्रसादक, प्रकोपक, ह्रस्वकाल, तनुक्षय, अल्पव्यय, महान, वृद्ध्युदय, कल्य, धर्म्य और पुरोग; ये बारह, लाभकी सम्पत्ति या गुण कहाते हैं। (इन सबके स्वरूपका निरूपण क्रमशः अगले सूत्रमें किया जाता है ॥ ४ ॥

सुप्राप्यानुपाल्यः परेषामप्रत्यादेय इत्यादेयः ॥ ५ ॥ विपर्यये प्रत्यादेयः ॥ ६ ॥ तमाददानस्तत्रस्थो वा विनाशं प्राप्नोति ॥ ७ ॥

जो बड़ी सरलतासे प्राप्त किया जासके, तथा प्राप्तिके अनन्तर सरलता से ही रक्षा किया जासके; और कालान्तरमें भी जिसको शत्रु न छीन सके, ऐसे लाभको 'आदेय' कहा जाता है। अर्थात् यह लाभका एक विशेष गुण है ॥ ५ ॥ जो इससे विपरीत लाभ हो; अर्थात् जिसकी प्राप्ति और रक्षामें भी अत्यन्त कठिनता हो, कालान्तरमें शत्रु भी जिसको छीन सके, ऐसे लाभका नाम 'प्रत्यादेय' है ॥ ६ ॥ इसप्रकारके भूमि आदिके लाभको प्राप्त करता हुआ, अथवा वहींपर रहकर जीवन निर्वाह करता हुआ विजिगीषु, अवश्यही नाशको प्राप्त होता है। (महामहोपाध्याय त० गणपति शास्त्रीने इस सूत्रके 'विपर्यये' पदका सम्बन्ध पहिले सूत्रके केवल 'अप्रत्यादेय' पदके साथही किया है। सुप्राप्य और अनुपाल्य होनेपर भी जो लाभ, कालान्तरमें शत्रुके द्वारा छीना जासके, उसको 'प्रत्यादेय' कहना चाहिये) ॥ ७ ॥

यदि वा पश्येत्—॥ ८ ॥ प्रत्यादेयमादाय कोशदण्डनिचयरक्षानिधानान्यवस्रावयिष्यामि ॥ ९ ॥ खनिद्रव्यहस्तिवनसेतुबन्धवणिक्पथानुद्धृतसारान्करिष्यामि ॥ १० ॥ प्रकृतीरस्य कर्शयिष्यामि ॥ ११ ॥ आवाहयिष्याम्यायोगेनाराधयिष्यामि वा ॥ १२ ॥

अवस्था विशेषमें 'प्रत्यादेय' नामक लाभको भी ग्रहण करना चाहिये, इसबातका अब निरूपण किया जायगा:—विजिगीषु यदि यह समझे, कि:— ॥ ८ ॥ मैं प्रत्यादेय लाभको लेकर, उस लाभके नाशसे (अर्थात् शत्रुके द्वारा किये गये, उस लाभके नाशसे), अपने शत्रुके कोश (ख़ज़ाना), दण्ड (सेना), धान्य आदिके सञ्चय और दुर्ग तथा परकोटे आदिकी रक्षाके प्रकारोंको हीन बनादूंगा ॥ ९ ॥ अथवा शत्रुकी खान, द्रव्यवन (लकड़ियोंके जंगल) हस्तिवन (हाथियोंके जंगल), सेतुबन्ध (बड़े २ जलाशय), तथा व्यापारी मार्गोंको लूट खसोटकर नष्टकर डालूंगा ॥ १० ॥ अथवा शत्रुकी अमात्य आदि

प्रकृतियोंको कष्ट पहुंचाकर कृश (निर्बल), बनाडालूंगा ॥ ११ ॥ शत्रुकी प्रकृतियोंको वहींपर बुलालूंगा; अर्थात् उस भूमिको प्राप्त करके उसका फल भोगनेके लिये शत्रुकी प्रजाओंको वहां लाकर बसा दूंगा; अथवा उनकी इच्छानुसार सब तरहके सुखसाधनोंकी स्वीकृति देकर उन्हें प्रसन्न करलूंगा । (इस सूत्रमें 'आवाहयिष्यामि' के स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'अपवाहयिष्यामि' भी पाठ है । अर्थमें कोई विशेष भेद नहीं; परन्तु पहिला पाठ अच्छा मालूम होता) ॥ १२ ॥

ताः परः प्रयोगेण कोपयिष्यति ॥ १३ ॥ प्रतिपक्षे वास्य पण्यमेनं करिष्यामि ॥ १४ ॥ मित्रमवरुद्धं वास्य प्रतिपादयिष्यामि ॥ १५ ॥ मित्रस्य स्वस्य वा देशस्य पीडामत्रस्थस्तस्करेभ्यः परेभ्यश्च प्रतिकरिष्यामि ॥१६॥ मित्रमाश्रयं वास्य वैगुण्यं ग्राहयिष्यामि ॥ १७ ॥

अथवा शत्रु, उन प्रजाओंको, उनके प्रतिकूल आचरण करनेसे, अपनी ओरसे कुपित करदेगा, तात्पर्य यह है, कि जब मुझसे (विजिगीषुसे) गृहीत उस भूमिको शत्रु वापिस छीन लेगा, तब मैंने प्रजाओंपर जो अनुग्रह किया था उसके विपरीत आचरण करनेके कारण, वह उन प्रजाओंको अपनी ओरसे कुपित करलेगा ॥ १३ ॥ अथवा उस लाभको (प्राप्त की हुई भूमिको) शत्रुके विरोधी पक्षमें बेचडालूंगा ॥ १४ ॥ अथवा विशेष लाभ आदिसे रहित, शत्रुके उस स्थानमें, अपने मित्र या अपने पुत्र आदिको अधिकारी बनाकर स्थापित करदूंगा ॥ १५ ॥ अथवा प्राप्त की हुई भूमिमें स्थित होकर मैं, अपने तथा अपने मित्रके देशको, चोरों और शत्रुओंसे पहुंचाई जाने वाली पीड़ाका अच्छी तरह प्रतीकार कर सकूंगा ॥ १६ ॥ अथवा इस शत्रुके मित्र, तथा इसके आश्रय (आश्रय शब्दसे उस बलवान् राजाका ग्रहण किया जाता है, जिसकी छत्र-च्छायामें रहता हुआ दूसरा छोटा राजा अपनी शक्तिको बढ़ाता रहे, इसप्रकारके आश्रयभूत राजा) को, इससे प्रतिकूल बनादूंगा; अर्थात् उस भूमिमें रहकर इनका परस्पर वैमनस्य करवादूंगा ॥ १७ ॥

तदमित्रं विरक्तं तत्कुलीनं प्रतिपत्स्यते, सत्कृत्य वास्मै भूमिं दास्यामीति संहितसमुत्थितं मित्रं मे चिराय भविष्यतीति प्रत्यादेयमपि लाभमाददीत ॥ १८ ॥ इत्यादेयप्रत्यादेयौ व्याख्यातौ ॥ १९ ॥

अथवा प्राप्त कीहुई भूमिमें बैठकर मैं, शत्रुके मित्र अथवा उसके आश्रयभूत राजाके सन्मुख, प्रजासे ठीक २ कर ग्रहण करनेमें शत्रुकी अयोग्यताके तथा प्रजाको पीड़ा पहुंचानेके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहूंगा, इसतरह शत्रुका मित्र, उससे विरक्त होकर, उसके कुलके किसी अन्य योग्य व्यक्तिको या उसके पुत्र आदिको ही राजसिंहासनपर बैठानेका यत्न करेगा। अथवा मैं स्वयंही प्राप्त कीहुई उस भूमिको सत्कार पूर्वक शत्रुकोही वापस देदूंगा; इस प्रकार सन्धि होनेके कारण वह मेरा चिरस्थायी मित्र बनजावेगा; इत्यादि सब विशेष अवस्थाओंको देखकर विजिगीषु 'प्रत्यादेय' लाभको भी अवश्य ग्रहण करलेवे ॥ १८ ॥ इसप्रकार यहांतक 'आदेय' और 'प्रत्यादेय' दोनों लाभोंका निरूपण किया गया ॥ १९ ॥

अधार्मिकाद्धार्मिकस्य लाभो लभ्यमानः स्वेषां परेषां च प्रसादको भवति ॥ २० ॥ विपरीतः प्रकोपक इति ॥ २१ ॥ मन्त्रिणामुपदेशाल्लाभो ऽलभ्यमानः कोपको भवति ॥ २२ ॥ अयमस्माभिः क्षयव्ययौ ग्राहित इति ॥ २३ ॥

अधार्मिक राजासे धार्मिक राजाको प्राप्त हुआ २ लाभ (अर्थात् भूमि आदिका लाभ) अपने और पराये अर्थात् धार्मिक और अधार्मिक दोनों प्रकारके पुरुषोंको प्रसन्न करने वाला होता है; इसीलिये इस लाभको 'प्रसादक' कहते हैं ॥ २० ॥ इससे विपरीत लाभ 'प्रकोपक' कहाता है । अर्थात् धार्मिक राजासे अधार्मिक राजाको प्राप्त हुआ २ लाभ, धार्मिक और आधार्मिक दोनोंकोही कुपित करने वाला होता है। इसीलिये इसका नाम 'प्रकोपक' है ॥ २१ ॥ प्रकोपक लाभके और भी दो प्रकार होते हैं:—मन्त्रियोंके उपदेशसे, अर्थात् मन्त्रियोंके कहनेके अनुसार काम करनेपर भी लाभका न होना स्वामीको कुपित करने वाला होता है। अर्थात् ऐसी अवस्थामें राजा, मन्त्रियोंसे कुपित होजाता है ॥ २२ ॥ तथा, व्यर्थमेंही हमने अमुक व्यक्तिका क्षय और व्यय करवाया यह विचारकर मन्त्रियाके लिये भी वह कार्य शङ्काजनक हो जाता है ॥ २३ ॥

दूष्यमन्त्रिणामनादराल्लाभो लभ्यमानः कोपको भवति, सिद्धार्थो ऽयमस्मान्विनाशयिष्यतीति ॥ २४ ॥ विपरीतः प्रसादकः ॥ २५ ॥ इति प्रसादककोपकौ व्याख्यातौ ॥ २६ ॥

इसीप्रकार दूष्य मन्त्रियोंका अनादर करनेसे प्राप्त हुआ २ लाभ भी उनको कुपित करने वाला होता है। तात्पर्य यह है, कि राजा दूष्य मन्त्रियोंका

तिरस्कार करता है, और इसमें उसे विशेष लाभ होजाता है, यह बात मन्त्रियोंके चित्तमें शंकाको उत्पन्न करदेती है, और वे उसकी ओरसे कुपित होजाते है। मन्त्रियोंके चित्तमें शंकाका इसप्रकार प्रादुर्भाव होता है; कि यदि यह सफलप्रयत्न होगया, तो अवश्यही हमको नष्ट करदेगा ॥ २४ ॥ इनसे विपरीत लाभ, प्रसन्न करने वाला होनेके कारण 'प्रसादक' कहा जाता है। अर्थात् मन्त्रियोंके उपदेशके अनुसार प्राप्त हुआ २ लाभ, और दूष्यमन्त्रियोंके तिरस्कारसे न प्राप्त हुआ २ लाभ, सबको प्रसन्न करने वाला होता है, इसलिये इसको 'प्रसादक' कहते हैं ॥ २५ ॥ इसप्रकार यहांतक 'प्रसादक' और 'प्रकोपक' लाभोंका निरूपण किया गया ॥ २६ ॥

गमनमात्रसाध्यत्वाद्ध्रस्वकालः ॥ २७ ॥ मन्त्रसाध्यत्वात्तनुक्षयः ॥ २८ ॥ भक्तमात्रव्ययत्वादल्पव्ययः ॥ २९ ॥ तदात्ववैपुल्यान्महान् ॥ ३० ॥ अर्थानुबन्धकत्वाद्वृद्ध्युदयः ॥३१॥ निराबाधकत्वात्कल्यः ॥ ३२ ॥ प्रशस्तोपादानाद्धर्म्यः ॥ ३३ ॥ सामवायिकानामनिर्बन्धगामित्वात्पुरोग इति ॥ ३४ ॥

थोड़ा ही सा परिश्रम करनेसे, अर्थात् जाने मात्रसे ही जो लाभ प्राप्त होजाय, उसे ह्रस्वकाल कहते हैं ॥ २७ ॥ जो लाभ केवल मन्त्र अर्थात् उपजाव आदिसे ही प्राप्त होजाने वाला हो, उसे 'तनुक्षय' कहते हैं। (मन्त्र में चतुर, थोड़ी शक्ति वाला भी राजा इस लाभको प्राप्त करसकता है) ॥ २८ ॥ जो लाभ केवल भोजन आदिका व्यय करके ही प्राप्त होजाय, उसे 'अल्पव्यय' कहते हैं ॥ २९ ॥ जो तत्काल ही अर्थात् एक साथ ही अत्यधिक लाभ प्राप्त होजाय, उसे 'महान्' कहते हैं ॥ ३० ॥ जो लाभ भविष्यमें भी अत्यधिक अर्थप्राप्तिको करानेवाला हो, उसे 'वृद्ध्युदय' कहते हैं ॥ ३१ ॥ जिस लाभमें आगे किसी तरहकी भी बाधा उपस्थित न होसके, उसे 'कल्य' कहा जाता है ॥ ३२ ॥ जो लाभ प्रकाशयुद्ध आदिसे धर्मपूर्वक ग्रहण किया जावे, उसे 'धर्म्य' कहते हैं ॥ ३३ ॥ आपसमें मिलकर आक्रमण करने वाले राजाओंके, प्राप्तिके सम्बन्धमें पहिलेसे कोई शर्त्त न होनेके कारण, अपने २ प्राप्त कियेहुए लाभको 'पुरोग कहते हैं ॥ ३४ ॥

तुल्ये लाभे देशकालौ शक्त्युपायौ प्रियाप्रियौ जवाजवौ सामीप्यविप्रकर्षौ तदात्वानुबन्धौ सारत्वसातत्ये बाहुल्यबाहुगुण्ये च विमृश्य बहुगुणयुक्तं लाभमाददीत ॥ ३५ ॥

उभयपक्षमें बराबर ही लाभ होनेपर, देशकाल आदिके अनुसार अच्छीतरह विचारकर, जो लाभ बहुत गुणोंसे युक्त हो, उस ही का ग्रहण करे। उसका विचार या विवेचन इसप्रकार करना चाहियेः—देश और काल किसी एक ही वस्तुमें गुणविशेषकी उत्पत्तिके, कारण होते हैं; मन्त्र प्रभाव और उत्साह इन तीनों शक्तियोंमें पहिली पहिली शक्तिसे प्राप्त किया हुआ लाभ, उत्तरोत्तर शक्तिसे प्राप्त कियेहुए लाभकी अपेक्षा अधिक प्रशस्त (अच्छा) होता है; इसीप्रकार साम दान भेद और दण्ड, इन चार उपायोंमें अगले २ उपायसे प्राप्त कियेहुए लाभकी अपेक्षा पहिले पहिले उपायसे प्राप्त कियाहुआ लाभ, उत्तम होता है; हिरण्य आदिका लाभ अर्थात् नकद धन का लाभ, अन्य लाभोंकी अपेक्षा प्रिय होनेके कारण गुणयुक्त समझा जाता है, और लाभ इसके मुकाबले में प्रिय नहीं समझे जाते; इसीतरह शीघ्र प्राप्त होजानेवाला लाभ, विलम्बसे प्राप्त होनेवाले लाभकी अपेक्षा उत्तम होता है; अपनी भूमिके समीप ही होनेवाला लाभ, भूमिसे दूर होनेवाले लाभकी अपेक्षा उत्तम होता है; तत्काल ही होनेवाले लाभकी अपेक्षा, भविष्यमें भी लगातार होनेवाला लाभ प्रशस्त होता है; बहुमूल्य लाभ तथा अत्यधिक उपयोगमें आनेवाला लाभ; संख्या या परिमाणमें अधिक लाभ और बहुत गुणोंसे युक्त लाभ; ये सब बात लाभोंमें गुण बतलानेकी निमित्त हैं अर्थात् लाभोंमें गुणोंका होना इस प्रकार मालूम करलेना चाहिये। तदनन्तर जो लाभ अत्यधिक गुणोंसे युक्त हो, उसीका ग्रहण करना उपयुक्त होता है ॥ ३५ ॥

लाभविघ्नाः—कामः कोपः साध्वसं कारुण्यं ह्रीरनार्यभावो मानः सानुक्रोशता परलोकापेक्षा दाम्भिकत्वमत्याशित्वं दैन्यमसूया हस्तगतावमानो दौरात्मिकमविश्वासो भयमनिकारः शीतोष्णवर्षाणामाक्षम्यं मङ्गलतिथिनक्षत्रेष्टित्वमिति ॥ ३६ ॥

लाभमें निम्नलिखित विघ्न उपस्थित होसकते हैंः—काम (स्त्रीप्रसंग), क्रोध, साध्वस (अप्रगल्भता अर्थात् शत्रु मित्र आदिमें उचित व्यवहारका न करना), करुणा (दया=प्राणियोंके वधकी आशंकासे युद्ध आदिका न करना), लज्जा, अनार्यभाव (विश्वासघात आदिका करना), मान (मैं ही सब कुछ हूं, इसप्रकार अहंकार रखना होना), सानुक्रोशता (किसीके कुछ भेट आदि देदेनेपर, झट उसपर दयालु होजाना, अर्थात् जहां तीक्ष्ण वृत्तिका उपयोग करना चाहिये वहां थोड़ेसे निमित्तसे मृदु बनजाना), परलोकापेक्षा (परलोकको बिगाड़ने वाले पापकी आशंकासे आग लगाने या लूट आदिके विरुद्ध होना), दाम्भिकता (दम्भी होना=अपनेपर विश्वास करनेवालोंको

ही ठगना; किसी २ पुस्तकमें इसकी जगह 'धार्मिकत्वं' भी पाठ है), अत्याशित्व (अन्यायसे अत्यधिक लाभका खाना; किसी पुस्तकमें 'अत्यागित्वं भी पाठ है), दीनता (अपनेसे नीच व्यक्तियोंसे भी सहायता मांगना),असूया (अमात्य पुरोहित आदिके गुणी होनेपर भी उनमें दोषारोपण करना), हस्तगतावमान (हाथमें आईहुई चीजका तिरस्कार करदेना), दौरात्मिक (पीड़ा देनेके योग्य अयोग्य सब ही को पीड़ा पहुंचाना), अविश्वास (विश्वास करने योग्य पुरुषोंमें भी विश्वासका न करना), भय (युद्ध आदिमें पराजयकी आशंकाका होना), अनिकार (शत्रुका तिरस्कार न करना; किसी २ पुस्तकमें 'अप्रतीकार' भी पाठ है, अर्थात् लाभसिद्धिके पूर्व ही आनेवाले विघ्नोंका प्रतीकार न करना), सरदी गरमी तथा वर्षा आदिका न सहसकना, कार्योंके प्रारम्भमें माङ्गलिक तिथि नक्षत्र आदिका देखना; ये सब ही बातें लाभ होनेमें रुकावट डालनेवाली होती हैं ॥ ३६ ॥

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थो ऽतिवर्तते ।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥ ३७ ॥
नाधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्नरा यत्नशतैरपि ।
अर्थैरर्थाः प्रबध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥ ३८ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः

चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥ आदितः पञ्चविंशशतः ॥१२५॥

कार्यके प्रारम्भमें अत्यधिक नक्षत्रोंकी अनुकूलताको पूछनेवाले, अर्थात् घरमें तो आग लगीहुई है, और इधर उसके प्रतीकारके अनुकूल नक्षत्रकी खोज होरही है; इसप्रकार करनेवाला प्रमादी राजा, कभी अपने अभीष्ट अर्थको प्राप्त नहीं करसकता; प्रत्येक कार्यकी सिद्धिके लिये आवश्यक धन आदि उपायोंको ही नक्षत्र समझना चाहिये; ये तारका किसीका क्या विगाड़ या सुधार सकती हैं ॥ ३७ ॥ धन आदिसे हीन अर्थात् आवश्यक उपायोंसे रहित पुरुष सैकड़ों यत्न करनेपर भी अपने अभीष्ट फलको प्राप्त नहीं करसकते; अर्थोंका ही अर्थोंके साथ सम्बन्ध है, धन ही धनको खींचता है; जैसे एक हाथीके सहारेसे दूसरे हाथीको पकड़ लिया जाता है ॥ ३८ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१४३ प्रकरण

बाह्य तथा अभ्यन्तर आपत्तियां ।

[राष्ट्रमुख्य तथा अन्तपाल आदिके द्वारा उत्पन्न की हुई आपत्तियोंको 'बाह्य' और मन्त्री पुरोहित आदिके द्वारा उत्पन्न हुई आपत्तियोंको 'अभ्यन्तर' कहते हैं । इस प्रकरणमें उन आपत्तियों का और उनके प्रतीकारका निरूपण किया जायगा ।

संध्यादीनामयथोद्देशावस्थापनमपनयः ॥ १ ॥ तस्मादापदः संभवन्ति ॥ २ ॥ बाह्योत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा, बाह्योत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा, अभ्यन्तरोत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा, इत्यापदः ॥ ३ ॥

सन्धि विग्रह आदि छः गुणोंके, उचित स्थानोंपर प्रयोग न करनेको ही 'अपनय' कहते हैं; अर्थात् सन्धिके स्थानपर विग्रहका उपयोग, तथा विग्रहके अवसरपर यानका, और यानके मौकेपर सन्धि आदिका उपयोग करना अपनय (नीति मार्गसे भ्रष्ट होना) कहाता है ॥ १ ॥ इस अपनयसे ही सम्पूर्ण आपत्तियोंका प्रादुर्भाव होता है ॥ २ ॥ बाह्य और अभ्यन्तर आपत्तियोंके, उपजपिता तथा प्रतिजपिताके भेदसे चार भेद होते हैं:-(१) बाह्य अर्थात् राष्ट्रमुख्य, अन्तपाल आदि जिस आपत्तिमें उपजपिता (उपजाप अर्थात् भेद आदि डालकर आपत्तिको उत्पन्न करनेवाले) हों; और अभ्यन्तर अर्थात् मन्त्री पुरोहित आदि जिसमें प्रतिजपिता (अर्थात् राष्ट्रमुख्य आदिके द्वारा कियेगये उपजापको स्वीकार करके उसके अनुसार कार्य करने वाले) हों; यह पहिली आपत्ति है । (२) इसी प्रकार जिसमें अभ्यन्तर उपजपिता और बाह्य प्रतिजपिता हों, वह दूसरी आपत्ति कही जाती है। इन दोनों आपत्तियोंके उपजपिता और प्रतिजपिता परस्पर विजातीय होते हैं । (३)-जिसका बाह्य ही उपजपिता और बाह्य ही प्रतिजपिता हो, वह तीसरी आपत्ति है । (४)-और जिसका अभ्यन्तर ही उपजपिता और अभ्यन्तर ही प्रतिजपिता हो, वह चौथी आपत्ति समझी जाती है; इन दोनों आपत्तियोंमें समानजातीय ही उपजपिता और प्रतिजपिता होते हैं । इसप्रकार मिलकर ये चार प्रकारकी आपत्तियां हैं ॥ ३ ॥

यत्र बाह्या अभ्यन्तरानुपजपन्त्यभ्यन्तरा वा बाह्यांस्तत्रो-भययोगे प्रतिजपतः सिद्धिर्विशेषवती ॥ ४ ॥ सुव्याजा हि प्रति-जपितारो भवन्ति नोपजपितारः ॥ ५ ॥ तेषु प्रशान्तेषु नान्यां-श्छक्नुयुरुपजपितुमुपजपितारः ॥ ६ ॥

जहां बाह्य, अभ्यन्तरोंका अथवा अभ्यन्तर बाह्योंका उपजाप करते हैं, अर्थात् जिन दो आपत्तियोंमें उपजपिता और प्रतिजपिता भिन्नजातीय होते हैं; वहां इन दोनोंमें से, आपत्तिका प्रतीकार करनेके लिये प्रतिजपिताको साम दान आदिके द्वारा शान्त करदेना अर्थात् अपने अनुकूल बना लेना अधिक श्रेयस्कर (या लाभप्रद) होता है ॥ ४ ॥ क्योंकि प्रतिजपिता पुरुषों के प्रतिजापका कारण धनग्रहण आदि ही होता है, इसलिये उनको धन आदिके द्वारा सुखपूर्वक वशमें किया जासकता है; परन्तु उपजपिता पुरुषों को इसप्रकार वशमें नहीं किया जासकता, क्योंकि उनके उपजापके कारणका पता लगना कठिन होता है ॥ ५ ॥ इसप्रकार किन्हीं प्रतिजपिताओंके प्रशान्त होजानेपर, उपजपिता फिर अन्य व्यक्तियोंमें उपजाप करनेके लिये तैयार नहीं हो सकते, क्योंकि उनको अपने उपजापके फूट जानेका डर रहता है ॥ ६ ॥

कृच्छ्रोपजापा हि बाह्यानामभ्यन्तरास्तेषामितरे वा, महतश्च प्रयत्नस्य वधः, परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनोऽन्य इति ॥ ७ ॥

तथा बाह्योंके लिये अभ्यन्तरोंका और अभ्यन्तरोंके लिये बाह्योंका उपजाप करना बड़ा कठिन होता है; क्योंकि ये दोनों प्रकारके व्यक्ति एक दूसरेसे सर्वथा पृथक् रहते हैं। और यदि उपजाप्य व्यक्ति (जिनके ऊपर उपजापका प्रयोग किया जाता है) उस उपजापको स्वीकार न करें, तथा उसे फोड़ देवें, तो उपजपिताका बड़ा भारी प्रयत्न निष्फल होजाता है। इसप्रकार उपजापके फोड़ देनेसे उपजाप्य पुरुष अपने स्वामीकी प्रसन्नता रूप अभीष्ट सिद्धिको प्राप्त करते हैं; और उपजपिता स्वामीके अप्रसाद (अप्रसन्नता) रूप अनर्थका भागी होता है। इसलिये भी अभ्यन्तर और बाह्यका परस्पर उपजाप करना अत्यन्त कठिन है। (नयचन्द्रिका व्याख्याके कर्त्ता माधवयज्वान इस सूत्रके अन्तिम 'अन्य' पदसे रहित 'महतश्च प्रयत्नस्य वधः, परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनः' इतना ही सूत्र पाठ मानकर इसप्रकार व्याख्यान किया है:—यद्यपि बाह्य और अभ्यन्तरका परस्पर उपजाप अति कठिन है, फिर भी उसे छोड़ना न चाहिये; क्योंकि उपजापसे दूसरेके उत्साह का नाश, और अपने उत्साहकी वृद्धि होती है) ॥ ७ ॥

अभ्यन्तरेषु प्रतिजपत्सु सामदाने प्रयुञ्जीत ॥ ८ ॥ स्थानमानकर्म सान्त्वम् ॥ ९ ॥ अनुग्रहपरिहारौ कर्मस्वायोगो वा दानम् ॥ १० ॥

प्रतिजपिताको शान्त करनेके लिये उपायोंका निरूपण किया जाता है:—यदि मन्त्री पुरोहित आदि अभ्यन्तर पुरुष ही प्रतिजपिता होवें तो साम और दानका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥ विशेष अधिकार स्थानोंपर नियुक्ति करना (=स्थानकर्म), तथा छत्र चामर आदि रखनेकी स्वीकृति देदेना (=मानकर्म,) साम कहाता है; अर्थात् सामका प्रयोग इसप्रकार करना चाहिये ॥ ९ ॥ अनुग्रह (धनका देना) और परिहार (लिये जाने वाले धनका न लेना, या कर आदिका छोड़देना); तथा विशेष कार्योंमें उसके सम्पूर्ण फलको स्वयं लेलेनेकी अनुमति देदेना, (अर्थात् कियेगये कार्यके सम्पूर्ण फलको, उस कार्यका करनेवाला ही लेलेवे, राजा उसमेंसे अपना अंश सर्वथा न लेवे) यह दान होता है। अर्थात् यह दानके प्रयोगका प्रकार है ॥ १० ॥

बाह्येषु प्रतिजपत्सु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत ॥ ११ ॥ सत्त्रिणो मित्रव्यञ्जना वा बाह्यानां चारमेषां ब्रूयुः ॥ १२ ॥ अयं वो राजा दूष्यव्यञ्जनैरतिसंधातुकामो बुध्यध्वमिति ॥ १३ ॥

यदि बाह्य प्रतिजपिता होवें, तो उन्हें शान्त करने के लिये भेद और दण्डका प्रयोग करना चाहिये ॥ ११ ॥ बाह्योंके प्रतिजपिता होनेपर, उनके मित्रके वेषमें रहनेवाले सत्त्री (गुप्तचर विशेष), उन बाह्योंके सामने राजाके गुप्त भेदका इस प्रकार उद्घाटन करें:— ॥ १२ ॥ यह आपका राजा, दूष्य अमात्य आदिके द्वारा (अर्थात् ऊपरसे आपके प्रिय की बात कहनेवाले, पर अन्दरसे अप्रिय चिन्तन करनेवाले अमात्य आदिके द्वारा) आपको प्रतिजपिता बनाकर धोखा देना चाहता है; इस रहस्यको आप अच्छी तरह जान कर प्रतिजपिताके कार्यमें कभी कदम न रक्खें ॥ १३ ॥

दूष्येषु वा दूष्यव्यञ्जनाः प्रणिहिता दूष्यान्बाह्यैर्भेदयेयुर्बाह्यान्वा दूष्यैः ॥ १४ ॥ दूष्याननुप्रविष्टा वा तीक्ष्णाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः ॥ १५ ॥ आहूय वा बाह्यान्घातयेयुरिति ॥ १६ ॥

अथवा राजाके अप्रियकारी अभ्यन्तर अमात्य आदि तथा बाह्य राष्ट्र-मुख्य आदिके प्रतिजपिता होनेपर, दूष्य (राजाके अप्रियकारी) के वेषमें

रहनेवाले गुप्तचर, दूष्योंको बाह्योंसे और बाह्योंको दूष्योंसे भिन्न २ कर दें, अर्थात् उनका आपसमें भेद डाल दें ॥ १४ ॥ अथवा दूष्योंके मध्यमें प्रविष्ट हुए २ तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्र अथवा विष आदिके द्वारा उनको (दूष्योंको) मार देवें ॥ १५ ॥ अथवा बाह्योंको किसी बहानेसे अलहदा बुलाकर मार डालें। यहां तक पहिली दो आपत्तियोंके प्रतीकारका निरूपण किया गया॥१६॥

यत्र बाह्या बाह्यानुपजपन्त्यभ्यन्तरानभ्यन्तरा वा, तत्रैकान्तयोगमुपजपितुः सिद्धिर्विशेषवती ॥ १७ ॥ दोषशुद्धौ हि दूष्या न विद्यन्ते ॥ १८ ॥ दूष्यशुद्धौ हि दोषः पुनरन्यान्दूषयति॥१९॥

अब अन्तिम दो आपत्तियोंके प्रतीकारका कथन किया जायगा:— जहांपर बाह्य, बाह्योंको और अभ्यन्तर अभ्यन्तरोंको उपजाप करते हैं, वहां समानजातीयके उपजाप प्रतिजाप प्रयोगमें; उपजपिताको अपने अनुकूल बना लेना ही अधिक श्रेयस्कर होता है ॥ १७ ॥ क्योंकि उपजाप रूप दोषके न रहनेसे, दूष्य पुरुषोंका भी प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है, कि उपजापसे ही दूष्य पुरुषोंकी उत्पत्ति होती है, यदि उपजपिता पुरुषोंको ही अपने अनुकूल बना लिया जाय, तो उपजापकी आशंका ही नहीं रहती ॥ १८ ॥ दूष्य पुरुषों (उपजाप रूप दोषसे दूषित बुद्धि वाले प्रतिजपिता पुरुषों) के शान्त करनेके लिये यत्न करनेपर तो, उपजाप रूप दोष अन्य पुरुषोंको फिर दूषित कर सकता है; इसलिये उपजपिताको ही शान्त करने का यत्न करना चाहिये ॥ १९ ॥

तस्माद्बाह्येषूपजपत्सु भेददण्डौ प्रयुञ्जीत ॥ २० ॥ सत्रिणो मित्रव्यञ्जना वा ब्रूयुः ॥ २१ ॥ अयं वो राजा स्वयमादातुकामो विगृहीताः स्थानेन राज्ञा बुध्यध्वमिति ॥ २२ ॥

इसलिये (=उपजपिताको ही अनुकूल बनानेके कारण) उपजाप करनेवाले बाह्य पुरुषोंमें भेद और दण्डका ही प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥ उनके (उपजपिताओंके) मित्रके वेषमें रहनेवाले सत्री, उपजपिताओंको इस प्रकार कहें:— ॥ २१ ॥ यह राजा तुमको प्रतिजपिता पुरुषोंके द्वारा अपने अधीन करना चाहता है, इसलिये इस राजासे तुम्हें विग्रह कर देना चाहिये; आप लोगोंको यह सब सोचते हुए सम्भल कर रहना चाहिये; अर्थात् किसीपर भी विश्वासपूर्वक उपजापका प्रयोग मत करो ॥ २२ ॥

प्रतिजपितुर्वा ततो दूतदण्डाननुप्रविष्टास्तीक्ष्णाः शस्त्ररसादिभिरेषां छिद्रेषु प्रहरेयुः ॥ २३ ॥ ततः सत्रिणः प्रतिजपितारमभिशंसेयुः ॥ २४ ॥

अथवा प्रतिजपिताके पाससे उपजपिताके समीप बातचीत करनेके लिये जाते हुए (प्रतिजपितुर्वाऽततः), या जहां उपजपिता है, वहां जाते हुए दूत अथवा सैनिक पुरुषोंमें प्रविष्ट हुए २ तीक्ष्ण पुरुष, शस्त्र तथा रस आदिके द्वारा अवसर पाकर इनपर हमला करें। अर्थात् ये तीक्ष्ण पुरुष, उपजापिताको शस्त्रके द्वारा अथवा विष आदि देकर मार डालें ॥ २३ ॥ तदनन्तर सत्री, इस तरह की मृत्युके सम्बन्धमें प्रतिजपिता पुरुषोंका नाम लेवें। अर्थात् वे मिथ्या ही इस बातको प्रसिद्ध कर दें, कि उपजपिता पुरुषों को प्रतिजपिताओंने ही मारा है। जिससे कि प्रत्येक उपजाप करनेवाले पुरुषका, प्रतिजपितामें अविश्वास हो जावे ॥ २४ ॥

अभ्यन्तरानभ्यन्तरेषूपजपत्सु यथार्हमुपायं प्रयुञ्जीत ॥२५॥ तुष्टलिङ्गमतुष्टं विपरीतं वा साम प्रयुञ्जीत ॥ २६ ॥

इसी प्रकार अभ्यन्तरोंको उपजाप करनेवाले अभ्यन्तर पुरुषोंमें भी यथायोग्य साम आदि उपायोंका प्रयोग किया जावे ॥ २५ ॥ सन्तोषके सूचक, पर वस्तुतः असन्तोषप्रद सामका प्रयोग किया जावे, अथवा असन्तोषके सूचक, वस्तुतः सन्तोषजनक सामका ही प्रयोग किया जावे। तात्पर्य यह है, कि अवस्थाके अनुसार इनमेंसे किसी तरहके सामका प्रयोग किया जावे ॥ २६ ॥

शौचसामर्थ्यापदेशेन व्यसनाभ्युदयावेक्षणेन वा प्रतिपूजनमिति दानम् ॥ २७ ॥

शौच अथवा सामर्थ्यके बहाने, तथा बन्धुवियोग आदिके दुःखमय, और पुत्रोत्सव आदिके सुखमय अवसरोंकी अपेक्षा करके वस्त्र तथा आभरण आदिके द्वारा सत्कार किया जाना दान होता है। अर्थात् दानके प्रयोगका यह प्रकार समझना चाहिए ॥ २७ ॥

मित्रव्यञ्जनो वा ब्रूयादेतान् ॥ २८ ॥ चित्तज्ञानार्थमुपधास्यति वो राजा ॥ २९ ॥ तदस्याख्यातव्यमिति ॥ ३० ॥ परस्पराद्वा भेदयेदेनान् ॥ ३१ ॥ असौ च वो राजन्येवमुपजपतीति भेदः ॥ ३२ ॥

अथवा उनके मित्रके वेषमें रहनेवाला सत्री उनको (अभ्यन्तर उपजपिता पुरुषोंको) इस प्रकार कहे:—॥ २८ ॥ तुम्हारे हृदयगत अभिप्रायको जाननेके लिये राजा, धन आदिके द्वारा तुम्हारी परीक्षा करेगा ॥ २९ ॥ इसलिये तुम लोगोंको अपने २ हृदयगत अभिप्राय साफ २ कह देने चाहियें।

इस प्रकार कह देने पर उपजाप्य पुरुष, किसी तरह भी, भयके कारण उपजापको स्वीकार न करेंगे ॥ ३० ॥ अथवा इनको परस्पर भिन्न कर देवे; अर्थात् आपसमेंही इनकी फूट डलवा देवे ॥ ३१ ॥ उनसे कहे, कि अमुक अमुक व्यक्ति. राजाके समीप इस प्रकार तुम्हारे दोषोंको बतलाते हैं। इस तरह इनमें भेदका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३२ ॥

दाण्डकर्मिकवच्च दण्डः ॥ ३३ ॥ एतासां चतसृणामापदामभ्यन्तरामेव पूर्वं साधयेत् ॥ ३४ ॥ अहिभयादभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयानित्युक्तं पुरस्तात् ॥ ३५ ॥

दाण्डकर्मिक प्रकरणमें (देखो—अधि० ५ अध्याय १) बतलाई हुई रीतिके अनुसार ही यहां दण्डका प्रयोग समझना चाहिए। अर्थात् यहां उपांशुदण्डका प्रयोग करना ही उचित है ॥ ३३ ॥ इस प्रकार यहां तक निरूपण की हुई इन चार प्रकारकी आपत्तियोंमेंसे, सबसे प्रथम अभ्यन्तर आपत्तिका ही प्रतीकार करना चाहिये। क्योंकि यह अनर्थकारी होती है, और इसका प्रतीकार भी बड़ी कठिनतासे होता है ॥ ३४ ॥ इस बातका पहिले भी प्रतिपादन किया जा चुका है, कि सर्पके भयके समान, बाह्यकोपकी अपेक्षा अभ्यन्तर कोप अधिक कष्टकर होता है। तात्पर्य यह है कि जैसे घरका सांप या आस्तीनका सांप, बाहरके सांपकी अपेक्षा अधिक भयावह होता है, इसी तरह यहां भी समझना चाहिये ॥ ३५ ॥

पूर्वं पूर्वं विजानीयाल्लघ्वीमापदमापदाम् ।
उत्थितां बलवद्भ्यो वा गुर्वीं लघ्वीं विपर्यये ॥ ३६ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे बाह्याभ्यन्तराश्चापदः पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितः षड्विंशशतः ॥ १२६ ॥

क्रमपूर्वक कही हुई इन चार आपत्तियोंमेंसे, उत्तर उत्तरकी अपेक्षा पूर्व पूर्व आपत्तिको लघु समझना चाहिए। और इसीलिये पूर्व पूर्वकी अपेक्षा ये उत्तरोत्तर आपत्तिको गुरु समझे। परन्तु जो आपत्ति बलवान् उपजपिता आदिके द्वारा उत्पन्न हुई २ हो, वह पूर्वकी होनेपर भी गुरु समझनी चाहिये। और इसी प्रकार निर्बल उपजापिता आदिके द्वारा उत्पन्न हुई २ उत्तर आपत्ति को भी लघु ही समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय

१४४ प्रकरण

दूष्य तथा शत्रुजन्य आपत्तियां।

{ राजकार्योंमें विघ्न डालने वाले अपने ही मुख्य पुरुषोंको 'दूष्य' कहाजाता है; सहज तथा कृत्रिम आदि भेदोंसे 'शत्रु' भी अनेक प्रकारके होते हैं। इन सबके कारण उत्पन्न हुई२ बाह्य और आभ्यन्तर आपत्तियोंका तथा उनके प्रतीकारका, इस प्रकरणमें निरूपण कियाजायगा।

दूष्येभ्यः शत्रुभ्यश्च द्विविधाः शुद्धाः ॥ १ ॥ दूष्यशुद्धायां पौरेषु जानपदेषु वा दण्डवर्जानुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २ ॥

जो आपत्तियां केवल दूष्य पुरुषोंसे, अथवा केवल शत्रुओंसे उत्पन्न हों, वे दो प्रकारकी 'शुद्ध' आपत्तियां कहलाती हैं। अर्थात् एक 'दूष्यशुद्धा' और दूसरी 'शत्रुशुद्धा' ॥ १ ॥ दूष्यशुद्ध अर्थात् दूष्यपुरुषोंके द्वारा उत्पन्न हुई शुद्ध आपत्तियोंके विषयमें, उनके प्रतीकारके लिये नगरनिवासी तथा जनपदनिवासी दूष्य पुरुषोंपर दण्डको छोड़कर शेष सब ही उपायोंका (साम दान और भेदका) यथायोग्य प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

दण्डो हि महाजने क्षेप्तुमशक्यः ॥ ३ ॥ क्षिप्तो वा तं चार्थं न कुर्यात् ॥ ४ ॥ अन्यं चानर्थमुत्पादयेत् ॥ ५ ॥ मुख्येषु त्वेषां दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेतेति ॥ ६ ॥

क्योंकि बड़े आदमियोंपर सहसा दण्डका प्रयोग करदेना अशक्य है ॥ ३ ॥ यदि इसप्रकार दण्डका प्रयोग कर भी दिया जाता है, तो वह कदापि अभीष्ट अर्थको सिद्ध करने वाला नहीं होता ॥ ४ ॥ प्रत्युत किसी दूसरे अनर्थको ही उत्पन्न करदेता है ॥ ५ ॥ इसप्रकार यदि साम आदिके द्वारा इनमें (दूष्य मुख्यपुरुषोंमें) किसी तरह भी शान्ति न होवे, तो दाण्डकर्मिक प्रकरणमें (देखो=अधि० ५, अध्याय १) कहीहुई रीतिके अनुसार ही; इन मुख्य पुरुषोंमें उपांशुदण्डका प्रयोग किया जावे। उससे ही ये शान्त किये जा सकते हैं ॥ ६ ॥

शत्रुशुद्धायां यतः शत्रुः प्रधानः कार्यो वा, ततः सामादिभिः सिद्धिं लिप्सेत ॥ ७ ॥

शत्रुशुद्ध अर्थात् केवल शत्रुके द्वारा उत्पन्न की हुई आपत्तिमें तो (चाहे वह आपत्ति स्वयं शत्रुके द्वारा या उसके मन्त्रीके द्वारा, या उसके अमात्यके द्वारा, या मन्त्री और अमात्य इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न हुई २ हो, अर्थात् शत्रुकी ओरसे ये चार प्रकारकी आपत्ति होसकती हैं, इनमें से कोई भी आपत्ति हो, उसको तो); शत्रु जिस सामन्त आदिके अधीन है, मन्त्री जिसके अधीन है, या अमात्य आदि जिसके अधीन हैं, उनमें साम आदिका यथायोग्य प्रयोग करके विजिगीषुको सिद्धिकी प्राप्ति करनी चाहिये ॥ ७ ॥

स्वामिन्यायत्ता प्रधानसिद्धिः ॥ ८ ॥ मन्त्रिष्वायत्तायत्त-सिद्धिः ॥ ९ ॥ उभयायत्ता प्रधानायत्तसिद्धिः ॥ १० ॥

प्रधान विषयक सिद्धि, अर्थात् मन्त्रीसे उत्पन्न की हुई आपत्तिका प्रतीकार, स्वामीके अधीन होता है; तात्पर्य यह है, कि मन्त्रीके आपत्ति-जनक होनेपर उसके स्वामीको ही साम आदिके द्वारा अनुकूल बनानेका यत्न करना चाहिये ॥ ८ ॥ आयत्तसिद्धि, अर्थात् कार्य शब्दसे कहेहुए (७ वें सूत्रमें) अमात्य आदिके द्वारा उत्पन्न की हुई आपत्तिका प्रतीकार, मन्त्रियोंके अधीन होता है; अर्थात् उसके प्रतीकारके लिये मन्त्रियोंको ही साम आदि प्रयोगोंके द्वारा अनुकूल बनाना चाहिये ॥ ९ ॥ इसीप्रकार मन्त्री और अमात्य दोनोंसे उत्पन्न की हुई आपत्तिका प्रतीकार, स्वामी और मन्त्री इन दोनोंके ही अधीन होता है। अर्थात् इस आपत्तिके प्रतीकारके लिये स्वामी और मन्त्री दोनोंको ही साम आदिके प्रयोगसे अनुकूल बनाना चाहिये ॥ १० ॥

दूष्यादूष्याणामामिश्रितत्वादामिश्रा ॥ ११ ॥ आमिश्रा-यामदूष्यतः सिद्धिः ॥ १२ ॥ आलम्बनाभावे ह्यालम्बिता न विद्यते ॥ १३ ॥

केवल शत्रु आदिसे उत्पन्न हुई शुद्ध आपत्तिका निरूपण करनेके अनन्तर अब दूष्य और अदूष्य (शत्रु) दोनोंके द्वारा मिलकर उत्पन्न कीहुई 'आमिश्र' आपत्तिके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा:—दूष्य और अदूष्य दोनोंके द्वारा उत्पन्न कीहुई आपत्ति 'आमिश्र' या मिश्रित कहाती है; (पहिले दो प्रकारकी 'शुद्ध' आपत्तिका निरूपण किया जा चुका है) ॥ ११ ॥ आमिश्र आपत्तिमें अदूष्यके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होसकती है। अर्थात् आमिश्र आपत्तिका प्रतीकार करनेके लिये अदूष्यको ही साम आदि उपायोंसे अनुकूल बनाना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योंकि अदूष्योंका ही सहारा लेकर दूष्य आपत्ति-जनक हो सकता है, अदूष्यके अनुकूल हो जानेपर वह स्वयं ही शान्त हो जाता है ॥ १३ ॥

मित्रामित्राणामेकीभावात्परमिश्रा, परमिश्रायां मित्रतः सिद्धिः ॥ १४ ॥ सुकरो हि मित्रेण सन्धिर्नामित्रेणेति ॥ १५ ॥

मित्र और शत्रु इन दोनोंके द्वारा मिलकर उत्पन्न की हुई आपत्ति 'परमिश्र' (अर्थात् जिसमें शत्रु विशेष रूपसे मिलकर आपत्तिका जनक होता है,) कहाती है; इसको 'शत्रुमिश्र' भी कहते हैं। परमिश्र आपत्तिमें मित्रके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होसकती है; अर्थात् उस मित्रके द्वारा ही इस आपत्तिका प्रतीकार किया जाता है ॥ १४ ॥ क्योंकि मित्रके साथ सन्धि होजाना सुकर होता है; शत्रु के साथ इस तरह सन्धि होना कठिन है (किसी २ पुस्तकमें 'सन्धिः' पदके स्थानपर 'सिद्धिः' ऐसा पाठ है; अर्थमें कोई विशेष भेद नहीं) ॥ १५ ॥

मित्रं चेन्न संधिमिच्छेदभीक्ष्णमुपजपेत् ॥ १६ ॥ ततः सत्रिभिरमित्राद्भेदयित्वा मित्रं लभेत ॥ १७ ॥ मित्रामित्रसंघस्य वा योऽन्तःस्थायी तं लभेत ॥ १८ ॥ अन्तःस्थायिनि लब्धे मध्यस्थायिनो भिद्यन्ते ॥ १९ ॥

मित्र, यदि सन्धि न करना चाहे, तो बार २ उसका उपजाप करे अर्थात् शत्रुसे भिन्न करनेका यत्न करे ॥ १६ ॥ इसप्रकार सत्री गुप्तपुरुषोंके द्वारा, शत्रुसे उसकी फूट डलवाकर मित्रको प्राप्त करे अर्थात् उसको फिर अपने अनुकूल बनालेवे ॥ १७ ॥ एक देशके व्यवधानसे अथवा देशके साथ ही लगेहुए यथाक्रम मित्र और शत्रुके संघके अवसानमें रहनेवाले सामन्तोंको अपनी ओर मिलावे ॥ १८ ॥ क्योंकि अन्तमें रहनेवाले सामन्तके अपने वशमें होजानेपर मध्यस्थित राजा, परस्पर स्वयं ही फूट जाते हैं ॥ १९ ॥

मध्यस्थायिनं वा लभेत ॥ २० ॥ मध्यस्थायिनि वा लब्धे नान्तःस्थायिनः संहन्यन्ते ॥ २१ ॥ यथा चैषामाश्रयभेदस्तानुपायान्प्रयुञ्जीत ॥ २२ ॥

अथवा मध्यस्थायी सामन्तको ही अपने अधीन करे ॥ २० ॥ क्योंकि मध्यस्थायी सामन्तके वशमें होजानेपर, अर्थात् जब वह अपने वशीभूत होजाता है, तो अन्तमें रहनेवाले राजा भी आपसमें मिल नहीं सकते। अर्थात् उनका परस्पर भेद होजाता है ॥ २१ ॥ तथा जिस प्रकारसे शत्रु और मित्र, अपने आश्रय अर्थात् अपनेको सहारा देनेवाले शक्तिशाली राजासे भिन्न रहसकें, इसीप्रकारके उपायोंका प्रयोग कियाजावे ॥ २२ ॥

धार्मिकं जातिकुलश्रुतवृत्तस्तवेन संबन्धेन पूर्वेषां त्रैकाल्योपकारानपकाराभ्यां वा सान्त्वयेत् ॥ २३ ॥

धार्मिक राजाके विषयमें सामके प्रयोगका यह प्रकार है:-जाति, कुल, श्रुत (पढ़ाई लिखाई), और वृत्त (सद्व्यवहार या आचार) आदिकी स्तुतिके सम्बन्धसे, तथा उनके कुलवृद्धोंके सदा उपकार या अनपकारके द्वारा धार्मिक राजाको शान्त करे ॥ २३ ॥

निवृत्तोत्साहं विग्रहश्रान्तं प्रतिहतोपायं क्षयव्ययाभ्यां प्रवासेन चोपतप्तं शौचेनान्यं लिप्समानमन्यस्माद्वा शङ्कमानं मैत्रीप्रधानं वा कल्याणबुद्धिं साम्ना साधयेत् ॥ २४ ॥

उत्साहहीन, लड़ाईसे थकेहुए, अर्थात् युद्ध करनेमें रुचि न रखने वाले, निष्फल उपाय वाले (अर्थात् जिसके प्रयोग कियेहुए साम आदि उपाय सफल न हुए हों, ऐसे), क्षय (सवारी तथा आदमियोंके नाश), व्यय (धन धान्य आदिके नाश) और प्रवास (दूरदेशकी यात्रा) से संतप्त हुए २, पवित्रता पूर्वक (अर्थात् ईमानदारीसे) किसी दूसरे राजाको अपना मित्र बनानेकी इच्छा रखने वाले, दूसरेसे शङ्का रखनेवाले अर्थात् दूसरेपर विश्वास न करनेवाले, और सबके साथ मित्रभावका ही व्यवहार करनेवाले कल्याणबुद्धि राजाको, सामके द्वारा ही शान्त करनेका प्रयत्न करे ॥ २४ ॥

लुब्धं क्षीणं वा तपस्विमुख्यावस्थापनापूर्वं दानेन साधयेत् ॥ २५ ॥ तत्पञ्चविधम्—॥ २६ ॥ देयविसर्गो गृहीतानुवर्तनमात्तप्रतिदानं स्वद्रव्यदानमपूर्वं परस्वेषु स्वयंग्राहदानं चेति दानकर्म ॥ २७ ॥

लोभी, अथवा धनहीन राजाको, तपस्वी और अन्य मुख्य व्यक्तियोंकी प्रामाणिकतामें दानके द्वारा वशीभूत करे। तात्पर्य यह है, कि देनेके समय तपस्वी तथा प्रधान व्यक्तियोंको इस बातका साक्षी बनावे, कि अमुक राजाको मैंने अमुक समयमें इस शर्तपर इतना धन आदि दिया है जिससे कि आगे किसी तरहके झगड़ेकी सम्भावना न हो ॥ २५ ॥ वह दान पांच प्रकारका होता है ॥ २६ ॥ देयविसर्ग (ग्रहण कीहुई भूमिमें, ब्राह्मण आदिके लिये पहिलेके अनुसार ही छोड़ाहुआ), गृहीतानुवर्त्तन (पहिले पूर्वजोंके द्वारा लीहुई भूमि आदिको भोगनेके लिये प्रतिषेध न करना), आत्तप्रतिदान (लीहुई भूमि आदिका फिर वापस देदेना), नये तौरपर अपने ही द्रव्यका देना, और शत्रुके देशसे लूटेहुए धनको लूटने वालेको ही देदेना, अर्थात् शत्रुके

देश पर चढ़ाई करने पर वहांसे जितना धन लूटमें तुम्हारे हाथ लगेगा, वह तुम्हारा ही होगा; इसप्रकार दानके ये पांच भेद होते हैं ॥ २७ ॥

परस्परद्वेषवैरभूमिहरणशङ्कितमतोऽन्यतमेन भेदयेत् ॥ २८ ॥ भीरुं वा प्रतिघातेन ॥ २९ ॥ कृतसंधिरेष त्वयि कर्म करिष्यति मित्रमस्य निसृष्टम् ॥ ३० ॥ संधौ वा नाभ्यन्तर इति ॥ ३१ ॥

अब भेदका निरूपण किया जाता है:-जो राजा आपसके द्वेष (उसी समय कियेहुए अपकारके द्वारा उत्पन्न हुआ २ विरोधीभाव), वैर (चिरकालसे उत्पन्न हुआ २ विरोधीभाव), तथा भूमिका अपहरण आदि करनेकी आशङ्का रखता हो; उसे इन्हींमें से किसी एकके द्वारा भिन्न करदेवे । अर्थात् द्वेष आदिके द्वारा ही उनकी आपसमें फूट डालदे ॥ २८ ॥ भीरु (डरपोक) राजाको प्रतिघात के द्वारा (शत्रु बलवान् है, यदि तू इस समय युद्ध आदि करेगा, तो मारा जायगा, इसप्रकार भय दिखाकर) भिन्न करदेवे ॥ २९ ॥ अथवा यह कहकर भेद डाले, कि देखो, इस समय तो यह तुमसे सन्धि करलेगा, पर सन्धि करके फिर पीछेसे तुमपर आक्रमण करदेगा; क्योंकि सन्धि करनेके लिये विजिगीषुके पास इसने अपने मित्रको भेजदिया है ॥३०॥ अथवा यह कहकर भेद डाले, कि देखो-शत्रु और मित्रके साथ सन्धि करनेके समयमें इन्होंने तुमको उसमें सम्मिलित नहीं किया, अर्थात् उस कार्यसे तुम्हारा बहिष्कार करदिया ॥ ३१ ॥

यस्य वा स्वदेशादन्यदेशाद्वा पण्यानि पण्यागारतया गच्छेयुस्तान्यस्य यातव्याल्लब्धानीति सत्रिणश्चारयेयुः ॥ ३२ ॥ बहुलीभूते शासनमभिव्यक्तेन प्रेषयेत् ॥ ३३ ॥

मित्र या शत्रु किसीके अपने देशसे या दूसरेके देशसे, पण्यागार (विक्रेय वस्तुओंके रखनेका स्थान विशेष) में रखनेके लिये जो पण्य (बिकने आदिका सामान) आवे; उसके सम्बन्धमें सत्री यह प्रसिद्ध करदें कि छिपे तौरपर सन्धि करनेकी इच्छा रखनेवाले यातव्य (जिसके ऊपर आक्रमण कियाजाने वाला हो, उस) से ही यह सामान प्राप्त हुआ है ॥ ३२ ॥ इस मिथ्या वृत्तान्तके बहुत अधिक फैल जानेपर, एक कपटलेख (बनावटी पत्र लिखकर) अभिव्यक्त (सर्वथा वध्यरूपसे निश्चित हुआ २ पुरुष; इसी अर्थको प्रकट करनेके लिये-अधि० ९, अध्याय ३, सूत्र ५३ की व्याख्यामें 'अभिव्यक्त' के स्थानपर 'अभित्यक्त' शब्दका प्रयोग किया है; यद्यपि मूल सूत्रमें वहां 'अभिव्यक्त' पाठ ही छपगया है, पर नयचन्द्रिका व्याख्याके

अनुसार वहां 'अभिव्यक्त' पाठ ही है। परन्तु इस स्थलमें नयचन्द्रिका व्याख्यामें भी 'अभिव्यक्त' ही पाठ है) पुरुषके हाथमें देकर उसे भेजे ॥ ३३ ॥

एतत्ते पण्यं पण्यागारं वा मया ते प्रेषितम् ॥ ३४ ॥ सामवायिकेषु विक्रमस्वापगच्छ वा ॥ ३५ ॥ ततः पणशेषमवाप्स्यसीति ॥ ३६ ॥ ततः सत्रिणः परेषु ग्राहयेयुः ॥ ३७ ॥ एतदरिप्रदत्तमिति ॥ ३७ ॥

उस लेखका भाव यह होना चाहिये:—यह थोड़ा बहुत सामान मैंने आपके लिये भेजा है, तथा यह पण्यागार अर्थात् पण्य गृहके समान, शकट आदि बड़ा २ सामान भी मैंने आपके पास भेजा है ॥ ३४ ॥ तुम्हारे अपने साथ ही उठनेवाले अर्थात् मेरे शत्रुकी सहायता करनेवाले राजाओंपर आक्रमण करो, अथवा उन्हें छोड़कर अलहदा होजाओ; अर्थात् मेरी सहायता करनेके लिये तैयार होजाओ ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर तुमको, शर्त्त किया हुआ शेष धन भी प्राप्त होजावेगा, अर्थात् मेरी ओरसे तुम्हें शेष धन उसी समय मिल सकेगा, जब तुम उनपर चढ़ाई करोगे, या उन्हें छोड़दोगे। इसप्रकार बनावटी पत्र लिखवाकर उसके पास भेजा जावे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर सत्री, अन्य सामवायिक राजाओंमें इस बातका निश्चय करादे, कि यहपत्र विजिगीषुका अर्थात् आपके शत्रुका दिया हुआ है ॥ ३७ ॥

शत्रुप्रख्यातं वा पण्यमविज्ञातं विजिगीषुं गच्छेत् ॥ ३८ ॥ तदस्य वैदेहकव्यञ्जनाः शत्रुमुख्येषु विक्रीणीरन् ॥ ३९ ॥ ततः सत्रिणः परेषु ग्राहयेयुः, एतत्पण्यमरिप्रदत्तमिति ॥ ४० ॥

अथवा शत्रु अर्थात् सामवायिक राजाओंमें से किसी एकके साथ सम्बन्ध जोड़ेहुए रत्न आदि पण्य (सामान) को, बिना ही किसीके जानेहुए, किसीतरह विजिगीषुके पास पहुंचाया जावे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर व्यापारियोंके वेषमें रहनेवाले उसके गुप्तचर, उस सामानको अन्य, शत्रुके समान मुख्य सामवायिक राजाओंमें लेजाकर बेचें ॥ ३९ ॥ और इसके बाद सत्री (गुप्तचरपुरुष), उस सामानको, अन्य सामवायिक राजाओंमें जाकर रक्षक पुरुषोंके द्वारा यह कहकर पकड़ा देवें, कि यह सब सामान आपके शत्रु अर्थात् विजिगीषुके द्वारा यहां इन (अमुक) पुरुषोंके पास बेचनेके लिये भेजा गया है। इसका परिणाम यह निकलेगा, कि सामवायिक राजाओंके हृदयमें यह निश्चित होजायगा, कि हममें से कोई राज विजिगीषुके साथ मिल गया है। और इसतरह उनमें परस्पर अवश्य फूट होजायगी ॥ ४० ॥

महापराधानर्थमानाभ्यामुपगृह्य वा शस्त्ररसाग्निभिरमित्रे प्रणिदध्यात् ॥ ४१ ॥ अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ ४२ ॥ तस्य पुत्रदारमुपगृह्य रात्रौ हतमिति ख्यापयेत् ॥ ४३ ॥ अथामात्यः शत्रोस्तानेकैकशः प्ररूपयेत् ॥ ४४ ॥

महान अपराध करनेवाले अमात्य आदिको, भूमि हिरण्य आदि धन तथा छत्र चामर आदि सत्कारके देनेसे अपने वशमें करके, उन्हें शत्रुपर शस्त्र तथा रस आदिके द्वारा आक्रमण करनेके लिये नियुक्त करे । तात्पर्य यह है, कि विजिगीषु इस प्रकारके अपराधी अमात्योंसे 'तुम लोग जाकर शस्त्र विष तथा अग्नि आदिके द्वारा शत्रुको मार डालो, यह कहकर छिपे तौरपरही उन्हें इस कामके लिये भेज देवे ॥ ४१ ॥ पहिले एकही अमात्यको अपने पाससे निकालकर शत्रुके पास पहुंचा देवे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उसके स्त्री और पुत्रोंको पकड़कर अर्थात् किसी एकान्त स्थानमें छिपे तौरपर सुरक्षित करके, रात्रिमें उन्हें राजाने मार डाला है, इस प्रकार मिथ्या वृत्तान्तकोही प्रसिद्ध करादेवे । (यह इसीलिये किया जाता है, कि जिससे शत्रु, भेजे हुए अमात्यके सम्बन्धमें विजिगीषुकी शत्रुता का विश्वास करसके) ॥ ४३ ॥ जब वह अमात्य, शत्रुके यहां स्थान पाजावे, अर्थात् शत्रु जब उसपर पूरा विश्वास करने लगे; तो वह विजिगीषुके यहांसे आये हुए अन्य अमात्योंको भी एक एक करके यह कहकर परिचय करा देवे, कि यह लोग विजिगीषुके द्वेषके कारण यहां आये हैं और आपकी सेवामें रहनेके योग्य हैं ॥ ४४ ॥

ते चेद्यथोक्तं कुर्युर्न चैनान्ग्राहयेत् ॥ ४५ ॥ अशक्तिमतो वा ग्राहयेत् ॥ ४६ ॥ आप्तभावोपगतो मुख्यादस्यात्मानं रक्षणीयं कथयेत् ॥ ४७ ॥ अथामित्रशासनममुख्यायोपघाताय प्रेषितमुभयवेतनो ग्राहयेत् ॥ ४८ ॥

यदि वे अमात्य, विजिगीषुकी आज्ञानुसार सब कार्य करदें, अर्थात् उस शत्रुको शस्त्र आदिके द्वारा मार डालें; तो उन्हें न पकड़वावे । अर्थात् ये लोग दोनों ओरसे वेतन लेते हैं, यह कहकर शत्रुके द्वारा उन्हें गिरफ्तार न करवावे ॥ ४५ ॥ यदि ये लोग शत्रुके मारनेमें अपना असामर्थ्य प्रकट करें, तो इन्हें पकड़वा देवे ॥ ४६ ॥ विजिगीषुके द्वारा निकाला हुआ वह अमात्य, सामवायिक राजाओंके मुखियाके साथ इस प्रकार भेद डाले:—जब वह अमात्य शत्रुका अत्यन्त विश्वस्त होजावे, तो वह शत्रुसे कहे, कि आपको सामवायिक राजाओंके मुखियोंसे अपने आपकी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि वे

लोग विश्वास करनेके योग्य नहीं हैं ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर, अमुख्य सामवायिकके उपघातके लिये शत्रुके द्वारा भेजी हुई लिखित कूट आज्ञाको उभयवेतन पुरुष (दोनों ओर से वेतन लेनेवाले), रक्षक पुरुषोंके द्वारा मुख्य सामवायिकके पास पहुंचवा देवें । (किसी २ पुस्तकमें 'अमुख्याय' के स्थानपर 'मुख्याय' भी पाठ है) ॥ ४८ ॥

उत्साहशक्तिमतो वा प्रेषयेत् ॥ ४९ ॥ अमुष्य राज्यं गृहाण यथास्थितो न संधिरिति ॥ ५० ॥ ततः सत्त्रिणः परेषु ग्राहयेयुः ॥ ५१ ॥

अथवा उत्साह तथा विक्रम शक्तिसे युक्त किसी एक सामवायिकके पासही उस नकली आज्ञाको भिजवावे । ॥ ४९ ॥ उस आज्ञापत्रका विषय इस प्रकार होना चाहियेः—आप उस मुख्य सामवायिकके राज्यको ले लेवें; पहिले निश्चिय की हुई सन्धिको अब स्वीकार नहीं किया जासकता ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर वे सत्त्री (गुप्त) पुरुष, अन्य सामवायिक राजाओंके पास जाकर इस बात की सूचना देदेवें । अर्थात् अमुक सामवायिकपर इस २ तरहका कोई पत्र आया है, इस बातसे उन्हें सूचित करदेवें ॥ ५१ ॥

एकस्य स्कन्धावारं विवधमासारं वा घातयेयुः ॥ ५२ ॥ इतरेषु मैत्रीं ब्रुवाणाः ॥ ५३ ॥ तं सात्रिणः—त्वमेतेषां घातयितव्य इत्युपजपेयुः ॥ ५४ ॥

अथवा यह करना चाहिये, कि सत्रीपुरुष, किसी एक सामवायिक राजाके स्कन्धावार (छावनी अथवा पड़ाव), उसके अपने देशसे धान्य आदिके आगम, तथा उसके मित्रबलको नष्ट करडालें ॥ ५२ ॥ और अन्य सामवायिक राजाओंमें अपनी मित्रताका कथन करते रहें । जिससे कि उनके सामने यह बात सर्वथा छिपी रहे ॥ ५३ ॥ तदनन्तर सत्रीपुरुष, उस एक सामवायिक राजाका, अन्य सामवायिक राजाओंसे, यह कहकर भेद डालें, कि ये सामवायिक राजा तुझे मारना चाहते हैं, ऐसी अवस्थामें इनके साथ तेरी सन्धि कैसे होसकती है ॥ ५४ ॥

यस्य वा प्रवीरपुरुषो हस्ती हयो वा म्रियेत गूढपुरुषैर्हन्येत ह्रियेत वा तं सत्त्रिणः परस्परोपहतं ब्रूयुः ॥ ५५ ॥ ततः शासनमभिशस्तस्य प्रेषयेत् ॥ ५६ ॥ भूयः कुरु ततः पणशेषमवाप्स्यसीति ॥ ५७ ॥ तदुभयवेतना ग्राहयेयुः ॥ ५८ ॥

अथवा जिस किसी सामवायिक का कोई बहादुर आदमी, हाथी या घोड़ा स्वयं मर जावे, गूढ़ पुरुषों के द्वारा मार दिया जावे, अथवा अपहरण कर लिया जावे; उसके सम्बन्धमें सत्री पुरुष, उसे एक दूसरेके द्वारा मारा हुआ बतलावें। अर्थात् जिनके वे आदमी आदि मर गये हैं, उनको यह समझावें, कि तुम्हारे यह आदमी आदि अन्य सामवायिक राजाओंके द्वारा ही मारे गये हैं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर जिस सामवायिक का मारने वालों में नाम लिया गया है, उसके पास एक बनावटी आज्ञापत्र भेजा जावे ॥ ५६ ॥ उस का मजमून यह होना चाहियेः—कि फिर तुम इसी प्रकार करो, अर्थात् अन्य सामवायिकोंके बहादुर आदमी और घोड़े आदिकों को इसी प्रकार नष्ट करते रहो, इसके बाद ही तुम्हें शेष धन दिया जासकेगा ॥ ५७ ॥ उस बनावटी आज्ञापत्र को, उभयवेतन (विजिगीषु और सामवायिक दोनों की ओर से वेतन लेने वाले) पुरुष, गूढ़ पुरुषों द्वारा सामवायिक राजा तक भिजवा देवें। इस प्रकार सामवायिक राजाओं में परस्पर भेद डालने का यत्न करना चाहिये ॥५८॥

भिन्नेष्वन्यतमं लभेत ॥ ५९ ॥ तेन सेनापतिकुमारदण्डचारिणो व्याख्याताः ॥ ६० ॥ साङ्घिकं च भेदं प्रयुञ्जीतेति भेदकर्म ॥ ६१ ॥

जब सामवायिक राजा आपसमें फूट जावें, तो उनमें से एकको पकड़ कर अपने अधीन करले ॥ ५९ ॥ भेद डालने का जो उपाय सामवायिक राजाओं के लिये कहा गया है, वही उपाय सेनापति युवराज तथा अन्य सेना-सम्बन्धी व्यक्तियोंमें भेद डालनेके लिये भी समझना चाहिये ॥ ६० ॥ सङ्घवृत्त अधिकरण (ग्यारहवें अधिकरण)में निरूपण किये जाने वाले, भेद डालने के उपायों का यहां भी प्रयोग किया जासकता है। यहां तक भेद सम्बन्धी कार्यों का प्रतिपादन कर दिया गया ॥ ६१ ॥

तीक्ष्णमुत्साहिनं व्यसनिनं स्थितशत्रुं वा गूढपुरुषाः शस्त्राग्निरसादिभिः साधयेयुः ॥ ६२ ॥ सौकर्यतो वा तेषामन्यतमः ॥ ६३ ॥ तीक्ष्णो ह्येकः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेत् ॥ ६४ ॥ अयं सर्वसंदोहकर्म विशिष्टं वा करोतीत्युपायचतुर्वर्गः ॥ ६५ ॥

तीक्ष्ण (अत्यधिक क्रोधी अथवा असहनशील), उत्साही (बहादुर= पराक्रमशाली), व्यसनी (शिकार आदि खेलनेमें लगा रहने वाला), तथा दुर्ग आदिसे युक्त शक्तिशाली शत्रु को, गूढपुरुष शस्त्र अग्नि तथा विष आदि के द्वारा मिलकर मार डालें ॥ ६२ ॥ अथवा उनमें से कोई एक ही गूढपुरुष

जो कि सुगमता से ही शत्रु का वध कर सकता हो, वह अकेला ही किसी उपायसे इन उपर्युक्त प्रकारके शत्रुओं को मार डाले ॥ ६३ ॥ (वह कौन एक ऐसा होसकता है, उसका ही निरूपण करते हैं-) क्योंकि एकही तीक्ष्ण पुरुष (एक प्रकार का गूढ पुरुष, जो कि शस्त्र आदिसे ही अपने कार्यों को सिद्ध करता है, वह) शस्त्र, विष आदि रस तथा अग्निके द्वारा उक्त सब प्रकार के ही शत्रुओंको ठीक कर सकता है, अर्थात् मार सकता है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार का यह तीक्ष्ण गूढ़पुरुष, न केवल सब तरहके गूढ़पुरुषोंसे मिलकर किये जाने वाले कार्य को ही अकेला कर सकता है, प्रत्युत उनकी अपेक्षा अधिक भी कार्य कर सकता है। अर्थात् वे मिलकर भी जिस काम को नहीं कर सकते हैं, उस कामको भी यह अकेला ही कर सकता है। यहां तक साम दान भेद और दण्ड इन चार उपायों के सम्बन्धमें निरूपण कर दिया गया ॥ ६५ ॥

पूर्वः पूर्वश्चास्य लघिष्ठः ॥ ६६ ॥ सान्त्वमेकगुणम् ॥६७॥ दानं द्विगुणं सान्त्वपूर्वम् ॥ ६८ ॥ भेदस्त्रिगुणः सान्त्वदान-पूर्वः ॥ ६९ ॥ दण्डश्चतुर्गुणः सान्त्वदानभेदपूर्वः ॥ ७० ॥

अब इनके गुरुलघुभावका विचार किया जाता है:—इन चारों उपायों में से पहला उपाय, अगले उपायों की अपेक्षा लघु होता है, अर्थात् इसका प्रयोग अनायास ही किया जा सकता है, क्योंकि यह थोड़े अवयव वाला होता है ॥ ६६ ॥ साम एकही गुण वाला होता है, अर्थात् प्रयोक्ता स्वयं अपने आप ही उसका एक गुण (=अवयव) होता है ॥ ६७ ॥ दान दो गुण (=अवयव) वाला होता है, क्योंकि साम अर्थात् सान्त्वना और देना, दोनों ही इसके अवयव होते हैं ॥ ६८ ॥ भेद तीन गुणों वाला होता है, पहिले दो उपाय और तीसरा अपने आप, ये तीनों ही अवयव रूपसे उसमें मिले रहते हैं ॥ ६९ ॥ इसी प्रकार दण्ड चौगुना होता है, अर्थात् पहिले तीन उपाय और एक स्वयं, ये चारों ही इसके अवयव होते हैं ॥ ७० ॥

इत्यभियुञ्जानेषूक्तम् ॥ ७१ ॥ स्वभूमिष्ठेषु तु त एवोपायाः ॥ ७२ ॥ विशेषस्तु— ॥ ७३ ॥ स्वभूमिष्ठानामन्यतमस्य पण्यागारैरभिज्ञातान्दूतमुख्यानभीक्ष्णं प्रेषयेत् ॥ ७४ ॥

जो मित्र अथवा शत्रु, यातव्यकी ओर, मिलकर आक्रमण करनेके लिए चल पड़े हों, और उसके समीप ही कहीं पड़ाव डालकर पड़े हों, उन आक्रमणकारी सामवायिक राजाओंके विषयमें ही यह इसप्रकारका साम आदि उपायों

का विधान बताया गया है ॥ ७१ ॥ और जब वह आक्रमण के लिये चल न पड़े हों, किन्तु अपनी २ भूमि में ही स्थित हों, तबभी इन्हीं उपायों का प्रयोग किया जावे ॥ ७२ ॥ उस अवस्थामें इनका प्रयोग करनेमें जो विशेष बात है उसका अब निरूपण किये देते हैं:— ॥ ७३ ॥ मिलकर आक्रमण करनेसे पहिले, जब कि मित्र और शत्रु सब अपने २ देशोंमें स्थित रहते हैं, उनमें से किसी एकके पास अत्यधिक मणि मुक्ता आदि सामानके साथ, उन राजाओंके सम्बन्धमें अच्छी जानकारी रखने वाले दूतमुख्यों को विजिगीषु बार २ भेजे ॥ ७४ ॥

त एनं संधौ परहिंसायां वा योजयेयुः ॥ ७५ ॥ अप्रातिपद्यमानं कुतो नः संधिरित्यावेदयेयुः ॥ ७६ ॥ तमितरेषामुभयवेतनाः संक्रामयेयुः ॥ ७७ ॥ अयं वो राजा दुष्ट इति ॥७८॥

वे दूतमुख्य, उस मित्र अथवा शत्रु को, अपने साथ सन्धि, अथवा दूसरेके मारनेमें नियुक्त करें ॥ ७५ ॥ यदि वह सन्धि करना स्वीकार न करे, तो भी 'इसने हमारे साथ सन्धि करली है', इस प्रकार वे दूतमुख्य मिथ्या ही प्रसिद्धि करदें ॥ ७६ ॥ उभयवेतन पुरुष, अन्य मित्र तथा शत्रुओंके पास भी उस समाचार को पहुंचा देवें ॥ ७७ ॥ और यह कहें कि आप लोगोंमेंसे अमुक राजा बड़ा दुष्ट है, क्योंकि इसने आप लोगोंसे कुछ न कहकर चुपचाप ही विजिगीषुसे सन्धि करली है ॥ ७८ ॥

यस्य वा यस्माद्भयं वैरं द्वेषो वा तं तस्माद्भेदयेयुः ॥७९॥ अयं ते शत्रुणा संधत्ते ॥ ८० ॥ पुरा त्वामतिसंधत्ते क्षिप्रतरं संधीयस्व ॥ ८१ ॥ निग्रहे चास्य प्रयतस्वेति ॥ ८२ ॥

जिसको जिससे शत्रुता द्वेष तथा भय हो, उसको उससे भिन्न कर देवें । अर्थात् गूढपुरुष, इस प्रकारके दो राजाओं में कभी सन्धि न होने दें ॥७९॥ उसको इस प्रकार कहें, कि देखो, यह तुम्हारे शत्रुके साथ सन्धि करता है ॥ ८० ॥ फिर यह तुमको ही दबाने के लिये तैयार होजाएगा, इस लिये तुम बहुत जल्दी उस शत्रुके (अर्थात् विजिगीषुके) साथ स्वयं सन्धि करलो ॥८१॥ और इसका निग्रह करनेके लिये अर्थात् इसको अपने काबूमें करने के लिये प्रयत्न करो ॥ ८२ ॥

आवाहविवाहाभ्यां वा कृत्वा संयोगमसंयुक्तान्भेदयेत् ॥ ८३ ॥

आवाह (कन्याका स्वीकार करना) अथवा विवाह (कन्या का देना) के द्वारा आपसमें सम्बन्ध करके, सम्बन्ध रहित दूसरे राजाओंके साथ उसका

भेद डाल दिया जावे। यहां तक अपनी २ भूमिमें रहने वाले राजाओं में परस्पर भेद डालने के प्रकारों का निरूपण कर दिया गया ॥ ८३ ॥

सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धैश्चैषां राज्यान्निर्घातयेत् ॥८४॥ सार्थव्रजाटवीर्वा, दण्डं वाभिसृतं, परस्परापाश्रयाश्चैषां जातिसङ्घा-श्छिद्रेषु प्रहरेयुः ॥ ८५ ॥ गूढाश्चाग्निरसशस्त्रेण ॥ ८६ ॥

सामन्त (उनकी भूमिके समीप रहने वाले राजा), आटविक (जंगल के स्वामी), अथवा उनके (मित्र या शत्रुओंके) कुलमें ही उत्पन्न हुए अवरुद्ध राजपुत्रादिके द्वारा ही विजिगीषु उनके राज्यको हानि पहुंचाने का यत्न करे ॥ ८४ ॥ अथवा उनके व्यापारी भारको ढोने वाले पशु, अन्य गाय भैंस आदि पशु, तथा द्रव्यवन और हस्तिवनोंको नष्ट करवा देवे, अथवा रक्षा करने वाली सेना को ही नष्ट करवा देवे। (किसी पुस्तकमें 'सार्थव्रजाटवीर्वा' के स्थान पर 'सार्थव्रजाटवीभिर्वा' ऐसा तृतीयान्त पाठ है; इस पाठमें सार्थ, व्रज तथा अटवी के साथ २ रक्षक सेनाको भी नष्ट करवा देवे, यही अर्थ करना चाहिये)। और एक दूसरेसे पृथक् किये हुए जातिसंघ (विच्छिलिक आदि नाम वाले जाति समूह; इनका संघवृत्त अधिकरणमें निरूपण किया जायगा), इन मित्र या शत्रुओंके प्रमादस्थानोंमें बराबर प्रहार करते रहें, अर्थात् जहां उनको कमजोर देखें, वहीं उनपर प्रहार करदें ॥ ८५ ॥ और अन्य तीक्ष्ण रसद आदि गूढपुरुष, अग्नि, विष आदि रस तथा हथियारोंके द्वारा प्रहार करें ॥ ८६ ॥

वितंसगिलवच्चारीन्योगैराचरितैः शठः ।
घातयेत्परमिश्रायां विश्वासेनामिषेण च ॥ ८७ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे दूष्यशत्रुसंयुक्ताः षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥
आदितः सप्तविंशशतः ॥ १२७ ॥

परमिश्र अर्थात् मित्र और शत्रु दोनोंसे मिलकर उत्पन्न हुई आपत्तिमें, शठ (गूढ व्यवहार करने वाला) विजिगीषु, वितंस (पक्षियोंके विश्वासके लिये पक्षियोंके विविध चित्रोंसे युक्त, शरीरको ढंकने वाला वस्त्र) और गिल (खाने का मांस) के समान, प्रयुक्त किये हुए कपट उपायोंके द्वारा अपने अन्दर विश्वास उत्पन्न कराके, तथा कुछ सार वस्तु देकर अपने शत्रुओं को वशमें करे ॥ ८७ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सातवां अध्याय

१४५-१४६ प्रकरण

अर्थ, अनर्थ तथा संशयसम्बन्धी आपत्तियां, और उन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये साम आदि उपायोंके प्रयोग विशेषसे होनेवाली सिद्धियां

हिरण्य भूमि आदिको 'अर्थ' कहते हैं; उनके नाश तथा शरीरके नाशका नाम 'अनर्थ' है, अर्थ और अनर्थ विषयक सन्देहकोही 'संशय' कहा जाता है, इनसे युक्त आपत्तियोंका, पहले प्रकरणमें निरूपण किया जायगा। और दूसरे प्रकरणमें साम आदि उपायों के कारण इन्हीं आपत्तियोंके प्रतीकारका निरूपण किया जायगा।

कामादिरुत्सेकः स्वाः प्रकृतीः कोपयति ॥ १ ॥ अपनयो बाह्याः ॥ २ ॥ तदुभयमासुरी वृत्तिः ॥ ३ ॥ स्वजनविकारः कोपः परवृद्धिहेतुष्वापदर्थोऽनर्थः संशय इति ॥ ४ ॥

काम क्रोध आदि दोषोंका अधिक होना, अपनेही मन्त्री आदि अभ्यन्तर प्रकृतिजनोंको कुपित करनेवाला होता है ॥ १ ॥ अपनय अर्थात् नीतिमार्गसे भ्रष्ट होना, राष्ट्रमुख्य अन्तपाल आदि बाह्य प्रकृतियोंको कुपित करदेता है ॥ २ ॥ इसलिये काम आदि दोष और अपनय इन दोनोंकोही आसुरीवृत्ति कहा गया है, अर्थात् ये दोनों, असुरोंके करने योग्य कार्य हैं ॥ ३ ॥ अपनेही अमात्य आदि पुरुषोंका विकाररूप कोप, शत्रुकी वृद्धिके, कारण उपस्थित होनेपर, आपत्तिका रूप धारण करलेता है। यह आपत्ति अर्थरूप अनर्थरूप और संशयरूप तीन प्रकारकी होती है ॥ ४ ॥

यो ऽर्थः शत्रुवृद्धिमप्राप्तः करोति, प्राप्तः प्रत्यादेयः परेषां भवति, प्राप्यमाणो वा क्षयव्ययोदयो भवति, स भवत्यापदर्थः॥५॥

जो अर्थ (उपेक्षा करनेके कारण) अपने हाथमें न आया हुआ, शत्रुकी ही वृद्धिको करता है; तथा जो अर्थ अपने हाथमें आजानेपर भी फिर शत्रुके द्वारा लौटाया जासकता है; और इसी प्रकार जो अर्थ प्राप्त किया जाता हुआ अत्यधिक क्षय तथा व्ययको करनेवाला होता है, उसे 'आपदर्थ' कहते हैं; अर्थात् यह अर्थरूप आपत्ति कहीजाती है ॥ ५ ॥

यथा—सामन्तानामामिषभूतः, सामन्तव्यसनजो लाभः, शत्रुप्रार्थितो वा स्वभावाधिगम्यो लाभः, पश्चात्कोपेन पार्ष्णिग्राहेण विगृहीतः पुरस्ताल्लाभो, मित्रोच्छेदेन संधिव्यतिक्रमेण वा मण्डलविरुद्धो लाभ इत्यापदर्थः ॥ ६ ॥

जैसे—बहुतसे सामन्तोंका भोग्यभूत पदार्थ, यदि एकही सामन्तको प्राप्त होजावे, तो वह अन्य सामन्तोंके द्वारा मिलकर लौटाये जानेके कारण आपत्तिका जनक होजाता है। इसी प्रकार सामन्त की व्यसन दशामें, उससे छीना हुआ लाभ; स्वभावसेही प्राप्त होनेके योग्य, शत्रुके द्वारा मांगा हुआ लाभ; पश्चात्कोप (मूलस्थानमें दूष्य आदिके द्वारा उठाये हुए उपद्रव) तथा पार्ष्णिग्राह (पीछेके शत्रु) के द्वारा बाधा पहुंचाये जानेपर, यातव्य राजासे प्राप्त किया हुआ लाभ; मित्रका उच्छेदन करने तथा सन्धिको उल्लंघन करनेके कारण, राजमण्डलकी इच्छाके विरुद्ध प्राप्त किया हुआ लाभ; ये सबही लाभ 'आपदर्थ' होते हैं ॥ ६ ॥

स्वतः परतो वा भयोत्पत्तिरित्यनर्थः ॥ ७ ॥ तयोरर्थो न वेति, अनर्थो न वेति, अर्थोऽनर्थ इति, अनर्थोऽर्थ इति संशयः ॥८॥

स्वयं या अन्य किसीसे प्राप्त हुए २ अर्थके कारण जो भयकी उत्पत्ति होती है, इसको अनर्थरूप आपत्ति कहते हैं ॥ ७ ॥ अब अर्थ और अनर्थ विषयक संशयरूप आपत्तिका निरूपण करते हैं:—१. यह अर्थ है, या नहीं ? (अर्थात् अर्थके भाव और अभावको लेकर संशयका होना); २. यह अनर्थ है या नहीं ? (अर्थात् अनर्थके भाव और अभावको लेकर संशयका होना); ३. यह अर्थ है या अनर्थ है ? (अर्थात् अर्थ और अनर्थ विषयक संशयका होना); ४. यह अनर्थ है या अर्थ है ? (इस प्रकार अनर्थ और अर्थ विषयक संशयका होना); इस तरह अर्थ अनर्थको लेकर यह चार प्रकारका संशय होता है, यह भी आपत्तिका मूल होनेसे आपत्ति कहाता है। (इनके उदाहरण क्रमशः निम्नलिखित रीतिपर समझने चाहियें) ॥ ८ ॥

शत्रुमित्रमुत्साहयितुमर्थो न वेति संशयः ॥ ९ ॥ शत्रुबलमर्थमानाभ्यामावाहयितुमनर्थो न वेति संशयः ॥ १० ॥ बलवत्सामन्तां भूमिमादातुमर्थोऽनर्थ इति संशयः ॥ ११ ॥ ज्यायसा सम्भूययानमनर्थोऽर्थ इति संशयः ॥ १२ ॥ तेषामर्थसंशयमुपगच्छेत् ॥ १३ ॥

शत्रुके मित्रको उत्साहित करनेमें. अर्थात् शत्रुके मित्रको शत्रुके ही साथ लड़ाने के लिये तैयार करनेमें, पहिला संशय होता है। अर्थात् ऐसा करनेमें अर्थ है या नहीं ? इस प्रकार का संशय होता है ॥ ९ ॥ शत्रुकी सेना को, धन तथा सत्कारके द्वारा बुलानेमें दूसरा संशय होता है। अर्थात् इस प्रकारसे शत्रु सेनाको बुलानेमें कोई अनर्थ तो न होजावेगा ? इस तरह का संशय होता है ॥ १० ॥ बलवान् सामन्तवाली भूमिको (अर्थात् जिस भूमिका सामन्त [उस भूमिके समीप का राजा] अपनेसे बलवान् हो, उस भूमिको) लेनेमें तीसरा संशय होता है; अर्थात् ऐसा करनेमें अर्थ होगा या अनर्थ ? इस प्रकार का संशय होता है ॥ ११ ॥ बलवान राजाके साथ मिलकर, यातव्य (जिस राजा पर आक्रमण किया जावे, उस) पर आक्रमण करनेमें चौथा संशय होता है। अर्थात् ऐसा करनेमें अनर्थ होगा या अर्थ ? इस प्रकार का संशय होता है ॥ १२ ॥ इन सब संशयोंमें से जो संशय अर्थ विषयक हो अनर्थके साथ जिसका स्पर्श भी न होता हो, ऐसे संशयके विषयमें विजिगीषु उद्योग करे ॥ १३ ॥

अर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ १४ ॥ अर्थो निरनुबन्धः ॥ १५ ॥ अर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ १६ ॥ अनर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ १७ ॥ अनर्थो निरनुबन्धः ॥ १८ ॥ अनर्थो ऽनर्थानुबन्ध इत्यनुबन्ध-षड्वर्गः ॥ १९ ॥

प्रत्येक अर्थ और अनर्थके साथ अनुबन्धका योग करने और न करने से इसके छः भेद होजाते हैं। इसको 'अनुबन्धषड्वर्ग' कहते हैं। उसके भेद इस प्रकार हैं—अर्थानुबन्ध अर्थ, निरनुबन्ध (अर्थ और अनर्थके अनु-बन्धसे रहित) अर्थ, अनर्थानुबन्ध अर्थ, यह तीन प्रकारका अर्थ है; और अर्थानुबन्ध अनर्थ, निरनुबन्ध (अर्थ और अनर्थके अनुबन्धसे रहित) अनर्थ तथा अनर्थानुबन्ध अनर्थ, यह तीन प्रकारका अनर्थ है। इन दोनोंको मिला कर ही 'अनुबन्धषड्वर्ग' कहा जाता है। (किसी पुस्तकमें 'इत्यनुबन्धषड्-वर्गः' के स्थानपर 'इत्यनर्थषड्वर्गः' ऐसा पाठ है; पर यह पाठ संगत नहीं मालूम होता ॥ १४ ॥ १९ ॥

शत्रुमुत्पाट्य पार्ष्णिग्राहादानमर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ २० ॥ उदासीनस्य दण्डानुग्रहः फलेन अर्थो निरनुबन्धः ॥ २१ ॥ परस्यान्तरुच्छेदनमर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ २२ ॥

अब क्रमशः इन सबके उदाहरण दिखाये जाते हैं:—यातव्य शत्रुका उच्छेद करके, फिर पार्ष्णिग्राहको भी अपने वशमें कर लेना; यह अर्थानुबन्ध अर्थ होता है ॥ २० ॥ उदासीन राजासे धन आदि लेकर उसको सेना की सहायता देना, यह निरनुबन्ध अर्थ होता है, यह अर्थ और अनर्थ किसी का का भी उत्पादक नहीं होता ॥ २१ ॥ शत्रुके अन्तर्द्धि (यहां अन्तः' शब्दका अर्थ अन्तर्धि है; अन्तर्धिका अर्थ जाननेके लिये, देखोः—अधि० ७ अध्याय १३ सू० २८) राजाका उच्छेद कर देना, अनर्थानुबन्ध अर्थ होता है; क्यों कि इससे बलवान शत्रुका निवारण नहीं होता। यह अर्थ त्रिवर्गका निरूपण हुआ ॥ २२ ॥

शत्रुप्रतिवेशस्यानुग्रहः कोशदण्डाभ्यामनर्थो ऽर्थानुबन्धः ॥ २३ ॥ हीनशक्तिमुत्साह्य निवृत्तिरनर्थो निरनुबन्धः ॥ २४ ॥ ज्यायांसमुत्थाप्य निवृत्तिरनर्थो ऽनर्थानुबन्धः ॥ २५ ॥

कोश और सेनाके द्वारा शत्रुके पड़ौसी की सहायता करना, अर्थानुबंध अनर्थ होता है। (क्योंकि कोश और अपनी सेनाको उस समय देना पड़ता है, इस लिये अनर्थ, पर भविष्यमें शत्रुके निग्रहका कारण होनेसे अर्थानुबन्ध होता है, अर्थात् अर्थका जनक होता है) ॥ २३ ॥ हीनशक्ति राजाको 'तू शत्रुसे लड़जा, मैं तुझे सहायता दूंगा' इस तरह उत्साहित करके फिर स्वयं ही उस कार्यसे हट जाना, निरनुबन्ध अनर्थ होता है; (तात्पर्य यह है, कि उस समय तो धन आदिका व्यय होनेसे अनर्थ है, पर इससे आगे किसी अर्थ या अनर्थ के उत्पन्न होनेकी सम्भावना नहीं रहती; इसलिये यह 'निरनुबन्ध अनर्थ' कहा जाता है) ॥ २४ ॥ अपनेसे प्रबल अर्थात् अधिक शक्तिशाली राजाको 'मैं तुम्हारा सहायक रहूंगा' इस तरह कहकर पहिले उत्साहित करके, फिर अपने आप उस कार्यसे हट जाना; अनर्थानुबन्ध अनर्थ होता है। (तात्पर्य यह है, एकतो पहिले धन आदिके व्यय होनेसे अनर्थ, और फिर सबल राजा से वचनभङ्ग होजानेके कारण उसके कोपसे दूसरे अनर्थ की सम्भावना, यह अनर्थानुबन्ध अनर्थ होता है) ॥ २५ ॥

तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ २६ ॥ इति कार्यावस्थापनम् ॥ २७ ॥

इस अनुबन्धषड्वर्गमेंसे, पहिला २ प्राप्त करनेके लिये अच्छा है। अर्थात् उत्तर उत्तरकी अपेक्षा पूर्व पूर्वका अर्थ या अनर्थ उपादेय होता है ॥ २६ ॥ यहांतक अर्थ और अनर्थरूप कार्योंके स्वरूपका व्यवस्थापन (प्रतिपादन) करदिया गया ॥ २७ ॥

समन्ततो युगपदर्थोत्पत्तिः समन्ततोऽर्थापद्भवति ॥ २८ ॥ सैव पार्ष्णिग्राहविगृहीता समन्ततोऽर्थसंशयापद्भवति ॥ २९ ॥ तयोर्मित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः ॥ ३० ॥

आगे पीछे और इधर उधर सब ओरसेही यदि एक साथही अर्थोंकी उत्पत्ति होने लगे, तो उसे 'समन्ततोऽर्थापत्' कहते हैं ॥ २८ ॥ यदि उस समन्ततोर्थापत् (चारों ओरसे अर्थ विषयक आपत्ति) में पार्ष्णिग्राहके द्वारा विरोध किया जावे, अर्थात् पार्ष्णिग्राह उसमें विघ्न उपस्थित करे, तो उसे 'समन्ततोर्थसंशयापद्' कहा जाता है ॥ २९ ॥ इन दोनोंकी सिद्धि अर्थात् समन्ततोऽर्थापत् और समन्ततोऽर्थसंशयापद् इनका प्रतीकार, मित्र (आगेकी ओर रहनेवाला मित्र) और आक्रन्द (पीछेकी ओर रहनेवाला मित्र) की सहायता लेनेपर किया जासकता है ॥ ३० ॥

समन्ततः शत्रुभ्यो भयोत्पत्तिः समन्ततोऽनर्थापद्भवति ॥३१॥ सैव मित्रविगृहीता समन्ततोऽनर्थसंशयापद्भवति ॥३२॥ तयोश्चलामित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः ॥ ३३ ॥ परमिश्राप्रतीकारो वा ॥ ३४ ॥

चारों ओरसे, शत्रुओंसे भयकी उत्पत्ति होना 'समन्तोऽनर्थापत्' होता है ॥ ३१ ॥ वही यदि मित्रसे विगृहीत होजावे, अर्थात् उस समन्ततोऽनर्थापद्मेंही यदि मित्र विघ्न उपस्थित करे, तो उसे 'समन्ततोऽनर्थसंशयापद् कहा जाता है ॥ ३४ ॥ इन दोनोंका प्रतीकार, चलशत्रु (अर्थात् दुर्ग आदिसे रहित शत्रु) और आक्रन्दको अपने अनुकूल बनाकर अर्थात् उनकी सहायता लेकर किया जासकता है ॥ ३३ ॥ अथवा 'परमिश्रा' आपत्तिका जो प्रतीकार (देखो, अधि. ९, अध्या. ६, सू. १४) बता गया है, उसको भी यहां प्रयोग में लाया जावे ॥ ३४ ॥

इतो लाभ इतरतो लाभ इत्युभयतोऽर्थापद्भवति ॥ ३५ ॥ तस्यां समन्ततोऽर्थायां च लाभगुणयुक्तमर्थमादातुं यायात् ॥ ३६ ॥ तुल्ये लाभगुणे प्रधानमासन्नमनतिपातिनमूनो वा येन भवेत्तमादातुं यायात् ॥ ३७ ॥

जहांपर एक ओर, और दूसरी ओर अर्थात् दोनों ओरसेही अर्थविषयक आपत्तिका लाभ हो, उसे 'उभयतोऽर्थापद्' कहा जाता है ॥ ३५ ॥ उभयतोऽर्थापद् और समन्ततोऽर्थापद्में से किसीमें यदि आदेय प्रत्यादेय आदि लाभ

गुणों (देखो, अधि. ९, अध्या. ४, सू. ४) से युक्त अर्थके प्राप्त होनेकी सम्भावना हो, तो उस अर्थको लेनेके लिये अवश्य चला जावे। अर्थात् ऐसी अवस्थामें विजिगीषु आक्रमण करसकता है ॥ ३६ ॥ यदि दोनों ओर लाभगुण समानही हों, तो उनमेंसे जो प्रधानफल अर्थात् प्रशस्त या श्रेष्ठफलसे युक्त हो, अथवा अपने देशके समीप हो, या थोड़ेही समयमें प्राप्त होसकता हो; अथवा जिसके प्राप्त न करनेपर अपनेमें कुछ न्यूनता प्रतीत हो; उस अर्थको लेनेके लिये चला जावे; अर्थात् इस अवस्थामें विजिगीषु यानकाही अवलम्ब करे। (किसी २ पुस्तकमें 'ऊनो वा येन भवेत्' के स्थानपर 'ऊनोपायेन भवेत्' ऐसा भी पाठ है; उसका अर्थ करना चाहियेः—जहांपर थोड़ेही उपायसे अर्थकी प्राप्तिकी संभावना हो, वहां भी यानकाही अवलम्ब करे) ॥ ३७ ॥

इतो ऽनर्थ इतरतो ऽनर्थ इत्युभयतो ऽनर्थापत् ॥ ३८ ॥ तस्यां समन्ततो ऽनर्थायां च मित्रेभ्यः सिद्धिं लिप्सेत ॥ ३९ ॥

इधरसे अनर्थ और उधरसे भी अनर्थ, इस प्रकार जब दोनों ओरसे अनर्थ कीही उत्पत्ति हो, तो उसे 'उभयतोऽनर्थापद्' कहा जाता है ॥ ३८ ॥ उसमें (उभयतोऽनर्थापत्में) और समन्ततोऽनर्थापत्में मित्रोंसेही सिद्धि लाभकी इच्छा करे। अर्थात् इन दोनों आपत्तियोंका प्रतीकार मित्रोंके द्वाराही किया जासकता है ॥ ३९ ॥

मित्राभावे प्रकृतीनां लघीयस्यैकतोऽनर्थां साधयेत् ॥ ४० ॥ उभयतोऽनर्थाञ्ज्यायस्या, समन्ततो ऽनर्थां मूलेन प्रतिकुर्यात् ॥ ४१ ॥ अशक्ये समुत्सृज्यापगच्छेत् ॥ ४२ ॥ दृष्टा हि जीवतः पुनरावृत्तिर्यथा सुयात्रोदयनाभ्याम् ॥ ४३ ॥

यदि मित्रोंकी सहायता न प्राप्त हो सके, तो अपनी प्रकृतियोंमेंसे छोटी प्रकृतिके द्वारा (अर्थात् किसी छोटे राजकर्मचारीके त्यागके द्वारा; अर्थात् उसे देकर) 'एकतोऽनर्थापद्' का प्रतीकार किया जासकता है ॥ ४० ॥ उभयतोऽनर्थापद्का ज्येष्ठ प्रकृतिके द्वारा और समन्ततोऽनर्थापद्का मूलस्थानको त्यागनेकेही द्वारा प्रतीकार किया जासकता है ॥ ४१ ॥ यदि इतनेपर भी इन आपत्तियोंका प्रतीकार न किया जासके, तो अपना सब कुछ छोड़कर चला जावे ॥ ४२ ॥ यदि पुरुष जीवित रहता है, अर्थात् विपत्तिके समय कहीं अन्यत्र लेजाकर अपने आपको सुरक्षित रखता है, तो वह फिर भी अपने स्थानको पासकता है। जैसा कि राजा नल (सुयात्र) और वत्सराज उदयनके जीवनसे मालूम होता है ॥ ४३ ॥

इतो लाभ इतरतो राज्याभिमर्श इत्युभयतो ऽर्थानर्थापद्भवति ॥४४॥ तस्यामनर्थसाधको यो ऽर्थस्तमादातुं यायात् ॥४५॥ अन्यथा हि राज्यभिमर्शं वारयेत् ॥ ४६ ॥

एक ओर से लाभ और दूसरी ओर से राज्यपर अर्थात् अपने ही जनपदपर (किसी शत्रु आदिके द्वारा) आक्रमण किया जाना, इसको दोनों ओर से अर्थ और अनर्थसे युक्त होनेके कारण 'उभयतोऽर्थानर्थापद्' कहा जाता है ॥ ४४ ॥ इस निरुक्त आपत्तिमें, ग्रहण किया जाता हुआ जो अर्थ, अनर्थका भी प्रतीकार कर सके, उस ही को ग्रहण करनेके लिये यत्न करना चाहिये ॥ ४५ ॥ यदि वह अर्थ, अनर्थका प्रतीकार करनेमें समर्थ न हो, तो उसके लिये न जाया जावे। अर्थात् उसकी उपेक्षा करके, राज्यपर किये जाने वाले आक्रमणका ही प्रतीकार किया जावे ॥ ४६ ॥

एतया समन्ततो ऽर्थानर्थापद्व्याख्याता ॥ ४७ ॥ इतो ऽनर्थ इतरतो ऽर्थसंशय इत्युभयतो ऽनर्थार्थसंशया ॥ ४८ ॥ तस्यां पूर्वमनर्थं साधयेत् तत्सिद्धावर्थसंशयम् ॥ ४९ ॥ एतया समन्ततो ऽनर्थार्थसंशया व्याख्याता ॥ ५० ॥

इसके निरूपण से 'समन्तोऽर्थानर्थापद्' का व्याख्यान भी समझ लेना चाहिये । अर्थात् 'उभयतोऽर्थानर्थापद्' के प्रतीकार आदिके लिये जो उपाय बताये गये हैं, 'समन्ततोऽर्थानर्थापद्' में भी उनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ४७ ॥ एक ओर से आवश्यक अनर्थका होना, तथा दूसरी ओर से अर्थ में संशय होना, यह 'उभयतोनर्थार्थसंशयापत्, कहाती है ॥ ४८ ॥ इस आपत्तिमें पहिले अनर्थका ही प्रतीकार करना चाहिये; उसका प्रतीकार होजानेपर फिर अर्थ संशयका प्रतीकार करना उचित होता है ॥ ४९ ॥ इसीप्रकार 'समन्ततोनर्थार्थसंशयापद्' का भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये। अर्थात् 'उभयतोऽनर्थार्थसंशयापद्' के समान इसमें भी पहिले अनर्थका प्रतीकार करके ही फिर अर्थसंशयके प्रतीकारके लिये यत्न करे ॥ ५० ॥

इतो ऽर्थ इतरतो ऽनर्थसंशय इत्युभयतो ऽनर्थार्थसंशयापत् ॥ ५१ ॥ एतया समन्ततो ऽर्थानर्थसंशया व्याख्याता ॥५२॥ तस्यां पूर्वां पूर्वां प्रकृतीनामनर्थसंशयान्मोक्षयितुं यतेत ॥५३॥

एक ओर से अर्थ, और दूसरी ओर से अनर्थका संशय होनेपर 'उभयतोऽर्थानर्थसंशयापद्' कही जाती है ॥ ५१ ॥ इसके समान ही 'सम-

न्ततोऽर्थानर्थसंशयापद्' को भी समझ लेना चाहिये ॥ ५२ ॥ इनके प्रतीकारका क्रम यह है;—पहिले अनर्थ संशयको हटाकर फिर अर्थके लिये यत्न करे। स्वामी आदि प्रकृतियोंकी ओरसे ही अनर्थके होनेका संशय रहता है। स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड (सेना) और मित्र, इस क्रमसे प्रकृतियोंका निरूपण किया गया है, इनमेंसे अगलीकी अपेक्षा पहिली २ प्रकृतियोंके अनर्थसंशयसे छूटनेका यत्न करे। तात्पर्य यह है कि पूर्व पूर्वकी अपेक्षा उत्तर उत्तर प्रकृति अप्रधान हैं; अप्रधान प्रकृतिसे होनेवाले अनर्थकी उपेक्षा करके प्रधान प्रकृतिसे होनेवाले अनर्थका ही प्रथम प्रतीकार करना चाहिये ॥ ५३ ॥

श्रेयो हि मित्रमनर्थसंशये तिष्ठन्न दण्डः ॥ ५४ ॥ दण्डो वा न कोश इति ॥ ५५ ॥

मित्रकी ओरसे यदि अनर्थका संशय हो, तो वह सेनाकी ओर से होनेवाले अनर्थके संशयकी अपेक्षा अच्छा है; क्योंकि मित्र इतनी पीड़ा नहीं पहुंचा सकता, जितनी कि पीड़ा सेना पहुंचा सकती है; इसलिये सेनाकी ओरसे होनेवाले अनर्थसंशयका पहिले ही प्रतीकार करना चाहिये ॥ ५४ ॥ तथा सेनाका भी अनर्थसंशय, कोशसे होनेवाले अनर्थसंशयकी अपेक्षा अच्छा होता है। (क्योंकि कोशके ठीक रहनेपर सेनाको फिर ठीक किया जासकता है) । इसलिये सेनाकी ओरसे अनर्थसंशयकी अपेक्षा, कोशकी ओरसे होनेवाले अनर्थसंशयका प्रथम ही प्रतीकार करना चाहिये ॥ ५५ ॥

समग्रमोक्षणाभावे प्रकृतीनामवयवान्मोक्षयितुं यतेत ॥५६॥ तत्र पुरुषप्रकृतीनां च बहुलमनुरक्तं वा तीक्ष्णलुब्धवर्जम् ॥५७॥

प्रकृतियां पुरुष रूप और द्रव्य रूप होती हैं; यदि समग्र प्रकृतियोंका अनर्थ संशय एक साथ न छुड़ाया जासके, तो प्रकृतियोंके कुछ अवयवोंको ही अनर्थ संशयसे छुड़ाया जावे। अर्थात् थोड़ा २ करके ही अनर्थ संशयका प्रतीकार कियाजावे ॥ ५६ ॥ अवयवसे अनर्थ संशयका प्रतीकार करनेमें, पुरुष प्रकृतियोंमेंसे तीक्ष्ण और लोभी पुरुषोंको छोड़कर पहिले उनसे ही अनर्थ संशयका प्रतीकार कियाजावे, जो संख्या आदिमें बहुत हों, तथा अपनेमें कुछ अनुराग रखते हों ॥ ५७ ॥

द्रव्यप्रकृतीनां सारं महोपकारं वा ॥ ५८ ॥ संधिनासनेन द्वैधीभावेन वा लघूनि विपर्ययैः गुरूणि ॥ ५९ ॥

द्रव्य प्रकृतियोंके बीच में अत्यधिक मूल्यवाले, तथा उपकार पहुंचाने वाले द्रव्योंको ही अनर्थसंशयापद् से छुड़ानेका यत्न करें ॥ ५८ ॥ सन्धि, आसन तथा द्वैधीभावके द्वारा लघुद्रव्योंको छुड़ानेका यत्न करे, और विग्रह, यान तथा संश्रय रूप गुणोंके द्वारा गुरुद्रव्योंके छुड़ानेका यत्न करे ॥ ५९ ॥

क्षयस्थानवृद्धीनां चोत्तरोत्तरं लिप्सेत ॥६०॥ प्रातिलोम्येन वा क्षयादीनामायत्यां विशेषं पश्येत् ॥ ६१ ॥

क्षय (शक्ति और सिद्धिके अपचयको क्षय कहते हैं), स्थान (शक्ति और सिद्धिका उसी अवस्थामें रहना स्थान कहाता है), और वृद्धि (शक्ति और सिद्धिके उपचयका नाम वृद्धि है), इनमेंसे उत्तरोत्तरको प्राप्त करनेकी इच्छा करे । अर्थात् क्षयसे स्थान और स्थानसे वृद्धिको प्राप्त करनेकी इच्छा करे ॥ ६० ॥ अथवा यदि भविष्यमें किसी वृद्धिके अतिशयकी सम्भावना हो, तो प्रतिलोम गतिसे भी क्षय आदिकी इच्छा करे । अर्थात् वृद्धिसे स्थान और स्थानसे क्षयकी इच्छा करे । यह उसी समय है, जबकि भविष्यमें अच्छी वृद्धि होनेका निश्चय हो ॥ ६१ ॥

इति देशावस्थापनम् ॥ ६२ ॥ एतेन यात्रामध्यान्तेष्वर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता ॥ ६३ ॥

यहांतक देशनिमित्तक आपत्तियोंका निरूपण करादिया गया ॥ ६२ ॥ देशनिमित्तक आपत्तियोंके स्वरूप और प्रतीकारके समान ही, यात्रा (आक्रमण) के आदि, मध्य तथा अन्तमें होनेवाले अर्थ अनर्थ तथा संशयोंकी प्राप्ति और प्रतीकारका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ ६३ ॥

निरन्तरयोगित्वाच्चार्थानर्थसंशयानां यात्रादावर्थः श्रेयानुपसंप्राप्तुं पार्ष्णिग्राहासारप्रतिघातक्षयव्ययप्रवासप्रत्यादेयमूलरक्षणेषु च भवति ॥ ६४ ॥

यदि यात्राके आदिमें, अर्थ अनर्थ संशय इनकी एक साथ ही उत्पत्ति होजावे, तो इनमेंसे अर्थका ग्रहण करना ही श्रेयस्कर होता है । पार्ष्णिग्राह (पृष्ठस्थित शत्रु) और आसार (यातव्यकी मित्र सेना) के प्रतिघातका साधक होनेके कारण ही अर्थकी श्रेष्ठता समझी जाती है । क्षय (घोड़े आदि सवारी तथा पुरुषोंका नाश), व्यय (धान्य हिरण्य आदिका नाश), प्रवास (दूरकी यात्रा), प्रत्यादेय (यातव्यसे लौटाने योग्य भूमि आदि अर्थात् यातव्यसे अपहरण कीहुई भूमिको फिर वापिस करना) और मूलस्थान (राजधानी आदि); इन सबकी रक्षा करनेमें अर्थकी सहायता अत्यन्त

अपेक्षित होती है । अर्थात् इन सबकी रक्षा करनेमें अर्थ ही प्रधान कारण होता है ॥ ६४ ॥

तथानर्थः संशयो वा स्वभूमिष्ठस्य विषह्यो भवति ॥ ६५ ॥ एतेन यात्रामध्येऽर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता॥६६॥

अर्थके समान ही, अनर्थ और संशय भी यदि यात्राके आरम्भमें ही होवें, तो अपनी ही भूमिमें स्थित हुए २ विजिगीषुके लिये ये सुखसाध्य ही होते हैं । तात्पर्य यह है, कि यात्रासे पहिले ही हुए २ अनर्थ या संशयोंका प्रतीकार, विजिगीषु अपनी भूमिमें स्थित होनेके कारण, बड़ी अच्छीतरह कर सकता है ॥ ६५ ॥ इसी तरह यात्राके मध्यमें भी अर्थ अनर्थ और संशयकी प्राप्ति तथा प्रतीकारका व्याख्यान भी समझ लेना चाहिये ॥ ६६ ॥

यात्रान्ते तु कर्शनीयमुच्छेदनीयं वा कर्शयित्वोच्छिद्य वार्थः श्रेयानुपसंप्राप्तुं नानर्थः संशयो वा पराबाधभयात् ॥ ६७ ॥

यात्राके अन्तमें तो कर्शनीय (निर्बल बनाने योग्य) तथा उच्छेदनीय (जड़से उखाड़ने योग्य; उच्छिन्न करने योग्य) शत्रुको, निर्बल बनाकर या उच्छिन्न करके परभूमिमें स्थित हुए २ विजिगीषुके लिये, अर्थका ही ग्रहण करना श्रेयस्कर होता है । अनर्थ या संशयका ग्रहण करना किसी तरह भी अच्छा नहीं होसकता; क्योंकि ऐसी अवस्थामें दोषान्वेषी शत्रुकी ओरसे हरसमय बाधा पहुंचानेकी सम्भावना बनी ही रहती है ॥ ६७ ॥

सामवायिकानामपुरोगस्य तु यात्रामध्यान्तगो ऽनर्थः संशयो वा श्रेयानुपसंप्राप्तुमनुबन्धगामित्वात् ॥ ६८ ॥

यहांतक प्रधान सामवायिक राजाओंका ध्यान करके ही उपर्युक्त विधिका निरूपण किया गया है । परन्तु सामवायिक राजओंमें से अप्रधान राजाके मुक़ाबलेमें, अर्थात् जब अप्रधान सामवायिकके ऊपर आक्रमण किया जाय, उस समय यात्राके मध्यमें और अन्तमें होनेवाले अनर्थ तथा संशयका प्रतीकार करना ही श्रेयस्कर होता है । क्योंकि प्रधान सामवायिक, नेता होनेके कारण रुके रहते हैं, अर्थात् इधर उधर नहीं जासकते; परन्तु अप्रधान सामवायिक, इस तरह प्रतिबन्ध (रुकावट) में न रहनेके कारण चाहे जहां जासकता है ॥ ६८ ॥

अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः ॥ ६९ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ ७० ॥ अनर्थो ऽधर्मः शोक इत्यनर्थत्रिवर्गः

॥ ७१ ॥ तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयान्प्रतिकर्तुम् ॥ ७२ ॥ अर्थो ऽनर्थ इति धर्मो ऽधर्म इति कामः शोक इति संशयत्रिवर्गः ॥ ७३ ॥ तस्योत्तरपक्षसिद्धौ पूर्वपक्षः श्रेयानुपसंप्राप्तुम् ॥ ७४ ॥ इति कालावस्थापनम् ॥ ७५ ॥ इत्यापदः ॥ ७६ ॥

अर्थ, धर्म और काम इनको ' अर्थत्रिवर्ग ' कहा जाता है ॥ ६९ ॥ इस अर्थत्रिवर्गके बीचमें पूर्व पूर्वका ग्रहण करना ही श्रेयस्कर होता है; अर्थात् कामसे धर्म और धर्मसे अर्थ श्रेष्ठ समझना चाहिये ॥ ७० ॥ अनर्थ, अधर्म, और शोक, यह 'अनर्थत्रिवर्ग' कहाता है ॥ ७१ ॥ इस अनर्थत्रिवर्ग के बीचमेंसे पूर्व पूर्वका प्रतीकार करना कल्याणकारी है ॥ ७२ ॥ अर्थ अनर्थ, धर्म अधर्म और काम शोक, इन तीन जोड़ोंको लेकर इनमें परस्पर संशय होना 'संशयत्रिवर्ग' कहाता है ॥ ७३ ॥ इस संशयत्रिवर्गमें से उत्तरपक्षका (अनर्थ, अधर्म, शोकका) प्रतीकार होने पर, पूर्वपक्षका (अर्थ, धर्म, काम का) ग्रहण करना श्रेयस्कर होता है ॥ ७४ ॥ यहां तक यात्राके आदि मध्य अन्तकालादि निमित्तक अर्थ अनर्थ आदि की व्यवस्थाका निरूपण कर दिया गया ॥ ७५ ॥ यहां तक अर्थ अनर्थ तथा संशययुक्त सब प्रकारकी आपत्तियों का निरूपण कर दिया गया ॥ ७६ ॥

तासां सिद्धिः—पुत्रभ्रातृबन्धुषु सामदानाभ्यां सिद्धिरनुरूपा, पौरजानपददण्डमुख्येषु दानभेदाभ्यां सामन्ताटविकेषु भेददण्डाभ्याम् ॥ ७७ ॥

अब उन आपत्तियोंके प्रतीकारके लिये जिन उपायों की आवश्यकता होती है, उन उपायोंकी यथायथ व्यवस्थाका विरूपण किया जायगा:—पुत्र भाई तथा बन्धुओंके विषयमें जिस प्रतीकारका पहिले निरूपण कर दिया गया है, वह प्रतीकार साम और दानके अनुरूप होने पर ही उचित समझा जाता है । अर्थात् पुत्रादि जन्य आपत्तिके प्रतीकारके लिये साम और दान उपायोंका प्रयोग करना ही उचित है । इसी प्रकार नगर तथा जनपद निवासी पुरुषों, सेनाओं और राष्ट्रमुख्य व्यक्तियोंमें, दान और भेद उपायोंका ही प्रयोग करना चाहिये । तथा सामन्त और आटविकोंके विषयमें भेद और दण्ड उपायों का प्रयोग करना ही उचित होता है ॥ ७७ ॥

एषानुलोमा विपर्यये प्रतिलोमा ॥ ७८ ॥ मित्रामित्रेषु व्यामिश्रा सिद्धिः ॥ ७९ ॥ परस्परसाधका ह्युपायाः ॥८०॥

इस नियमके अनुसार किया हुआ प्रतीकार 'अनुलोम' अर्थात अनुकूल प्रतीकार कहाता है । इसमें विपर्यय होनेपर 'प्रतिलोम' अर्थात् प्रतिकूल प्रतीकार कहाजाता है ॥ ७८ ॥ मित्र तथा शत्रुओंके विषयमें लिखे हुए उपायोंका प्रयोग करके ही प्रतीकार करना चाहिये ॥ ७९ ॥ क्योंकि उपाय परस्पर एक दूसरेके सहकारी ही होते हैं । इसलिये मित्र और शत्रुओंके सम्बन्धमें जहां जैसा उचित हो, उसके अनुसार ही पृथक् २ या मिलाकर उपायोंका प्रयोग करना चाहिये । ॥ ८० ॥

शत्रोः शङ्कितामात्येषु सान्त्वं प्रयुक्तं शेषप्रयोगं निवर्तयति ॥ ८१ ॥ दूष्यामात्येषु दानं, सङ्घातेषु भेदः, शक्तिमत्सु दण्ड इति ॥ ८२ ॥

शत्रुके शङ्कित अमात्योंमें (अर्थात् शत्रु जिन पर क्रोध आदि दोषोंके कारण सन्देह रखता हो, और इसी लिये विजिगीषु जिनको अपनी ओर फोड़ सकता हो, ऐसे अमात्योंमें) प्रयुक्त किया हुआ साम, अन्य उपायोंको निवृत्त करदेता है । अर्थात् सामसे ही काम होजाने पर दूसरे उपायोंका प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं रहती ॥ ८१ ॥ इसी प्रकार शत्रुके दूष्य अमात्योंमें दान, आपसमें मिले हुए अमात्योंमें भेद, और शक्तिशाली अमात्योंमें दण्डका प्रयोग किया हुआ, शेष उपायोंको निवृत्त करदेता है । अर्थात् उपर्युक्त प्रकारके अमात्यादिमें, निर्दिष्ट एक २ उपायका प्रयोग करनेसे ही कार्यसिद्धि हो जाती है । उससे अतिरिक्त उपायोंका प्रयोग करनेकी आवश्यकता नहीं रहती ॥८२॥

गुरुलाघवयोगाच्चापदां नियोगविकल्पसमुच्चया भवन्ति ॥ ८३ ॥ अनेनैवोपायेन नान्येनेति नियोगः ॥ ८४ ॥ अनेन वान्येन वेति विकल्पः ॥ ८५ ॥ अनेनान्येन चेति समुच्चयः ॥ ८६ ॥

आपत्तियोंके लघुगुरुभावके अनुसार ही, उपायोंके नियोग विकल्प तथा समुच्चय होते हैं ॥ ८३ ॥ 'इस ही उपायसे कार्य सिद्धि होसकती है, अन्यसे नहीं' इसका नाम 'नियोग' है ॥ ८४ ॥ 'इस उपायसे इस कार्यकी सिद्धि होसकती है, अथवा अन्य उपायसे भी' इसका नाम विकल्प होता है ॥ ८५ ॥ 'इस उपायसे और दूसरे उपायसे अर्थात् दोनों उपायोंसे मिलकर इस कार्यकी सिद्धि होसकती है' इसको 'समुच्चय' कहते हैं ॥ ८६ ॥

तेषामेकयोगाश्चत्वारस्त्रियोगाश्च ॥ ८७ ॥ द्वियोगाः षट् ॥ ८८ ॥ एकश्चतुर्योग इति पञ्चदशोपायाः ॥ ८९ ॥ तावन्तः प्रतिलोमाः ॥ ९० ॥

साम आदि चार उपायोंका पृथक् २, दो २ मिलाकर तथा तीन २, और चारों को एक साथ मिलाकर पन्द्रह तरहसे प्रयोग किया जासकता है। केवल साम, केवल दान, केवल भेद तथा केवल दण्ड, यह चार तरहका पृथक् २ प्रयोग, और चार तरहका ही तीन २ को मिलाकर प्रयोग; जैसे—सामदानभेद, सामदानदण्ड, सामभेददण्ड, और दानभेददण्ड, इसतरह ये मिलकर आठ प्रकारके प्रयोग हुए ॥ ८७ ॥ दो दो को मिलाकर छः प्रकारके प्रयोग होते हैं; जैसे:—सामदान सामभेद, सामदण्ड, दानभेद, दानदण्ड, और भेददण्ड; पहिले आठके साथ ये छः मिलाकर चौदह हुए ॥ ८८ ॥ साम दान भेद दण्ड इन चारोंको मिलाकर एक प्रयोग; इसप्रकार ये सब मिलाकर पन्द्रह प्रकारके प्रयोग हुए ॥ ८९ ॥ पन्द्रह प्रकारके ही प्रतिलोम उपाय होते हैं; जैसे:—दण्ड, भेद, दान, साम ये चार पृथक् २; दण्डभेददान, दण्डभेदसाम, भेददानसाम, दण्डदानसाम, ये चार तीन २ उपायोंको मिलाकर; दण्डभेद, दण्डदान, दण्डसाम, भेददान, भेदसाम, दानसाम ये छः दो दो को मिलाकर; तथा दण्ड आदि चारों एक साथ; ये सब मिलाकर पन्द्रह प्रतिलोम उपाय कहाते हैं ॥ ९० ॥

तेषामेकेनोपायेन सिद्धिरेकसिद्धिः ॥ ९१ ॥ द्वाभ्यां द्विसिद्धिः ॥ ९२ ॥ त्रिभिस्त्रिसिद्धिः ॥ ९३ ॥ चतुर्भिश्चतुःसिद्धिरिति ॥ ९४ ॥

इन उपायोंमें से एक ही उपायके द्वारा जो सिद्धि होजाती है, उसे 'एकसिद्धि' कहते हैं ॥ ९१ ॥ दो उपायोंसे हुई २ सिद्धिको 'द्विसिद्धि' ॥ ९२ ॥ तीन उपायोंसे हुई २ सिद्धिको 'त्रिसिद्धि' ॥ ९३ ॥ तथा चार उपायोंसे हुई २ सिद्धिको 'चतुःसिद्धि कहा जाता है ॥ ९४ ॥

धर्ममूलत्वात्कामफलत्वाच्चार्थस्य धर्मार्थकामानुबन्धा यार्थस्य सिद्धिः सा सर्वार्थसिद्धिः ॥ ९५ ॥ इति सिद्धिः ॥ ९६ ॥

प्रतीकाररूप इन सिद्धियोंसे होनेवाले अनेक लाभोंमें से धर्म काम और अर्थका साधक होनेके कारण, अर्थका लाभ ही सबसे श्रेष्ठ होता है; अर्थकी सिद्धि या लाभको ही 'सर्वार्थसिद्धि' नामसे कहा जाता है ॥ ९५ ॥ यहांतक सिद्धियोंका-अर्थात् आपत्तियोंके प्रतीकारपूर्वक लाभोंका—निरूपण

करदिया गया। यह सब मानुषी आपत्तियोंको लेकर निरूपण किया गया है ॥ ९६ ॥

दैवादाग्निरुदकं व्याधिः प्रमारो विद्रवो दुर्भिक्षमासुरी सृष्टिरित्यापदः ॥९७॥ तासां दैवतब्राह्मणप्रणिपाततः सिद्धिः ॥९८॥

दैवी आपत्ति इसप्रकार समझनी चाहियें:—पूर्वजन्मके सञ्चित धर्माधर्म के कारण होनेवालीं; अग्नि, जल, व्याधि, महामारी, राष्ट्रविप्लव, दुर्भिक्ष, और आसुरी सृष्टि (अर्थात् चूहे इत्यादि हानिकर जन्तुओंकी अत्यधिक उत्पत्ति होजाना), ये सब दैवी आपत्तियां समझनी चाहियें ॥ ९७ ॥ इन दैवी आपत्तियोंका प्रतीकार, देवता तथा ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे ही किया जासकता है ॥ ९८ ॥

अवृष्टिरतिवृष्टिर्वा सृष्टिर्वा यासुरी भवेत् ।
तस्यामाथर्वणं कर्म सिद्धारम्भाश्च सिद्धयः ॥ ९९ ॥

इत्यभियास्यत्कर्मणि नवमे ऽधिकरणे अर्थानर्थसंशययुक्तास्तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयश्च सप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ आदितो ऽष्टाविंशशतः ॥ १२८ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य अभियास्यत्कर्म नवममधिकरणं समाप्तम् ॥ ९ ॥

अवृष्टि (सर्वथा वर्षाका न होना), अतिवृष्टि (आवश्यकतासे अत्यधिक वृष्टिका होजाना), अथवा आसुरी सृष्टि (चूहे आदि जन्तुओंका अत्यधिक होजाना), इन सबके कारण जो आपत्ति उत्पन्न होवें, उनके प्रतीकारके लिये, अथर्ववेदमें प्रतिपादित शान्तिकर्मोंका अनुष्ठान किया जावे । तथा सिद्ध तपस्वी महात्मा पुरुषोंके द्वारा प्रारम्भ कियेगये अन्य शान्तिकर्मोंको भी, इन आपत्तियोंके प्रतीकार करनेमें कारण समझना चाहिये ॥ ९९ ॥

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरणमें सातवां अध्याय समाप्त

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरण समाप्त ।
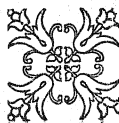
सांग्रामिक दशम अधिकरण

पहिला अध्याय

१४७ प्रकरण

स्कन्धावारनिवेश ।

युद्धभूमिके समीप ही सेनाके आवास स्थानको 'स्कन्धावार' (छावनी) कहते हैं। उसका निवेश अर्थात् निर्माण किसतरह करना चाहिये; इस बातका निरूपण, इस प्रकरणमें किया जायगा।

वास्तुकप्रशस्ते वास्तुनि नायकवर्धकिमौहूर्तिकाः स्कन्धावारं वृत्तं दीर्घं चतुरश्रं वा भूमिवशेन वा चतुर्द्वारं षट्पथं नवसंस्थानं मापयेयुः ॥ १ ॥ खातवप्रसालद्वाराट्टालकसंपन्नं भये स्थाने च ॥ २ ॥

वास्तुविद्या (गृहनिर्माण आदि विद्या) में सुचतुर मनुष्योंके द्वारा प्रशंसा कियेहुए प्रदेशमें, नायक (सेनापति), वर्धकि (स्थपति=कारीगर), और मौहूर्त्तिक (निर्माण आदिके शुभकालका निश्चय करनेवाला ज्योतिषी) मिलकर, गोलाकार लम्बे या चौकोर, अथवा वहां जैसी भूमि हो उसके अनुसार, चार दरवाजे वाले (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओंमें एक एक दरवाजे से युक्त), छः मार्गोंसे युक्त (तीन मार्ग, पूर्वसे पश्चिम हों, और तीन ही उत्तरसे दक्षिणकी ओर हों), तथा नौ संस्थान (सन्निवेश=अर्थात् जिसमें पृथक् २ नौ मुहल्ले से हों, ऐसे) वाले स्कन्धावारका निर्माण करावें ॥ १ ॥ खाई, नीचेकी सफील या डांग, परकोटा, एक प्रधान द्वार तथा अट्टालिकाओं (अटारियों) से युक्त स्कन्धावार, उसी अवस्थामें तैयार कराया जावे, जबकि शत्रुओंकी ओरसे आक्रमण होनेके भय, तथा वहां चिरकाल तक ठहरनेकी सम्भावना हो ॥ २ ॥

मध्यमस्योत्तरे नवभागे राजवास्तुकं धनुःशतायाममर्धविस्तारं, पश्चिमार्धे तस्यान्तःपुरमन्तर्वंशिकसैन्यं चान्ते निविशेत ॥३॥

स्कन्धावारके मध्यभागसे उत्तरकी ओर, नौवें हिस्सेमें, सौ धनुष् (देखो–अधि० २, अध्या० २०) लम्बा तथा इससे आधा चौड़ा, राजाका निवासस्थान बनवाया जावे। उससे पश्चिमकी ओर उसके आधे हिस्सेमें अन्तःपुर (राजाकी स्त्रियोंके निवासस्थान) का निर्माण कराया जावे। और अन्तःपुरकी रक्षा करनेवाले सैनिक पुरुषोंका स्थान, अन्तःपुरके समीपमें ही नियत किया जावे। (किसी २ पुस्तकमें इस सूत्रके 'राजवास्तुकं' पदके स्थान पर 'राजवास्तुनिवेशं कारयेत्' ऐसा पाठ है। अर्थ में कोई भेद नहीं) ॥ ३ ॥

पुरस्तादुपस्थानं दक्षिणतः कोशशासनकार्यकरणानि वामतो राजोपवाह्यानां हस्त्यश्वरथानां स्थानम् ॥ ४ ॥ अतो धनुःशतान्तराश्चत्वारः शकटमेथीप्रततिस्तम्भसालपरिक्षेपाः ॥ ५ ॥

राजगृहके सामनेकी ओर, राजाका उपस्थानगृह बनवाया जावे, (उपस्थानगृह उसको कहते हैं, जहांपर बैठकर राजाके दर्शनार्थी पुरुष राजासे मिलते हैं।) राजगृहसे दाहिनी ओर कोश (खज़ानेकी जगह), शासनकरण (अक्षपटल=आय व्यय आदिका प्रधान कार्यालय=सेक्रेटरियेट), तथा कार्यकरण (कार्योंके निरीक्षण करनेका स्थान), इन स्थानोंका निर्माण कराया जावे। और राजगृहसे बाईं ओर, राजाकी सवारीमें काम आने वाले हाथी घोड़े तथा रथोंके लिये स्थान बनवाया जावे ॥ ४ ॥ राजगृहसे दूरीपर चारों ओर, उसकी रक्षाके लिये चार बाड़ लगाई जावें; इनमें से पहिली बाड़ शकट अर्थात् गाड़ियोंकी होनी चाहिये; दूसरी बाड़, कांटोंसे लदीहुई बड़ी शाखाओंकी; तीसरी मज़बूत लकड़ीके खम्भों या फट्टोंकी; और चौथी मज़बूत चिनीहुई परकोटेके ढंगकी बाड़ होनी चाहिये। प्रत्येक बाड़का आपसमें सौ सौ धनुषका फ़ासला होवे। इसप्रकार सौ सौ धनुषके फ़ासलेपर ये चार प्रकारकी बाड़, राजगृहके चारों ओर उसकी रक्षाके लिये होनी चाहियें ॥ ५ ॥

प्रथमे पुरस्तान्मन्त्रिपुरोहितौ, दक्षिणतः कोष्ठागारं महानसं च, वामतः कुप्यायुधागारम् ॥ ६ ॥ द्वितीये मौलभृतानां स्थानमश्वरथानां सेनापतेश्च ॥ ७ ॥ तृतीये हस्तिनः श्रेण्यः प्रशास्ता च ॥ ८ ॥

पहिली बाड़के बीचमें सामनेकी ओर मन्त्रियों और पुरोहितोंके स्थान बनवाये जावें। दाहिनी ओर कोष्ठागार (वस्तुभण्डार) और महानस (पाकशाला=रसोईघर) बनवाया जावे। तथा बाईं ओर कुप्यागार (लोहा

तांबा लकड़ी चमड़ा आदि रखनेका स्थान) और आयुधागार (हथियार रखनेका स्थान) बनवाया जावे ॥ ६ ॥ दूसरी बाड़ अर्थात् घेरेके बीचमें मौल भृत आदि सेनाओंके स्थान; हाथी और घोड़े तथा सेनापतिके स्थानका निर्माण कराया जावे ॥ ७ ॥ तीसरे घेरेमें हाथी, श्रेणीबल तथा प्रशास्ता (कण्टकशोधनाध्यक्ष) आदिके स्थान बनवाये जावें ॥ ८ ॥

चतुर्थे विष्टिर्नायको मित्रामित्राटवीबलं स्वपुरुषाधिष्ठितम् ॥ ९ ॥ वणिजो रूपाजीवाश्चानुमहापथम् ॥ १० ॥ बाह्यतो लुब्धकश्वगाणिनः सतूर्याग्नयः गूढाश्चारक्षाः ॥ ११ ॥

चौथे घेरेमें विष्टि (कर्मचारीवर्ग=सेवकवर्ग), नायक (दश सेना पतियोंका एक प्रधान अधिकारी), और अपने ही किसी पुरुषसे अधिष्ठित (अर्थात् अपने पुरुषके ही नेतृत्वमें; जिनका अधिकारी अपना ही आदमी हो, ऐसी) मित्र सेना, शत्रु सेना तथा आटविक सेनाके लिये स्थान बनवाये जावें ॥ ९ ॥ व्यापारी बनिये और वेश्याओंके लिये बड़े बाज़ारके साथ ही स्थान बनवाये जावें ॥ १० ॥ बहेलिये शिकारी, बाजे तथा अग्नि आदिके इशारेसे सत्रुके आगमनको बतलाने वाले, और ग्वाले आदिके वेषमें छिपे तौरपर रहने वाले रक्षक पुरुषोंको सबसे बाहरकी ओर रक्खा जावे ॥ ११ ॥

शत्रूणामापाते कूपकूटावपातकण्टकिनीश्च स्थापयेत् ॥ १२ ॥ अष्टादशवर्गाणामारक्षविपर्यासं कारयेत् ॥ १३ ॥ दिवायामं च कारयेदपसर्पज्ञानार्थम् ॥ १४ ॥

जिस मार्गसे शत्रुओंके आनेकी सम्भावना हो, उस मार्गमें कुछ छिपेहुए धोखेके गढ़ों (नीचे गढ़े खोदकर ऊपर घास आदिसे ढक देना) को खोदकर और कांटों या लोहेकी कीलोंसे युक्त तख्तोंको ज़मीनपर बिछाकर शत्रुके रोकनेका प्रबन्ध किया जावे ॥ १२ ॥ पहरेके लिये अर्थात् हरसमयकी रक्षाके लिये, अठारह वर्गोंका पर्यायसे आयोजन करे। तात्पर्य यह है, मौल भृत आदि छः प्रकारकी सेना होती है (देखो–अधि० ९, अध्या० २, सूत्र १), प्रत्येक सेनाके तीन २ अधिकारी होते हैं–पदिक सेनापति और नायक; इसप्रकार प्रत्येक सेनाके अपने २ अधिकारीकी अधीनतामें तीन २ वर्ग होकर, छः प्रकारकी सेनाओंके अठारह वर्ग होजाते हैं; इनको बदल २ कर रक्षाके लिये नियुक्त करें; क्योंकि ऐसा करनेसे शत्रुके द्वारा उपजाप

किये जानेका भय नहीं रहता ॥ १३ ॥ शत्रुके गुप्तचरोंको जाननेके लिये दिनरातमें अपने आदमियोंके इधर उधर घूमनेका भी नियम करे ॥ १४ ॥

विवादसौरिकसमाजद्यूतवारणं च कारयेत् ॥ १५ ॥ मुद्रारक्षणं च ॥ १६ ॥ सेनानिवृत्तमायुधीयमशासनं शून्यपालोऽनुबध्नीयात् ॥ १७ ॥

आपसके झगड़े, शराब आदि पीने, गोष्ठी करने, तथा जुआ आदि खेलनेसे, सैनिकोंको सर्वथा रोकदेवे ॥ १५ ॥ छावनीके बाहर भीतर आने जानेके लिये; राजकीय मुहरका बड़ा कड़ा प्रबन्ध रक्खे । तात्पर्य यह है, कि जिनके पास ख़ास शाही पास हो, उन्हींको बाहर भीतर आने जाने दिया जावे ॥ १६ ॥ राजाकी लिखित आज्ञा लिये बिना ही युद्ध भूमिसे भागकर वापस लौटेहुए सैनिक पुरुषोंको शून्यपाल (राजासे रहित राजधानीकी रक्षा करने वाला अधिकारी) गिरफ्तार करलेवे । (किसी पुस्तकमें 'शून्यपाल' के स्थानपर 'अन्तपाल' भी पाठ है) ॥ १७ ॥

पुरस्ताद्ध्वनः सम्यक्प्रशास्ता रक्षणानि च ।
यायाद्वर्धकिविष्टिभ्यामुदकानि च कारयेत् ॥ १८ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे स्कन्धावारनिवेशः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदित एकोनत्रिंशच्छतः ॥ १२९ ॥

प्रशास्ता (कण्टकशोधनाध्यक्ष), सेना आदिके सहित राजाके प्रस्थान करनेसे पहिले ही, शिल्पी तथा कर्मकर पुरुषों या उनके अध्यक्षोंके साथ चलाजावे; और मार्गकी हरतरहसे रक्षाका, तथा आवश्यक स्थानोंमें जल आदिका अच्छीतरह प्रबन्ध करे । (मार्गकी रक्षाका तात्पर्य—मार्गके ऊंचे नीचे स्थानोंको बराबर कराना, कांटे आदिको साफ़ कराना, तथा हानिकर हिंसक प्राणियोंको दूर भगाने आदिसे है । किसी पुस्तकमें ' रक्षणानि ' की जगह ' ग्रहणानि ' पाठ भी है; पर यह पाठ कुछ संगत नहीं मालूम होता) ॥ १८ ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१४८-१४९ प्रकरण

स्कन्धावारप्रयाण; तथा बलव्यसन और अवस्कन्दकालसे सेना की रक्षा ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें स्कन्धावारका और सेना सहित राजाके प्रस्थानका निरूपण किया जायगा । और दूसरे प्रकरणमें अमानित विमानित आदि सेना सम्बन्धी व्यसनोंसे तथा लम्बा रास्ता या घने जंगल आदिमें चलनेके कष्टोंसे अपनी सेनाको बचानेके उपायोंका निरूपण किया जायगा ।

ग्रामारण्यानामध्वनि निवेशान् यवसेन्धनोदकवशेन परिसंख्याय स्थानासनगमनकालं च यात्रां यायात् ॥ १ ॥ तत्प्रतीकारद्विगुणं भक्तोपकरणं वाहयेत् ॥ २ ॥ अशक्तो वा सैन्येष्वेव प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ अन्तरेषु वा निचिनुयात् ॥ ४ ॥

ग्राम अर्थात् आबादीके मार्गोंमें ठहरनेके योग्य स्थानोंका घास लकड़ी तथा जल आदिके अनुसार निर्णय करके; और उन स्थानोंमें पहुंचने ठहरने तथा चलने आदिके समयका पहिलेसेही ठीक २ निर्णय करके, फिर यात्राके लिये जाया जावे । अर्थात् विजिगीषु, इन सब बातोंको, आक्रमण करनेसे पहिले निश्चय करलेवे । (नयचन्द्रिका व्याख्याकार माधवयज्वाने इस सूत्रके 'स्थान' 'आसन' और 'गमन' शब्दोंका अर्थ निम्नलिखित रीतिसे किया है:—किसी नियत स्थानपर दो तीन महीने तक ठहरना 'स्थान', पांच छः दिनतक ठहरना 'आसन' और केवल एक रातके लियेही ठहरना 'गमन' कहाता है) । ॥ १ ॥ उस यात्रामें, जितने खाने पीनेके सामान और वस्त्र आदि की आवश्यकता हो, उससे दुगना लेजावे ॥ २ ॥ यदि इतना सामान सवारियोंपर ढोकर न लेजाया जासके, तो थोड़ा २ सामान सैनिक पुरुषोंको देदेवे ॥ ३ ॥ अथवा बीचमें ठहरनेके लिये नियत हुए २ प्रदेशोंमेंही, इन सब सामानोंका संग्रह करवावे ॥ ४ ॥

पुरस्तान्नायकः ॥ ५ ॥ मध्ये कलत्रं स्वामी च ॥ ६ ॥ पार्श्वयोरश्वा बाहूत्सारः ॥ ७ ॥ चक्रान्तेषु हस्तिनः ॥ ८ ॥ प्रसारवृद्धिर्वा सर्वतः ॥ ९ ॥ वनाजीवः प्रसारः ॥ १० ॥ स्वदे-

शादन्वायतिर्वीवधः ॥ ११ ॥ मित्रबलमासारः ॥ १२ ॥ कलत्रस्थानमपसारः ॥ १३ ॥ पश्चात् सेनापतिः पर्यायान्निविशेत ॥ १४ ॥

सेनाके सबसे अगले हिस्सेमें नायक (इस सेनापतियोंके प्रधान अधिकारी) को चलना चाहिये ॥ ५ ॥ बीचमें अन्तःपुर तथा राजा चले ॥ ६ ॥ इधर उधर बाजुओंमें, अपनी भुजाओंसे ही शत्रुके आघातको रोकने वाली घुड़सवार सेना चले ॥ ७ ॥ सेनाके पिछले भागमें हाथी चलें ॥ ८ ॥ प्रसार अर्थात् अन्न और घास भूसा आदि बहुत अधिक सामान, सब ओरसे लेजाया जावे ॥९॥ जंगलमें उत्पन्न होनेवाली, आजीविका योग्य (अन्न तथा घास भूसा आदि) वस्तुओंको 'प्रसार' कहते हैं ॥ १० ॥ अपने ही देशसे, अन्न आदि द्रव्योंके लगातार चले आनेको, 'वीवध' कहते हैं ॥ ११ ॥ मित्रकी सेनाको 'आसार' कहा जाता है ॥ १२ ॥ कलत्र अर्थात् अन्तःपुर (रानियों) के ठहरनेके स्थानको ' अपसार ' कहते हैं ॥ १३ ॥ सबसे पिछले हिस्सेमें सेनापति, पर्यायसे अर्थात् अपनी २ सेनाके पीछे, नियत रहे। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक सेनापति अपनी सेनाके पीछेके भागमें मिलकर चलें ॥ १४ ॥

पुरस्तात् अभ्याघाते मकरेण यायात्पश्चाच्छकटेन पार्श्वयोर्वज्रेण समन्ततः सर्वतोभद्रेणैकायने सूच्या ॥ १५ ॥

यदि सामनेकी ओरसे शत्रुके आक्रमण करनेकी सम्भावना हो, तो मकराकार (मकरके मुखके समान आकृति रखने वाला, देखो—अधि० १०, अध्या० ६) व्यूहकी रचना करके शत्रुकी ओर चले। यदि पीछेकी ओरसे शत्रुके आक्रमणकी सम्भावना हो, तो शकटव्यूह बनाकर ही आगे बढ़े। यदि इधर उधर बाजुओंकी ओरसे शत्रुके आक्रमणकी सम्भावना हो, तो वज्रव्यूह बनाकर आगे बढ़े। इसी प्रकार चारों ओरसे आक्रमणकी सम्भावना होनेपर सर्वतोभद्र व्यूहके द्वारा आगेको चले; यदि मार्ग इतना तंग हो, कि उससे एक समयमें एक ही एक आदमी जासके, तो सूचीव्यूह बनाकर आगे की ओर चले। (इन सब व्यूहोंका निरूपण इसी अधिकरणके छठे अध्यायमें देखिये) ॥ १५ ॥

पथि द्वैधीभावे स्वभूमितो यायात् ॥ १६ ॥ अभूमिष्ठानां हि स्वभूमिष्ठा युद्धे प्रतिलोमा भवन्ति ॥ १७ ॥ योजनमधमा अध्यर्धं मध्यमा द्वियोजनमुत्तमा संभाव्या वा गतिः ॥ १८ ॥

यदि मार्गमें किसी तरहकी द्विविधा हो, अर्थात् कोई मार्ग अपने अनुकूल या प्रतिकूल हो, तो उनमें से जो मार्ग अपने हाथी घोड़े रथ और पैदल सेनाके लिये ठीक पड़े, उसी मार्गसे होकर जावे ॥ १६ ॥ क्योंकि युद्धके अवसर पर, अनुकूल मार्गसे न चलने वाले राजाओंके वे आक्रमणीय नहीं होते, जो कि अपने अनुकूल ही मार्गसे गमन करते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रतिकूल मार्गसे चलने वाले राजा, अनुकूल मार्गसे चलने वाले राजाओं पर आक्रमण नहीं कर सकते ॥ १७ ॥ अब यह बताते हैं, कि एक दिनमें कितना रास्ता चलना चाहिये;—प्रतिदिन एक योजन (चार कोसका एक योजन होता है) चलना अधम गति कहाती है। डेढ़ योजन चलना मध्यम गति, और दो योजन प्रतिदिन चलना, उत्तम गति कहाती है। अथवा हर एक सुभीतेके साथ, प्रतिदिन जितना सम्भव होसके, उतना ही चले ॥ १८ ॥

आश्रयकारी संपन्नघाती पार्ष्णिरासारो मध्यम उदासीनो वा प्रतिकर्तव्यः ॥ १९ ॥ सङ्कटो मार्गः शोधयितव्यः ॥ २० ॥ कोशो दण्डो मित्रामित्राटवीबलं विष्टिर्ऋतुर्वा प्रतीक्ष्याः ॥ २१ ॥

विजिगीषु जब यह सोचे, कि मैं अपनी उन्नतिके लिए किसीको अपना आश्रय बनाऊंगा, अथवा धन धान्य आदिसे समृद्ध शत्रुके दलको नष्ट करूंगा, अथवा पार्ष्णिग्राह (पृष्ठस्थित शत्रु), आसार (मित्रबल), मध्यम (शत्रु और विजिगीषुके देशोंके बीचमें रहने वाला सामन्त). और उदासीन राजा का प्रतिकार करूंगा, अर्थात् इनके क्रोध को शान्त करूंगा; तो धीरे २ यात्रा करे। (इन सूत्रोंका अन्वय २२वें सूत्रके 'इति शनैर्यायात्' इस पदके साथ कर लेना चाहिये) ॥ १९ ॥ अथवा ऊबड़खाबड़ (सङ्कट=विषम) रास्तेको साफ़ करना है, यह सोचकरभी धीरे २ जावे ॥ २० ॥ अथवा जब कोश (धन संग्रह), दण्ड (अपनी सेना=अर्थात् बिखरी हुई सेनाको मिलाना चाहे), मित्र सेना, शत्रु सेना, आटविक सेना, विष्टि (कर्मकर पुरुष) और अपनी सेनाके अनुकूल ऋतु की प्रतीक्षा करनी हो, तो भी धीरे २ ही जावे ॥ २१ ॥

कृतदुर्गकर्मनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्चागमिष्यति, उपजापितारो वा नातित्वरयन्ति, शत्रुरभिप्रायं वा पूरयिष्यतीति शनैर्यायात् ॥ २२ ॥ विपर्यये शीघ्रम् ॥ २३ ॥

अथवा जब यह सम्भावना हो, कि शत्रुके अपने दुर्गकी पहिले कीहुई मरम्मत नष्ट होजायगी, उसके संगृहीत धान्य आदिका भी नाश होजायगा, तथा रक्षा (रक्षा सम्बन्धी प्रबन्ध) का भी नाश हो जायगा; धन देकर अपने वशमें की हुई सेना खिन्न होजायगी (अर्थात् शत्रुसे उसकी यह सेना विरक्त होजायगी), और मित्रकी सेना भी विरक्त हो जायगी, तबभी धीरे २ ही यात्रा करे । अथवा जब यह समझे कि शत्रुके उपजापिता पुरुष अभी शीघ्रता नहीं कर रहे हैं, अथवा शत्रु, युद्धके बिना ही विजिगीषुके अभिप्रायको पूरा करदेगा, तबभी धीरे २ ही यात्रा करे ॥ २२ ॥ और इन उपर्युक्त अवस्थाओं से विपरीत अवस्था होने पर शीघ्र ही यात्रा करे ॥२३॥

हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुबन्धनौकाष्ठवेणुसङ्घातैरलाबुचर्मकरण्डदृतिप्लवगण्डिकावेणिकाभिश्चोदकानि तारयेत् ॥ २४ ॥

अब इस बातका निरूपण करते हैं, कि सेनाएं नदी आदिको किन साधनों से पार करें:—हाथी, स्तम्भ संक्रम (नदीमें खंभे गाड़कर और उनपर फट्टे आदि रखकर), सेतुबन्ध (पुल आदि बांधकर), नाव, लकड़ी तथा बांसोंके बेड़े बनाकर; तूंबी, चर्मकाण्ड (चमड़ेसे मढ़ा हुआ, बांसके छिलकों से बनाया गया एक खोखला पात्रविशेष), दृति (भस्त्रा=धौंकनीके समान बना हुआ चमड़े का एक तैरनेका साधन), प्लव (मोमजामे आदि कपड़ेका, तकियेके गिलाफके समान बना हुआ; इसको फूंकसे भरकर फिर तैरनेके काम में लाया जाता है), गण्डिका (काग नामकी लकड़ीके बने हुए तैरनेके विशेष साधन), और वेणिका (मजबूत रस्सियां), आदि साधनोंके द्वारा सेनाएं जलोंको पार करें ॥ २४ ॥

तीर्थाभिग्रहे हस्त्यश्वैरन्यतो रात्रावुत्तार्य सत्त्रं गृह्णीयात् ॥ २५ ॥ अनुदके चाक्रिचतुष्पदं चाध्वप्रमाणेन शक्त्योदकं वाहयेत् ॥ २६ ॥

नदी आदिसे पार उतरनेके घाटोंको यदि शत्रुने रोका हुआ हो, या रोकने की सम्भावना हो, तो हाथी और घोड़ोंके द्वारा, बिना ही घाटके दूसरी जगहोंसे, रात्रिमें ही अपनी सेनाको पार उतार कर, विजिगीषु, सत्त्र (कूट युद्ध विकल्प प्रकरणमें इसका निरूपण किया जायगा, देखोः—अधि० १०, अध्या० ३) का ग्रहण करे ॥ २५ ॥ जिस प्रदेशमें जल न हो, वहांपर, गाड़ी तथा बैल आदि चौपायोंके ऊपर, उतने मार्गके लिये पर्याप्त जल, शक्तिके अनुसार लेजावे । इस प्रकार यहांतक स्कन्धावारप्रयाणका निरूपण करदिया गया ॥२६॥

दीर्घकान्तारमनुदकं यवसेन्धनोदकहीनं वा कृच्छ्राध्वानमभियोगप्रस्कन्नं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तं पङ्कतोयगम्भीराणां वा नदीदरीशैलानामुद्यानापयाने व्यासक्तमेकायनमार्गे शैलविषमे सङ्कटे वा बहुलीभूतं निवेशे प्रस्थिते विसंनाहं भोजनव्यासक्तमायतगतपरिश्रान्तमवसुप्तं व्याधिमरकदुर्भिक्षपीडितं व्याधितपत्त्यश्वद्विपमभूमिष्ठं वा बलव्यसनेषु वा स्वसैन्यं रक्षेत् ॥ २७ ॥ परसैन्यं चाभिहन्यात् ॥ २८ ॥

विजिगीषु लम्बा रास्ता तै करने वाली तथा जंगलमें होकर सफ़र करने वाली अपनी सेना की रक्षा करे। (इस सूत्रके अन्तिम पद 'स्वसैन्यं रक्षेत्' का प्रत्येक वाक्यके साथ अन्वय समझना चाहिये) मार्गमें जल प्राप्त न करने वाली सेना की भी, विजिगीषु रक्षा करे। इसी प्रकार घास भूसा (गौत=यवस) ईंधन और जलसे हीन (दूसरी बार जलका ग्रहण उसकी प्रधानता द्योतन करनेके लिये किया गया है), कठिन मार्गमें चलने वाली; चिरकालसे मुकाबला करनेके कारण खिन्न हुई २, भूख प्यास और सफ़र के कारण बेचैन हुई २; भारी दलदल, गहरे जल, नदी, गुफा और पर्वताके पार करने तथा चढ़ने उतरनेमें लगी हुई; एक हीके जाने योग्य तंग मार्गमें, पथरीले पहाड़ी विषम स्थानमें या इस प्रकारके पहाड़ी किलेमें इकट्ठी हुई २; ठहरने तथा यात्राके समयमें हथियार और कवच आदिसे रहित, भोजनमें लगी हुई; लंबा सफर करनेसे थकी हुई; नींद लेती हुई; ज्वर आदि रोग, संक्रामक महामारी तथा दुर्भिक्षसे पीड़ित हुई २; बीमार, पैदल हाथी और घोड़ोंसे युक्त, (अर्थात् जिस सेनाके सिपाही और हाथी घोड़े बीमार होगये हों, ऐसी); अपने युद्ध के अनुरूप भूमिमें न ठहरी हुई; अथवा युद्धके समयमें सैनिक आपत्तियोंसे युक्त अपनी सेना की, विजिगीषु हर तरहसे रक्षा करे ॥ २७ ॥ तथा इन्हीं अवस्थाओं को प्राप्त हुई २ शत्रुकी सेना को नष्ट भ्रष्ट कर डाले, अर्थात् मार डाले ॥ २८ ॥

एकायनमार्गप्रयातस्य सेनानिश्चारग्रासाहारशय्याप्रस्ताराग्निनिधानध्वजायुधसंख्यानेन परबलज्ञानं, तदात्मनो गूहयेत् ॥ २९ ॥

शत्रुके साथ सन्धि या लड़ाई करनेमें, उसकी सेना का परिमाण जानना अत्यन्त आवश्यक होता है, इसलिये उसके परिमाणके जानने का ढंग बताया जाता है:—जब शत्रु, एकके ही जाने योग्य तंग रास्तेसे जारहा हो,

उस समय वहांसे निकलते हुए उसके सैनिक पुरुषोंके गिननेसे; हाथी आदि की भोज्य सामग्री की गणना करनेसे; उनके सोनेके स्थानों की गिनती से, भोजन पकानेके चूल्हों की गणना करनेसे, ध्वजा (झण्डियां=पताकाएं) तथा हथियारों की गिनती करनेसे; शत्रुकी सेना की इयत्ता का (अर्थात् शत्रुकी इतनी सेना है, इस बातका) पता लगा लेना चाहिये। और अपनी सेना की इयत्ता का पता देदेने वाले इन साधनों को छिपा देवे, अथवा नष्ट कर देवे ॥ २९ ॥

पार्वतं वा नदीदुर्गं सापसारप्रतिग्रहम् ।
स्वभूमौ पृष्ठतः कृत्वा युध्येत निविशेत च ॥ ३० ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे स्कन्धावारप्रयाणं, बलव्यसनावस्कन्दकाल-
रक्षणं च द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितस्त्रिंशच्छतः ॥ १३० ॥

अपसार (पराजय होनेपर भागजानेकी जगहको 'अपसार' कहते हैं) और प्रतिग्रह (आक्रमण करतीहुई शत्रुकी सेनाको गिरफ्तार करनेकी जगहका नाम 'प्रतिग्रह' है) से युक्त (अर्थात् जिनमें अवसरपर भागने और शत्रुकी सेनाको पकड़नेका काफ़ी सुभीता हो, ऐसे) पार्वतदुर्ग (पहाड़ी किले, देखो-अधि० २, अध्या० ३, सूत्र २,) और वनदुर्गको अच्छी तरह तैयार करके, अपने लिये सर्वथा अनुकूल, भूमिमें ही ठहरकर युद्ध करे; अथवा चिन्ता रहित होकर वासकरे ॥ ३० ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त

तीसरा अध्याय

१५०-१५२ प्रकरण

कूटयुद्ध के भेद, अपनी सेना का प्रोत्साहन, तथा अपनी और पराई सेना का व्यवस्थापन ।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें कपटपूर्वक कियेजाने वाले युद्धों का निरूपण किया जायगा। दूसरे प्रकरणमें प्रकटयुद्धके समय अपनी सेनाओं को प्रोत्साहन देनेके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा। तथा तीसरे प्रकरणमें शत्रुकी सेनाकी अपेक्षा अपनी सेनाकी विशेष व्यवस्था अर्थात् विशेष व्यूहरचना आदिके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा।

बलविशिष्टः कृतोपजापः प्रतिविहितकर्तुः स्वभूम्यां प्रकाशयुद्धमुपेयात् ॥ १ ॥ विपर्यये कूटयुद्धम् ॥ २ ॥

बड़ी बहादुर और अधिक सेनासे युक्त, शत्रुपक्षमें उपजाप करनेके लिये समर्थ, युद्धयोग्य समयको अपने अनुकूल बनाने वाला विजिगीषु, अपनी भूमिमें अर्थात् अपने अनुकूल प्रदेशमें प्रकाशयुद्ध करना स्वीकार करे। तात्पर्य यह है, कि प्रकाशयुद्ध करनेके लिये, विजिगीषुको इसप्रकार शक्तिशाली होना अत्यन्त आवश्यक है ॥ १ ॥ यदि अवस्था इसके विपरीत हो, तो कूटयुद्ध ही करना चाहिये ॥ २ ॥

बलव्यसनावस्कन्दकालेषु परमभिहन्यात् ॥ ३ ॥ अभूमिष्ठं वा स्वभूमिष्ठः ॥ ४ ॥ प्रकृतिप्रग्रहो वा स्वभूमिष्ठं दूष्यामित्राटवीबलैर्वा भङ्गं दत्त्वा विभूमिप्राप्तं हन्यात् ॥ ५ ॥ संहतानीकं हस्तिभिर्भेदयेत् ॥ ६ ॥

अमानित विमानित आदि (देखो—अधि० ८, अध्या० ५, सू० १, २) सेना सम्बन्धी व्यसनोंके आनेपर, या लम्बा सफ़र जङ्गलका सफ़र तथा जल आदिके न मिलनेसे सेनापर कष्ट आनेकी अवस्थामें; शत्रुके ऊपर आक्रमण किया जाय। अर्थात् जब शत्रुकी सेनाकी उपर्युक्त अवस्था हो, तब उस पर आक्रमण किया जावे ॥ ३ ॥ अथवा शत्रुकी स्थिति युद्धके प्रतिकूल होनेपर, और अपनी स्थिति युद्धके अनुकूल होनेपर, विजिगीषु शत्रुके ऊपर आक्रमण करे ॥ ४ ॥ अथवा शत्रुकी, अमात्य आदि प्रकृतिको उपजापके द्वारा अपने वशमें करनेवाला विजिगीषु, युद्धके अनुकूल प्रदेशमें स्थित हुए २ भी शत्रुपर आक्रमण कर देवे। अथवा अपनी दूष्यसेना, शत्रुसेना और आटविक सेनाके द्वारा पराजय देकर, अनुकूल भूमि समझकर (वस्तुतः प्रतिकूल भूमिमें ही) अपने विजयके विश्वाससे आयेहुए शत्रुको, मारडाले ॥ ५ ॥ अपनी अनुकूल भूमि में, मिलकर ठहरी हुई शत्रु सेनाको हाथियोंके द्वारा छिन्न भिन्न करदेवे ॥ ६ ॥

पूर्वं भङ्गप्रदानेनानुप्रलीनं भिन्नमभिन्नं प्रतिनिवृत्य हन्यात् ॥ ७ ॥ पुरस्तादभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पृष्ठतो हस्त्यश्वेनाभिहन्यात् ॥ ८ ॥ पृष्ठतोऽभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पुरस्तात्सारबलेनाभिहन्यात् ॥ ९ ॥

पहिले पराजयके कारण छिन्न भिन्न हुई २ शत्रुकी सेनाको, स्वयं इकट्ठी हुई २ (अभिन्नम्) विजिगीषुकी सेना लौटकर फिर मारे ॥ ७ ॥ सामने

की ओरसे आक्रमण करनेके कारण छिन्न भिन्न हुई २, अथवा विमुख हुई २ शत्रुकी सेनाको, पीछेकी ओरसे हाथी और घोड़ोंके द्वारा नष्ट करे ॥ ८ ॥ तथा पीछेकी ओरसे आक्रमण करनेके कारण छिन्न भिन्न हुई २, या उलटी भागी हुई शत्रुकी सेना को, सामनेकी ओरसे बहादुर सेनाके द्वारा नष्ट करे ॥ ९ ॥

ताभ्यां पार्श्वाभिघातौ व्याख्यातौ ॥ १० ॥ यतो वा दूष्य-फल्गुबलं ततो ऽभिहन्यात् ॥ ११ ॥

आगेकी ओर और पीछेकी ओरसे किये जानेवाले आक्रमणोंके अनुसार ही, इधर उधर बाजुओंकी ओरसे किये जानेवाले आक्रमणोंका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ १० ॥ अथवा जिस ओर शत्रुकी दूष्य या निर्बल सेना हो, उसी ओरसे शत्रुपर धावा मारे ॥ ११ ॥

पुरस्ताद्विषमायां पृष्ठतो ऽभिहन्यात् ॥ १२ ॥ पृष्ठतो विषमायां पुरस्तादभिहन्यात् ॥ १३ ॥ पार्श्वतो विषमायामितरतो-ऽभिहन्यात् ॥ १४ ॥

यदि सामनेकी ओरसे आक्रमण करना अपने अनुकूल न पड़े, तो पीछेकी ओर से ही आक्रमण करे ॥ १२ ॥ इसीप्रकार पीछेकी ओरसे आक्रमण की अनुकूलता न होनेपर, सामनेसे ही आक्रमण करे ॥ १३ ॥ इधर उधर पार्श्वभागोंसे आक्रमणकी अनुकूलता न होनेपर, दूसरी ओरसे आक्रमण करे। (इन सब सूत्रोंमें आक्रमणकी अनुकूलता पृथिवी के आधारपर ही बताई गई है। अर्थात् जिस ओर भूमि ऊबड़खाबड़ हो, उस ओरसे आक्रमण न करे, किन्तु उसके दूसरी ओरसे आक्रमण करे, जिससे कि शत्रुकी सेना, उलटी भागकर उस विषम भूमिमें फंस जावे, और फिर उसको सरलतासे ही नष्ट किया जासके ॥ १४ ॥

दूष्यामित्राटवीबलैर्वा पूर्वं योधयित्वा श्रान्तमश्रान्तः परमभिहन्यात् ॥ १५ ॥ दूष्यबलेन वा स्वयं भङ्गं दत्त्वा जितमिति विश्वस्तमविश्वस्तः सत्रापाश्रयो ऽभिहन्यात् ॥ १६ ॥

अथवा पहिले अपनी दूष्यसेना, शत्रुसेना तथा आटविक सेनाके साथ शत्रुका मुकाबला कराके उसे खूब अच्छी तरह थकाकर, फिर अपने आप न थका हुआ ही विजिगीषु स्वयं, शत्रुपर आक्रमण करे ॥ १५ ॥ अथवा पहिले दूष्यबल के साथ लड़ाकर स्वयं ही उसको पराजय देकर (अर्थात् अपने दूष्यबलके पराजित होजानेपर), जब शत्रुको इस बातका विश्वास होजाय, कि मैंने

विजिगीषुको जीत लिया है; तब स्वयं उसका विश्वास न करता हुआ सत्रका आश्रय लेकर ('सत्र' का निरूपण इसी अध्यायके २५ वें सूत्रमें किया जायगा) शत्रुपर आक्रमण करदेवे ॥ १६ ॥

सार्थव्रजस्कन्धावारसंवाहविलोपप्रमत्तमप्रमत्तो ऽभिहन्यात् ॥ १७ ॥ फल्गुबलावच्छन्नः सारबलो वा परवीराननुप्रविश्य हन्यात् ॥ १८ ॥ गोग्रहणेन श्वापदवधेन वा परवीरानाकृष्य सत्रच्छन्नो ऽभिहन्यात् ॥ १९ ॥

व्यापारी समूह, गौओंके समूह तथा छावनियोंकी रक्षा करनेमें, और इनके लुटने की अवस्थामें भी प्रमादी बने हुए शत्रुको, प्रमाद रहित विजिगीषु नष्ट कर देवे। तात्पर्य यह है, कि जब शत्रु प्रमादी बना हुआ हो, उस समय प्रमादहीन विजिगीषु उसपर आक्रमण कर देवे ॥ १७ ॥ अथवा बाहर की ओर अपनी निर्बल सेनाको लगाकर और बीचमें बहादुर सेनाको रखकर विजिगीषु, शत्रुके वीर सैनिकोंमें घुसकर उन्हें नष्ट कर देवे ॥ १८ ॥ अथवा शत्रुके देशमें गाय आदि पशुओंका अपहरण करने और व्याघ्र वराह आदि जङ्गली पशुओंका शिकार करनेसे, शत्रुके वीर पुरुषोंको अपनी ओर बुलाकर अर्थात् उसका प्रतीकार करनेके लिए उद्यत होकर अपनी ओर खिंचे पुरुषोंको, सत्रमें छिपकर मार डाले। इसतरह धोखेसे उन्हें अपनी ओर लाकर नष्ट कर डाले ॥ १९ ॥

रात्राववस्कन्देन जागरयित्वाऽनिद्राक्लान्तानवसुप्तान्वा दिवा हन्यात् ॥ २० ॥ सपादचर्मकोशैर्वा हस्तिभिः सौप्तिकं दद्यात् ॥ २१ ॥ अहःसंनाहपरिश्रान्तानपराह्णे ऽभिहन्यात् ॥ २२ ॥

रात्रिमें इधर उधर लूटमार या मारधाड़ करके, उन्हें भयके कारण जगाकर, रातमें निद्रा न आनेसे बेचैन हुए २, इसीलिए शत्रुके सोये हुए वीर पुरुषोंको दिनमें मार डाले। तात्पर्य यह है, कि रातमें कुछ न कुछ उपद्रव करके उन्हें सोने न देवे, और जब वे दिनमें सोवें, तो अवसर पाकर उन्हें नष्ट कर डाले ॥ २० ॥ चमड़ेका खोल पैरोंपर लगे हुए (अर्थात् जिनके पैरों पर चमड़ेका खोल लगा दिया गया हो, ऐसे) हाथियोंके द्वारा, सोते हुए पुरुषोंपर आक्रमण कर दिया जावे ॥२१॥ दिनमें दोपहरसे पहिले कवायद आदि करनेके कारण अच्छी तरह थके हुए पुरुषोंका, दोपहरके बाद वध करवावे ॥२२॥

शुष्कचर्मवृत्तशर्कराकोशकैर्गोमहिषोष्ट्रयूथैर्वा त्रस्नुभिरकृत-हस्त्यश्वं भिन्नमभिन्नः प्रतिनिवृत्तं हन्यात् ॥ २३ ॥ प्रतिसूर्यवातं वा सर्वमभिहन्यात् ॥ २४ ॥

सूखे चमड़के बीचमें लिपटे हुए, मट्टीके छोटे २ गोल ढेलोंसे; (अथवा सूखे चमड़े और मट्टीको मिलाकर, पत्थरके समान सख्त बनाये हुए, छोटे २ गोलाकार ढेलोंसे); या वबड़ाजानेवाले गाय, भैंस और ऊंटोंके झुण्डोंके द्वारा; हाथी घोड़ोंसे रहित, छिन्न भिन्न हुई २ शत्रुकी सेनाको स्वयं अपनी सेनाको इकट्ठा ही रखता हुआ विजिगीषु नष्ट करे ॥ २३ ॥ सूर्यके सामने और हवाके सामने आई हुई सब ही तरह की सेनाको नष्ट कर डाले। तात्पर्य यह है, कि जब शत्रुकी सेनाके सामने की ओर सूर्य की तीव्र धूप आनेका समय हो, या जब तेज हवा उसके सामने की ओरसे चल रही हो; उस समय शत्रुकी हरतरह की सेनापर आक्रमण करके उसे नष्ट कर देवे ॥२४॥

धान्वनवनसङ्कटपङ्कशैलनिम्नविषमनावो गावः शकटव्यूहो नीहारो रात्रिरिति सत्राणि ॥ २५ ॥

अब 'सत्र किन विशेष स्थानों या वस्तुओंका नाम है' इस बातका निरूपण किया जाता है; धान्वन (मरुस्थलका दुर्ग), वन (जङ्गलमें बना हुआ दुर्ग), सङ्कट (घने कांटों तथा झड़बेरियों आदिसे भरे हुए होनेके कारण, जिनमें सरलतासे प्रवेश न किया जा सके ऐसे प्रदेश), पङ्क (कीचड़= अर्थात् जिन प्रदेशोंमें कीचड़ बहुत हो), शैल (पहाड़=अर्थात पहाड़ी इलाके), निम्न (नीचे-गहरे प्रदेश), विषम (ऊंचे नीचे या ऊबड़खाबड़ प्रदेश), नावें, गौओं के झुण्ड, शकटव्यूह (गाड़ी आदिसे बनाया हुआ व्यूहविशेष; देखो-अधि० १०, अध्या० ५), नीहार (कुहरा आदिका पड़ना), और रात्रि; इन सबको 'सत्र' कहा जाता है। ये विजिगीषुके, छिप-कर गति करनेके साधन हैं ॥ २५ ॥

पूर्वे च प्रहरणकालाः कूटयुद्धहेतवः ॥ २६ ॥ संग्रामस्तु निर्दिष्टदेशकालो धर्मिष्ठः ॥ २७ ॥

पहिले, प्रहार करनेके अवसर (अर्थात् प्रहार करनेके जिन अवसरों को पहिले कहा जा चुका है, वे) और (चकारसे ग्रहण किये हुए) ये सत्र, सब ही कूटयुद्धके कारण होते हैं। अर्थात् इनका उपयोग कूटयुद्ध में होता है। यहांतक कूटयुद्धके भिन्न २ प्रकारोंका निरूपण कर दिया गया ॥ २६ ॥

देश और कालको पहिलेही निर्देश करके, धर्मपूर्वक जो युद्ध किया जाय, उसे संग्राम या प्रकाशयुद्ध (=प्रकटयुद्ध, कूटयुद्धसे विपरीत) कहा जाता है ॥ २७ ॥

संहत्य दण्डं ब्रूयात्—॥ २८ ॥ तुल्यवेतनोऽस्मि ॥ २९ ॥ भवद्भिः सह भोग्यमिदं राज्यम् ॥ ३० ॥ मयाभिहितः परोऽभिहन्तव्य इति ॥ ३१ ॥

सेनाको उत्साह देनेके निम्नलिखित प्रकार हैं:—इकट्ठी होकर ठहरी हुई सेनाको राजा कहे: —॥ २८ ॥ मैं भी आपकेही समान वेतन लेनेवाला हूँ ॥ २९ ॥ आप लोगोंके साथही मैं इस राज्यका उपभोग करसकता हूँ ॥ ३० ॥ मैं जिसके लिये कहूँ, वह शत्रु आप लोगोंको अवश्य मार डालना चाहिये। इसप्रकार राजा स्वयंही अपनी सेनाको उत्साह देवे ॥ ३१ ॥

वेदेष्वप्यनुश्रूयते समाप्तदक्षिणानां यज्ञानामवभृथेषु–॥३२॥ "सा ते गतिर्या शूराणाम्" इति ॥३३॥ अपीह श्लोकौ भवतः– ॥ ३४ ॥

अनन्तर मन्त्रियों और पुरोहितोंसे इसप्रकार सेनाको उत्साहित करावे- वेदोंमें भी, अच्छी तरह दक्षिणा आदि लेनेके बाद पूर्ण यज्ञानुष्ठानके समाप्त होजानेपर, उसका फल इस प्रकार सुना जाता है:—॥ ३२ ॥ 'तुम्हारी वही गति होवे, जो शूरोंकी होती है'। तात्पर्य यह है, कि युद्धमें जीवन त्याग- देनेवाले पुरुषोंकी गति होती है, वही गति अच्छी तरह पूर्ण यज्ञ समाप्त करनेवालोंकी होती है। युद्धमें प्राणत्याग और अनेक किये हुए यज्ञोंका समानही फल होता है ॥ ३३ ॥ इसी बातको पुष्ट करनेवाले, ये पूर्वाचार्यों के दो श्लोक भी हैं ॥ ३४ ॥

यान्यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणः पात्रचयैश्च यान्ति ।
क्षणेन तानप्यतियान्ति शूराः प्राणान्सुयुद्धेषु परित्यजन्तः॥३५॥

अनेक यज्ञोंको करके, तप करके, और याज्ञियपात्रोंका चयन करके (अथवा दानके योग्य अनेक सुपात्रोंको दान देकर) ब्राह्मण, जिन उच्च लोकोंको प्राप्त करते हैं। शूरवीर क्षत्रिय, उनसे भी अधिक उच्च लोकोंको एक क्षणमेंही धर्मयुद्धोंमें अपने प्राणोंको देकर प्राप्त करलेते हैं ॥ ३५ ॥

नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥३६॥

इति मन्त्रिपुरोहिताभ्यामुत्साहयेद्योधान् ॥ ३७ ॥

जलसे भरा हुआ, मन्त्रोंसे संस्कृत किया हुआ, तथा दर्भ (दाभ=एक प्रकार की घास) से ढका हुआ, नया शकोरा (शराव=मट्टीका बना हुआ, कटोरेके आकारका एक पात्र) उस पुरुषको प्राप्त नहीं होता, तथा वह नरकमें पड़ता है, जो अपने मालिकके लिये युद्ध नहीं करता। अर्थात् उसके स्वत्वों की रक्षाके लिये अपने जीवनको नहीं लगा देता ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मन्त्री और पुरोहितोंके द्वारा अपने योद्धा पुरुषोंको उत्साहित करावे ॥ ३७ ॥

व्यूहसंपदा कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गः सर्वज्ञदैवसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ ३८ ॥ परपक्षं चोद्वेजयेत् ॥ ३९ ॥

इस विजिगीषु राजाके ज्योतिषी और शकुनशास्त्री पुरुष, पृथक् २ व्यूहों की विशेष रचनाके द्वारा अपनी सर्वज्ञताकी प्रसिद्धि करने, तथा दैवके साक्षात्कार होनेकी ख्याति करके, अपने पक्षको खूब हर्षयुक्त बनावें। अर्थात् उनको अच्छीतरह उत्साहित करें ॥ ३८ ॥ तथा शत्रुके पक्षको खूब बेचैन करें ॥ ३९ ॥

श्वो युद्धमिति कृतोपवासः शस्त्रवाहनं चाधिशयीत ॥४०॥ अथर्वभिश्च जुहुयात् ॥ ४१ ॥ विजययुक्ताः स्वर्गीयाश्चाशिषो वाचयेत् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणेभ्यश्चात्मानमतिसृजेत् ॥ ४३ ॥

'कलको युद्ध है' ऐसा निश्चय होनेपर, पहिले दिन उपवास करता हुआ अपने हथियार और हाथी घोड़े आदि सवारियोंके समीपही रात्रिमें शयन करे ॥ ४० ॥ तथा अथर्ववेदमें बतलाये हुए मन्त्रोंके द्वारा, शत्रुओंका विध्वँस करनेके लिये यज्ञ करे ॥ ४१ ॥ शत्रुके हार जानेपर, अपने विजयके अनुकूल, तथा अपनेही आदमियोंके मारे जानेपर स्वर्गसम्बन्धी आशीर्वादोंको ब्राह्मणोंके द्वारा पढ़वावे ॥ ४२ ॥ अपनी रक्षाके लिये अपने आपको ब्राह्मणोंके ही अर्पण करदेवे ॥ ४३ ॥

शौर्यशिल्पाभिजनानुरागयुक्तमर्थमानाभ्यामविसंवादितमनीकगर्भं कुर्वीत ॥ ४४ ॥ पितृपुत्रभ्रातृकाणामायुधीयानामध्वजं मुण्डानीकं राजस्थानम् ॥ ४५ ॥

बहादुर, कारीगर, खानदानी, तथा मुहब्बत रखनेवाली, और धन तथा सत्कार आदिसे सदा अनुकूल बनाई हुई सेनाको, अपनी बड़ी सेनामें, अपनी रक्षाके लिये नियुक्त करे ॥ ४४ ॥ राजाके पिता, पुत्र तथा भाई आदि अन्तरंग सम्बन्धियोंके, राजाकी रक्षाके लिये हथियार उठानेवाले (अर्थात् राजाके अंगरक्षक=बॉडीगॉर्ड), और राजाके सम्बन्धको बतलानेवाले वेषको न

धारण करनेवाली प्रधान सेनाके निवासस्थानको राजाके समीपही रक्खे । अर्थात् जहां राजा ठहरा हो, वहींपर इनको भी ठहरावे ॥ ४५ ॥

हस्ती रथो वा राजवाहनमश्वानुबन्धे ॥ ४६ ॥ यत्प्रायः सैन्यो यत्र वा विनीतः स्यात्तदधिरोहयेत् ॥ ४७ ॥ राजव्यञ्जनो व्यूहानुष्ठानमायोज्यः ॥ ४८ ॥

हाथी तथा रथ, राजाकी सवारी समझी जावे । अर्थात् राजा, हाथी पर या रथ पर सवार होकर चले; और उसकी रक्षाके लिये उसके साथ अश्वारोही पुरुष होवें ॥ ४६ ॥ अथवा प्रायः जिन सवारियों पर सेना होवे, या राजाको जिस सवारी पर चढ़ने का अच्छा अभ्यास होवे, उसी सवारी पर राजा चढ़े ॥ ४७ ॥ पूर्णतया राजाके वेषमें, किसी पुरुषको व्यूह रचनाका अधिष्ठाता नियुक्त किया जावे । तात्पर्य यह है, कि राजाके समान स्पष्ट रूपमें सेनाकी देख रेख करनेके लिये, पूरे तौरपर राजाकेही वेषमें रहने वाले किसी आदमीको रक्खा जावे; जिससे कि शत्रुपक्षके पुरुष राजाको प्रकट रूपमें पहचान न सकें ॥ ४८ ॥

सूतमागधाः शूराणां स्वर्गमस्वर्गं भीरूणां जातिसंघकुलकर्म-वृत्तस्तवं च योधानां वर्णयेयुः ॥ ४९ ॥

सूत और मागध (सूत=पुराने इतिहासको जानने वाले; मागध=स्तुतिपाठक) पुरुष, शूरवीर सिपाहियोंके स्वर्ग, डरपोकोंके नरक, तथा अन्य योद्धाओंके जाति (ब्राह्मण आदि), संघ (उनके अपने देशकी सामूहिक एकता), कुल, कर्म (कार्य जीविका आदि), तथा उनके शीलस्वभाव अथवा व्यवहार आदिकी स्तुतिका अच्छी तरह वर्णन करें । अर्थात् उनके उत्साहके लिये उनके सामने इन बातोंका भलीभान्ति वर्णन करें ॥ ४९ ॥

पुरोहितपुरुषाः कृत्याभिचारं ब्रूयुः ॥ ५० ॥ सत्त्रिकवर्धकि-मौहूर्तिकाः स्वकर्मसिद्धिमसिद्धिं परेषाम् ॥ ५१ ॥

तथा पुरोहित पुरुष, शत्रुओंके नष्ट करने वाली कृत्या देवताके द्वारा अभिचार यज्ञोंका अनुष्ठान करें । तात्पर्य यह है, कि जो शत्रुओंके नाश करने के लिये अथर्व मन्त्रोंका प्रयोग किया जाता हैं, उसही को 'कृत्याभिचार' कहते हैं । पुरोहित, अपने राजाकी विजयके लिये इसका अनुष्ठान करे ॥ ५० ॥ सत्री (एक प्रकारका गुप्तचर), बढ़ई, तथा युद्धके प्रारम्भमें मुहूर्त्त आदिका निश्चय करने वाला ज्योतिषी; ये सदा अपने कार्योंकी सिद्धि और शत्रुके कार्यों-की असिद्धिकोही बतलावें ॥ ५१ ॥

सेनापतिरर्थमानाभ्यामभिसंस्कृतमनीकमाभाषेत ॥ ५२ ॥ शतसाहस्रो राजवधः ॥ ५३ ॥ पञ्चाशत्साहस्रः सेनापतिकुमारवधः ॥ ५४ ॥ दशसाहस्रः प्रवीरमुख्यवधः ॥ ५५ ॥ पञ्चसाहस्रो हस्तिरथवधः ॥ ५६ ॥ साहस्रो ऽश्ववधः ॥ ५७ ॥ शत्यः पत्तिमुख्यवधः ॥ ५८ ॥ शिरो विंशतिकम् ॥ ५९ ॥ भोगद्वैगुण्यं स्वयंग्राहश्चेति ॥ ६० ॥ तदेषां दशवर्गाधिपतयो विद्युः ॥ ६१ ॥

सेनापति, धन और सत्कार आदिसे पूजा कीहुई—बढ़ाई हुई सेनाको इसप्रकार कहे:—॥ ५२ ॥ आप लोगोंमेंसे जो सैनिक, शत्रु राजाको मार डालेगा, उसे एक लाख सुवर्ण मुद्राकी प्राप्ति होगी; अर्थात् शत्रु राजाके मारने वालेको इतना इनाम दिया जावेगा ॥ ५३ ॥ इसीप्रकार, आप लोगोंमेंसे जो सैनिक, शत्रुके सेनापति, या राजकुमारको मार डालेगा, उसे पचास हज़ार सुवर्णसुद्रा इनाम दिया जायगा ॥ ५४ ॥ तथा इसी प्रकार शत्रुके बहादुर आदमियोंमेंसे मुख्य व्यक्तिके मारने वालेको दस हज़ार; ॥ ५५ ॥ हाथी और रथोंके नष्ट करने वालेको पांच हज़ार; ॥ ५६ ॥ घुड़ सवारों (या मुख्य घोड़े) के नष्ट करने वालेको एक हज़ार; ॥ ५७ ॥ पैदल सेनाके मुख्य व्यक्तियोंको नष्ट करने वालेको एक सौ; ॥ ५८ ॥ तथा साधारण सिपाहीका सिर काटकर लाने वालेको बीस सुवर्णसुद्रा इनाममें दिये जावेंगे ॥ ५९ ॥ और युद्धमें इसप्रकार हिस्सा लेने वाले सिपाहियोंका भत्ता और वेतन दुगना कर दिया जावेगा। तथा शत्रुके यहां लूटमें सिपाहियोंको जो कुछ माल मिलेगा, वह सब उनका ही समझा जायगा, अर्थात् उस माल पर उनकाही अधिकार होगा ॥ ६० ॥ इस उपर्युक्त राजवध आदिके समाचारको, केवल दशवर्गाधिपति (पदिक, सेनापति तथा नायक; देखो:—अधि० १०, अध्या० ६, सूत्र ४६-४८) ही जानें ॥ ६१ ॥

चिकित्सकाः शस्त्रयन्त्रागदस्नेहवस्त्रहस्ताः स्त्रियश्चान्नपानरक्षिण्यः पुरुषाणामुद्धर्षणीयाः पृष्ठतस्तिष्ठेयुः ॥ ६२ ॥

चिकित्सक (चिकित्सा करने वाले शल्यशास्त्रके ज्ञाता वैद्य) तथा शस्त्र (व्रण आदि को काटनेके औजार) यन्त्र (चीमटी आदि, जिनका मुंह आगे की ओर से मुड़ा हुआ हो, ऐसे चिकित्सा में काम आने वाले औज़ार), अगद (औषधि), स्नेह (घी तेल आदि=घाव आदि के लिये उपयुक्त औषध मिश्रित घी तेल आदिका ही यहां ग्रहण करना चाहिये), और वस्त्रों (पट्टी आदि बांधनेके वस्त्रों) को हाथ में लिये हुए अन्य पुरुष (चिकित्सकके कार्य में

सहायता देने वाले), और खाने पीने आदि की सामग्री की रक्षा करने वाली स्त्रियां, जो कि सैनिक पुरुषोंको खूब प्रसन्न रखने वाली हों, इन सबको युद्ध भूमि में, सेनाके पिछले हिस्से में रक्खा जावे ॥ ६२ ॥

अदक्षिणामुखं पृष्ठतः सूर्यमनुलोमवातमनीकं स्वभूमौ व्यूहेत ॥ ६३ ॥ परभूमिव्यूहे चाश्वांश्चारयेयुः ॥ ६४ ॥

विजिगीषुको, अपनी सेनाको युद्धके समय, दक्षिण की ओर मुंह न करके (दक्षिण की ओर मुंह करके खड़ा होना अमांगलिक समझा जाता है, इसलिये उस ओर को मुंह न कर और किसी ओर को ही मुंह करके), जब कि सूर्य पीछे की ओर रहे (अर्थात् सेना को खड़ा करने में इस बात का पूरा ध्यान रक्खे, कि सूर्य सेना के सामने न पड़ने पावे) और जसे वायु भी अनुकूल हो (अर्थात् सेना के सामने की ओरसे हवा न चल रही हो) इस प्रकार व्यूहरचना करके खड़ा करना चाहिये ॥ ६३ ॥ यदि युद्ध भूमि शत्रुके अनुकूल हो, और वहीं पर विजिगीषु को व्यूहरचना करनी पड़े तो शत्रुका विघात करनेके लिये इस भूमि में अपने घोड़ों को फिरावे ॥ ६४ ॥

यत्र स्थानं प्रजवश्चाभूमिव्यूहस्य तत्र स्थितः प्रजवितश्चोभयथा जीयेत ॥ ६५ ॥ विपर्यये जयति उभयथा स्थाने प्रजवे च ॥ ६६ ॥

जिस प्रदेश में ठहरने अर्थात् चिरकाल तक रहकर कार्य करने या बहुत जल्दी ही कार्य करनेका मौका न हो, ऐसे स्थानमें ठहरता हुआ या जल्दी ही कार्य करता हुआ विजिगीषु दोनों अवस्थाओंमें अवश्यही शत्रुके द्वारा मारा जाता है ॥ ६५ ॥ इससे विपरीत अवस्था होने पर अर्थात् दोनों तरहके अवसरके योग्य भूमि होने पर, ठहरने पर भी और जल्दी काम करने पर भी दोनों ही अवस्थाओंमें विजिगीषु अपने शत्रु को अवश्य जीत लेता है ॥ ६६ ॥

समा विषमा व्यामिश्रा वा भूमिरिति पुरस्तात्पार्श्वाभ्यां पश्चाच्च ज्ञेया ॥ ६७ ॥ समायां दण्डमण्डलव्यूहाः ॥ ६८ ॥ विषमायां भोगसंहतव्यूहाः ॥६९॥ व्यामिश्रायां विषमव्यूहाः ॥७०॥

व्यूहरचना की अनुकूलता भूमिके आधार पर ही हो सकती है। इस लिये अब भूमिके विभाग बताते हैं:—भूमि तीन प्रकार की होती है:—सम, विषम, और व्यामिश्र। इनमेंसे प्रत्येकके फिर तीन ३ भेद हैं:—आगे होना, इधर उधर होना अर्थात पार्श्वभागोंमें होना, तथा पीछे की ओर होना, (अर्थात्

सम भूमि आगे हो, पीछे हो, या इधर उधर हो, इन तीन अवस्थाओंमें ही हो सकती है, इसी तरह दूसरी विषम आदि को भी समझ लेना चाहिये ॥ ६७ ॥ तीनों प्रकार की सम भूमिमें दण्डव्यूह (दण्डाकार सेना की स्थापना) और मण्डलव्यूह (मण्डलाकार=गोलाकार सेना की स्थापना) की रचना की जावे ॥ ६८ ॥ इसीप्रकार तीनों तरह की विषम भूमिमें भोगव्यूह और संहत-व्यूहों की रचना की जावे। (व्यूहों की रचना का प्रकार इसी अधिकरणके पांचवें अध्यायमें देखें) ॥ ६९ ॥ और तीनों प्रकार की व्यामिश्र भूमिमें विषम-व्यूहों की रचना कीजावे ॥ ७० ॥

विशिष्टबलं भङ्क्त्वा संधिं याचेत ॥ ७१ ॥ समबलेन याचितः संदधीत ॥ ७२ ॥ हीनमनुहन्यात् ॥ ७३ ॥ न त्वेव स्वभूमिप्राप्तं त्यक्तात्मानं वा ॥ ७४ ॥

विजिगीपुको चाहिये, कि अपनेसे अधिक शक्तिशाली शत्रुकी सेनाको पहिले अच्छी तरह नष्ट करके, फिर उससे सन्धिकी स्वयंही प्रार्थना करे ॥ ७१ ॥ यदि शत्रु, समान शक्तिवाला ही होवे, तो उससे प्रार्थना किये जाने परही सन्धि करे ॥ ७२ ॥ अपनेसे हीनशक्ति शत्रुको तो सर्वथा नष्ट कर डाले, जिससे कि वह फिर मुकाबलेके लिये कदापि न उठ सके ॥ ७३ ॥ परन्तु हीनशक्ति शत्रुको भी, यदि वह अनुकूल स्थान (भूमि) में पहुंचा हुआ हो, या अपने जीवनसे निराश हो चुका हो, तो न मारे। (क्योंकि इन अवस्थाओंमें हीनशक्ति भी शत्रु, विजिगीपुकी अधिकसे अधिक हानिको कर गुजरता है) ॥ ७४ ॥

पुनरावर्तमानस्य निराशस्य च जीविते ।
अधार्यो जायते वेगस्तस्माद्भग्नं न पीडयेत् ॥ ७५ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे कूटयुद्धविकल्पाः स्वसैन्योत्साहनं स्वबलान्यबलव्यायोगश्च तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदित एकत्रिंशच्छतः ॥ १३१ ॥

जीवनसे निराश होनेके कारण, फिर लौटे हुए हीनबल शत्रुका भी युद्धवेग धारण नहीं किया जा सकता, इसलिए भग्न हुए २ अर्थात् पहिलेसे शक्तिहीन बनाए हुए शत्रुको, फिर पीड़ा पहुंचाकर कुपित न करे ॥ ७५ ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ।

चौथा अध्याय

१५३, १५४ प्रकरण

युद्धयोग्य भूमि; और पदाति, अश्व, रथ तथा हाथी आदिके कार्य ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें युद्धके योग्य भूमियोंका निरूपण किया जायगा। और दूसरे प्रकरणमें पैदल सेना, तथा घोड़े रथ और हाथीपर सवार होकर युद्ध करनेवाली सेनाओंके कार्योंका निरूपण किया जायगा।

स्वभूमिः पत्त्यश्वरथद्विपानामिष्टा युद्धे निवेशे च ॥ १ ॥

पैदल, घुड़सवार, रथसवार, तथा हाथीसवार सेनाओंके युद्धके समय और उनकी अवस्थितिके समयमें अनुकूल भूमिका होना अत्यन्त अपेक्षित है। तात्पर्य यह है, कि सबतरह की सेनाओंके युद्ध और ठहरनेके लिये, अपने अनुकूल भूमिका ही अवलम्बन लेना चाहिये ॥ १ ॥

धान्वनवननिम्नस्थलयोधिनां खनकाकाशदिवारात्रियोधिनां च पुरुषाणां नादेयपार्वतानूपसारसानां च हस्तिनामश्वानां च यथास्वमिष्टा युद्धभूमयः कालाश्च ॥ २ ॥

धान्वन दुर्गमें युद्ध करनेवाले, वनदुर्गमें युद्ध करनेवाले, जल तथा स्थलमें युद्ध करने वाले, खाई खोदकर उनमें बैठकर युद्ध करने वाले, आकाश में युद्ध करनेवाले, दिन तथा रातमें युद्ध करनेवाले, (अर्थात् उपर्युक्त आठ प्रकारके, पैदल सेनामें काम करनेवाले पुरुषोंके); और नदी पहाड़ जलमय-प्रदेश तथा बड़े २ तालाबोंके सहारे युद्ध करनेवाले हाथियों और घोड़ोंके; उनके अपने अनुकूल ही युद्धयोग्य प्रदेश तथा ऋतु आदि समय अपेक्षित होते हैं ॥ २ ॥

समा स्थिराभिकाशा निरुत्खातिन्यचक्रखुरानक्षग्राहिण्यवृक्ष-गुल्मप्रततिस्तम्भकेदारश्वभ्रवल्मीकसिकताभङ्गभङ्गुरा दरणहीना च रथभूमिः ॥ ३ ॥

रथके योग्य भूमियोंका अब निरूपण करते हैं:—बराबर (अर्थात् जो ऊंची नीची न हो), नीचेसे मज़बूत (=स्थिरा=जो नीचेसे पोलीसी न हो), साफ़ (तिनके आदिसे रहित), खाई खड्डे आदिसे रहित, जिसमें रथके

पहिये तथा घोड़ोंके सुम आदि न गड़ते हों, धुरेको न पकड़नेवाली; पेड़, गुल्म (घनी बेलोंसे ढकी हुई जगह,) लता, ठूंठ, क्यारियां, गढ़े, बमई, रेत, कीचड़ तथा तिरछेपन आदिसे रहित; और दरड़ोंसे रहित भूमि ही रथोंके चलनेके योग्य समझनी चाहिये। अर्थात् रथसवार सेनाके लिए ऐसी ही भूमि योग्य होती है ॥ ३ ॥

हस्त्यश्वयोर्मनुष्याणां च समे विषमे हिता युद्धे निवेशे च ॥ ४ ॥ अण्वश्मवृक्षा ह्रस्वलङ्घनीयश्वभ्रा मन्ददरणदोषा चाश्वभूमिः ॥ ५ ॥

रथ के उपयुक्त भूमि ही, हाथी घोड़े और मनुष्यों के भी अनुकूल, सम विषम देशमें और युद्ध तथा ठहरनेके समयमें समझनी चाहिये। अर्थात् इन उपर्युक्त अवस्थाओंमें, जो भूमि रथके लिये उपयुक्त बताई गई है, वही भूमि हाथी घोड़े और मनुष्योंके लिये भी उपयुक्त समझनी चाहिये ॥ ४ ॥ घोड़े आदिके लिये विशेष भूमि, निम्नलिखित रीतिसे समझनी चाहियेः—छोटे २ कंकड़ तथा वृक्षोंसे युक्त, छोटे लांघने योग्य गढ़ोंसे युक्त, तथा कहीं २ छोटी २ दरड़ों वाली भूमि को घोड़ोंके लिये विशेष उपयुक्त समझना चाहिये ॥ ५ ॥

स्थूलस्थाण्वश्मवृक्षप्रततिवल्मीकगुल्मा पदातिभूमिः ॥ ६ ॥ गम्यशैलनिम्नविषमा मर्दनीयवृक्षा छेदनीयप्रततिः पङ्कभंगुरदरणहीना च हस्तिभूमिः ॥ ७ ॥

मोटे २ ठूंठ, पत्थर या कंकड़, वृक्ष, लता (बेल), बमई, तथा गुल्म आदिसे युक्त भूमि, पैदल सैनिकोंके लिये अधिक उपयुक्त होती है ॥ ६ ॥ हाथियोंके जासकने योग्य पहाड़ तथा ऊंचे नीचे भागोंसे युक्त, हाथियोंके रगड़ने (अर्थात् खुजली करने) के योग्य वृक्षोंसे युक्त, काटने योग्य लताओं वाली, कीचड़ गढ़े तथा दराड़ोंसे रहित भूमि, हाथियोंके लिये अधिक उपयुक्त समझनी चाहिये ॥ ७ ॥

अकण्टकिन्यबहुविषमा प्रत्यासारवतीति पदातीनामतिशयः ॥ ८ ॥ द्विगुणप्रत्यासारा कर्दमोदकखञ्जनहीना निःशर्करेति वाजिनामतिशयः ॥ ९ ॥

कांटोंसे रहित, तथा जो बहुत ऊंची नीची नहो, और जिसमें अवसर आने पर लौटनेके लिये अच्छा सुभीता हो, वह भूमि पैदल सेनाके लिये अत्युत्तम होती है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार जिस भूमिमें आगे बढने की अपेक्षा

पीछे लौटनेके लिये दुगना सुभीता होता है, और जो कीचड़, जल, दलदल तथा कंकड़ीली मट्टीसे रहित होती है, वह भूमि घोड़ोंके लिये अतिशय लाभ-प्रद होती है ॥ ९ ॥

पांसुकर्दमोदकनलशराधानवती श्वदंष्ट्राहीना महावृक्षशाखाघातवियुक्तेति हस्तिनामतिशयः ॥ १० ॥ तोयाशयाश्रयवती निरुत्खातिनी केदारहीना व्यावर्तनसमर्थेति रथानामतिशयः ॥ ११ ॥ उक्ता सर्वेषां भूमिः ॥ १२ ॥

धूल, कीचड़, जल, (कीचड़से मिला हुआ जल ही यहां 'उदक' शब्द से अभिप्रेत है), नड़सल, मूंज और इन दोनों की (नड़सल और मूंज की) जड़, इन सब वस्तुओंसे युक्त; गोखुरुओंसे रहित, तथा बड़े २ वृक्षों की शाखा ओं की टक्करसे रहित (अर्थात् हाथी पर चढ़ कर जिस भूमिमें बड़े वृक्षोंके टहनोंसे टक्कर न लग सके, ऐसी) भूमि हाथियोंके अत्यन्त उपयोगी होती है ॥ १० ॥ स्नान आदिके योग्य जलाशयोंसे तथा विश्राम करनेके योग्य स्थानोंसे युक्त, उखड़े हुए स्थानोंसे रहित, क्यारियोंसे रहित, अवसर आने पर लौटनेके योग्य स्थानोंसे युक्त (अर्थात् जिसमें लौटनेके लिए पर्याप्त स्थान मिलसके, ऐसी) भूमि, रथोंके लिये अधिक उपयोगी होती है ॥ ११ ॥ यहांतक सब प्रकार की भूमियोंके सम्बन्धमें निरूपण करादिया गया ॥ १२ ॥

एतया सर्वबलनिवेशा युद्धानि च व्याख्यातानि भवन्ति ॥ १३ ॥

इसप्रकार भूमिके व्याख्यानके अनुसार ही सब सेनाओंके निवेश अर्थात् ठहरनेके साथ सम्बन्ध रखने वाले सब कार्यों और युद्धसम्बन्धी कार्योंका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये। तात्पर्य यह है, कि भूमिके समान, सेनानिवेश और युद्ध कार्योंका विचार करना भी अत्यन्त आवश्यक है ॥ १३ ॥

भूमिवासवननिचयो विषमतोयतीर्थवातरश्मिग्रहणं वीवधासारयोर्घातो रक्षा वा विशुद्धिस्थापना च बलस्य प्रसारवृद्धिर्बाहूत्सारः पूर्वप्रहारो व्यावेशनं व्यावेधनमाश्वासो ग्रहणं मोक्षणं मार्गानुसारविनिमयः कोशकुमाराभिहरणं जघनकोट्यभिघातो हीनानुसारणमनुयानं समाजकर्मेत्यश्वकर्माणि ॥ १४ ॥

अब इसके आगे पैदल, घोड़े रथ तथा हाथियोंकी सेनाके कार्योंका निरूपण किया जायगाः—सबसे प्रथम घोड़ेके कार्योंका निरूपण करते हैं:—

भूमि, वासस्थान, तथा वनका संशोधन घोड़ोंके द्वारा किया जाना चाहिये, (उस भूमिसे, छिपेहुए शत्रुके बलको हटाना 'भूमिविचय' या भूमिका संशोधन कहाता है, इसीप्रकार सेनाके निवासस्थानोंमें से उपद्रवका दूर करना 'वास-विचय' और जंगली रास्तोंमें से चोरों आदिका हटाना 'वनविचय' कहाता है); विषम (जहांपर शत्रु आक्रमण न करसके), तोय (जहांपर जलके भरेहुए तालाब आदि हों), तीर्थ (नदी आदि उतरनेका जहांसे अच्छा सुभीता हो), वात (जहांपर वायु अच्छीतरह आजासके), और रश्मि (जहां सूर्यके प्रकाश पहुंचनेमें किसी प्रकारकी बाधा न हो) आदिके लिये उपयुक्त स्थानोंको पहिलेसे ही अपने काबूमें करलेना, शत्रुके वीवध (उसके अपने देशसे लगातार जीविका योग्य द्रव्योंका आना) और आसार (शत्रुके मित्रकी सेनाका आना) का नाश तथा अपने वीवध और आसारकी रक्षा करना; छिपकर प्रविष्टहुई शत्रुसेनाकी सफाई करना तथा अपनी सेनाके गड़बड़ होजानेपर उसकी ठीक २ स्थापना करना; प्रसार (जंगलोंमें होनेवाले धान्य तथा घास आदिको प्रसार कहते हैं) की वृद्धि करना; बाहुओंके समान घोड़ोंके द्वारा शत्रुकी सेनाको हटाना; शत्रुकी सेनापर पहिले ही प्रहार करना; शत्रुकी सेनामें घुसकर उसे विचालित करदेना; शत्रु सेनाको तरह २ की तक-लीफ़ पहुंचाना; अपनी सेनाको आश्वासन (तसल्ली) देना ; शत्रुकी सेनाको पकड़ना; शत्रुसे पकड़ेहुए अपने योद्धाओंको छुड़ाना; अपनी सेनाके मार्गपर शत्रुओंकी सेनाके चले जानेपर स्वयं शत्रुकी सेनाके मार्गका अनुसरण करना; शत्रुके कोश और राजकुमारका अपहरण करना; पीछे तथा सामनेकी ओर आघात अर्थात् आक्रमण करना; घोड़े मरेहुए सैनिकोंका (अर्थात् जिनके घोड़े मरगये हैं, ऐसे सैनिकोंका) पीछा करना; भागीहुई शत्रुसेनाका पीछा करना; तथा बिखरीहुई अपनी सेनाको इकट्ठी करना इत्यादि ये सब ही कार्य 'अश्वकर्म' अर्थात् घोड़ोंके करनेके काम कहे जाते हैं; इन कार्योंको घोड़ोंके द्वारा करानेमें ही सुगमता रहती है ॥ १४ ॥

पुरोयानमकृतमार्गवासतीर्थकर्म बाहूत्सारस्तोयतरणावतरणे स्थानगमनावतरणं विषमसंबाधः प्रवेशोऽग्निदानशमनमेकाङ्गविजयः भिन्नसंधानमभिन्नभेदनं व्यसने त्राणमभिघातो बिभीषिका त्रासनमौदार्यं ग्रहणं मोक्षणं सालद्वाराट्टालकभञ्जनं कोशवाहन-मिति हस्तिकर्माणि ॥ १५ ॥

अब हाथीके कार्योंका निरूपण किया जाता है:—अपनी सेनाके आगे चलना, पहिलेसे न बनेहुए मार्ग, वासस्थान तथा तीर्थ (घाट) आदिका

बनाना, भुजाओंके समान, शत्रुकी सेनाको अपनी सेनाके पास खड़े होकर हटाना; नदी आदिके जलमें उसके नापनेके लिये तरना या भीतर प्रवेश करना; शत्रु सेनाके आक्रमण करनेपर पंक्ति बांधकर खड़े होजाना (=स्थान) इसीप्रकार मार्ग में चलना; तथा ऊंचे स्थानसे इसीतरह नीचेकी ओर उतरना; घने जंगल तथा शत्रुसेनाकी भीड़में घुसजाना; शत्रुके पड़ावमें आग लगाना, तथा अपने पड़ावमें लगीहुई आगको बुझाना; सेनाके एक अङ्गभूत हाथीके द्वारा ही शत्रुपर विजय लाभ करना; बिखरीहुई सेनाको इकट्ठी करना; शत्रुकी इकट्ठी हुई २ सेनाको छिन्नभिन्न करना; आपत्तिके समयमें रक्षा करना; शत्रुकी सेनाका कुचलना; केवल दिखानेसे ही उसे डराना; मद आदिकी अवस्थाके द्वारा उन्हें विचलित करदेना; सेनाका महत्व दिखलाना; शत्रुके योद्धाओंको पकड़ना; शत्रुके पकड़ेहुए अपने योद्धाओंको छुड़ाना; शत्रुके परकोटे, प्रधान द्वार तथा ऊपरकी अटारी आदिको गिराना; शत्रुके खजाने तथा सवारी आदिको भगा लेजाना, ये सब 'हस्तिकर्म' अर्थात् हाथीके करने योग्य काम कहाते हैं ॥ १५ ॥

स्वबलरक्षा चतुरङ्गबलप्रतिषेधः संग्रामे ग्रहणं मोक्षणं भिन्नसंधानमभिन्नभेदनं त्रासनमौदार्यं भीमघोषश्चेति रथकर्माणि ॥१६॥

अब इसके आगे रथके कार्योंका निरूपण किया जायगा:—अपनी सेनाकी रक्षा करना; संग्रामके समय शत्रुकी सेनाका रोकना; शत्रुके योद्धाओंको पकड़ना; शत्रुसे पकड़ेहुए अपने योद्धाओंको छुड़ाना; बिखरीहुई अपनी सेनाको इकट्ठी करना, इकट्ठी हुई २ शत्रुकी सेनाको छिन्नभिन्न करना; भय आदि दिखाकर शत्रुकी सेनाको विचलित करना; अपनी सेनाका औदार्य अर्थात् महत्त्व दिखलाना; और भयङ्कर घोष अर्थात् ध्वनि (आवाज़) का करना; ये सब 'रथकर्म' अर्थात् रथके करने योग्य कार्य कहेजाते हैं ॥ १६ ॥

सर्वदेशकालशस्त्रवहनं व्यायामश्चेति पदातिकर्माणि ॥१७॥

अब पैदल सेनाका निरूपण करते हैं:—सबही सम विषम आदि स्थानों और वर्षा शरद् आदि ऋतुओंमें शस्त्रोंका धारण करना; तथा नियम पूर्वक कवायद आदि करना और अवसर आनेपर युद्ध करना, ये सब पैदल सेनाके करने योग्य कार्य (पदातिकर्म) कहाते हैं ॥ १७ ॥

शिबिरमार्गसेतुकूपतीर्थशोधनकर्मयन्त्रायुधावरणोपकरणग्रासवहनमायोधनाच्च प्रहरणावरणप्रतिविद्धापनयनमिति विष्टिकर्माणि ॥ १८ ॥

अपने पास हथियार आदि न रखकर फ़ौजमें काम करने वाले कर्मचारियोंको 'विष्टि' कहा जाता है; अब इन्हींके कार्योंका निरूपण किया जायगा:—शिविर (=सेनानिवेश=पड़ाव), मार्ग, सेतु (नदी आदिका जल रोकनेके साधन=पुल आदि), कुए तथा घाट आदिके तैयार करानेका काम कराना या घास आदि उखाड़कर इन्हें साफ़ रखना; यन्त्र, हथियार, कवच, अन्य प्रकारके उपयोगी साधन तथा घास आदिको ढोना या इनका ठीक २ प्रबन्ध रखना; और युद्ध भूमिसे हथियार कवच तथा घायल सिपाहियोंको दूसरी जगह लेजाना; ये सब विष्टि नामक कर्मचारियोंके करने योग्य कार्य होते हैं ॥ १८ ॥

कुर्याद्गवाश्वव्यायोगं रथेष्वल्पहयो नृपः ।
खरोष्ट्रशकटानां वा गर्भमल्पगजस्तथा ॥ १९ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे युद्धभूमयः पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितो द्वात्रिंशशतः ॥ १३२ ॥

जिस राजाके पास बहुत थोड़ेही घोड़े हों, वह रथोंमें बैल और घोड़ोंको मिलाकर काम लेवे; अर्थात् घोड़ोंके साथ २ बैलोंको भी रथोंमें जोतकर उनसे उपयोग लेवे। इसी प्रकार जिस राजाके पास हाथी बहुत थोड़े होवें, वह अपनी सेनाको; गधे ऊंट और गाड़ियोंके बीचमें या गधे और ऊंटोंसे युक्त गाड़ियोंके बीचमें करके सुरक्षित रक्खे। तात्पर्य यह है, कि जो सेना हाथियोंके बीचमें रहकर सुरक्षित रहती थी, वह हाथियोंके अभावमें गधे ऊंट और गाड़ी आदिके बीचमें करके ही सुरक्षित रक्खी जावे ॥ १९ ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय ।

१५५-१५७ प्रकरण ।

पक्ष कक्ष तथा उरस्य इत्यादि व्यूह विशेषोंका, सेनाके परिमाणके अनुसार व्यूहविभाग; सार तथा फल्गु बलका विभाग; और पदाति अश्व, रथ, तथा हाथियोंका युद्ध ।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें पक्ष, कक्ष तथा उरस्य इन विशेष सैनिक समूहोंकी, सेनाकी संख्याके अनुसार

व्यूहरचनाका निरूपण किया जायगा, (सेनाके अगले दोनों ओरके हिस्सोंका नाम 'पक्ष' पीछेकी ओरके दोनों हिस्सोंका नाम 'कक्ष' और मध्यके हिस्सेको 'उरस्य' कहते हैं। इन पांच विशेष समूहोंके आधारपर ही व्यूहकी रचना करनेका निरूपण पहिले प्रकरणमें किया जायगा)। इसी तरह दूसरे प्रकरणमें सबल तथा निर्बल सेनाका विभाग; और तीसरे प्रकरणमें पैदल आदि चारों प्रकारकी सेनाओंके युद्धके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा।

पञ्चधनुःशतापकृष्टदुर्गमवस्थाप्य युद्धमुपेयात्, भूमिवशेन वा ॥ १ ॥ विभक्तमुख्यामचक्षुर्विषये मोक्षयित्वा सेनां सेनापतिनायकौ व्यूहेयाताम् ॥ २ ॥

जहांपर छावनी पड़ी हुई हो, उससे पांचसौ धनुष् (देखो–अधि. २, अध्याय २०) के फ़ासलेपर युद्धस्थलका अङ्गीकार करे। अर्थात् युद्धका मैदान छावनीसे इतनी दूरीपर होना चाहिये, अथवा भूमिके अनुसार इससे अधिक या कम दूर भी लड़ाईका मैदान होसकता है ॥ १ ॥ मुख्य सैनिकोंको विभक्त करके, फिर उस सेनाको इसप्रकार सुरक्षित या छिपाकर रक्खा जावे, जिससे दूसरे लोग (शत्रुजन) उसको न जान सकें; तदनन्तर सेनापति और नायक उस सेनाको व्यूहरचनाके ढंगमें विभक्त करके खड़ा करें ॥ २ ॥

शमान्तरं पत्तिं स्थापयेत् ॥ ३ ॥ त्रिशमान्तरमश्वं, पञ्चशमान्तरं रथं हस्तिनं वा, द्विगुणान्तरं त्रिगुणान्तरं वा व्यूहेत ॥ ४ ॥ एवं यथासुखमसंबाधं युध्येत ॥ ५ ॥

पैदल सेनाके प्रत्येक सिपाहीको एक २ शम (चौदह अंगुलका एक शम होता है, देखो–अधि. २, अध्या. २०, सूत्र १२) के फासलेपर खड़ा किया जावे ॥ ३ ॥ इसीप्रकार घोड़ोंको (अर्थात् घुड़सवार सिपाहियोंको) तीन २ शमके फ़ासलेपर, रथ और हाथियोंको पांच २ शमके फासलेपर; अथवा भूमिके अनुसार इससे और अधिक दुगने या तिगुने फ़ासलेपर फ़ौजका खड़ा करके व्यूहकी रचना करे ॥ ४ ॥ इसप्रकार सुखपूर्वक तथा बाधारहित होकर युद्ध करे। तात्पर्य यह है कि अधिक फ़ासलेसे फ़ौजको खड़ा करके युद्ध करनेमें बड़ा सुभीता रहता है; और एक दूसरेको किसी तरहकी आपसमें बाधा नहीं पहुंचती ॥ ५ ॥

पञ्चारत्नि धनुः ॥ ६ ॥ तस्मिन्धन्विनं स्थापयेत् ॥ ७ ॥ त्रिधनुष्यश्वं, पञ्चधनुषि रथं हस्तिनं वा ॥ ८ ॥ पञ्चधनुरनीकसंधिः पक्षकक्षोरस्यानाम् ॥ ९ ॥

पांच अरत्निका (हाथका) एक धनुष् होता है । (यहांपर पांच अरत्निका एक धनुष बताया गया है । परन्तु अधि. २, अध्या. २० में [देश-काल मान ' प्रकरणमें] चार अरत्निकाही एक धनुष् बताया गया है । उस अध्यायके १९ वें सूत्रके साथ इसकी तुलना करें) ॥ ६ ॥ धनुष-बाणसे युद्ध करने वाले योधाओंको इतने फ़ासलेसे (अर्थात् पांच हाथके फासलेसे) खड़ा करे ॥ ७ ॥ तीन धनुष (अर्थात् पन्द्रह हाथ) के फ़ासलेसे घोड़ोंको; और पांच धनुष् (अर्थात् पच्चीस हाथ) के फ़ासलेसे रथ और हाथियोंको खड़ा करे ॥ ८ ॥ पक्ष कक्ष तथा उरस्यकी पांचों सेनाओंका आपसका फ़ासला पांच धनुष् (अर्थात् पच्चीस २ हाथ होना चाहिये । अर्थात् एक फ़ौज दूसरी फ़ौजसे पच्चीस हाथके फासलेपर खड़ी कीजावे ॥ ९ ॥

अश्वस्य त्रयः पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १० ॥ पञ्चदश रथस्य हस्तिनो वा पञ्च चाश्वाः ॥ ११ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानां विधेयाः ॥ १२ ॥

घुड़सवार सिपाहीके आगे २ रहकर उसकी सहायतार्थ युद्ध करनेके लिये तीन पुरुष नियुक्त किये जावें ॥ १० ॥ इसी प्रकार हाथी और रथके आगे पन्द्रह २ आदमी; अथवा पांच २ घुड़सवार सिपाही खड़े किये जावें ॥ ११ ॥ घोड़े रथ तथा हाथियोंके उतनेही (अर्थात् पांच) पादगोप (=पादरक्षक अर्थात् उनकी सेवा या टहल टकोरी करने वाले सेवक जन=साईस आदि) नियुक्त किये जावें । इसप्रकार एक २ रथके आगे पांच घोड़े, और एक २ घोड़ेके आगे तीन २ आदमी मिलाकर कुल पन्द्रह आदमी आगे चलने वाले, और पांच सेवक; इसी तरह हाथीके साथ भी समझने चाहियें । (माधवयज्वाने अपनी नयचन्द्रिका व्याख्यामें लिखा है, कि जैसे एक घोड़ेके आगे चलने वाले तीन आदमी होते हैं, इसीतरह उसके सेवक भी तीनही आदमी होने चाहियें) ॥ १२ ॥

त्रीणि त्रिकाण्यनीकं रथानामुरस्यं स्थापयेत् ॥ १३ ॥ तावत्कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ १४ ॥ पञ्चचत्वारिंशत् एवं रथा रथव्यूहे भवन्ति ॥ १५ ॥

उरस्य स्थानमें अर्थात् व्यूहरचनाके मध्यस्थानमें इसप्रकारके नौ रथों (तीन त्रिक=३×३=९) की स्थापना करे । तात्पर्य यहहै कि तीन २ रथोंकी एक २ पंक्ति बनाकर तीन पंक्तियोंमें नौ रथों को खड़ा करे ॥ १३ ॥ इसीप्रकार कक्ष और पक्ष स्थानोंमें दोनों ओर नौ २ रथोंको खड़ा करे ॥ १४ ॥ इस तरह एक व्यूह में पैंतालिस रथ होजाते हैं । (९ उरस्य=१८ कक्ष=और १८ पक्ष=४५) ॥ १५ ॥

द्वे शते पञ्चविंशतिश्चाश्वाः ॥ १६ ॥ षट्शतानि पञ्चसप्ततिश्च पुरुषाः प्रतियोद्धारः ॥ १७ ॥ तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानाम् ॥ १८ ॥

प्रत्येक रथके आगे पांच घोड़े होनेके कारण, पैंतालीस रथोंके आगे दो सौ पच्चीस (२२५) घोड़े होने चाहियें ॥ १६ ॥ और प्रत्येक रथके आगे पन्द्रह आदमी होनेके कारण, पैंतालीस रथोंके आगे छः सौ पिचहत्तर (६७५) पुरुष, एक दूसरेकी सहायतार्थ युद्ध करनेके लिये होने चाहियें ॥ १७ ॥ घोड़े रथ और हाथियोंके इतनेही पादगोप होने चाहियें । अर्थात् घोड़ोंके आगे चलने वाले जितने पुरुष हों, उतनेही उनके पादगोप; और रथ तथा हाथियोंके आगे चलने वाले जितने घोड़े और आदमी हों, उतनेही उनके पादगोप होते हैं ॥ १८ ॥

एष समव्यूहः ॥ १९ ॥ तस्य द्विरथो वृद्धिरा एकविंशतिरथात् ॥ २० ॥ इत्येवमोजा दश समव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २१ ॥

इस तरहके व्यूहको 'समव्यूह' कहते हैं । (क्योंकि यह बराबर २ के तीन २ त्रिकोंसे तैयार किया जाता है ॥ १९ ॥ इसी व्यूहमें दो २ रथोंकी वृद्धि, इक्कीस रथ पर्यन्त और कीजासकती है । (तात्पर्य यह है, कि पहिला एक व्यूह तीन त्रिकोंसे तैयार होता है, इसीमें यदि दो रथोंकी वृद्धि करदी जाय, तो पांच रथोंके पांच पंचकोंसे यह व्यूह तैयार किया जायगा; अर्थात् दोनों कक्ष दोनों पक्ष और एक उरस्यमें पांच २ रथोंकी पांच पंक्तियां लगाई जावेंगी; इसप्रकार कक्ष आदि पांचों स्थानोंमें एकसौ पच्चीस रथ होजावेंगे, उन्हींके अनुसार घोड़े और मनुष्योंकी तादाद समझ लेनी चाहिये । इसी तरह इसमें दो रथ और बढ़ाकर प्रत्येक स्थानमें सात २ रथोंकी सात २ पंक्ति लगाकर व्यूह रचना कीजावेगी । इसी प्रकार दो २ रथ बढ़ाकर इक्कीस रथ पर्यन्त व्यूहोंकी कल्पना करलेनी चाहिये) ॥ २० ॥ इसप्रकार अयुग्म रूपमें तीन रथोंसे लगाकर इक्कीस रथ पर्यन्त, दस तरहकी सम व्यूह रचना कहाती है । अर्थात् इस तरहके समव्यूहके ये दस भेद हैं ॥ २१ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामतो विषमसंख्याने विषमव्यूहः ॥ २२ ॥ तस्यापि द्विरथोत्तरा वृद्धिरा एकविंशतिरथात् ॥ २३ ॥ इत्येवमोजा दश विषमव्यूहप्रकृतयो भवन्ति ॥ २४ ॥

पक्ष कक्ष और उरस्य स्थानोंमें रथोंकी परस्पर विषम संख्या होनेपर ये ही व्यूह 'विषम' कहाते हैं। (तात्पर्य यह है, कि जब उरस्यमें तीन २ त्रिक, और पक्ष या कक्षमें पांच २ पञ्चक हों; अथवा उरस्यमें सात २ सप्तक और पक्ष कक्षमें पांच २ पञ्चक ही हों; अथवा उरस्यमें पांच २ पञ्चक और पक्ष कक्षमें सात २ सप्तक हों; इसप्रकार जब इनकी संख्यामें विषमता हो, तो ये 'विषमव्यूह' कहे जाते हैं) ॥ २२ ॥ इनमें भी तीनसे आगे दो २ की वृद्धि करके इक्कीस तक, अयुग्म रूपसेही दश विषमव्यूहोंकी रचना कीजाती है। अर्थात् विषमव्यूहके भी इसतरह दश भेद हैं ॥ २३–२४ ॥

अतः सैन्यानां व्यूहशेषमावापः कार्यः ॥ २५ ॥ रथानां द्वौ त्रिभागावङ्गेष्वावापयेत् ॥ २६ ॥ शेषमुरस्यं स्थापयेत् ॥२७॥ एवं त्रिभागोनो रथानामावापः कार्यः ॥ २८ ॥

यदि इसप्रकार व्यूहरचना करनेके अनन्तर इसमेंसे कुछ सेना बच रहे, तो उसेभी व्यूहके अन्दर इधर उधर डाल देवे। २५ उसके डालनेका प्रकार यह हैः—बची हुई सेनाका दो तिहाई हिस्सातो पक्ष कक्षमें डाल देवे ॥ २६ ॥ बाकी एक हिस्सा उरस्यमें सम्मिलित कर देवे ॥ २७ ॥ व्यूहरूपमें खड़ी हुई रथोंकी सेनामें, जो बचे हुए रथ पीछेसे सम्मिलित किये जावें, उनकी तादाद, व्यूहरूपमें खड़ी हुई सेनाके एक तिहाई से कम होनी चाहिये। अर्थात् उसकी बराबर या उससे अधिक सेना कभी भी न मिलानी चाहिये ॥ २८ ॥

तेन हस्तिनामश्वानामावापो व्याख्यातः ॥ २९ ॥ यावदश्वरथद्विपानां युद्धसंबाधनं न कुर्यात्तावदावापः कार्यः ॥ ३० ॥

इसीतरह हाथी और घोड़ोंके मिलानेके सम्बन्धमेंभी समझ लेना चाहिये ॥ २९ ॥ अभिप्राय यह है, कि जब तक युद्धके समय, घोड़े रथ और हाथियोंमें परस्पर भीड़ मालूम न हो, उस समय तक अधिक सेनाको उसमें मिलाते रहना चाहिये। (तिहाई हिस्से आदिका कथनतो केवल ढंग बतलाने के लिये किया गया है ॥ ३० ॥

दण्डबाहुल्यमावापः ॥ ३१ ॥ पत्तिबाहुल्यं प्रत्यावापः ॥ ३२ ॥ एकाङ्गबाहुल्यमन्वावापः ॥ ३३ ॥ दूष्यबाहुल्यमत्यावापः ॥ ३४ ॥

व्यूहरचनासे अतिरिक्त सेनाका शेष रहजाना, तथा उसको फिर व्यू-हके अन्दरही मिलादेना ' आवाप ' कहाता है ॥ ३१ ॥ केवल पैदल सेनाका इसप्रकार व्यूहरचनाके अन्दर मिलाना ' प्रत्यावाप ' कहाता है ॥ ३२ ॥ घोड़े रथ हाथी इन तीनोंमेंसे किसी एक अंगके द्वारा इसप्रकार सेनाको बढ़ाना 'अन्वावाप ' कहाता है ॥ ३३ ॥ दूष्य (=राजाके साथ विरोध रखने वाले मुख्य) पुरुषोंके द्वारा इसप्रकार सेनाके बढ़ानेको ' अत्यावाप ' कहते हैं ॥३४॥

परावापात्प्रत्यावापाद्वाचतुर्गुणादाष्टगुणादिति वा विभवतः सैन्यानामावापः कार्यः ॥ ३५ ॥ रथव्यूहेन हस्तिव्यूहो व्याख्यातः ॥ ३६ ॥

शत्रु अपनी सेनामें जितना आवाप या प्रत्यावाप करे उससे चौगुनेसे लगाकर अठगुने तक, विजिगीषु अपनी सेनामें आवाप करे । अथवा अपनी शक्तिके अनुसार जितना संभव होसके, उसनेही आवाप आदिके द्वारा अपनी सेनाको बढ़ावे ॥ ३५ ॥ रथोंकी व्यूहरचनाके अनुसारही हाथियोंकी व्यूहरच-नाका भी व्याख्यान समझलेना चाहिये ॥ ३६ ॥

व्यामिश्रो वा हस्तिरथाश्वानाम् ॥ ३७ ॥ चक्रान्तयोर्हस्तिनः पार्श्वयोरश्वमुख्या रथा उरस्ये ॥ ३८ ॥ हस्तिनामुरस्यं रथानां कक्षावश्वानां पक्षाविति मध्यभेदी ॥३९॥ विपरीतोऽन्तर्भेदी ॥४०॥

अथवा हाथी रथ और घोड़ोंको मिलाकर व्यूहरचना कीजावे ॥ ३७ ॥ उस रचना का प्रकार यह है:—सेनाके अन्त अर्थात् सामने दोनों ओर हाथियोंको खड़ा किया जावे; पिछले हिस्सेमें दोनों ओर बढ़िया घोड़ोंको खड़ा किया जावे; और उरस्य अर्थात् मध्यभागमें रथोंको खड़ा किया जावे । (पक्ष स्थान में अर्थात् अगले हिस्सेमें दोनों ओर हाथियोंको खड़े करनेके कारण इस व्यूहरचनाका 'पक्षभेदी' भी एक विशेष नाम है) ॥ ३८ ॥ इसी व्यूह रचनाका एक और प्रकार यह भी है:—हाथियोंको मध्यमें, रथोंको पीछेकी ओर, और घोड़ोको आगेकी ओर रक्खा जावे; इस व्यूहरचनामें हाथियोंको मध्यमें रखनेके कारण, इसका विशेष नाम 'मध्यभेदी' होता है ॥ ३९ ॥ इस-से विपरीत व्यूहरचनाका नाम 'अन्तर्भेदी' होता है । अर्थात् हाथियोंको पीछे-की ओर रखना; मध्यमें घोड़े और आगेकी ओर रथोंको रखना । इसका नाम ' अन्तर्भेदी ' इसी लिये है, कि इस व्यूहमें हाथियोंको अन्त अर्थात् कक्षमें रक्खा जाता है ॥ ४० ॥

हस्तिनामेव तु शुद्धः ॥ ४१ ॥ सांनाह्यानामुरस्यमौपवाह्यानां जघनं व्यालानां कोट्याविति ॥ ४२ ॥

केवल हाथियोंके ही बनाये हुए व्यूहको शुद्ध कहा जाता है, अर्थात् इसमें घोड़े आदिका मिश्रण नहीं होता ॥ ४१ ॥ इन हाथियोंमेंसे जो युद्धके योग्य (=सान्नाह्य) हाथी होवें, उनको उरस्य अर्थात् मध्यभागमें रक्खा जावे। जो हाथी राजाकी सवारी आदि के हों, उनको कक्ष अर्थात् पिछले हिस्सेमें रक्खा जावे। इसी प्रकार जो हाथी दुष्ट या उन्मत्त हों, उनको अगले दोनों हिस्सोंमें नियुक्त किया जावे। यहां तक हाथियोंके शुद्ध व्यूहके सम्बन्धमें निरूपण करदिया गया ॥ ४२ ॥

अश्वव्यूहो वर्मिणामुरस्यं शुद्धानां कक्षपक्षाविति ॥ ४३ ॥ पत्तिव्यूहः पुरस्तादावरणिनः पृष्ठतो धन्विन इति शुद्धाः ॥४४॥

घोड़ोंके शुद्ध व्यूहमें घोड़ोंको निम्न लिखित रीतिसे खड़ा किया जावे:- कवचसे युक्त घोड़ोंको उरस्य अर्थात् मध्यस्थानमें खड़ा किया जावे; और कवच रहित घोड़ोंको पक्ष (सामने की ओर दोनों भागोंमें) तथा कक्षमें (पीछे की ओर दोनों भागोंमें) खड़ा किया जावे ॥ ४३ ॥ इसी तरह पैदल सेनाके शुद्ध व्यूहमें, पैदल सेनाको इस प्रकार खड़ा किया जावे:-कवच पहिनने वाले सिपाहियोंको आगेकी ओर दोनों हिस्सोंमें, और धनुर्धारी सिपाहियों को पीछेकी ओर दोनों हिस्सोंमें खड़ा किया जावे। (उरस्यमें कैसे सिपाहियों को खड़ा किया जाय, यह इस सूत्रमें निर्देश नहीं किया गया; प्रकरणानुसार यही समझना चाहिये, कि अन्य साधारण सिपाहियोंको मध्यभागमें खड़ा किया जावे)। यहां तक हाथी घोड़े तथा पैदल सेनाओंके शुद्ध व्यूहोंका यथाक्रम निरूपण करदिया गया ॥ ४४ ॥

पत्तयः पक्षयोरश्वाः पार्श्वयोर्हस्तिनः पृष्ठतो रथाः पुरस्तात्परव्यूहवशेन वा विपर्यास इति द्व्यङ्गबलविभागः ॥ ४५ ॥ तेन त्र्यङ्गबलविभागो व्याख्यातः ॥ ४६ ॥

मिश्रव्यूहोंमें सेनाके दो २ अंगोंको लेकर इसप्रकार व्यूहरचना कीजासकती है:-पैदल सिपाहियोंको आगे की ओर दोनों भागोंमें खड़ा किया जावे, तथा घोड़ोंको पिछले दोनों हिस्सोंमें (अथवा हाथियोंको पीछेकी ओर दोनों भागोंमें, और रथोंको आगे की ओर। अथवा शत्रु की व्यूहरचनाके अनुकूल (अर्थात् जिस तरह की व्यूहरचना करनेसे शत्रुका मुकाबला अच्छी तरह किया जासके, ऐसा) इसमें विपर्यय कर लेवे। इस तरह सेनाके दो

अंगों को लेकर तीन प्रकारका व्यूहविभाग किया जासकता है ॥ ४५ ॥ इसी के अनुसार सेनाके तीन अंगों को लेकर भी व्यूहरचना का विभाग समझ लेना चाहिये । यहां तक पक्ष कक्ष तथा उरस्योंके रूपमें सेना की संख्याके अनुसार व्यूहविभाग का वर्णन कर दिया गया ॥ ४६ ॥

दण्डसंपत्सारबलं पुंसाम् ॥ ४७ ॥ हस्त्यश्वयोर्विशेषः--कुलं जातिः सत्त्वं वयःस्थता प्राणो वर्ष्म जवस्तेजः शिल्पं स्थैर्यमुदग्रता विधेयत्वं सुव्यञ्जनाचारतेति ॥ ४८ ॥

अब सार और फल्गु सेना का विभाग किस प्रकार करना चाहिये, इसका निरूपण किया जायगाः--जो पैदल सेना पितृपैतामह क्रमसे लगातार चली आने वाली, नित्य तथा वशमें रहने वाली हो, उसको सारबल अर्थात् सारभूत सेना कहा जाता है ॥ ४७ ॥ हाथी और घोड़ोंमें इतना और विशेष समझना चाहियेः-कुल, जाति, धीरता, कार्य करने योग्य आयु, शारीरिकबल, आवश्यक ऊंचाई और चौड़ाई आदि (= वर्ष्म), वेग, पराक्रम (=अथवा तिरस्कार का न सहना), सुशिक्षा (युद्ध सम्बन्धी शिक्षाओं का होना) स्थिरता (अर्थात् प्रहार होने परभी अपने कार्यसे न हटना), उदग्रता (सदा-ऊपर को मुंह उठाकर रखना), सवार की आज्ञामें रहना, अन्य शुभलक्षण और शुभचेष्टाओंसे युक्त होना, इत्यादि गुणोंसे युक्त हाथी और घोड़े 'सारबल समझे जाते हैं ॥ ४८ ॥

पत्त्यश्वरथद्विपानाम् सारत्रिभागमुरस्यं स्थापयेत् ॥ ४९ ॥ द्वौ त्रिभागौ कक्षं पक्षं चोभयतः ॥ ५० ॥ अनुलोममनुसारम् ॥ ५१ ॥ प्रतिलोमं तृतीयसारम् ॥ ५२ ॥ फल्गु प्रतिलोमम् ॥ ५३ ॥ एवं सर्वमुपयोगं गमयेत् ॥ ५४ ॥

पैदल घोड़े रथ तथा हाथियोंके सारभूत बलके एक तिहाई हिस्से को मध्यभागमें स्थापित किया जावे ॥४९॥ बाकी दो तिहाई हिस्सों को दोनों ओर पक्षमें और दोनों ओर कक्षमें नियुक्त किया जावे ॥५०॥ यह सबसे उत्तम सेना के, खड़े करने का प्रकार बताया गया, जो सेना उससे कुछ न्यूनशक्ति रखती हो, उसको 'अनुसार' कहाजाता है । ऐसी सेनाको सारबलके पीछे की ओर खड़ा करे ॥ ५१ ॥ इससे भी कुछ न्यून शक्ति वाली 'तृतीयसार' सेनाको पहिली सेनासे उलटा अर्थात् सारबलके आगे की ओर खड़ा करें। यह सारबल के खड़े करने का प्रकार बताया गया ॥ ५२ ॥ फल्गुबलको (अर्थात् जो सेना तृतीयसारसे भी निर्बल हो, या जिसमें पितृपैतामह, नित्य, वश्य, आदि गुण

न हों, उसको फल्गुबल कहा जाता है, ऐसे बलको) तृतीयसार सेनाके भी आगे खड़ा किया जावे ॥ ५३ ॥ इसप्रकार सब तरह की सेनाओंको उपयोग में लावे ॥ ५४ ॥

फल्गुबलमन्तेष्ववधाय वेगोभिहुतो भवति ॥ ५५ ॥ सारबलमग्रतः कृत्वा कोटीष्वनुसारं कुर्यात् ॥ ५६ ॥ जघने तृतीयसारं, मध्ये फल्गुबलमेतत्सहिष्णु भवति ॥ ५७ ॥

फल्गुबलको पक्षस्थानमें खड़ा करके लड़ानेपर, शत्रुके आक्रमणका वेग उसीपर शान्त होजाता है। तात्पर्य यह है, कि यदि फल्गुबलका नाश भी होजाय, तो उससे इतनी हानि नहीं, जितनी कि सारबलके नाश होनेसे होसकती है। इसलिये फल्गुबलको पक्षस्थानमें ही रक्खें ॥ ५५ ॥ यदि सारबलको आगे कियाजावे, और कोटी अर्थात् किनारोंमें 'अनुसार' बलको नियुक्त कियाजावे ॥ ५६ ॥ पीछेकी ओर कक्षभागमें 'तृतीयसार' सेनाको खड़ा कियाजावे, तथा मध्यमें फल्गुसेनाको खड़ा किया जावे। इसप्रकार सब सेनाओंको खड़ा करके भी एक व्यूहकी रचना कीजाती है। यह व्यूह, शत्रुके आक्रमणका सहन करनेवाला होता है। अर्थात् शत्रुके आक्रमणसे इस प्रकारके व्यूह में खड़ीहुई सेना का पराजय नहीं हो सकता ॥ ५७ ॥

व्यूहं तु स्थापयित्वा पक्षकक्ष्योरस्यानामेकेन द्वाभ्यां वा प्रहरेत् ॥ ५८ ॥ शेषैः प्रतिगृह्णीयात् ॥ ५९ ॥

पक्ष कक्ष तथा उरस्य स्थानोंमें पहिले व्यूहकी ठीक २ स्थापना करके; फिर सेनाके एक अङ्गके द्वारा अथवा दो अंगोंके द्वारा शत्रुपर आक्रमण करे ॥ ५८ ॥ और सेना के शेष अंगों से, शत्रु के आक्रमण को रोके ॥ ५९ ॥

यत्परस्य दुर्बलं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यकं कृतोपजापं वा तत्प्रभूतसारेणाभिहन्यात् ॥ ६० ॥ यद्वा परस्य सारिष्ठं तद्द्विगुणसारेणाभिहन्यात् ॥ ६१ ॥ यदङ्गमल्पसारमात्मनस्तद्बहुनोपचिनुयात् ॥ ६२ ॥ यतः परस्यापचयस्ततोऽभ्याशे व्यूहेत यतो वा भयं स्यात् ॥ ६३ ॥

शत्रुकी जो सेना दुर्बल, हाथी घोड़ोंसे रहित, दूष्य अमात्योंसे युक्त तथा उपजाप कीहुई (अर्थात् भेदडालीहुई) हो, उसको बहुतसी सारभूत

सेनाके द्वारा नष्ट कर डाले ॥ ६० ॥ और शत्रुकी जो सेना सारभूत हो, उसको अपनी दुगनी सारभूत सेनाके द्वारा नष्ट करडाले ॥ ६१ ॥ अपनी सेनाका जो अंग अल्पसार (=थोड़ी शक्ति वाला) हो, उसको बहुतसी सेनाके साथ युक्त करदे । अर्थात् उसकी सहायताके लिये; अपनी बहुतसी सेना उसके साथ लगादे ॥ ६२ ॥ जिस ओरसे शत्रुकी सेनाका अपचय (क्षय=विनाश) होरहा हो, उसी ही के समीप अपनी सेनाकी व्यूह रचना करे । तात्पर्य यह है, कि शत्रु जिस ओरसे दुर्बल हो, उस ओरसे ही उसपर आक्रमण करे । अथवा जिस ओरसे अपने ऊपर आक्रमण होनेका भय हो, उस ओरसे व्यूहरचना करे ॥ ६३ ॥

अभिसृतं परिसृतमतिसृतमपसृतमुन्मथ्यावधानं वलयो गोमूत्रिका मण्डलं प्रकीर्णिका व्यावृत्तपृष्ठमनुवंशमग्रतः पार्श्वाभ्यां पृष्ठतो भग्नरक्षा भग्नानुपात इत्यश्वयुद्धानि ॥ ६४ ॥

अब इसके आगे घोड़े हाथी रथ तथा पैदल सेनाओंके युद्धोंका निरूपण किया जायगा । सबसे पहिले घोड़ोंके युद्धोंका निरूपण करते हैं:— अभिसृत (अपनी सेनासे शत्रुकी सेनाकी ओर जाना), परिसृत (शत्रु की सेनाके चारों ओर चोट पहुंचाते हुए घूमना), अतिसृत (शत्रुकी सेनाको बीचसे छिन्न भिन्न करके सुईकी तरह चले जाना), अपसृत (उसी मार्गसे फिर दुबारा निकलना), बहुत से घोड़ोंके द्वारा शत्रुकी सेनाको उन्माथित करके फिर उनका इकट्ठा होजाना, दो ओरसे सुईके समान मार्ग बनाकर जाना, गोमूत्रिका (गौ के मूत्रकी तरह वक्रगतिसे जाना), मण्डल (शत्रु की सेनाके किसी एक देशको काटकर चारों ओरसे उसे घेरलेना), प्रकीर्णिका (सब ही चालोंको मिलाकर प्रयोग करना), अनुवंश (शत्रुसेनाके अभिमुख हूई २ अपनी सेनाका अनुवर्त्तन करना), नष्ट होतीहुई अपनी सेनाकी, आगे पीछे तथा इधर उधरसे घूमकर रक्षा करना (=भग्नरक्षा), छिन्न भिन्न हुई २ शत्रुकी सेनाका पीछा करना; ये तेरह प्रकारके घोड़ोंके युद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

प्रकीर्णिकावर्जान्येतान्येव चतुर्णामङ्गानां व्यस्तसमस्तानां वा घातः ॥ ६५ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां च प्रभञ्जनमवस्कन्दः सौप्तिकं चेति हस्तियुद्धानि ॥ ६६ ॥

प्रकीर्णिकाको छोड़कर घोड़ोंके शेष सब युद्ध, बिखरे हुए या इकट्ठे हुए सेनाके चारों अंगोंका हनन करना ॥ ६५ ॥ पक्ष कक्ष तथा उरस्यमें

खड़ी हुई सेनाका मर्दन करना, शत्रुकी सेनाकी कहींसे निर्बलता देखकर उसपर प्रहार करना, और सोते शत्रुओंको मार डालना; ये सब हाथियोंके युद्ध होते हैं ॥ ६६ ॥

उन्मथ्यावधानवर्जान्येतान्येव स्वभूमावभियानापयान-स्थितयुद्धानीति रथयुद्धानि ॥ ६७ ॥ सर्वदेशकालप्रहरणमुपांशु-दण्डश्चेति पत्तियुद्धानि ॥ ६८ ॥

उन्मथ्यावधान (बहुतसे हाथियोंके द्वारा शत्रुकी सेनाको उन्मथित करके फिर उनका इकट्ठा हो जाना) को छोड़कर शेष सब हाथियोंके युद्ध, अपने योग्य भूमिमें ठहरकर शत्रुपर आक्रमण करना, शत्रु सेनाको हराकर भाग जाना, अपनी रक्षा करके बैठे हुए शत्रुके चारों ओर घेरा डालकर उसके साथ युद्ध करना; ये सब रथोंके युद्ध कहाते हैं ॥ ६७ ॥ सब देश और सब कालोंमें हथियारोंका धारण करना, और चुपचाप शत्रुसेनाका नाश करना; ये सब पैदल सेनाओंके युद्ध होते हैं ॥ ६८ ॥

एतेन विधिना व्यूहानोजान्युग्मांश्च कारयेत् ।
विभवो यावदङ्गानां चतुर्णां सदृशो भवेत् ॥ ६९ ॥
द्वे शते धनुषां गत्वा राजा तिष्ठेत्प्रतिग्रहे ।
भिन्नसंघातनार्थं तु न युध्येताप्रतिग्रहः ॥ ७० ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः, सारफल्गुबलविभागः, पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि च पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥
आदितस्त्रयस्त्रिंशच्छतः ॥ ११३ ॥

इस विधिसे विजिगीषु, ओज (अयुग्म) तथा युग्म व्यूहोंकी रचना करे। अपने पास हाथी घोड़े रथ तथा पैदल, इन सेनाके चारों अंगोंकी जितनी सम्पत्ति हो, उसहीके अनुकूल अपने व्यूहोंकी रचना करे ॥ ६९ ॥ युद्ध प्रारम्भ हो जानेपर राजा सेनाके पिछले हिस्सेमें दो सौ धनुष्के फासले पर ठहरे। ऐसा करनेसे शत्रुके द्वारा छिन्न भिन्न की हुई अपनी सेनाको राजा फिर इकट्ठी कर सकता है। इसलिये सेनाके पृष्ठ भागका आश्रय लिये बिना राजा कदापि युद्ध न करे। (किसी पुस्तकमें 'भिन्नसंघातनार्थं तु' के स्थानपर 'भिन्नसंघातनं तस्मात्' भी पाठ है। अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ ७० ॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त।

छठा अध्याय

१५८, १५९ प्रकरण

दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह, असंहत-व्यूह; इनके प्रकृतिव्यूहों और विकृति-व्यूहोंकी रचना; तथा उपर्युक्त दण्डादि-व्यूहोंके प्रतिव्यूहकी स्थापना।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें दण्डव्यूह आदि चार प्रकारके व्यूहोंकी रचनाका प्रकार बताया जायगा। दूसरे प्रकरणमें इन उपर्युक्त व्यूहोंके मुकाबलेके लिये दूसरे व्यूहोंकी स्थापनाका कथन किया जायगा।

पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभागः ॥ १ ॥ पक्षौ कक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इति बार्हस्पत्यः ॥ २ ॥

पक्ष (अगले दोनों ओरके हिस्से), उरस्य (मध्यभाग) और प्रतिग्रह (पिछला हिस्सा) ये चार ही अवयव व्यूहमें होते हैं, इस प्रकारका व्यूहविभाग उशना (शुक्र) आचार्यने किया है ॥ १ ॥ पक्ष, कक्ष (पिछले दोनों ओरके दो हिस्से), उरस्य और प्रतिग्रह ये छः अवयव व्यूहमें होने चाहियें; इसप्रकारका व्यूहविभाग बृहस्पति आचार्यने किया है ॥ २ ॥

प्रपक्षकक्षोरस्या उभयोः दण्डभोगमण्डलासंहताः प्रकृतिव्यूहाः ॥ ३ ॥ तत्र तिर्यग्वृत्तिर्दण्डः ॥ ४ ॥ समस्तानामन्वावृत्तिर्भोगः ॥ ५ ॥ सरतां सर्वतोवृत्तिः मण्डलः ॥ ६ ॥ स्थितानां पृथगनीकवृत्तिरसंहतः ॥ ७ ॥

शुक्र और बृहस्पति दोनों ही आचार्योंके मतमें, पृथक् २ पक्ष कक्ष तथा उरस्य स्थानोंमें खड़ी होनेवाली सेनाके दण्ड भाग मण्डल तथा असंहत नामक चार प्रकारके व्यूह होते हैं। ये व्यूह प्रकृतिव्यूहके नामसे कहे जाते हैं ॥ ३ ॥ इनमेंसे, सेनाको तिरछे खड़ा करके जो व्यूह बनाया जाय, उसे 'दण्डव्यूह' कहते हैं ॥ ४ ॥ शुक्रके मतसे उपर्युक्त चार अवयवों, और बृहस्पतिके मतसे उपर्युक्त छः अवयवोंका लगातार कई बार घुमाव डालकर जो व्यूह बनाया जाय, उसे 'भोगव्यूह' कहते हैं ॥ ५ ॥ शत्रुकी सेनाकी ओर

जाती हुई सेनाओंका चारों ओरसे घिरकर शत्रुपर आक्रमण करना 'मण्डल' नामक व्यूह होता है ॥ ६ ॥ शत्रुकी ओर चलनेसे पहिले, चार या छः ठहरी हुई सेनाओंको, अपने आपको एक दूसरे से पृथक् २ दिखलाते हुये शत्रुपर आक्रमण करना 'असंहत' नामक व्यूह कहाता है ॥ ७ ॥

पक्षकक्षोरस्यैः समं वर्तमानो दण्डः ॥ ८ ॥ स कक्षाभिक्रान्तः प्रदरः ॥ ९ ॥ स एव पक्षाभ्यां प्रतिक्रान्तो दृढकः ॥ १० ॥ स एवातिक्रान्तः पक्षाभ्यामसह्यः ॥ ११ ॥ पक्षाववस्थाप्योरस्याभिक्रान्तः श्येनः ॥ १२ ॥ विपर्यये चापं चापकुक्षिः प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च ॥ १३ ॥

ऊपर जो लक्षण व्यूहोंके किये गये हैं, वे शुक्र और बृहस्पतिके मतसे किये गये हैं; अब व्यूहके कक्ष अवयवको न मानने वाले शुक्राचार्यके मतके विरुद्ध, दण्ड आदि व्यूहोंका अपने मतके अनुकूल लक्षण किया जाता है:— कक्ष पक्ष तथा उरस्य इन पांचों बराबर २ सेनाओंके द्वारा, स्थानगमनादि पूर्वक ठीक २ किया जाता हुआ व्यूह 'दण्डव्यूह' कहाता है। यह दण्डव्यूह, प्रकृतिव्यूह होता है; इसके विकृतिव्यूहोंका अब निरूपण करते हैं:—॥ ८ ॥ जब कक्ष भागोंकी ओरसे शत्रुकी सेनापर आक्रमण कियाजाय, तो उस ही दण्डव्यूहको 'प्रदर' नामक व्यूह कहाजाता है ॥ ९ ॥ जब कि पक्षस्थित सेना मुड़कर, शत्रुकी सेनापर वारकरे, तब इस अवस्थामें वह दण्डव्यूह ही 'दृढक' नामक व्यूह कहाता है ॥ १० ॥ पक्षस्थित सेना जब अत्यधिक वेगसे शत्रुकी सेनामें घुसजावे, तब वह दृढक व्यूह 'असह्य' नामक व्यूह कहाता है ॥ ११ ॥ दोनों पक्षोंको अपने २ स्थानपर स्थापित करके उरस्यके द्वारा शत्रुकी सेनाकी ओर आक्रमण करना 'श्येन' नामक व्यूह कहा जाता है ॥ १२ ॥ इन उपर्युक्त प्रदर आदि चारों व्यूहोंसे सर्वथा विपरीत व्यूह यथाक्रम चाप चापकुक्षि प्रतिष्ठ और सुप्रतिष्ठ कहे जाते हैं ॥ १३ ॥

चापपक्षः सञ्जयः ॥ १४ ॥ स एवोरस्यातिक्रान्तो विजयः ॥ १५ ॥ स्थूलकर्णपक्षः स्थूलकर्णः ॥ १६ ॥ द्विगुणपक्षस्थूलो विशालविजयः ॥ १७ ॥ त्र्यभिक्रान्तपक्षश्चमूमुखः ॥ १८ ॥ विपर्यये झषास्यः ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वराजिर्दण्डः सूची ॥ २० ॥ द्वौ दण्डौ वलयः ॥२१॥ चत्वारो दुर्जय इति दण्डव्यूहाः ॥२२॥

जिस व्यूहके पक्ष चापके समान हों, वह 'सञ्जय' नामक व्यूह होता है ॥ १४ ॥ जब कि उरस्यके द्वारा शत्रुपर आक्रमण करके उसकी सेनाके अन्दर प्रवेश करदिया जावे, उस समय वह दण्डव्यूह, 'विजय' नामक व्यूह कहाता है ॥ १५ ॥ बड़े कानके समान, जिस व्यूहके पक्ष हों, वह 'स्थूलकर्ण' नामक व्यूह कहाता है ॥ १६ ॥ विजय व्यूहकी अपेक्षा पक्षस्थानोंमें जो दुगना बड़ा हो, वह 'विशालविजय' नामक व्यूह कहाता है ॥ १७ ॥ जिस व्यूहके पक्ष, दोनों कक्ष और उरस्य तीनोंकी बराबर हों, वह 'चमूमुख' नामक व्यूह कहाता है ॥ १८ ॥ और इससे विपरीत अर्थात् जिस व्यूहके कक्ष, दोनों पक्ष और उरस्यकी बराबर हों, वह 'झषास्य' नामक व्यूह कहाजाता है ॥ १९ जिस व्यूहमें शत्रुकी ओरको ऊंची होकर सेना आक्रमण करे, वह दण्डव्यूह 'सूचीव्यूह' कहाजाता है ॥ २० ॥ जब कि पक्ष कक्ष तथा उरस्य स्थानोंमें दो दण्डव्यूहोंको तिरछा खड़ा करदिया जावे, तब उसको 'वलय' कहाजाता है ॥ २१ ॥ यदि इसी प्रकार चार दण्डव्यूह खड़े करदिये जावें तब उसको 'दुर्जय' कहते हैं। यहांतक दण्डव्यूहोंका निरूपण करदिया गया ॥२२॥

पक्षकक्षोरस्यैर्विषमं वर्तमानो भोगः, स सर्पसारी गोमूत्रिका वा ॥ २३ ॥ स युग्मोरस्यो दण्डपक्षः शकटः ॥ २४ ॥ विपर्यये मकरः ॥ २५ ॥ हस्त्यश्वरथैर्व्यतिकीर्णः शकटः पारिपतन्तक इति भोगव्यूहाः ॥ २६ ॥

कक्ष पक्ष आदि स्थानोंके द्वारा विषम संख्यामें रचा जाता हुआ व्यूह 'भोगव्यूह' कहाता है। पक्ष आदिमें समानता रखनेवाला 'दण्डव्यूह' पहिले कहा जाचुका है। इस व्यूहमें सर्पके समान कुटिल स्थिति होनेके कारण पक्ष आदि स्थानोंमें सेनाओंकी तादाद न्यूनाधिक होती है; इसीलिये इसको 'भोगव्यूह' कहाजाता है। वह भोगव्यूह या तो सर्पके समान इकट्ठा एक रूपमें ही खड़ा किया जाता है, या गोमूत्रके समान विविध रूपोंमें खड़ा किया जाता है; इसलिये भोगव्यूहके ये दो भेद होते हैं—एक सर्पसारी, दूसरा गोमूत्रिका ॥ २३ ॥ वही भोगव्यूह उस समय 'शकट' नामक व्यूह कहाता है, जबकि उसका मध्यभाग युग्म अर्थात् दो भागोंमें विभक्त दण्डके आकारके समान हो, और दोनों पक्ष एक २ दण्डके समान स्थित होवें ॥ २४ ॥ इससे विपरीत होनेपर उस ही को 'मकरव्यूह' कहाजाता है ॥ २५ ॥ हाथी घोड़े और रथोंसे भरेहुए (=युक्त) शकट व्यूहको ही 'पारिपतन्तक' व्यूह कहा जाता है। यहांतक भोगव्यूहोंका निरूपण करदिया गया ॥ २६ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामेकीभावे मण्डलः ॥ २७ ॥ स सर्वतोमुखः सर्वतोभद्रो ऽष्टानीको दुर्जय इति मण्डलव्यूहाः ॥ २८ ॥

जिस व्यूहमें कक्ष पक्ष और उरस्य इकट्ठे मिलजावें, उसको 'मण्डलव्यूह' कहते हैं ॥ २७ ॥ जबकि चारों ओरसे शत्रुके ऊपर आक्रमण किया जाय, तब उस मण्डलव्यूहको 'सर्वतोभद्र' व्यूह कहा जाता है। इसी प्रकार जब उसमें आठ सेना मिलकर (दो उरस्यमें, दो दो दोनों पक्षस्थानोंमें और दो दोनों कक्ष स्थानोंमें) कामकरें, अर्थात् शत्रुपर एकसाथ आक्रमण करें, तब उसे 'दुर्जय' नामक व्यूह कहाजाता है। यहांतक मण्डलव्यूहोंका निरूपण करादिया गया ॥ २८ ॥

पक्षकक्षोरस्यानामसंहतादसंहतः ॥ २९ ॥ स पञ्चानीकानामाकृतिस्थापनाद्वज्रो गोधा वा ॥ ३० ॥ चतुर्णामुद्यानकः काकपदी वा ॥ ३१ ॥ त्रयाणामर्धचन्द्रिकः कर्कटकशृङ्गी वेत्यसंहतव्यूहाः ॥ ३२ ॥

पक्ष आदि पांचों स्थानोंमें स्थित सेनाओंके, शत्रुपर आक्रमण करनेमें असंहत (आपसमें न मिलना) होनेसे 'असंहत' नामक व्यूह कहाजाता है ॥२९॥ यह दो प्रकारका होता है, एक 'वज्र' दूसरा 'गोधा'। जबकि पक्ष आदि पांचों स्थानोंकी सेनाओंको वज्रके आकारमें खड़ा किया जावे, तब उसे 'वज्र' और जब उन्हें गोधा (गोह=एक जलका जानवर) के आकारमें खड़ा किया जावे, तब 'गोधा' कहते हैं ॥ ३० ॥ जबकि दोनों पक्ष उरस्य तथा प्रतिग्रह इन चार स्थानोंमें ही उस ढंगसे सेनाको खड़ा किया जावे, तब उस असंहत व्यूहको 'उद्यानक' अथवा 'काकपदी' कहाजाता हैं ॥ ३१ ॥ जब दोनों पक्ष, और उरस्य तथा प्रतिग्रह इनमेंसे कोई एक, इन तीन स्थानोंमें ही सेनाको स्थापित किया जाता है, तब उस व्यूहको 'अर्धचन्द्रिक' अथवा 'कर्कटकशृङ्गी' कहा जाता है। यहां तक असंहतव्यूहों का निरूपण कर दिया गया ॥ ३२ ॥

रथोरस्यो हस्तिकक्षोऽश्वपृष्ठोऽरिष्टः ॥ ३३ ॥ पत्तयोऽश्वा रथा हस्तिनश्चानुपृष्ठमचलः ॥ ३४ ॥ हस्तिनोऽश्वा रथः पत्तयश्चानुपृष्ठमप्रतिहतः ॥ ३५ ॥

इन उपर्युक्त भेदोंसे अतिरिक्त, व्यूहोंके निम्नलिखित और भी तीन भेद हैं:—जिस व्यूहके मध्यभागमें रथ हों, कक्ष स्थानोंमें हाथी, पिछले

हिस्सेमें (अर्थात् प्रतिग्रह स्थानमें) घोड़े और परिशेष होनेसे पक्ष स्थानोंमें पैदल होवें, उस व्यूहको 'अरिष्ट' कहते हैं। क्योंकि इसमें किसी तरहका अशुभ नहीं होता ॥ ३३ ॥ और जिस व्यूहमें पैदल पक्ष स्थानोंमें, घोड़े उरस्य स्थानमें, रथ कक्ष स्थानोंमें और हाथी प्रतिग्रह स्थानमें खड़े किये जावें, उस व्यूहको 'अचल' कहते हैं ॥ ३४ ॥ तथा जिस व्यूहमें हाथी पक्ष स्थानोंमें, घोड़े उरस्य स्थानमें, रथ कक्ष स्थानोंमें और पैदल सेना प्रतिग्रह स्थानमें नियुक्त हों, उस व्यूहको 'अप्रतिहत' कहा जाता है ॥ ३५ ॥

तेषां प्रदरं दृढकेन घातयेत् ॥ ३६ ॥ दृढकमसह्येन ॥३७॥ श्येनं चापेन ॥ ३८ ॥ प्रतिष्ठं सुप्रतिष्ठेन ॥ ३९ ॥ संजयं विजयेन ॥ ४० ॥ स्थूलकर्णं विशालविजयेन ॥ ४१ ॥ पारिपतन्तकं सर्वतोभद्रेण ॥ ४२ ॥

इसके पहिले सब तरहके व्यूहोंका निरूपण करदिया गया। अब उनका मुकाबला करनेवाले व्यूहोंका निरूपण किया जायगा; अर्थात् किस २ व्यूहका कौन २ से व्यूहसे प्रतीकार करना चाहिये, इस बातका निरूपण किया जायगाः—उन व्यूहोंमें से 'प्रदर' नामक व्यूहको दृढक व्यूहसे नष्टकरे ॥ ३६ ॥ इसीप्रकार दृढक व्यूहको असह्य व्यूहके द्वारा नष्टकरे ॥ ३७ ॥ श्येनव्यूहको चापव्यूहके द्वारा; ॥ ३८ ॥ प्रतिष्ठ व्यूहको सुप्रतिष्ठ व्यूहके द्वारा; ॥ ३९ ॥ संजय व्यूहको विजय व्यूहके द्वारा; ॥ ४० ॥ स्थूलकर्ण व्यूहको विशालविजय व्यूहके द्वारा; ॥ ४१ ॥ पारिपतन्तक व्यूहको सर्वतोभद्र व्यूहके द्वारा ॥ ४२ ॥

दुर्जयेन सर्वान्प्रतिव्यूहेत ॥ ४३ ॥ पत्त्यश्वरथद्विपानां पूर्वं पूर्वमुत्तरेण घातयेत् ॥ ४४ ॥ हीनाङ्गमधिकाङ्गेन चेति ॥ ४५ ॥

और दुर्जय व्यूहके द्वारा सब ही व्यूहोंको नष्टकरे ॥ ४३ ॥ पैदल घोड़ा रथ और हाथी इन सेनाके अंगोंमें से पहिले २ अंगको, अगले २ अंगसे नष्टकरे ॥ ४४ ॥ और हीन अंगको (अर्थात् शक्ति आदि से रहित अंगको) अधिक अंगसे (अर्थात् शक्तिसंपन्न अंगके द्वारा) नष्ट करे ॥ ४५ ॥

अङ्गदशकस्यैकः पतिः पदिकः ॥ ४६ ॥ पदिकदशकस्यैकः सेनापतिः ॥ ४७ ॥ तद्दशकस्यैको नायक इति ॥ ४८ ॥

अब सेना संचालक अधिकारियोंके सम्बन्धमें निरूपण किया जाता हैः—दश सेनाङ्गोंके एक पति अर्थात् अधिकारीको 'पदिक' कहते हैं। इसका अभिप्राय यों समझना चाहियेः—सेनाङ्ग चार प्रकारके होते हैं, परन्तु यहांपर

प्रधानभूत रथ और हाथी दो ही अंगोंका ग्रहण करना चाहिये । इसलिये दश रथ और दश हाथियोंका जो एक अधिकारी हो, उसीको 'पदिक' कहा जाता है । प्रत्येक रथ या हाथीके साथ कितने घोड़े और पैदल होते हैं, इसको जाननेके लिये देखोः-अधि० १०, अध्या० ५, सूत्र १०-१२ ॥ ४६ ॥ इसीतरहके दस पदिक अधिकारियोंके ऊपर एक सेनापति होता है ॥ ४७ ॥ और दस सेनापति अधिकारियोंके ऊपर एक नायक होता है ॥ ४८ ॥

स तूर्यघोषध्वजपताकाभिर्व्यूहाङ्गानां संज्ञाः स्थापयेत् ॥४९॥ अङ्गविभागे संघाते स्थाने गमने व्यावर्तने प्रहरणे च ॥ ५० ॥ समे व्यूहे देशकालयोगात्सिद्धिः ॥ ५१ ॥

वह सबसे प्रधान अधिकारी नायक, बाजोंके विशेष २ शब्दोंके द्वारा अथवा ध्वजा पताकाओंके द्वारा, व्यूहमें खड़ी हुई सेनाओंके व्यवहारके लिये विशेष संज्ञाओं (चिन्हों=इशारों) की स्थापना करे ॥ ४९ ॥ इन संज्ञाओंको सेनाके निम्नलिखित कार्योंमें काम लाया जावेः—व्यूहमें खड़ी हुई सेनाके अंगोंको अवसर पड़नेपर विभक्त करनेमें, बिखरी हुई सेनाको इकट्ठी करनेमें, चलती हुई सेनाको रोकनेमें, खड़ी हुई सेनाको चलानेमें, आक्रमण करती हुई सेनाको लौटानेमें, और यथावसर आक्रमण करनेमें, इन इशारोंको काममें लाया जावे ॥ ५० ॥ बराबरकी व्यूहरचना होनेपर अर्थात् शत्रुसेना और अपनी सेनाकी समानता होनेपर देश (सम विषम आदि) काल (रात्रि दिन आदि) और सार (शौर्य विक्रम आदि) के योग (सम्बन्ध) से ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है । अर्थात् जिसको देशकाल आदिकी अनुकूलता होगी, वही उस युद्धमें विजय प्राप्त कर सकेगा ॥ ५१ ॥

दण्डैरुपनिषद्योगैस्तीक्ष्णैर्व्यासक्तघातिभिः ।
मायाभिर्दैवसंयोगैः शकटैर्हस्तिभूषणैः ॥ ५२ ॥

यन्त्र (जामदग्न्य आदि), उपनिषद्योग (औपनिषदिक प्रकरणमें बताये हुए विष आदिके प्रयोग), छिपकर या मिलकर मारनेवाले तीक्ष्ण पुरुषों, छल कपट, राजाके भाग्यके कथन, और हाथीके योग्य वेषोंसे ढके हुए रथोंके द्वारा शत्रुको बेचैन किया जावे । (इसका अन्वय ५४ वें श्लोकमें समझना चाहिये; इसी तरह अगले श्लोक का भी) ॥ ५२ ॥

दूष्यप्रकोपैर्गोयूथैः स्कन्धावारप्रदीपनैः ।
कोटीजघनघातैर्वा दूतव्यञ्जनभेदनैः ॥ ५३ ॥

शत्रुके दूष्य पुरुषोंमें कोप उत्पन्न करने, आगे गौओंका झुण्ड खड़ा करने, छावनीमें आग लगा देने, सेनाके आगे या पीछेके हिस्सोंमें छापा मारने, दूतके वेषमें गुप्तचर पुरुषोंको शत्रुकी सेनामें भेजकर उनमें भेद डालनेसे भी शत्रुको विचलित करे ॥ ५३ ॥

दुर्गं दग्धं हृतं वा ते कोपः कुल्यः समुत्थितः ।
शत्रुराटविको वेति परस्योद्वेगमाचरेत् ॥ ५४ ॥

तथा 'तेरे दुर्गमें आग लगा दी गई है, तेरे दुर्गमें लूट मच गई है अर्थात् तेरे दुर्गको अधीन कर लिया गया है, तेरे कुलका ही कोई पुरुष तेरे विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है, तेरा सामन्त शत्रु युद्ध करनेके लिए तैयार हो गया है, अथवा तेरा आटविक शत्रु तेरे विरुद्ध संग्राम करनेके लिये सन्नद्ध हो चुका है' इन बातोंको कहकर भी विजिगीषु, शत्रुको उद्विग्न (बेचैन=खिन्न) करे । क्योंकि व्यग्र हो जानेसे शत्रु शीघ्र ही वशमें आ जाता है ॥ ५४ ॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः क्षिप्तो धनुष्मता ।
प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद्गर्भगतानपि ॥ ५५ ॥

इति सांग्रामिके दशमे ऽधिकरणे दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनं,तस्य प्रतिव्यूह-स्थापनं च षष्ठो ऽध्यायः ॥ ६ ॥ आदितश्चतुस्त्रिंशच्छतः ॥ १३४ ॥

एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य सांग्रामिकं दशममधिकरणं समाप्तम् ॥ १० ॥

युद्धसे मन्त्र बलवान् होता है, इस बातको अन्तिम श्लोकसे उपसंहार करते हुए कहते हैं:—धनुर्धारीके धनुषसे छोड़ा हुआ बाण, सम्भव है किसी एक भी पुरुषको मारे या न मारे । परन्तु बुद्धिमान व्यक्तिके द्वारा किया हुआ बुद्धिका प्रयोग, गर्भस्थित प्राणियोंको भी नष्ट कर देता है । इसलिये युद्ध की अपेक्षा बुद्धिको ही अधिक शक्तिसम्पन्न समझना चाहिये ॥५५॥

सांग्रामिक दशम अधिकरणमें छठा अध्याय समाप्त ।

सांग्रामिक दशम अधिकरण समाप्त ।

संघवृत्त एकादश अधिकरण

पहिला अध्याय

१६०-१६१ प्रकरण ।

भेदके प्रयोग और उपांशुदण्ड ।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें भेदक (भेद डालने वाले=संघका विश्लेष करने वाले) उपायोंके प्रयोगोंका निरूपण किया जायगा । दूसरे प्रकरणमें उपांशुदण्ड (=छिपकर एकान्त में किसीका वध करादेना, इस) का निरूपण किया जायगा ।

संघलाभो दण्डमित्रलाभानामुत्तमः ॥ १ ॥ संघा हि संहतत्वादधृष्याः परेषाम् ॥ २ ॥ताननुगुणान्भुञ्जीत सामदानाभ्याम् ॥ ३ ॥ विगुणान्भेददण्डाभ्याम् ॥ ४ ॥

संघलाभ, सेनालाभ और मित्रलाभ; इन सब ही लाभोंमें से संघलाभ उत्तम होता है ॥ १ ॥ क्योंकि इकट्ठा रहनेसे संघोंको, शत्रु दबा नहीं सकते ॥ २ ॥ यदि वे संघ अपने अनुकूल हों, तो विजिगीषु साम और दानके द्वारा उनका उपभोग करे । अर्थात् अपने अनुकूल कार्योंमें उनका उपयोग लेवे ॥ ३ ॥ यदि वे प्रतिकूल होवें, तो भेद और दण्डके द्वारा उनका उपयोग करे ॥ ४ ॥

काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः ॥५॥ लिच्छिविकव्रजिकमल्लकमद्रककुकुरकुरुपाञ्चालादयो राजशब्दोपजीविनः ॥ ६ ॥

वे संघ किनके होते हैं, इस बातका निरूपण इस सूत्रमें कियाजाता है:-काम्बोज और सुराष्ट्र (गुजरात) देशोंमें उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय आदि वर्गोंके (मूल सूत्रके आदि पदसे वैश्य आदिके वर्गोंका भी ग्रहण करलेना चाहिये) ही वे संघ होते हैं । ये लोग वार्त्ता (कृषि व्यापार आदि) और शस्त्रके द्वारा ही अपनी जीविका करते हैं ॥ ५ ॥ इनके अतिरिक्त लिच्छिविक व्रजिक

मल्लक मद्रक कुकुर कुरु और पाञ्चाल आदि देशोंके, केवल नाममात्रको राजा कहलानेवाले पुरुषोंके भी ये संघ होते हैं। (इनमें से लिच्छिविक और व्रजिक नामकी क्षत्रियोंकी जातियां पाटलिपुत्र वर्त्तमान पटनाके उत्तरकी ओरके देशोंमें रहा करती थीं। प्राकृतमें इन जातियोंको लिच्छवी और विज्जी कहते हैं। लिच्छिवी क्षत्रियोंकी राजधानीका नाम 'वैशालि' था; जिसके चिन्ह अभी तक भी पायेजाते है। मल्लक जाति भी पटनाके आस पास बसती थी। इनकी राजधानीका नाम 'पावा' था। मद्रक और कुकुर जातियां पञ्जाबके मध्य देशोंमें निवास करती थीं। मद्रक देशका, पञ्जाबी भाषाका अपभ्रंश नाम आजकल 'माञ्झा' है। कुरुदेश वर्त्तमान अम्बाला करनाल आदिके ज़िलोंका इलाका है। कन्नौज आदिके प्रान्तोंको 'पाञ्चाल' कहते हैं। इन स्थानोंमें रहनेवाले क्षत्रिय आदि वर्गोंके ही वे संघ होते थे) ॥ ६ ॥

सर्वेषामासन्नाः सत्त्रिणः संघानां परस्परन्यङ्गद्वेषवैरकलहस्थानान्युपलभ्य क्रमाभिनीतं भेदमुपचारयेयुः ॥ ७ ॥ असौ त्वा विजल्पतीति ॥ ८ ॥ एवमुभयतः ॥ ९ ॥

इन सब ही प्रकारके संघोंके समीप, सत्री (एक प्रकारके गुप्तचर) पुरुष रहें, और वे उन सब संघोंके परस्पर दोषोंको, तथा द्वेष (कठोर वाक्यों आदिके द्वारा प्रकट कियाहुआ क्रोध), वैर (अपकार आदिके कारण किसीके साथ द्रोह करना), और कलह स्थानोंको जानकर, धीरे २ उन्हें सामने लाकर उन संघोंमें ही परस्पर इसप्रकार भेद डालनेका उपक्रम करें ॥ ७ ॥ 'अमुक संघ तुम्हारी इसतरह निन्दा करता है' यह कहकर उस संघको दूसरेसे भड़कावे ॥ ८ ॥ इसीप्रकार कहकर दूसरेको भी उससे भड़का देवें। अर्थात् इधर उधर जाकर दोनोंको एक दूसरेसे भिन्न करदेवें ॥ ९ ॥

बद्धरोषाणां विद्याशिल्पद्यूतवैहारिकेष्वाचार्यव्यञ्जना बालककलहानुत्पादयेयुः ॥ १० ॥ वेशशौण्डिकेषु वा प्रतिलोमप्रशंसाभिः संघमुख्यमनुष्याणां तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ ११ ॥ कृत्यपक्षोपग्रहेण वा ॥ १२ ॥

एक दूसरेके साथ क्रुद्ध हुए २ संघोंके बालकोंका विद्या शिल्प द्यूत तथा प्रश्नोत्तर आदिके विषयमें, आचार्यके वेषमें रहनेवाले गुप्तचर कलह उत्पन्न करादेवें ॥ १० ॥ अथवा वेश्या तथा सुरापान आदिमें आसक्त हुए २, संघके मुख्य मनुष्यों की उलटी प्रशंसा करवाकर, तीक्ष्णपुरुष, आपसमें ही उनका कलह उत्पन्न करा देवें ॥ ११ ॥ अथवा संघके मुख्य मनुष्योंके जो कृत्य

(क्रुद्ध लुब्ध भीत तथा अवमानित देखो—अधि० १ अध्या० १४) व्यक्ति हों, उनको अपने अनुकूल बनाकर, फिर उनका ही संघोंके साथ कलह उत्पन्न करादेवें ॥ १२ ॥

कुमारकान्विशिष्टच्छन्दिकया हीनच्छन्दिकानुत्साहयेयुः ॥ १३ ॥

संघके कुमारोंमें जो अधिक योग्य वस्तुओंको लेकर सुखपूर्वक रहते हों, उनके मुकाबलेमें थोड़ी योग्य सामग्रीको लेकर निर्वाह करनेवाले संघ-कुमारोंको भड़कावें। अर्थात् मन्त्री उनको यह कहकर उत्तेजित करें कि देखो ये भी कुमार और तुम भी कुमार; फिर ये तुमसे अधिक सुख सामग्रीका उपभोग क्यों करते हैं ॥ १३ ॥

विशिष्टानां चैकपात्रं विवाहं हीनेभ्यो वारयेयुः ॥ १४ ॥ हीनान्वा विशिष्टैरेकपात्रे विवाहे वा योजयेयुः ॥ १५ ॥ अवहीनान्वा तुल्यभावोपगमने कुलतः पौरुषतः स्थानविपर्यासतो वा ॥ १६ ॥

जो हैसियतमें बड़े होवें, उनका छोटी हैसियत वालोंसे, एक पंक्तिमें बैठकर भोजन आदिके करने तथा विवाह आदि सम्बन्धोंको रोकें ॥ १४ ॥ अथवा हीन अर्थात् छोटी हैसियत वालोंको, बड़ी हैसियत वालोंके साथ एक पंक्ति में भोजन आदि करने तथा विवाह आदि सम्बन्धोंके लिये प्रेरित करें ॥ १५ ॥ अथवा संघके अवहीन (छोटी हैसियतक) पुरुषोंको, खानदान बहादुरी या जगहके तबादलेसे, बड़ी हैसियतके आदमियोंकी बराबरीके लिये उत्साहित करें ॥ १६ ॥

व्यवहारमवस्थितं वा प्रतिलोमस्थापनेन निशामयेयुः ॥१७॥ विवादपदेषु वा द्रव्यपशुमनुष्याभिघातेन रात्रौ तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ १८ ॥

अथवा संघने जिस किसी व्यवहारका अर्थात् विवादास्पद विषयका जो न्याय्य निर्णय किया हो, उसके विपरीतही व्यवहर्त्ता पुरुषको जाकर सुनावें। अर्थात् उस विपरीत बात का ही उनके हितके लिये समर्थनकरें ॥ १७ ॥ अथवा तीक्ष्ण पुरुष रात्रिमें, स्वयंही किसी संघके द्रव्य, पशु तथा मनुष्योंको नष्ट करके, दूसरे संघकेआदमियोंने ऐसा किया है, इस प्रकार मिथ्या प्रसिद्धि कर देवें, और इन विवादास्पद विषयोंको लेकर आपसमेंही उनका झगड़ा खड़ा करा देवें ॥ १८ ॥

सर्वेषु च कलहस्थानेषु हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य प्रतिपक्षवधे योजयेत् ॥ १९ ॥ भिन्नानपवाहयेद्वा ॥ २० ॥

इस तरहके सबही कलहके अवसरों पर राजा, हीनपक्ष (जिसको संघके साथ कोई पक्षपात न हो, ऐसे किसी संघकेही) पुरुषको, कोश और दण्ड के द्वारा अपने अनुकूल बनाकर, प्रतिपक्ष (शत्रु) के वध करनेमें नियुक्त कर देवे ॥ १९ ॥ अथवा संघके प्रतिकूल हुए २ उन पुरुषोंको संघसे पृथक् कर देवे ॥ २० ॥

एकदेशे समस्तान्वा निवेश्य भूमौ चैषां पञ्चकुलीं दशकुलीं वा कृष्यां निवेशयेत् ॥ २१ ॥ एकस्था हि शस्त्रग्रहणसमर्थाः स्युः ॥ २२ ॥ समवाये चैषामत्ययं स्थापयेत् ॥ २३ ॥

अथवा किसी एक प्रदेशमें इन सबको इकट्ठा बसाकर, इनकी भूमिमें कृषि करनेके योग्य पञ्चकुली या दशकुली गांवोंको बसावे। अर्थात् इनके पांच २ दस २ कुलोंके छोटे २ गांवोंको पृथक् २ बसावे ॥ २१ ॥ क्योंकि यदि इनको एक साथही बसा दिया जायगा, तो सम्भव है, ये लोग फिर कभी विजिगीषुके विरुद्ध हथियार उठानेमें समर्थ होजावें ॥ २२ ॥ इनकी आबादीके बीच २ में थोड़ी २ सेना अवश्य नियुक्त कीजावे ॥ २३ ॥

राजशब्दिभिरवरुद्धमवक्षिप्तं वा कुल्यमभिजातं राजपुत्रत्वे स्थापयेत् ॥ २४ ॥ कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गो राजलक्षण्यतां संघेषु प्रकाशयेत् ॥ २५ ॥

अब नाममात्रको राजा कहलाने वाले संघोंको आपसमें भिन्न करनेके उपाय बताये जाते हैः—राजा नामको धारण करने वाले लिच्छिवी आदि क्षत्रियोंसे घेरे हुए अथवा तिरस्कृत किये हुए, उच्च कुलोत्पन्न गुणी व्यक्तिको राजपुत्रके रूपमें स्थापित करे। अर्थात् 'यह राजपुत्र है' इस प्रकार विजिगीषु उसकी प्रसिद्धि करे॥ २४ ॥और इससे सम्बन्ध रखने वाले दैवज्ञ (ज्योतिषी) तथा सामुद्रिकशास्त्री पुरुष, इसको लिच्छिवी आदि संघोंमें, राजलक्षणोंसे युक्त प्रकाशित करें ॥ २५ ॥

संघमुख्यांश्च धार्मिष्ठानुपजपेत् ॥ २६ ॥ स्वधर्ममुष्य राज्ञः पुत्रे भ्रातरि वा प्रतिपद्यध्वमिति ॥ २७ ॥ प्रतिपन्नेषु कृत्यपक्षोपग्रहार्थमर्थं दण्डं च प्रेषयेत् ॥ २८ ॥

तथा जो संघोंके मुख्य धार्मिक पुरुष हों, उनका इस प्रकार उपजाप किया जावेः—॥ २६ ॥ कि आप अमुक राजपुत्र या राजभ्राताके विषयमें अपने धर्मको स्वीकार करें। तात्पर्य यह हैः-उनको कहा जाय, कि 'अमुक राजपुत्र या राजभ्राताको संघके पुरुष बन्धन आदिमें डालकर उन्हें इस तरह कष्ट पहुंचा रहे है, आपही यहां एक धर्मात्मा पुरुष हैं, आप उनके कष्ट निवारण करनेमें अपने धर्मका योग करें'। इसप्रकार कहकर संघके पुरुषोंसे उनको भिन्न किया जावे ॥ २७ ॥ जब संघके मुख्य पुरुष इस बातको स्वीकार करलें, तब कृत्य पक्षको अपने अनुकूल बनानेके लिये मुख्य पुरुषोंके पास उनकी सहायतार्थ धन और सेनाको भेजे ॥ २८ ॥

विक्रमकाले शौण्डिकव्यञ्जनाः पुत्रदारप्रेतापदेशेन नैषेचनिकमिति मदनरसयुक्तान्मद्यकुम्भाञ्शतशः प्रयच्छेयुः ॥ २९ ॥

लड़ाईका मौक़ा आने पर शराब बेचने वालोंके भेसमें गुप्तचर पुरुष, अपने लड़के और स्त्रियोंके मर जानेके बहानेसे (अर्थात् हमारे पुत्र स्त्री आदि मर गये हैं उनके निमित्तसे हम, यह भेंट आप लोगोंको देते हैं, इस बहानेसे) "यह 'नैषेचनिक' मद्य है" इस प्रकार कहते हुए, मद करने वाले विष रससे युक्त सैकड़ों मद्यके घड़ोंको लाकर उन्हें देदेवें ॥ २९ ॥

चैत्यदैवतद्वाररक्षास्थानेषु च सत्त्रिणः समयकर्मनिक्षेपं सहिरण्याभिज्ञानमुद्राणि हिरण्यभाजनानि च प्ररूपयेयुः ॥ ३० ॥ दृश्यमानेषु च संघेषु राजकीया इत्यावेदयेयुः ॥ ३१ ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ३२ ॥

देवालय तथा अन्य पवित्र स्थानोंके दरवाजों पर और रक्षास्थानोंमें; सत्री पुरुष, संघके मुखियाके साथ शर्त्त करनेके लिये अमानतके तौर पर देने का धन, सुवर्णकी अभिज्ञान मुद्राके सहित अन्य सुवर्णके पात्र आदि पदार्थोंको प्रकाशित कर देवें। अर्थात् इस तरहसे उन्हें प्रकट करें, जिससे कि संघके पुरुष इस बातको जानलेवें ॥ ३० ॥ इन सब बातोंके देखलेने पर, जब साक्षात् संघ इस बातको पूछें, कि 'ये सुवर्णके सामान किसके हैं' तब 'ये राजाके सामान हैं' यह उनको कह दिया जावे। (इस सूत्रमें 'राजकीयाः' पदके स्थान पर कहीं 'विक्रीताः' भी पाठ है। यह पाठ प्रकरणानुसार कुछ संगत नहीं मालूम होता) ॥ ३१ ॥ इस प्रकार जब संघोंमें परस्पर भेद पड़ जावे, तो विजिगीषु उनपर फ़ौज लेकर चढ़ाई कर देवे ॥ ३२ ॥

संघानां वा वाहनहिरण्ये कालिके गृहीत्वा संघमुख्याय प्रख्यातं द्रव्यं प्रयच्छेत् ॥ ३३ ॥ तदेषां याचिते दत्तममुष्मै मुख्यायेति ब्रूयात् ॥ ३४ ॥ एतेन स्कन्धावाराटवीभेदो व्याख्यातः ॥ ३५ ॥

अथवा सत्री पुरुष, संघोंके वाहन (घोड़े आदि सवारी) और हिरण्यको किसी नियत समय पर वापस करदेनेका वादा करके लेलेवे; और सब लोगोंके सामने प्रगटरूपमें वह सब सामान, संघके मुखिया पुरुषको देदेवे ॥ ३३ ॥ जब वे लोग इससे मांगें; तो कह देवे, कि वह सब सामान मैंने आपके मुखिया पुरुषको दे दिया है। इसप्रकार सत्री पुरुष, संघ और मुखियामें परस्पर भेद डलवावें ॥ ३४ ॥ अपनी छावनीमें प्रविष्ट हुए २ आटविक पुरुषोंके परस्पर भेद डालनेमें इन सब उपर्युक्त उपायोंको काममें लाना चाहिये ॥ ३५ ॥

संघमुख्यपुत्रमात्मसंभावितं वा सत्त्री ग्राहयेत् ॥ ३६ ॥ अमुष्य राज्ञः पुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह न्यस्तो ऽसीति ॥ ३७ ॥ प्रतिपन्नं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य संघेषु विक्रमयेत् ॥ ३८ ॥ अवाप्तार्थस्तमपि प्रवासयेत् ॥ ३९ ॥

अब इसके आगे उपांशुवधका निरूपण किया जायगा:—संघमुख्यके अभिमानी पुत्रको सत्री इसप्रकार समझावे:—॥ ३६ ॥ 'तू अमुक राजाका पुत्र है, शत्रुके डरसे यहां रक्खा हुआ है' ॥ ३७ ॥ यदि संघमुख्यका पुत्र इस बातको मानजावे, तो राजा (विजिगीषु), कोश और सेनाके द्वारा उसको अपने अनुकूल बनाकर अर्थात् कोश और सेनाकी उसे सहायता देकर, संघोंके ऊपर ही उससे चढ़ाई करवादेवे ॥ ३८ ॥ जब अपने कार्यकी सिद्धि होजाय, अर्थात् संघमुख्यके पुत्रके पराक्रमके द्वारा संघोंका निग्रह होजाय, तो उसको भी पीछेसे प्रवासित करदेवे। अर्थात् मरवाडाले ॥ ३९ ॥

बन्धकीपोषकाः प्लवकनटनर्तकसौभिका वा प्रणिहिताः स्त्रीभिः परमरूपयौवनाभिः संघमुख्यानुन्मादयेयुः ॥ ४० ॥ जातकामानामन्यतमस्य प्रत्ययं कृत्वान्यत्र गमनेन प्रसभहरणेन वा कलहानुत्पादयेयुः ॥ ४१ ॥ कलहे तीक्ष्णाः कर्म कुर्युः ॥४२॥ हतो ऽयमित्थं कामुक इति ॥ ४३ ॥

कुलटा स्त्रियोंका पालन पोषण करनेवाले, अथवा प्लवक, नट, नर्त्तक, और सौभिकके वेषमें रहनेवाले गुप्तचर पुरुष; अत्यन्त सुन्दर जवान स्त्रियोंके

द्वारा उन्माद युक्त बनावें। अर्थात् स्त्रियोंके फन्देमें फंसाकर उन्हें प्रमादी बनावें ॥ ४० ॥ जब उनमें से बहुतसे संघमुख्य स्त्रियोंकी कामना करनेलगें, तो किसी एकको कहीं विशेष स्थानपर स्त्रीके मिलनेका संकेत करके, उस स्त्रीको वहां से अन्य किसी संघमुख्य पुरुषके द्वारा दूर करदेवें, या उससे ही उस स्त्रीका अपहरण करादेवें। तदनन्तर यही बहाना लेकर उन संघ-मुख्योंमें आपसमें ही झगड़ा पैदा करादेवें ॥ ४१ ॥ झगड़ा होनेपर तीक्ष्ण पुरुष अपना कामकरें; अर्थात् आपसमें झगड़ा करनेवाले उन संघमुख्य पुरुषोंमें से किसी एकको मारडालें ॥ ४२ ॥ तदनन्तर यह प्रसिद्ध करदें, कि इस कामी पुरुषको इसके प्रतिद्वन्द्वी दूसरे कामुक पुरुष ने मारडाला है ॥ ४३ ॥

विसंवादितं वा मर्षयमाणमभिसृत्य स्त्री ब्रूयात् ॥ ४४ ॥ असौ मां मुख्यस्त्वयि जातकामां बाधते ॥ ४५ ॥ तस्मिञ्जीवति नेह स्थास्यामीति घातमस्य प्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥

यदि उन संघमुख्योंमें परस्पर झगड़ा होनेकी सम्भावना होनेपर एक उनमें से सहन करजावे; और दूसरेके साथ स्त्रीके लिये झगड़ा करना न चाहे, तो स्वयं उसके पास आकर इसप्रकार कहे:—॥ ४४ ॥ अमुक संघमुख्य पुरुष; आपके अन्दर मेरी अभिलाषा होनेपर भी मुझे रोकता है। अर्थात् मैं आपको दिलसे चाहती हूं, और वह इसमें बाधा पहुंचाता है ॥ ४५ ॥ उसके जीवित रहते हुए मैं यहां नहीं रह सकूंगी, अर्थात् आपके पास नहीं ठहर सकूंगी'। इसप्रकार कहकर उसके वधका आयोजन करवादेवे ॥ ४६ ॥

प्रसह्यापहृता घोपवनान्ते क्रीडागृहे वापहर्तारं रात्रौ तीक्ष्णेन घातयेत् ॥ ४७ ॥ स्वयं वा रसेन ॥ ४८ ॥ ततः प्रकाशयेत् ॥ ४९ ॥ अमुना मे प्रियो हत इति ॥ ५० ॥

अथवा बलात्कार अपहरण की हुई स्त्री, जंगलमें या क्रीडागृहमें, अपहरण करनेवाले पुरुषको, रात्रिके समय तीक्ष्णपुरुषके द्वारा मरवाडाले। अथवा स्वयं ही विष आदि देकर उसे मारडाले ॥ ४८ ॥ और फिर यह प्रकट करे, कि:—॥ ४९ ॥ अमुक प्रतिद्वन्द्वी कामुक पुरुषने मेरे प्यारेको मार डाला है। (अर्थात् उस संघमुख्यके मारनेमें अन्य किसी संघमुख्यका नाम लगादेवे) ॥ ५० ॥

जातकामं वा सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीभिरोषधीभिः संवास्य रसेनातिसंधायापगच्छेत् ॥ ५१ ॥ तस्मिन्नपक्रान्ते सत्त्रिणः परप्रयोगमभिशंसेयुः ॥ ५२ ॥

अथवा संघमुख्यकी, स्त्रीमें उत्कण्ठा उत्पन्न होजानेपर, सिद्धके वेषमें रहनेवाला गुप्तचर, वशीकरणके लिये उपयुक्त औषधियोंके बहानेसे, विषमिश्रित औषधोंके द्वारा उस संघमुख्य पुरुषको मारकर भागजावे ॥ ५१ ॥ उसके भाग जानेपर अन्य सत्री पुरुष, इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि इसके प्रतिद्वन्द्वी दूसरे कामी पुरुषने ही यह काम किया है। अर्थात् उसकी प्रेरणासे ही सिद्ध पुरुषने इसको विष देकर मारडाला है ॥ ५२ ॥

आढ्यविधवा गूढाजीवा योगस्त्रियो वा दायनिक्षेपार्थं विवदमानाः संघमुख्यानुन्मादयेयुरिति ॥ ५३ ॥ अदितिकौशिकस्त्रियो नर्तकी गायना वा ॥ ५४ ॥ प्रतिपन्नान्गूढवेश्मसु रात्रिसमागमप्रविष्टांस्तीक्ष्णा हन्युर्बध्वा हरेयुर्वा ॥ ५५ ॥

धनी विधवा स्त्रियां, गूढाजीवा (सधवा भी दरिद्रताके कारण व्यभिचार आदिसे अपनी जीविका करने वाली स्त्रियां), अथवा कपटपूर्वक स्त्रीका वेष धारण करने वाले पुरुषही दायभाग तथा निक्षेप (अमानत) आदिके लिये विवाद करते हुए, संघ मुख्य पुरुषोंको उन्मादयुक्त बनावें। अर्थात् विवादके निर्णयके बहानेसे उनके पास जाकर उन्हें अपने वशमें करनेका यत्न करें ॥ ५३ ॥ अथवा अदितिस्त्रियां (तरह २ के देवताओंके चित्रोंको दिखाकर अपनी आजीविका करने वाली स्त्रियां), कौशिकस्त्रियां (सांपोंको पकड़ने वाले सपेरोंकी स्त्रियां), या नाचने गाने वाली स्त्रियांही जाकर संघ मुख्योंको अपने फन्देमें फंसावें ॥ ५४ ॥ जब संघमुख्य पुरुष इन स्त्रियोंकी बातोंमें आजावें, और उनसे समागम करनेके लिये किन्हीं निश्चित स्थानोंका संकेत करदें, तब उन छिपे हुए घरोंमें रात्रिके समय समागम करनेके लिये प्रविष्ट हुए २ संघमुख्य पुरुषोंको, तीक्ष्णपुरुष मारडालें; अथवा उनको बांधकर अपहरण करलेजावें ॥ ५५ ॥

सत्त्री वा स्त्रीलोलुपं संघमुख्यं प्ररूपयेत् ॥ ५६ ॥ अमुष्मिन्ग्रामे दरिद्रकुलमपसृतम्, तस्य स्त्री राजार्हा, गृहाणैनामिति ॥ ५७ ॥ गृहीतायामर्धमासानन्तरं सिद्धव्यञ्जनो दूष्यसंघमुख्यं मध्ये प्रक्रोशेत् ॥ ५८ ॥ असौ मे मुख्यां भार्यां स्नुषां भगिनीं दुहितरं वाधिचरतीति ॥ ५९ ॥

अथवा सत्री, स्त्रीलोलुप संघमुख्य पुरुषको इसप्रकार कहे:—॥ ५६ ॥ अमुक ग्राममें एक दरिद्र कुलका पुरुष, जीविकाके लिये बाहर विदेशमें चला

गया है, उसकी स्त्री राजाके योग्य है, आप इसको लेलेवें ॥ ५७ ॥ यदि वह संघमुख्य पुरुष, उस स्त्रीको लेलेवे, तो पन्द्रह दिनके बाद सिद्धके वेषमें एक दूष्य पुरुष (=राजाके साथ झगड़ा करके रहने वाला पुरुष), संघमुख्यके बीचमें आकर इस प्रकार चिल्लावे, अर्थात् शोर मचावेः-॥ ५८ ॥ कि यह संघमुख्य पुरुष मेरी मुख्यभार्या, पुत्रभार्या, बहिन या लड़कीको बलात्कार उपभोग करता है । अर्थात् भार्या आदि किसी एकका नाम लेकर वह आक्रन्दन करे ॥ ५९ ॥

तं चेत्संघो निगृह्णीयाद्राजैनमुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेत् ॥ ६० ॥ अनिगृहीते सिद्धव्यञ्जनं रात्रौ तीक्ष्णाः प्रवासयेयुः ॥ ६१ ॥ ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रक्रोशेयुः ॥ ६२ ॥ असौ ब्रह्महा ब्राह्मणीजारश्चेति ॥ ६३ ॥

यदि इस बात पर संघ, उसको (संघमुख्य पुरुषको) गिरफ्तार करलेवे; तो विजिगीषु राजा, निगृहीत हुए २ उसको अपनी ओर मिलाकर अर्थात् अपने अनुकूल बनाकर; विरोधी संघोंके मुकाबलेमें उसे युद्ध करनेके लिये खड़ा करदेवे ॥ ६० ॥ यदि संघ, उसको गिरफ्तार न करे, तो सिद्धके वेषमें आने वाले उस दूष्य पुरुषको, तीक्ष्ण पुरुष रातमें मार डालें ॥ ६१ ॥ तदनन्तर स्वयं ही सिद्धके वेषमें आकर इसप्रकार कोलाहल मचावेंः-॥ ६२ ॥ यह संघमुख्य पुरुष ब्रह्महत्यारा है, और यह ब्राह्मणीके साथ जारकर्म करता है । अर्थात् उस सिद्ध ब्राह्मणकी भार्याके साथ दुष्कर्म करता है और इसीने उस सिद्धको मरवा डाला है ॥ ६३ ॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा कन्यामन्येन वृतामन्यस्य प्ररूपयेत् ॥ ६४ ॥ अमुष्य कन्या राजपत्नी राजप्रसविनी च भविष्यति ॥ ६५ ॥ सर्वस्वेन प्रसह्य वैनां लभस्वेति ॥ ६६ ॥ अलभ्यमानायां परपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ ६७ ॥ लब्धायां सिद्धः कलहः ॥६८॥

अथवा दैवज्ञ (ज्योतिषीके) वेषमें रहने वाला सत्री, अन्य किसी संघमुख्यसे वरण कीहुई कन्याको, और किसी संघमुख्यके लिये बतला देवे । और उससे इस प्रकार कहेः—॥ ६४ ॥ अमुक पुरुषकी कन्या, राजपत्नी और राजमाता होगी; अर्थात् उससे जो विवाह करेगा, वहभी राजा होगा, और उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वहभी अवश्य राजा होगा ॥ ६५ ॥ इसलिये अपना सर्वस्व देकरभी, अथवा बलात्कारसे इसको अवश्यही प्राप्त करो । अर्थात् जैसेभी होसके, इसको अपने अधीन अवश्य करो ॥ ६६ ॥ इस तरह कहनेके

बाद प्रयत्न करने परभी यदि वह संघमुख्य पुरुष उस कन्याको प्राप्त न करसके; तो पहिले वरण करने वाले पक्षकोही, इसके विरुद्ध उत्साहित करे ॥ ६७ ॥ यदि कन्याको वह प्राप्त करले, तो दोनोंका झगड़ा होजाना निश्चितही है ॥ ६८ ॥

भिक्षुकी वा प्रियभार्यं मुख्यं ब्रूयात् ॥ ६९ ॥ असौ ते मुख्यो यौवनोत्सिक्तो भार्यायां मां प्राहिणोत् ॥ ७० ॥ तस्याहं भयाल्लेख्यमाभरणं गृहीत्वाऽऽगतास्मि ॥ ७१ ॥ निर्दोषा ते भार्या ॥ ७२ ॥ गूढमस्मिन्प्रतिकर्तव्यम् ॥ ७३ ॥ अहमपि तावत्प्रतिपत्स्यामीति ॥ ७४ ॥

अथवा भिक्षुकी (भिक्षुकी=भिखारिनके भेसमें गुप्तचर—स्त्री या पुरुष), अपनी भार्यासे प्यार करने वाले किसी संघमुख्य पुरुषके पास आकर इस प्रकार कहे ॥ ६९ ॥ अपनी जवानीका घमण्ड करने वाले अमुक संघमुख्य पुरुषने, आपकी स्त्रीके पास अपने समागमकी टिप्पस लगानेके लिये मुझे दूती बनाकर भेजा है ॥ ७० ॥ मैं उसके डरसे यह लेखपत्र और आभूषण आदि लेकर आई हूं ॥ ७१ ॥ इस विषयमें आपकी स्त्री सर्वथा निर्दोष है ॥ ७२ ॥ आप छिपे तौरपर इस बातका अच्छीतरह प्रतीकार करें। अर्थात् चुपचापही इस संघमुख्य पुरुषको मरवा डालें ॥ ७३ ॥ मैंभी तब तक तुम्हारे समीपही रहना अङ्गीकार करूंगी। (तात्पर्य यह है, कि यदि उस संघमुख्य पुरुषके मरवा देनेके पहिलेही मैं यहांसे चली गई, तो वह अवश्यही मुझे नष्ट करादेगा। इसलिये जब तक आप उसे नहीं मरवा देते, तबतक मैं आपकीही सेवामें रहूंगी) ॥ ७४ ॥

एवमादिषु कलहस्थानेषु स्वयमुत्पन्ने वा कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा ॥ ७५ ॥

इसप्रकारके कलहकारणोंकी उपस्थितिमें, स्वयंही झगड़ोंके उत्पन्न होनेपर, अथवा तीक्ष्ण आदि पुरुषोंके द्वारा उत्पन्न किये जाने पर; हीनपक्ष (जिसका पक्ष कुछ शक्ति सम्पन्न न हो, ऐसे) संघमुख्य आदि पुरुषको, विजिगीषु राजा, कोश तथा सेनाकी उचित सहायता देकर अपने अनुकूल बना लेवे; और अवसर आनेपर, विरोध करनेवाले संघोंके मुकाबलेमें युद्ध करनेके लिये उसे तैयार कर देवे। यदि वह युद्ध करनेमें असमर्थहो, तो उसे अपने देशसे निकाल देवे ॥ ७५ ॥

संघेष्वेवमेकराजो वर्तेत ॥ ७६ ॥ संघाश्चाप्येवमेकराजादेतेभ्यो ऽतिसंघानेभ्यो रक्षयेयुः ॥ ७७ ॥

इसप्रकार विजिगीषु, संघोंमें एक मुख्य राजा बनकर रहे । अर्थात् उन सबके ऊपर अपना पूर्ण आधिपत्य रखता हुआही अपने व्यवहारको चलावे ॥ ७६ ॥ और संघभी इसप्रकार चेष्टा (व्यवहार) करते हुए राजासे, और उसके द्वारा फैलाये हुए इन जालोंसे अपने आपकी रक्षा करें । यहांतक संघोंमें राजाके, और राजामें संघोंके व्यवहारका निरूपण करदिया गया ॥७७॥

संघमुख्यश्च संघेषु न्यायवृत्तिहितः प्रियः ।
दान्तो युक्तजनस्तिष्ठेत्सर्वचित्तानुवर्तकः ॥ ७८ ॥

इति संघवृत्ते एकादशे ऽधिकरणे भेदोपादानानि, उपांशुदण्डश्च प्रथमो ऽध्यायः ।
आदितः पञ्चत्रिंशच्छतः ॥ १३५ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य
संघवृत्तमेकादशमधिकरणं समाप्तम् ॥ ११ ॥

अब उपसंहार श्लोकसे, संघोंमें संघमुख्यके व्यवहारका निरूपण किया जाता है:—संघमुख्यको चाहिये, कि वह संघोंमें सदा न्याययुक्त हितकारी तथा प्रिय व्यवहार करे । कभी उद्धततासे काम न लेवे; तथा अपने अनुकूल पुरुषोंकोही अपने समीप रक्खे, और सब संघके पुरुषोंके मतानुसारही व्यवहारोंको करे ॥ ७८ ॥

सङ्घवृत्त एकादश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

सङ्घवृत्त एकादश अधिकरण समाप्त ।

आबलीयस द्वादश अधिकरण

पहिला अध्याय

१६२ प्रकरण

दूतकर्म ।

यह आबलीयस बारहवां अधिकरण है । इसमें 'प्रबल अभियोक्ता के प्रति दुर्बल राजाको क्या करना चाहिये' इस बातका निरूपण किया जायगा । सबसे प्रथम इस अधिकरणके पहिले अध्यायमें दूतके कार्योंका कथन करते हैं ।

बलीयसाभियुक्तो दुर्बलः सर्वत्रानुप्रणतो वेतसधर्मा तिष्ठेत् ॥ १ ॥ इन्द्रस्य हि स प्रणमति यो बलीयसो नमतीति भारद्वाजः ॥ २ ॥

जब किसी दुर्बल राजापर कोई बलवान् राजा आक्रमण करे, तो वह उसके सामने, हरतरहका तिरस्कार होनेपर भी झुका रहे । जिसप्रकार जलके वेगके सामने बेंतका पेड़ झुका हुआ या उसके अनुसार रहकर, अपनी स्थितिको बनाये रखता है; इसीप्रकार दुर्बल राजा बलवान् राजाके सामने नम्र या उसके अनुकूल रहता हुआ अपनी स्थितिको दृढ़ बनाये रक्खे ॥ १ ॥ जो अपनेसे बलवान् राजाके सामने झुकता है, वह इन्द्रके सामने झुकता है, यही समझना चाहिये । यह सब भारद्वाज आचार्यका मत है ॥ २ ॥

सर्वसंदोहेन बलानां युध्येत ॥ ३ ॥ पराक्रमो हि व्यसनमपहन्ति ॥ ४ ॥ स्वधर्मश्चैष क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥ युद्धे जयः पराजयो वेति विशालाक्षः ॥ ६ ॥

विशालाक्ष आचार्यका इस विषयमें यह मत है, कि दुर्बल राजा, बलवान् राजाके मुकाबलेमें भी अपनी सेनाओंके सम्पूर्ण सामर्थ्यके साथ युद्धकरे ॥ ३ ॥ क्योंकि पराक्रम ही आपत्तियोंको नष्ट करदेता है ॥ ४ ॥ और क्षत्रियका यह (पराक्रम करना) अपना धर्म है ॥ ५ ॥ युद्धमें जय

हो, या पराजय हो, क्षत्रियको अपने धर्म पराक्रम का ही पालन करना चाहिये । शत्रुके पैरोंमें कभी न गिरना चाहिये ॥ ६ ॥

नेति कौटल्यः ॥ ७ ॥ सर्वत्रानुप्रणतः कुलैडक इव निराशो जीविते वसति ॥ ८ ॥ युध्यमानश्चाल्पसैन्यः समुद्रमिवाप्लवोऽवगाहमानः सीदति ॥ ९ ॥ तद्विशिष्टं तु राजानमाश्रितो दुर्गमविषह्यं वा चेष्टेत ॥ १० ॥

परन्तु कौटल्य आचार्य भारद्वाज और विशालाक्षके इन दोनों ही मतोंको नहीं मानता ॥ ७ ॥ वह कहता है, कि जो दुर्बल राजा, हरतरहका तिरस्कार होनेपर भी नम्र ही बना रहता है, वह अपने झुंडसे अलहदा हुए २ कुलके मैंढेके समान (जो मैंढा मारनेके लिये ही रक्खा जाता है, उसको 'कुलैडक' कहते हैं । उसके जीवनमें सदा ही सन्देह रहता है, न मालूम किस समय मारदिया जाय । हिन्दीमें इसीसे एक कहावत बनगई है–'बकरेकी मां कब तक खैर मनायेगी' । इसी तरह) जीवनसे निराश हुआ २ जैसे तैसे निवास करता है । अर्थात् ऐसे दुर्बल राजाको अपना जीवन भी भारी होजाता है ॥ ८ ॥ और इसीतरह थोड़ी सेनाकी सहायता लेकर ही जो युद्ध करने लगजाता है, वह राजा, तरणसाधनके बिना ही समुद्रमें प्रवेश करजानेवाले पुरुषके समान अवश्य दुःख उठाता है ॥ ९ ॥ इसलिये दुर्बल राजाको चाहिये, कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वी राजाके समान या उससे भी अधिक शक्ति रखनेवाले किसी अन्य राजाका आश्रय लेलेवे । अथवा ऐसे दुर्गमें जाकर अपना कार्य आरम्भ करे, जिसपर शत्रुका कुछ बस न चलसकता हो । अर्थात् ऐसे राजा या दुर्गका आश्रय लेकर ही दुर्बल राजा अपने शत्रुका मुक़ाबला करे ॥ १० ॥

त्रयो ऽभियोक्तारो धर्मलोभासुरविजयिन इति ॥ ११ ॥ तेषामभ्यवपत्त्या धर्मविजयी तुष्यति ॥ १२ ॥ तमभ्यवपद्येत परेषामपि भयात् ॥ १३ ॥

अभियोक्ता (दुर्बल राजापर आक्रमण करनेवाला बलवान् राजा) तीन प्रकारके होसकते हैं । धर्मविजयी, लोभविजयी और असुरविजयी ॥ ११ ॥ उनमेंसे धर्मविजयी, आत्मसमर्पण करने ('मैं तुम्हारा हूं' इस प्रकार कहने) से ही सन्तुष्ट होजाता है ॥ १२ ॥ उस धर्मविजयी राजाको सन्तुष्ट रक्खे ; न केवल इस विचारसे कि उससे भय न रहे, किन्तु इस विचारसे भी कि ऐसा करनेपर दूसरे शत्रुसे भी भय न होगा । तात्पर्य यह है

कि धर्मविजयी अभियोक्ता सन्तुष्ट होनेपर, स्वयं तो बाधा पहुंचाताही नहीं, किन्तु अन्यशत्रुसे भी उस दुर्बल राजाकी सदा रक्षा करता है ॥ १३ ॥

भूमिद्रव्यहरणेन लोभविजयी तुष्यति ॥ १४ ॥ तमर्थेनाभ्यवपद्येत ॥ १५ ॥ भूमिद्रव्यपुत्रदारप्राणहरणेनासुरविजयी ॥ १६ ॥ तं भूमिद्रव्याभ्यामुपगृह्याग्राह्यः प्रतिकुर्वीत ॥ १७ ॥

लोभविजयी अभियोक्ता, भूमि और द्रव्य लेनेसेही सन्तुष्ट होता है ॥ १४ ॥ इसलिये दुर्बल राजा, धनादिके द्वारा उसको सन्तुष्ट रक्खे ॥ १५ ॥ असुरविजयी अभियोक्ता तो, भूमि द्रव्य पुत्र स्त्री और प्राणों तकका भी अपहरण करलेने परही सन्तुष्ट रहता है ॥ १६ ॥ इसलिये उससे कभी भी न मिलकर दूरही रहते हुए, उसकी इच्छानुसार भूमि और द्रव्य देकर उसको अनुकूल बनावे, तथा सन्धि आदिके द्वारा उसका प्रतीकार करे ॥ १७ ॥

तेषामुत्तिष्ठमानं संधिना मन्त्रयुद्धेन कूटयुद्धेन वा प्रतिव्यूहेत ॥ १८ ॥ शत्रुपक्षमस्य सामदानाभ्याम् ॥ १९ ॥ स्वपक्षं भेददण्डाभ्याम् ॥ २० ॥ दुर्गं राष्ट्रं स्कन्धावारं वास्य गूढाः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेयुः ॥ २१ ॥

उनमेंसे किसी एकका, जो अपने ऊपर आक्रमण करनेके लिये तैयार हो, सन्धिके द्वारा, मन्त्रयुद्धसे अथवा कूटयुद्धसे मुकाबला करे। (किसी २ पुस्तकमें 'तेषामुत्तिष्ठमानं' के स्थानपर 'तेषामन्यतममुत्तिष्ठमानं' ऐसा भी पाठ है। अर्थमें कोई विशेषता नहीं) ॥ १८ ॥ मन्त्रयुद्धका यह ढंग हैः— इसके शत्रुपक्षको अर्थात् प्रबल अभियोक्ताके शत्रुपक्षको, साम और दानके द्वारा अपने अनुकूल बनानेका यत्न करे ॥ १९ ॥ और अपने पक्षको, अर्थात् अपने अमात्य आदि प्रकृतिवर्गको भेद और दण्ड के द्वारा अपने वशमें रक्खे ॥ २० ॥ कूटयुद्धका यह ढंग समझना चाहियेः—प्रबल अभियोक्ताके दुर्ग राष्ट्र तथा छावनियोंको अपने गूढपुरुषोंके द्वारा, छिपकर शस्त्रप्रहार करने, विष देने तथा आग आदि लगा देनेसे नष्ट करवा देवे ॥ २१ ॥

सर्वतः पार्ष्णिमस्य ग्राहयेत् ॥ २२ ॥ अटवीभिर्वा राज्यं घातयेत् ॥ २३ ॥ तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां वा हारयेत् ॥ २४ ॥

पीछे तथा इधर उधरसे, प्रबल अभियोक्ताकी पार्ष्णिका ग्रहण करवावे। अभिप्राय यह है, कि अवसर पानेपर अभियोक्ताके पीछे की ओरसे, या इधर उधर बाजुओंकी ओरसे उसपर छापा मारनेका प्रबन्ध करवावे ॥ २२ ॥

अथवा आटविक पुरुषोंके द्वारा, इसके राज्य अर्थात् दुर्ग जनपद आदिको नष्ट करवादेवे ॥ २३ ॥ अथवा अभियोक्ताकेही किसी अन्य बन्धु बान्धवके द्वारा; या रोके हुए (बन्धनमें डाले हुए) उसके (अभियोक्ताके) पुत्र आदिके द्वाराही, इसके राज्यका अपहरण करादेवे ॥ २४ ॥

अपकारान्तेषु चास्य दूतं प्रेषयेत् ॥ २५ ॥ अनपकृत्य वा संधानम् ॥ २६ ॥ तथाप्यभिप्रयान्तं कोशदण्डयोः पादोत्तरमहोरात्रोत्तरं वा संधिं याचेत ॥ २७ ॥

इसतरह उसका अपकार कराकर, तदनन्तर सन्धिके लिये उसके पास अपना दूत भेजे । क्योंकि ऐसी अवस्थामें सरलतासेही सन्धि होजाया करती है ॥ २५ ॥ अथवा यदि दुर्बल राजा, प्रबल अभियोक्ताका किसी तरह का भी अपकार करनेमें समर्थ न हो, तो ऐसी अवस्थामें भी स्वयं सन्धि की याचना करे ॥ २६ ॥ यदि फिर भी वह सन्धि न करे, और चढ़ाई करनेके लियेही उतारू होरहा हो, तो सन्धि की शर्त्तके लिये पहिलेसेही नियतसंख्यक धन और सेनामें चौथाई हिस्सा और बढ़ाकर सन्धि की याचना करे । अथवा दिन और रातकी संख्या बढ़ाकर भी सन्धि की याचना करे । इसका अभिप्राय यह है:—दुर्बलके द्वारा नियत समयतक सन्धिकी याचना करनेपर और अपना अभिलषित धन देने पर भी यदि अभियोक्ता सन्धि करनेको तैयार न हो, तो अभियोक्ताकी इच्छाके अनुसारही धन देकर, उतने समयमें और अधिक दिन जोड़कर सन्धि की याचना करे अर्थात् सन्धिके दिनोंकी अवधि और बढ़वा लेवे ॥ २७ ॥

स चेद्दण्डसंधिं याचेत कुण्ठमस्मै हस्त्यश्वं दद्यादुत्साहितं वा गरयुक्तम् ॥ २८ ॥

यदि अभियोक्ता, सेनाकी सन्धिकी याचना करे, अर्थात् सन्धिकी शर्त्तोंमें सेनाको ही लेना चाहे; तो दुर्बल राजाको चाहिये, कि वह अपने कुण्ठ अर्थात् कार्य करनेमें सर्वथा अशक्त हाथी घोड़ोंको देदेवे । अथवा उत्साही (कार्य करनेमें समर्थ) हाथी घोड़ोंको भी ऐसा विष खिलाकर देडाले, जिससे कि वे पन्द्रह बीस दिन या महीने भर के बाद तक मर जावें ॥ २८ ॥

पुरुषसंधिं याचेत दूष्यामित्राटवीबलमस्मै दद्याद्योगपुरुषाधिष्ठितम् ॥ २९ ॥ तथा कुर्याद्यथोभयविनाशः स्यात् ॥ ३० ॥

यदि अभियोक्ता, पुरुष-सन्धिकी याचना करे, अर्थात् सन्धिकी शर्तोंमें पैदल सेनाको लेना चाहे; तो अपने योगपुरुषोंसे (विष, गैस तथा दूषित जल आदिको देकर दूष्य आदि सेनाको मारडालने वाले, अपने विश्वस्त गूढ़पुरुषोंसे) युक्त, दूष्यबल, शत्रुबल तथा आटविक बलको इसके लिये देदेवे ॥ २९ ॥ और इसप्रकारका प्रबन्ध करे, जिससे कि अपनी दीहुई दूष्य आदि सेना, तथा शत्रुकी सेना दोनोंका ही अवश्य विनाश होजावे ॥३०॥

तीक्ष्णबलं वास्मै दद्यात् यदवमानितं विकुर्वीत ॥ ३१ ॥ मौलमनुरक्तं वा, यदस्य व्यसनेऽपकुर्यात् ॥ ३२ ॥

अथवा अभियोक्ताके लिये, अपने तीक्ष्णबलको देदेवे, जो कि थोड़ासा अपमान करनेपर ही बिगड़ उठे, और शत्रुका अपकार करडाले ॥ ३१ ॥ अथवा दुर्बल राजा, अपनी मौल (वंशपरम्परासे आईहुई) अनुरक्त (राजामें अत्यन्त अनुराग रखने वाली, जिसपर राजाको भी पूरा विश्वास हो, ऐसी) सेनाको ही अभियुक्तके लिये देदेवे । जो कि शत्रुपर आपत्तिके समयमें उसका (शत्रुका) अच्छीतरह अपकार करसके ॥ ३२ ॥

कोशसंधिं याचेत सारमस्मै दद्याद्यस्य क्रेतारं नाभिगच्छेत् ॥ ३३ ॥ कुप्यमयुद्धयोग्यं वा ॥ ३४ ॥

यदि अभियोक्ता, कोशसन्धिकी याचना करे, अर्थात् सन्धिकी शर्तोंमें धन ही लेना चाहे; तो सार अर्थात् बहुमूल्य रत्न आदि धनको ही इसके लिये देदेवे । जिस (रत्न आदि) का खरीदने वाला भी इसे कोई न मिले ॥ ३३ ॥ अथवा वस्त्र आस्तरण आदि कुप्य, और युद्धमें काम न आनेवाले अन्य सामान इसको देदेवे ॥ ३४ ॥

भूमिसंधिं याचेत प्रत्यादेयां नित्यामित्रामनपाश्रयां महाक्षयव्ययनिवेशां वास्मै भूमिं दद्यात् ॥ ३५ ॥ सर्वस्वेन वा राजधानीवर्जेन संधिं याचेत बलीयसः ॥ ३६ ॥

यदि अभियोक्ता, भूमिसन्धिकी याचना करे, तो इसके लिये ऐसी भूमि देवे, जो फिर आसानीसे वापस लीजासकती हो, अथवा जिसमें हमेशा दुश्मन नज़दीक रहे, या जिसमें कोई किसी तरहका भी दुर्ग न हो, और जिसमें निवास करनेके लिये अत्यधिक धनका व्यय और पुरुषोंका क्षय होनेकी सम्भावना हो ॥ ३५ ॥ अथवा जो अत्यन्त बलवान् अभियोक्ता हो, उसको राजधानीके अतिरिक्त और अपना सर्वस्व देकर भी उससे सन्धिकी याचना करे ॥ ३६ ॥

यत्प्रसह्य हरेदन्यः तत्प्रयच्छेदुपायतः ।
रक्षेत्स्वदेहं न धनं का ह्यनित्ये धने दया ॥ ३७ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे दूतकर्माणि संधियाचनं
प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥ आदितः षट्त्रिंशच्छतः ॥ १३६ ॥

यदि कोई अन्य प्रबल अभियोक्ता, बलपूर्वक अपने (दुर्बल अभियुक्त राजाके) धन आदिका अपहरण करे; तो उस धन आदि सम्पत्तिको उपायके साथ अर्थात् सन्धि आदिके बहानेसे उसे ही देदेवे । धनकी अपेक्षा अपनी देहकी ही सर्वथा रक्षा करे, क्योंकि अवश्य ही नष्ट होजाने वाले धन पर दया दिखाना व्यर्थ है । यदि देह सुरक्षित रहेगी, तो नष्ट हुआ २ धन भी फिर पैदा किया जासकता है ॥ ३७ ॥

आबलीयस द्वादश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१६३ प्रकरण

मन्त्रयुद्ध

मति=बुद्धिके उत्कर्षको ही मन्त्र कहते हैं, उसके द्वारा युद्ध करना अर्थात् बुद्धिमत्तासे शत्रुको ठगनाही 'मन्त्रयुद्ध' कहाता है । जब शत्रु सन्धिकी याचना करनेपर भी सन्धि न करे, तो उसे मंत्रयुद्ध के द्वाराही सीधा किया जावे ; इसीलिये इस प्रकरणमें मन्त्रयुद्धका ही निरूपण किया जायगा ।

स चेत्संधौ नावतिष्ठेत ब्रूयादेनम्ः—॥ १ ॥ इमे षड्वर्गव-शगा राजानो विनष्टाः तेषामनात्मवतां नार्हसि मार्गमनुगन्तुम् ॥ २ ॥ धर्ममर्थं चावेक्षस्व ॥ ३ ॥

यदि प्रबल अभियोक्ता या शत्रु, सन्धिमें स्थित न रहे, अर्थात् सन्धि-को स्वीकार न करे, तो उससे यह कहेः— ॥ १ ॥ देखो ये षड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मान मद हर्ष । देखो अधि. १ अध्या. ६ । किसी २ पुस्तकमें 'षड्वर्ग' के स्थानपर शत्रुषड्वर्ग' भी पाठ है । अर्थ करनेमें किसी प्रकारका भेद नहीं) के अधीन हुए २ राजा लोग नष्ट होगये । तुम्हें उन नीच राजाओंके मार्गका कभी अनुसरण न करना चाहिये ॥ २ ॥ अपने धर्म और

अर्थ की ओर अच्छी तरह देखो ; अर्थात् उनके सुरक्षित रखनेमें पूरा यत्न रक्खो ॥ ३ ॥

मित्रमुखा ह्यमित्रास्ते ये त्वां साहसमधर्ममर्थातिक्रमं च ग्राहयन्ति ॥ ४ ॥ शूरैस्त्यक्तात्मभिः सह योद्धुं साहसम् ॥ ५ ॥ जनक्षयमुभयतः कर्तुमधर्मः ॥ ६ ॥ दृष्टमर्थं मित्रमदुष्टं च त्यक्तु-मर्थातिक्रमः ॥ ७ ॥

ये लोग ऊपरसे मित्र, और वास्तविक रूपमें तुम्हारे शत्रु हैं, जो तुम्हें साहस (युद्ध), अधर्म, और धन आदिका व्यय करनेके लिये प्रेरित या उत्साहित करते रहते हैं ॥ ४ ॥ अपनी देहों की या अपने आपकी कुछ पर्वाह न करनेवाले बहादुर आदमियोंके साथ युद्ध करनेके लिये, ये तुम्हें प्रोत्साहित करते हैं, यही साहस है ॥ ५ ॥ इसमें दोनों ओरकेही आदमियोंका क्षय (नाश) होता है, यही इसमें अधर्म है ॥ ६ ॥ विद्यमान धनको और अत्यन्त सज्जन मित्रको छोड़नेके लिये ये तुम्हें प्रेरणा करते हैं, यही इसमें अर्थका नाश या धनका नाश है ॥ ७ ॥

मित्रवांश्च स राजा भूयश्चैतेनार्थेन मित्राण्युद्योजयिष्यति यानि त्वा सर्वतो ऽभियास्यन्ति ॥ ८ ॥ न च मध्यमोदासीनयोर्मण्डलस्य वा परित्यक्तः ॥ ९ ॥ भवांस्तु परित्यक्तो ये त्वां समुद्युक्तमुपप्रेक्षन्ते ॥ १० ॥ भूयः क्षयव्ययाभ्यां युज्यताम् ॥ ११ ॥ मित्राच्च भिद्यताम् ॥ १२ ॥ अथैनं परित्यक्तमूलं सुखेनोच्छेत्स्याम इति ॥ १३ ॥

उस राजाके बहुत मित्र हैं, और फिर वह इसी धनके द्वारा अपने मित्रोंको और भी साथ लगा लेगा ; जोकि सब मिलकर तेरे ऊपर आक्रमण करदेंगे ॥ ८ ॥ मध्यम और उदासीन राजाओंके मण्डल (समूह) ने भी उसका परित्याग नहीं किया हुआ है। अर्थात् वे भी उसका साथ देनेके लिये तैयार हैं ॥ ९ ॥ परन्तु तुम्हारा तो उन्होंने परित्याग करदिया है। जोकि युद्धके लिये तैयार हुआ २ तुम्हें देखकर अब चुपचाप इस बातकी प्रतीक्षा कर रहे हैं:— ॥ १० ॥ कि फिर तुम्हारे आदमियोंका नाश और धनका व्यय होजावे ॥ ११ ॥ और तुम अपने मित्रसे भिन्न होजाओ ॥ १२ ॥ इसप्रकार जब तुम्हारी शक्ति सर्वथा क्षीण होजाय, और तुम्हारी जड़ ढीली पड़जाय, अर्थात्

जब तुम अपने मूल स्थानको छोड़दो, तो तुम्हारा बड़ी सरलतासे उच्छेद करेंगे। ('उच्छेत्स्यामः' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'उच्छेत्स्यामहे' ऐसा आत्मनेपद पाठ भी है) ॥ १३ ॥

स भवान्नार्हति मित्रमुखानाममित्राणां श्रोतुं मित्राण्युद्वेजयितुममित्रांश्च श्रेयसा योक्तुं प्राणसंशयमनर्थं चोपगन्तुमिति यच्छेत् ॥ १४ ॥

इसलिये आपको यह योग्य नहीं है, कि आप, ऊपरसे मित्रता दिखानेवाले उन वास्तविक शत्रुओं की किसी भी बातको सुनें ; अपने मित्रों को खिन्न करें शत्रुओंके कल्याणके साधन बनें; अपने प्राणोंको संशयमें डालें, और अनर्थको प्राप्त हों, अर्थात् धन आदिका भी नाश करें । इसप्रकार उपदेश किये हुए राजाको, जो धन, सन्धि की शर्त्तके लिये तै किया हुआ हो, वह देदेवे ; और सन्धिको दृढ़ बनानेका यत्न करे ॥ १४ ॥

तथापि प्रतिष्ठमानस्य प्रकृतिकोपमस्य कारयेद्यथासंघवृत्ते व्याख्यातं योगवामने च ॥ १५ ॥ तीक्ष्णरसदप्रयोगं च ॥१६॥ यदुक्तमात्मरक्षितके रक्ष्यं तत्र तीक्ष्णान्रसदांश्च प्रयुञ्जीत ॥१७॥

यदि इसप्रकार उपदेश करनेपर भी वह न माने, और युद्ध करनेहीके लिये तैयार हो,तो उसके अमात्य आदि प्रकृतिजनोंको,उससे कुपित करादेवे। जैसा कि सङ्घवृत्त नामक एकादश अधिकरणमें, तथा योगवामन नामक तेरहवें अधिकरणके दूसरे अध्यायमें निरूपण किया गया है ॥ १५ ॥ और उस अभियोक्ता (आक्रमणकारी राजा) को मारनेके लिये तीक्ष्ण (छिपकर हथियारसे मारदेनेवाले) तथा रसद (भोजन या औषध आदिमें विष देकर मार देनेवाले) आदि पुरुषोंका यथायोग्य प्रयोग करे ॥ १६ ॥ तथा 'आत्मरक्षितक' नामक प्रकरणमें (देखो:—अधि. १ अध्या. २१) जिन रक्षाके योग्य स्थानोंको (अर्थात् जहां रहकर अपने आपकी रक्षा बड़ी सरलतासे की जासकती है, ऐसे स्थानोंका) निरूपण किया गया है ; वहींपर तीक्ष्ण तथा रसद पुरुषोंका यथायोग्य प्रयोग करे । अर्थात् उन्हें वहीं नियुक्त करके, उनकेही द्वारा राजाको चुपचाप छिपकर मरवा डाले ॥ १७ ॥

बन्धकीपोषकाः परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिः सेनामुख्यानुन्मादयेयुः ॥ १८ ॥ बहूनामेकस्यां द्वयोर्वा मुख्ययोः कामे जाते

तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः ॥ १९ ॥ कलहे पराजितपक्षं परत्रा-त्रापगमने यात्रासाहाय्यदाने वा भर्तुर्योजयेयुः ॥ २० ॥

कुलटा स्त्रियोंका पालन पोषण करनेवाले गुप्तचर पुरुष, अत्यन्त सुन्दर रूपवती और युवती (जवान) स्त्रियोंके द्वारा, सेनाके मुख्य पुरुषोंको उन्मादयुक्त (प्रमादी) बनावे ॥ १८ ॥ जब एक ही स्त्रीमें, बहुतसे सेनामुख्योंका, अथवा दो ही का काम उत्पन्न होजावे, अर्थात् जब कम से कम दो सेनामुख्य या इससे अधिक, एक ही स्त्रीको चाहने लगें, तब तीक्ष्ण पुरुष उनमें परस्पर कलह (झगड़ा) उत्पन्न करादेवें ॥ १९ ॥ उनका आपसमें झगड़ा होनेपर, जिसका पक्ष हार जावे, उसको दूसरे स्थानपर अर्थात् विजिगीषुके पक्षमें भेजदिया जावे; और उसके वहां चले जानेपर जब विजिगीषु कहीं आक्रमण करनेलगे, तब उसकी (विजिगीषु भर्त्ताकी) सहायता करनेमें उसे नियुक्त कियाजावे ॥ २० ॥

कामवशान् वा सिद्धव्यञ्जनाः सांवननिकीभिरोषधीभिरति-संधानाय मुख्येषु रसं दापयेयुः ॥ २१ ॥

अथवा सेनामुख्योंके बीचमें जो पुरुष कामके वशीभूत होजावें; उनको, सिद्धके वेषमें रहनेवाले गुप्तचर पुरुष, वशीकरणमें उपयुक्त होनेका बहाना करके विशेष ओषधों के द्वारा, उन्हें मारने के लिये विष खिला देवें ॥ २१ ॥

वैदेहकव्यञ्जनो वा राजमहिष्याः सुभगायाः प्रेष्यामासन्नां कामनिमित्तमर्थेनाभिवृष्य परित्यजेत् ॥ २२ ॥ तस्यैव परिचार-कव्यञ्जनोपदिष्टः सिद्धव्यञ्जनः सांवननिकीमोषधीं दद्याद्-वैदे-हकशरीरे ऽवधातव्येति ॥ २३ ॥

अब राजाको विष देनेका प्रकार बताते हैं:-व्यापारीके वेषमें रहने वाला गुप्तचर पुरुष, अति सुन्दर राजमहिषी (पटरानी) की अन्तरंग परिचारिकाको, प्रचुर धन आदि देकर अपने कामके लिये (=स्वयं उसका भोग करनेके लिये) फुसलाकर फिर उसको छोड़देवे, अर्थात् एक बार उसके पास जाकर फिर न जावे ॥ २२ ॥ तदनन्तर व्यापारीके वेषमें रहनेवाले गुप्त पुरुषके नौकरके भेसमें रहनेवाले किसी पुरुषके द्वारा प्रेरणा कियाहुआ सिद्धव्यञ्जन (=सिद्धके वेषमें रहने वाला गुप्तचर पुरुष), उस महारानीकी परिचारिकाको, वशीकरणकी ओषधि देवे, और उससे यह कहे, कि इस

ओषधिको अपने प्रिय व्यापारीके शरीरपर छिड़कदेना, वह तुम्हारे वशमें होजावेगा ॥ २३ ॥

सिद्धे सुभगाया अप्येनं योगमुपदिशेद्-राजशरीरे ऽवघातव्येति ॥ २४ ॥ ततो रसेनातिसंदध्यात् ॥ २५ ॥

जब यह कार्य सिद्ध होजावे (अर्थात् व्यापारीके शरीर वह ओषधि छिड़के जानेपर जब वह ऊपरसे दिखानेके लिये उसके वशमें रहने लगे), तब उस सुन्दर महारानीको भी इस वशीकरणके योगका उपदेश दिया जावे। और उससे कहा जावे, कि इस ओषधिको राजाके शरीरपर छिड़क देना, वह अवश्य तुम्हारे वशमें होजायगा ॥ २४ ॥ उसी योगमें विष मिलाकर राजाको मारडाले ॥ २५ ॥

कार्तान्तिकव्यञ्जनो वा महामात्रं राजलक्षणसंपन्नं क्रमाभिनीतं ब्रूयात् ॥ २६ ॥ भार्यामस्य भिक्षुकी-राजपत्नी राजप्रसविनी वा भविष्यसीति ॥ २७ ॥

अब महामात्रको भिन्न करनेका प्रकार बताते हैं:—अथवा कार्तान्तिक (शरीरके चिन्ह आदिको देखकर भविष्य की बात बतानेवाले) के वेषमें रहनेवाला गुप्तपुरुष महामात्र अर्थात् राजलक्षणोंसे (राजा होने की सूचना देनेवाले चिन्होंसे) युक्त व्यक्तिको, जोकि अपने ऊपर (=कार्तान्तिक पर)पूरा विश्वास रखता हो, इस प्रकार कहे, कि 'तू राजा अवश्य होजायगा' ॥ २६ ॥ और इस महामात्र की भार्याको, भिक्षुकी (भिखारिनके भेसमें रहनेवाला गुप्तचर, पुरुष या स्त्री), यह कहे, कि तू राजाकी स्त्री होगी, और राजा होने योग्य पुत्रको जनेगी'। इसप्रकार राजा होनेकी लालसासे, महामात्रका राजाके साथ विरोध होजायगा ॥ २७ ॥

भार्याव्यञ्जना वा महामात्रं ब्रूयात्—॥ २८ ॥ राजा किल मामवरोधयिष्यति ॥ २९ ॥ तवान्तिकाय पत्त्रलेख्यमाभरणं चेदं परिव्राजिकयाहृतमिति ॥ ३०

अथवा महामात्र की भार्या बनकर रहनेवाली गुप्तस्त्री (बन्धकी आदि जोकि विजिगीषुकी ओरसे गुप्तचरका कार्य कररही हो), महामात्रको इसप्रकार कहे:— ॥ २८ ॥ राजा मुझको अवश्य रोकेगा, अर्थात् अपने अन्तःपुरमें लेजायगा ॥ २९ ॥ तुम्हारे लिये, राजाके दिये हुए इस लेखपत्र और आभरणको, दूती बनी हुई परिव्राजिका (भिक्षुकी या सन्यासिनीके वेषमें

रहनेवाली स्त्री) लाई है । इस निमित्तसे भी महामात्रका राजाके साथ द्वेष होजायगा ॥ ३० ॥

सूदारालिकव्यञ्जनो वा रसप्रयोगार्थं राजवचनमर्थं चास्य लोभनीयमभिनयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा सूद (पाचक=रसोईया) या आरालिक (मांस आदि बनानेवाले) के वेषमें रहनेवाला गुप्तचर (जोकि महामात्रके यहां काम करता हो, वह), रसका अर्थात् विष आदिका प्रयोग करनेके लिये राजाके कथनको तथा लोभमें डालनेवाले राजाके द्वारा दिये जानेवाले धनको महामात्रके सामने प्रकट करे । तात्पर्य यह है, कि सूद या आरालिक, महामात्रके सामने यह बात कहे, कि हमको राजाने विष देनेके लिये कहा है, और उसके लोभके लिये प्रचुर धन देनेका वादा किया है । (इस सूत्रमें 'राजवचनमर्थं' के स्थानपर किसी २ पुस्तक में 'राजवचनादर्थं' ऐसा पाठ है; परन्तु प्रकरणानुसार इस पाठका कोई संगत अर्थ प्रतीत नहीं होता) ॥ ३१ ॥

तदस्य वैदेहकव्यञ्जनः प्रतिसंदध्यात् ॥ ३२ ॥ कार्यसिद्धिं च ब्रूयात् ॥ ३३ ॥ एवमेकेन द्वाभ्यां त्रिभिरित्युपायैरेकैकमस्य महामात्रं विक्रमायापगमनाय वा योजयेदिति ॥ ३४ ॥

जब सूद या अरालिक, महामात्रको इसप्रकार कहें, तो उनकी बात को सत्य सिद्ध करनेके लिये, व्यापारी वेषमें रहनेवाला (विष आदि बेचने वाला) गुप्तपुरुष, महामात्रके पास आकर इस बातकी साक्षी देवे ; और कहे कि 'राजाके कहनेसे मैंने तुम्हारे सूद और अरालिकको विष दिया था, यह मैं नहीं जानता कि वे किस लिये लेगये थे ॥ ३२ ॥ तथा कार्य सिद्धिका भी कथन करदे ; अर्थात् इस बातको भी कहदे, कि उस विषसे बहुत जल्दीही मृत्यु होसकती है ॥ ३३ ॥ इसप्रकार विजिगीषुके सत्रीपुरुष, एक दो या तीनों उपायोंसे, इस राजाके एक २ महामात्रको, राजाके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये उत्साहित करदेवें । इसतरह यहांतक महामात्र और राजाओंके परस्पर भेद डालनेका प्रकार बताया गया ॥ ३४ ॥

दुर्गेषु चास्य शून्यपालासन्नाः सत्त्रिणः पौरजानपदेषु मैत्रीनिमित्तमावेदयेयुः ॥ ३५ ॥ "शून्यपालेनोक्ता योधाश्चाधिकरणस्थाश्च ॥ ३६ ॥ कृच्छ्रगतो राजा जीवन्नागमिष्यति न वा ॥ ३७ ॥ प्रसह्य वित्तमार्जयध्वममित्रांश्च हत" इति ॥ ३८ ॥

अब शून्यपाल (राजधानीसे राजाके बाहर चले जानेपर, पीछेसे राजरहित=शून्य राजधानी की रक्षाके लिये नियुक्त किए हुए अधिकारी पुरुष) से, नगरनिवासियोंके भेद डालनेका प्रकार बताते हैं:—इस शत्रु राजाके स्थानीय दुर्गोंमें, शून्यपालके समीप रहनेवाले सत्त्रीपुरुष, नगरनिवासी तथा जनपद निवासी पुरुषोंमें मैत्रीके लिये (अर्थात् शून्यपालके प्रति अनुराग उत्पन्न करनेके लिये) इसप्रकार निवेदन करें:— ॥ ३५ ॥ शून्यपालने सब योद्धाओं और कचहरीके सब बड़े अधिकारियोंको (अर्थात् न्यायाधीश आदिको इसप्रकार कहा है, कि:—॥ ३६ ॥ राजा इस समय बड़ी कठिनतामें फंसा हुआ है ; कहा नहीं जासकता, कि वह जीता भी आसकेगा या नहीं ॥३७॥ इसलिये आप लोग, बलपूर्वक प्रजासे अच्छी तरह धन वसूल करें, और जो आपके साथ शत्रुता रखते हों, उनको आप निस्सन्देह मारडालें ॥ ३८ ॥

बहुलीभूते तीक्ष्णाः पौरान्निशास्वाहारयेयुर्मुख्यांश्चाभिहन्युः ॥ ३९ ॥ एवं क्रियन्ते ये शून्यपालस्य न शुश्रूषन्ते इति ॥४०॥ शून्यपालस्थानेषु च सशोणितानि शस्त्रवित्तबन्धनान्युत्सृजेयुः ॥ ४१ ॥ ततः सत्त्रिणः शून्यपालो घातयति विलोपयति चेत्यावेदयेयुः ॥ ४२ ॥ एवं जानपदान्समाहर्तुर्भेदयेयुः ॥ ४३ ॥

जब शून्यपालकी यह आज्ञा सर्वत्र फैल जावे, तब तीक्ष्णपुरुष, नगरनिवासियोंको रातमें लूटनेके लिये अपने आदमियोंको प्रेरणा करदें । और नगरके किन्हीं मुख्य व्यक्तियोंको मरवा डालें ॥ ३९ ॥ तथा सर्वत्र इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि जो लोग शून्यपालकी शुश्रूषा नहीं करते, अर्थात् उसके अनुगामी नहीं बनते; उनकी यही हालत कीजाती है ॥ ४० ॥ और खूनसे भरे हुए हथियार धन तथा रस्सी आदिको, शून्यपालके स्थानमें छोड़ देवें ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सत्त्री पुरुष, इस बातको प्रसिद्ध करदें, कि यह शून्यपालही सब लोगोंको मरवाता तथा लुटवाता है । इसतरह सत्त्री, शून्यपाल तथा प्रजाजनोंमें परस्पर झगड़ा डलवा देवें ॥ ४२ ॥ और इसीप्रकार समाहर्त्ता (कलेक्टर=प्रजाओंसे कर वसूल करने वाला अधिकारी) सेभी, जनपदनिवासी पुरुषोंको भिन्न करा देवें । अर्थात् इनकाभी आपसमें विरोध डलवा देवें ॥ ४३ ॥

समाहर्तृपुरुषांस्तु ग्राममध्येषु रात्रौ तीक्ष्णा हत्वा ब्रूयुः ॥४४॥ एवं क्रियन्ते ये जनपदमधर्मेण बाधन्त इति ॥ ४५ ॥ समुत्पन्ने

दोषे शून्यपालं समाहर्तारं वा प्रकृतिकोपेन घातयेयुः ॥ ४६ ॥
तत्कुलीनमवरुद्धं वा प्रतिपादयेयुः ॥ ४७ ॥

प्रजाजनोंसे समाहर्त्ताको भिन्न करनेका यह प्रकार है:—समाहर्त्ता पुरुषोंको, गांवके बीचमें रातके समय मारकर तीक्ष्ण पुरुष इसप्रकार कहें ॥ ४४ ॥ जो लोग जनपदको अर्थात् प्रजावर्गको अधर्मसे कष्ट पहुंचाते हैं, उनकी यही अवस्था कीजाती है । (इस बातको सुनकर अन्य समाहर्त्ताभी प्रजावर्गसे भिन्न होजाते है ॥ ४५ ॥ जब शून्यपाल और समाहर्त्ता पुरुषोंके ये दोष सर्वत्र विस्तृत होजावें, तब प्रकृतिके कोपके कारण, सत्री पुरुष उनको दुर्दशापूर्वक जानसे मारडालें ॥ ४६ ॥ तथा शत्रुके किसी सम्बन्धी बन्धुबान्धव आदिको या नज़रबन्द राजपुत्रकोही राजसिंहासन पर बैठा देवें ॥ ४७ ॥

अन्तःपुरपुरद्वारद्रव्यधान्यपरिग्रहान् ।
दहेयुस्तांश्च हन्युर्वा ब्रूयुरस्यार्तवादिनः ॥ ४८ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे दूतकर्माणि वाक्ययुद्धं मन्त्रयुद्धं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥ आदितः सप्तत्रिंशच्छतः ॥ १३७ ॥

तदनन्तर तीक्ष्णपुरुष, इस शत्रु राजाके अन्तःपुर पुरद्वार (गोपुर=नगरका प्रधान द्वार), द्रव्यपरिग्रह (जिन स्थानोंमें लकड़ी वस्त्र आदि भरे हुए हों), और धान्यपरिग्रह (जिन स्थानोंमें अन्न भरा हुआ हो, ऐसे) स्थानोंको जला देवें; और उन स्थानोंके रक्षकोंको मारडालें । तथा स्वयं इस घटनाके लिये बहुत दुःख प्रकट करते हुए, इस कामको नगरनिवासी और जनपद-निवासी पुरुषोंकाही किया हुआ बतलावें ॥ ४८ ॥

आबलीयस द्वादश अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त ।

तीसरा अध्याय

१६४-१६५ प्रकरण

सेनापतियोंका वध और मित्र आदि राज-मण्डलका प्रोत्साहन

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें सेना-मुख्य अर्थात् सेनाके अध्यक्ष (=अधिकारी) पुरुषोंके वध करनेका

प्रकार बताया जायगा । अथवा सूत्रके 'सेना' शब्दसे सेनाके अध्यक्ष या सेनापतियोंका और 'मुख्य' शब्दसे महामात्रोंका ग्रहण करना चाहिये; पहिले प्रकरणमें इन दोनोंकेही वधका प्रकार बताया जायगा। और दूसरे प्रकरणमें मित्र आदि दश प्रकारके राजमण्डलको प्रोत्साहित करनेके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगा।

राज्ञो राजवल्लभानां चासन्नाः सत्त्रिणः पत्त्यश्वरथद्विपमुख्यानां राजा क्रुद्ध इति सुहृद्विश्वासेन मित्रस्थानीयेषु कथयेयुः ॥ १ ॥

राजा तथा राजाके प्रिय पुरुषोंके समीप मित्र बनकर रहनेवाले सत्री पुरुष, पैदल, घुड़सवार, रथसवार तथा हाथीसवार सेनाओंके अध्यक्षों और महामात्रोंके मित्ररूप (अथवा मित्रोंके) स्थानोंमें जाकर मित्रसमान विश्वाससे यह कहे, कि सेनाध्यक्ष आदिके प्रति राजा कुपित होगया है ॥ १ ॥

बहुलीभूते तीक्ष्णाः कृतरात्रिचारप्रतीकारा गृहेषु स्वामिवचनेनागम्यतामिति ब्रूयुः ॥ २ ॥ तान्निर्गच्छत एवाभिहन्युः ॥ ३ ॥ स्वामिसंदेश इति चासन्नान् ब्रूयुः ॥ ४ ॥

जब राजाके कुपित होनेका प्रवाद सब जगह फैल जावे, तब तीक्ष्ण पुरुष रातमें भ्रमण करनेके दोषका प्रतीकार करके (अर्थात् किसी प्रकारसे इस बातकी अनुमति पाकर, कि वे रातमें यथेच्छ घूम सकते हैं), घरोंमें जाकर 'आप लोगोंको स्वामी की आज्ञासेही स्वामीके पास आना चाहिये' इसप्रकार सेनाध्यक्ष आदिको कहें ॥ २ ॥ और उनको निकलतेही हुए मार डालें ॥ ३ ॥ तदनन्तर मित्रके वेषमें रहनेवाले सत्रीपुरुषोंको, तीक्ष्ण पुरुष कहें, कि हमने यह सब काम स्वामीकी ही आज्ञासे किया है ॥ ४ ॥

ये च प्रवासितास्तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ ५ ॥ एतत्तद्यदस्माभिः कथितं जीवितुकामेनापक्रान्तव्यमिति ॥ ६ ॥

तथा राजाको छोड़कर पहिलेही गये हुए सेनापति आदिको सत्रीपुरुष कहें, कि:—॥ ५ ॥ देखो, यह वही बात आगई, जो कि हम पहिले कहते थे, कि जो अपनी जान बचाना चाहे, वह यहांसे भाग जावे; अब वही बात ठीक होगई है। (ऐसा कहनेसे, जो सेनापति आदि अभीतक राजाकी सेवा कररहे हैं, वे भी भाग जानेके लिये तैयार किये जासकते हैं। और इस तरह शत्रुको दुर्बल बनाया जासकता है ॥ ६ ॥

येभ्यश्च राजा याचितो न ददाति तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥७॥ उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ ८ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ मा याचते ॥ ९ ॥ मया प्रत्याख्याताः शत्रुसंहिताः ॥ १० ॥ तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ ११ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ १२ ॥

कोई वस्तु मांगनेपर राजा जिनके लिये उस वस्तुको नहीं देता है ; सत्री उनको कहे:— ॥ ७ ॥ राजाने शून्यपालको कह दिया है, कि:—॥ ८ ॥ अमुक २ पुरुष मुझसे अयाच्य वस्तुको (जो वस्तु मुझसे नहीं मांगनी चाहिये ऐसी वस्तुको) मांगता है ॥ ९ ॥ मैंने उनको मना करदिया है, इसलिये वे शत्रुसे जाकर मिलगये हैं ॥ १० ॥ उनको उच्छेद करनेमें तुम अच्छी तरह प्रयत्न करो ॥ ११ ॥ ऐसा कहनेके अनन्तर, पहिलेकी तरहही सब काम किया जाय । अर्थात् तीक्ष्ण पुरुष, रातमें कुछ आदमियोंको मारडालें ; तथा जिनको न मारें, उनको वह वध दिखलाकर राजाके पाससे भगादेवें । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये ॥ १२ ॥

येभ्यश्च राजा याचितो ददाति तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ १३ ॥ उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ १४ ॥ अयाच्यमर्थमसौ चासौ च मा याचते ॥ १५ ॥ तेभ्यो मया सो ऽर्थो विश्वासार्थं दत्तः, शत्रुसंहिताः ॥ १६ ॥ तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ १७ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ १८ ॥

कोई वस्तु मांगनेपर राजा जिनको देदेता है, उनसे सत्री इसप्रकार कहे:—॥ १३ ॥ राजाने शून्यपालसे कह दिया है, कि—॥ १४ ॥ अमुक २ पुरुष मुझसे अयाच्य वस्तुकी याचना करते थे ॥ १५ ॥ मैंने उनको वह वस्तु विश्वासके लिये देदी है (अर्थात् जिससे कि उनका मुझपर विश्वास बनारहे, इसलिये वह वस्तु मैंने उनको देदी है), परन्तु वे आदमी, शत्रुसे मिले हुए हैं ॥ १६ ॥ इसीलिये उनको उच्छेद करनेमें तुम्हें अच्छी तरह प्रयत्न करना चाहिये ॥ १७ ॥ इतना कहनेके अनन्तर पूर्ववत् आचरण किया जावे । (देखो पिछला, सूत्र १२) ॥ १८ ॥

ये चैनं याच्यमर्थं न याचन्ते तान्सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ १९ ॥ उक्तः शून्यपालो राज्ञा ॥ २० ॥ याच्यमर्थमसौ चासौ च मा न याचते ॥ २१ ॥ किमन्यत् स्वदोषशङ्कितत्वात् ॥ २२ ॥

तेषामुद्धरणे प्रयतस्वेति ॥ २३ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ २४ ॥ एतेन सर्वः कृत्यपक्षो व्याख्यातः ॥ २५ ॥

जो पुरुष (महामात्र आदि) राजासे मांगने योग्य पदार्थकोभी नहीं मांगते हैं; उन पुरुषोंको सत्री इसप्रकार कहें:—॥ १९ ॥ राजाने शून्यपाल-को कह दिया है, कि:—॥ २० ॥ अमुक २ पुरुष, मुझसे मांगने योग्य पदार्थ-कोभी नहीं मांगता है; ॥ २१ ॥ इसका कारण सिवाय इसके और क्या हो सकता है, कि वे पुरुष अपने दोषोंके कारण मुझसे शङ्कित रहते हैं, इसीलिये मेरे पास नहीं आसकते ॥ २२ ॥ तुम उनका उच्छेद करनेमें पूरा प्रयत्न करो ॥ २३ ॥ यह कहनेके अनन्तर पूर्ववत्‌ही सब व्यवहार करना चाहिये ॥ २४ ॥ इससे सम्पूर्ण कृत्यपक्ष (क्रुद्ध, लुब्ध भीत आदि । देखो—अधि० १ अध्या० १४) के भेदक प्रकारकाभी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ २५ ॥

प्रत्यासन्नो वा राजानं सत्त्री ग्राहयेत् ॥ २६ ॥ असौ चासौ च ते महामात्रः शत्रुपुरुषैः संभाषत इति ॥ २७ ॥ प्रतिपन्ने दूष्यानस्य शासनहरान्दर्शयेत् ॥ २८ ॥ एतत्तदिति ॥ २९ ॥

अथवा राजाके समीप रहने वाला सत्री (राजाके विश्वस्त पुरुषोंमें कपटपूर्वक प्रविष्ट हुआ २ सत्री), राजाको इसप्रकार समझावे:—॥ २६ ॥ अमुक २ महामात्र तुम्हारे शत्रु पुरुषोंके साथ बातचीत करता है ॥ २७ ॥ जब राजा, सत्रीकी इतनी बातको मान लेवे; तो सत्री, इस राजाके दूष्यपुरुषों-को महामात्रका संदेश ले जाते हुए दिखलावे ॥ २८ ॥ और कहे, कि देखो यही वह बात है । अर्थात् मैं जो कुछ आपसे पहिले कहता था, वह इस तरह ठीक है; यह दूष्य पुरुष, अमुक महामात्रके संदेशको शत्रुके पास लेजाता है । सत्री, इसप्रकार महामात्रोंसे राजाका भेद करवादेवे ॥ २९ ॥

सेनामुख्यप्रकृतिपुरुषान्वा भूम्या हिरण्येन वा लोभयित्वा स्वेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा ॥ ३० ॥ यो ऽस्य पुत्रः समीपे दुर्गे वा प्रतिवसति तं सत्त्रिणोपजापयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा सत्री; सेनाके अध्यक्षों, अमात्य आदि प्रकृतियों और राजाके अन्य नौकर चाकरोंको, भूमि तथा धन आदिसे लोभ देकर (अर्थात् मैं तुमको भूमि या हिरण्य खूब दूंगा, इसप्रकार उनको लोभमें फंसाकर), उनके अपनेही आदमियों पर उनके द्वारा चढ़ाई करवादेवे; अथवा उनको राजाके पाससे कहीं दूसरी जगह भगा देवे ॥ ३० ॥ और इस राजाका जो पुत्र,

समीप राजधानीमेंही रहता है, या अन्तपाल आदिके पास दुर्गमें रहता है; उस राजपुत्रको सत्रीके द्वारा फुसलावे ॥ ३१ ॥

आत्मसंपन्नतरस्त्वं पुत्रः तथाप्यन्तर्हितः ॥ ३२ ॥ तत्कि-मुपेक्षसे ॥ ३३ ॥ विक्रम्य गृहाण ॥ ३४ ॥ पुरा त्वा युवराजो विनाशयतीति ॥ ३५ ॥

उसको फुसलाने का (=उपजाप करनेका) यह ढंग समझना चाहिये; उससे कहे, किः—राजाने जिस पुत्रको युवराज बनाया हुआ ह, तुम उसकी अपेक्षा अपने व्यक्तित्वमें बहुत बढ़े चढ़ेहो; फिरभी राजाने तुमको नियन्त्रणमें रक्खा है, अर्थात् नज़रबन्द किया हुआ है ॥ ३२ ॥ अब तुम इस बालकी उपेक्षा (लापर्वाही) क्यों करते हो ॥ ३३ ॥ राजा पर चढ़ाई करो, और अपने अधिकारको लेलो; अर्थात् राज्यको अपने अधीन करलो ॥ ३४ ॥ नहीं तो सम्भव है, कि जो इस समय युवराज बना हुआ है, वह तुमकोही पहिले नष्ट कर डालेगा ॥ ३५ ॥

तत्कुलीनमवरुद्धं वा हिरण्येन प्रतिलोभ्य ब्रूयात् ॥ ३६ ॥ अन्तर्बलं प्रत्यन्तस्कन्धमन्यं वास्य प्रमृद्नीहीति ॥ ३७ ॥ आट-विकानर्थमानाभ्यामुपगृह्य राज्यमस्य घातयेत् ॥ ३८ ॥

अथवा शत्रुकेही वंशमें उत्पन्न हुए किसी अन्य विशेष व्यक्तिको (बन्धु बान्धव आदिको) या अवरुद्ध अर्थात् नज़रबन्द राजपुत्र आदिको, सत्री धन आदिका लोभ देकर इसप्रकार कहेः—॥ ३६ ॥ आप राजाके मौलबलको, या देशकी सीमा पर रहने वाली सेनाको, अथवा अन्य किसी सेनाको नष्ट करडालें। (इस सूत्रमें 'अन्यं' पदके स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'अन्तं' भी पाठ है। परन्तु प्रकरणानुसार इस पाठका कोई संगत अर्थ प्रतीत नहीं होता) ॥ ३७ ॥ तथा आटविकोंको धन और सत्कारके द्वारा अपने वशमें करके, शत्रुके राज्यको इन्हींके द्वारा नष्ट करवा डाले । यहांतक सेनामुख्य व्यक्तियोंके वधके सम्बन्धमें निरूपण करदिया गया ॥ ३८ ॥

पार्ष्णिग्राहं वास्य ब्रूयात् ॥ ३९ ॥ एष खलु राजा मामु-च्छिद्य त्वामुच्छेत्स्यति ॥ ४० ॥ पार्ष्णिमस्य गृहाण ॥ ४१ ॥ त्वयि निवृत्तस्याहं पार्ष्णिं ग्रहीष्यामीति ॥ ४२ ॥

अब राजमण्डलके प्रोत्साहनके सम्बन्धमें निरूपण किया जायगाः— सबसे प्रथम पार्ष्णिग्राहके प्रोत्साहनके सम्बन्धमें कहते हैंः—शत्रुके पार्ष्णिग्राह

(देखो अधि. ७, अध्या. १३) को विजिगीषु इसप्रकार कहे:—॥ ३९ ॥ देखो, यह राजा, मेरा उच्छेद करके, तुम्हारा भी उच्छेद अवश्य करदेगा ॥ ४० ॥ इसलिये तुम इसकी पार्ष्णिका ग्रहण करो, अर्थात् पीछेसे इसके ऊपर हमला करो ॥ ४१ ॥ जब यह इस बातको देखकर तुम्हारी ओर आक्रमण करेगा, तो उस समय मैं इसकी पार्ष्णिका ग्रहण करूंगा ; अर्थात् मैं इसके पीछेकी ओरसे हमला करूंगा ॥ ४२ ॥

मित्राणि वास्य ब्रूयात् ॥ ४३ ॥ अहं वः सेतुः ॥ ४४ ॥ मयि विभिन्ने सर्वानेष वो राजा प्लावयिष्यतीति ॥ ४५ ॥ संभूय वास्य यात्रां विहनाम इति ॥ ४६ ॥

अब मित्रोंके प्रोत्साहनके सम्बन्धमें कहते हैं:—अथवा इसके मित्रोंको विजिगीषु इसप्रकार कहे:—॥ ४३ ॥ मैंही तुम्हारा सेतु अर्थात् पुल हूं। तात्पर्य यह है, कि जैसे प्राणियोंको जलसे बचानेके लिये पुल एक साधन होता है, इसीप्रकार शत्रुके आक्रमणसे बचानेमें, आप लोगोंके लिये मैंही एक साधन हूं ॥ ४४ ॥ मेरे नष्ट होजानेपर, यह शत्रु राजा, आप सबको भी नष्ट करडालेगा ॥ ४५ ॥ इसलिये आओ, हम सब मिलकर इसके आक्रमणको विफल करें ॥ ४६ ॥

तत्संहतानामसंहतानां च प्रेषयेत् ॥ ४७ ॥ एष खलु राजा मामुत्पाट्य भवत्सु कर्म करिष्यति ॥ ४८ ॥ बुध्यध्वम्, अहं वः श्रेयानभ्यवपत्तुमिति ॥ ४९ ॥

तदनन्तर विजिगीषु, शत्रुके साथ मिलकर रहनेवाले, तथा उससे पृथक् रहनेवाले सबही राजाओंके पास, निम्नलिखित समाचार (संदेश) भेजे ॥ ४७ ॥ निश्चयही यह अमुक राजा मेरा उच्छेद करके, आपका भी उच्छेद करेगा। अर्थात् आपके ऊपर आक्रमण करके, आप लोगोंको भी नष्ट कर डालेगा ॥ ४८ ॥ इसलिये आप लोग विचार करें, और यह समझें, कि आपत्तिके समयमें, आप लोगोंके द्वारा मैं अवश्यही रक्षा किये जाने योग्य हूं। अर्थात् इस आपत्कालमें आप लोगोंको मेरी अवश्य रक्षा करनी चाहिये ॥ ४९ ॥

मध्यमस्य प्रहिणुयादुदासीनस्य वा पुनः ।
यथासन्नस्य मोक्षार्थं सर्वस्वेन तदर्पणम् ॥ ५० ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे सेनामुख्यवधः मण्डलप्रोत्साहनं च तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितो ऽष्टात्रिंशच्छतः ॥ १३८ ॥

दुर्बल राजा, बलवान् अभियोक्ताके आक्रमणसे बचनेके लिये; मध्यम उदासीन और अपने समीप रहनेवाले सबही सामन्तोंके पास इसप्रकारका सन्देश भेजे, कि मैं सर्वथा आपही लोगोंके अर्पण हूं। मैं अपना सर्वस्व देकर भी आप लोगोंके आश्रयसे पृथक् नहीं होना चाहता। जब मैं सर्वस्वको शर्त्त लगाकर आपकेही अर्पण होचुका हूं, तो आप लोगोंको सर्वात्मना मेरी रक्षा करनी चाहिये।।५०।

आबलीयस द्वादश अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त।

चौथा अध्याय

१६६-१६७ प्रकरण

शस्त्र, अग्नि तथा रसोंका गूढप्रयोग, और वीवध, आसार तथा प्रसारका नाश।

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं। जब प्रोत्साहित करनेपर भी राजमण्डल, सहायताके लिये तैयार न हो, उस समय विजिगीषु को, हथियार, आग तथा विष आदिके गूढप्रयोग करके शत्रुका नाश करना चाहिये; पहिले प्रकरणमें हथियार आदिके गूढप्रयोगोंकाही निरूपण किया जायगा। दूसरे प्रकरणमें, शत्रुके वीवध आसार और प्रसारका किसप्रकार नाश करना चाहिये, इस बातका निरूपण होगा।

ये चास्य दुर्गेषु वैदेहकव्यञ्जनाः, ग्रामेषु गृहपतिकव्यञ्जनाः, जनपदसंधिषु गोरक्षकतापसव्यञ्जनास्ते सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानां पण्यागारपूर्वं प्रेषयेयुः ॥ १ ॥ अयं देशो हार्य इति ॥ २ ॥

शत्रुके स्थानीय दुर्गोंमें (राजधानी आदिमें), व्यापारीके वेषमें जो विजिगीषुके गुप्तचर हों; इसीप्रकार जो गांवोंमें गृहपति (गृहस्थ) के वेषमें हों; तथा सरहद्दी इलाकोंमें जो ग्वाले और तपस्वियोंके वेषमें गुप्तचर हों; वे गुप्तचर, शत्रुके साथ स्वभावसेही विरोध करनेवाले सामन्त आटविक शत्रुके बन्धु बान्धव तथा नजरबन्द राजपुत्र आदिके समीप कुछ भेंट करनेके सामान के साथ २ निम्नलिखित सन्देश भिजवावें ॥ १ ॥ वह सन्देश इस प्रकार है:—'शत्रुके अमुक प्रदेशको, दुर्बल होनेके कारण, आप लोग हरण करसकते हैं ॥ २ ॥

आगतांश्चैषां दुर्गे गूढपुरुषानर्थमानाभ्यामभिसत्कृत्य प्रकृतिच्छिद्राणि प्रदर्शयेयुः ॥ ३ ॥ तेषु तैः सह प्रहरेयुः ॥ ४ ॥

इस सन्देशको पाकर, जब शत्रुके दुर्गमें, सामन्त आदिके गूढपुरुष आजावें; तो उनको प्रथम धन, और सत्कार आदिसे अच्छी तरह सत्कृत करके, फिर शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके दोषोंको, उनके सामने अच्छी तरह दिखला देवें ॥ ३ ॥ जब अमात्य आदि प्रकृतियोंके दोष उन्हें मालूम होजांय, तब उन सामन्त आदिके साथही, अर्थात् उनकी सहायता लेकर, ये लोग शत्रुपर आक्रमण करदेवें ॥ ४ ॥

स्कन्धावारे वास्य शौण्डिकव्यञ्जनः पुत्रमभियुक्तं स्थापयित्वावस्कन्दकाले रसेन प्रवासयित्वा नैषेचनिकमिति मदनरसयुक्तान्मद्यकुम्भांच्छतशः प्रयच्छेत् ॥ ५ ॥

अथवा शत्रुकी छावनीमें, शराब बेचने वालेके वेषमें एक सत्री, किसी बध्य पुरुषको अपना पुत्र बनाकर, रात्रिके अवसान कालमें विष आदिके द्वारा उसे मारकर; मृत व्यक्ति की तृप्तिके लिये यह 'नैषेचनिक' द्रव्य है, ऐसा बहाना करके मादकता उत्पन्न करने वाले विषसे युक्त मद्यके सैकड़ों घड़ों को वहां दे डाले। तात्पर्य यह है कि अपने मृत पुत्रके निमित्त, सैकड़ों घड़े विष युक्त शराब, दानके तौर पर फ़ौजियों को पिला देवे । जिससे वे मरजावेंगे, और शत्रुकी सेनाकी शक्ति घट जावेगी ॥ ५ ॥

शुद्धं वा मद्यं माद्यं वा मद्यं दद्यादेकमहः ॥ ६ ॥ उत्तरं रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ७ ॥ शुद्धं वा मद्यं दण्डमुख्येभ्यः प्रदाय मदकाले रससिद्धं प्रयच्छेत् ॥ ८ ॥

अथवा उन लोगोंके विश्वासके लिये पहिले विष रहित मद्य देवें। अथवा पहिले दिन मद्य का चौथाई हिस्सा विष मिलाकर देवे ॥ ६ ॥ तदनन्तर पर्याप्त विषसे युक्त मद्य देवे ॥ ७ ॥ अथवा सेनाके मुखिया अर्थात् अध्यक्षोंको पहिले विषरहित मद्य देवे, (क्योंकि प्रायः ये लोग पहिले किसी और आदमी को पिलाकर फिर अपने आप पीते हैं, इस लिये पहिले इनको विषरहित ही मद्य देवे), अनन्तर जब ये शरावसे बेहोश होने लगें, तब विष मिली हुई शराब देदेवे ॥ ८ ॥

दण्डमुख्यव्यञ्जनो वा पुत्रमभित्यक्तमिति समानम् ॥ ९ ॥ पक्वमांसिकौदनिकशौण्डिकापूपिकव्यञ्जना वा पण्यविशेषमवघो-

षयित्वा परस्परसंघर्षेण कालिकं समर्घतरमिति वा परानाहूय रसेन स्वपण्यान्यपचारयेयुः ॥ १० ॥

अथवा सेनाके मुखियाके वेषमें सत्री, किसी वध्य को अपना पुत्र बनाकर शेष सब काम पहिले ही की तरह करे ॥ ९ ॥ अथवा पका मांस, पका अन्न, शराब तथा चटपटे पुए या पकौड़े आदि बेचने वालेके वेषमें सत्री, एक दूसरे की स्पर्धासे अपनी २ दुकानों की खूब तारीफ करके बहुत थोड़ा तथा फिरभी कालान्तरमें मूल्य लेने का वादा करके, शत्रुके आदमियों को बुलाकर विषसे युक्त अपने सब सौदे को उन्हें दे डाले ॥ १० ॥

सुराक्षीरदधिसर्पिस्तैलानि वा तद्व्यवहर्तृहस्तेषु गृहीत्वा स्त्रियो बालाश्च रसयुक्तेषु स्वभाजनेषु परिकिरेयुः ॥ ११ ॥ अनेनार्घेण विशिष्टं वा भूयो दीयतामिति तत्रैवावकिरेयुः ॥ १२ ॥

शराब दूध दही घी तथा तेल को, इनका व्यवहार करने वाले पुरुषों के हाथोंसे लेकर स्त्री तथा बालक, अपने विषयुक्त वर्तनोंमें लौटलेवें ॥ ११ ॥ और फिर उनके साथ यह झगड़ा करें, कि अमुक वस्तु को इतने ही मूल्यमें हमको दो, नहीं तो हम तुम्हारा कुछभी सामान न खरीदेंगे । जब वे व्यवहर्ता पुरुष न मानें तो उन शराब दूध आदि वस्तुओं को फिर उन्हींके बर्तनोंमें लौट देवें, ऐसा करनेसे वे सब चीजें विषयुक्त हो जावेंगी ॥ १२ ॥

एतान्येव वैदेहकव्यञ्जनाः पण्यविक्रयेणाहर्तारो वा हस्त्यश्वानां विधायवसेषु रसमासन्ना दद्युः ॥ १३ ॥

फिर व्यापारीके वेषमें रहने वाले सत्री, अथवा शराब आदि सौदेके बेचने के बहानेसे लाने वाले अन्य व्यक्ति इन्हीं सब विषयुक्त वस्तुओं को लाकर हाथी और घोड़ोंके खाने योग्य अन्न तथा घास आदिमें उनको विषरूप से मिलाकर देदेवें । ये व्यापारी प्रायः छावनीके साथ ही रहने वाले होते हैं ॥ १३ ॥

कर्मकरव्यञ्जना वा रसाक्तं यवसमुदकं वा विक्रीणीरन् ॥ १४ ॥ चिरसंसृष्टा वा गोवाणिजका गवामजावीनां वा यूथान्यवस्कन्दकालेषु परेषां मोहस्थानेषु प्रमुञ्चेयुः ॥ १५ ॥

अथवा मजदूरके भेसमें रहने वाले गुप्तचर, विषसे युक्त घास अथवा जलको बेचें ॥ १४ ॥ अथवा चिरकालसे मित्र बने हुए, गौओं का व्यापार करने वाले सत्री, अपनी गाय बकरी तथा भेड़ोंके झुण्डोंको, भरी रात्रिके समय

में शत्रुओंके मोह अवस्था को प्राप्त हो जाने पर उनकी व्याकुलता बढ़ानेके निमित्त छोड़देवें ॥ १५ ॥

अश्वखरोष्ट्रमहिषादीनां दुष्टांश्च तद्व्यञ्जना वा चुचुन्दरीशोणिताक्ताक्षान् ॥१६॥ लुब्धकव्यञ्जना वा व्यालमृगान्पञ्जरेभ्यः प्रमुञ्चेयुः ॥१७॥ सर्पग्राहा वा सर्पानुग्रविषान् ॥ १८ ॥ हस्तिजीविनो वा हास्तिनः ॥१९॥ अग्निजीविनो वाग्निमवसृजेयुः ॥२०॥

इसी प्रकार घोड़ा गधा ऊंट तथा भैंस आदि जानवरोंमेंसे जो दुष्ट अर्थात् कटखने मरखने या उन्मत्त हों, उनको, उनके व्यापारी वेषमें रहने वाले सत्री उनकी आंखोंमें छछूंदर का खून आंज कर छोड़देवें ॥ १६ ॥ शिकारीके वेषमें रहने वाले सत्री, अपने हिंसक जंगली जानवरों को पिंजड़ोंसे छोड़देवें ॥ १७ ॥ इसी तरह सांपों को पकड़ने वाले, अपने तीव्र विष वाले सांपों को; ॥ १८ ॥ और हाथियोंसे जीविका करने वाले (अर्थात् उनका व्यापार आदि करने वाले) सत्री अपने हाथियों को छोड़देवें। यह सब काम शत्रुकी सेना को व्याकुल करनेके लिये किया जाता है। ऐसी आकुलतामें शत्रु पर आक्रमण करके विजिगीषु उसे हरा देता है ॥ १९ ॥ और इसी प्रकार जो गुप्तचर, अग्निसे अपनी जीविका करते हों, वे (रसोईये, लुहार आदि) अपनी अग्नि को छोड़देवें। अर्थात् शत्रुके आदमियोंके मदोन्मत्त होने पर छावनीमें आग लगा देवें ॥ २० ॥

गूढपुरुषा वा विमुखान्पत्त्यश्वरथद्विपमुख्यानभिहन्युः ॥२१॥ आदीपयेयुर्वा मुख्यावासान् ॥ २२ ॥ दूष्यामित्राटविकव्यञ्जनाः प्रणिहिताः पृष्ठाभिघातमवस्कन्दप्रतिग्रहं वा कुर्युः ॥ २३ ॥ वनगूढा वा प्रत्यन्तस्कन्धमुपनिष्कृष्याभिहन्युः ॥ २४ ॥

अथवा गूढपुरुष, विमुख हुए २ पैदल घुड़सवार रथसवार तथा हाथीसवार सेनाओंके मुखियाओं अर्थात् अध्यक्षों को मार डालें ॥ २१ ॥ अथवा अध्यक्षोंके निवास स्थानों में आग लगावें ॥ २२ ॥ अथवा दूष्य शत्रु या आटविक के वेषमें रहते वाले गूढपुरुष, लौटी हुई सेनाके पीछे की ओरसे आक्रमण करें; अथवा सोते समय उनको नष्ट कर डालें; या युद्ध से लौटते समय उनका फिर मुक़ाबला करें ॥ २३ ॥ अथवा वनमें छिपकर रहने वाले गूढपुरुष, सरहद्दी इलाकों की रक्षाके लिये रक्खी हुई सेनाको किसी बहानेसे अपनी ओर बुलाकर मार डालें। यहां तक शस्त्र अग्नि तथा विषके प्रयोगों का निरूपण कर दिया गया ॥ २४ ॥

एकायने वीवधासारप्रसारान्वा ॥ २५ ॥ ससङ्केतं वा रात्रि-युद्धे भूरितूर्यमाहत्य ब्रूयुः ॥ २६ ॥ अनुप्रविष्टाः स्मो लब्धं राज्यमिति ॥ २७ ॥ राजावासमनुप्रविष्टा वा संकुलेषु राजानं हन्युः ॥ २८ ॥

अब इसके आगे वीवध आसार तथा प्रसारके नाशका प्रतिपादन किया जायगाः—जब वीवध आसार और प्रसार को किसी एक तंग रास्तेसे लेजाया जारहा हो, तो उन्हें नष्टकर दिया जावे। (धान्य आदिकी प्राप्तिको वीवध, मित्रसेनाकी प्राप्तिको आसार, और छावनीमें लकड़ी घास आदिके पहुंचनेको प्रसार कहते हैं) ॥ २५ ॥ रात्रिके युद्धमें, विशेष संकेतोंके साथ बाजोंको खूब बजाते हुए इस प्रकार कहें:—॥ २६ ॥ 'हम लोग शत्रुदलको चीरकर भीतर प्रविष्ट होगये हैं, हमने राज्य लेलिया है' इत्यादि ॥ २७ ॥ अथवा राजाके निवासस्थानमें प्रविष्ट होकर, भीड़में राजाको मारडालें ॥ २८ ॥

सर्वतो वा प्रयातमेनं म्लेच्छाटविकदण्डचारिणः सत्त्रापा-श्रयाः स्तम्भवाटापाश्रया वा हन्युः ॥ २९ ॥ लुब्धकव्यञ्जना वावस्कन्दसंकुलेषु गूढयुद्धहेतुभिरभिहन्युः ॥ ३० ॥

सब ओरको (अर्थात् चाहे जिस ओरको) भागे हुए इस राजाको, सत्र (देखो—अधि. १०, अध्या. ३ सूत्र २५) तथा स्तम्भवाट (स्तम्भयुक्त आवरण विशेष ; अथवा स्तम्भ और वाटको पृथक् २ भी समझना चाहिये) के आश्रयसे रहनेवाले, तथा सेनाके रूपमें घूमनेवाले म्लेच्छ और आटविक मारडालें ॥ २९ ॥ अथवा शिकारीके वेषमें रहनेवाले सत्री, रातको सोनेके समय सबके इकट्ठे होनेपर, कूटयुद्ध प्रकरणमें बतलाये हुए तरीकोंसे शत्रुको मारडालें ॥ ३० ॥

एकायने वा शैलस्तम्भवाटखञ्जनान्तरुदके वा स्वभूमिबले-नाभिहन्युः ॥ ३१ ॥ नदीसरस्तटाकसेतुबन्धभेदवेगेन वाप्लाव-येयुः ॥ ३२ ॥ धान्वनवननिम्नदुर्गस्थं वा योगाग्निधूमाभ्यां नाशयेयुः ॥ ३३ ॥

अथवा तंग रास्तेमेंसे गुजरती हुई, या पहाड़ी ऊबड़खाबड़, दलदल तथा जलके रास्तेसे गुजरती हुई शत्रुसेनाको नष्ट करडालें ॥ ३१ ॥ अथवा नदी झील और बड़े २ तालाबोंके बांधोंको यथावसर तोड़कर जलके वेगके

द्वारा बहाकर शत्रुसेनाको नष्ट करडालें ॥ ३२ ॥ धान्वनदुर्ग, वनदुर्ग तथा निम्नदुर्गमें स्थित हुए २ शत्रुको, योगाग्नि (छलपूर्वक विशेष द्रव्योंके योगसे उत्पन्नकी हुई अग्नि), और योगधूम (विषैली गैस आदि) के द्वारा नष्ट करदियाजावे ॥ ३३ ॥

सङ्कटगतमग्निना धान्वनगतं धूमेन निधानगतं रसेन तोयावगाढं दुष्टग्राहैरुदकचरणैर्वा तीक्ष्णाः साधयेयुः ॥ ३४ ॥

घने जंगलोंसे घिरे हुए (जहांपर आना जाना भी अत्यन्त कठिन हो, ऐसे) प्रदेशमें प्रविष्ट हुए २ शत्रुको अग्निके द्वारा ; धान्वनदुर्गमें स्थित हुए २ शत्रुको खास गैस आदिके द्वारा, बहुतही छिपे हुए प्रदेशमें शत्रुको विष आदि रसके द्वारा ; अथवा जलके भीतर छिपे हुए शत्रुको भयङ्कर मगरमच्छ आदि जलजन्तुओंके द्वारा ; अथवा जलमें जानेके अन्य साधनोंके द्वारा (देखो—अधि. १३, अध्या. १), तीक्ष्णपुरुष पकड़ लेवें, या नष्ट करडालें ॥ ३४ ॥

आदीप्तावासान्निष्पतन्तं वा—॥ ३५ ॥
योगवामनयोगाभ्यां योगेनान्यतमेन वा ।
अमित्रमतिसंदध्यात्सक्तमुक्तासु भूमिषु ॥ ३६ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशे ऽधिकरणे शस्त्राग्निरसप्रणिधयः वीवधासारप्रसारवधश्च चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदित एकोनचत्वारिंशच्छतः ॥ १३९ ॥

अथवा आग लगे हुए घरसे निकलकर भागते हुए राजाको ॥ ३५ ॥ तथा अपनी रक्षाके लिये धान्वन आदि भूमियोंमें पहुंचे हुए शत्रु राजाको, योगवामन (देखो—अधि. १३, अध्या. २) और योग(अर्थात् योगातिसन्धान, देखो - अधि. १२, अध्या. ५) के द्वारा, अथवा अकेले योगकेही द्वारा वशमें किया जावे । तात्पर्य यह है, कि शत्रुको वशमें करनेके लिये जितने भी उपाय बताये गये हैं, उनमेंसे किसी एक योग्य उपायके द्वारा शत्रुको वशमें करे ॥ ३६ ॥

आबलीयस द्वादश अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१६८–१७० प्रकरण

योगातिसन्धान, दण्डातिसन्धान और एकविजय।

इस अध्यायमें तीन प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें शत्रुको कपट उपायोंसे ठगनेका अर्थात् अपने वशमें करनेका प्रकार बताया जायगा । दूसरे प्रकरणमें सेनाओंके वशमें करनेका प्रकार, तथा तीसरे प्रकरणमें 'अकेलाही विजिगीषु किस तरह शत्रुका अभिभव करसकता है' इस बातको बताया जायगा ।

दैवतेज्यायां यात्रायाममित्रस्य बहूनि पूज्यागमस्थानानि भक्तितः, तत्रास्य योगमुञ्जयेत् ॥ १ ॥

देवताकी पूजा करनेके समय, या देवताके निमित्तसे होनेवाले किसी विशेष उत्सवके लिये यात्राके समयमें, अर्थात् इस प्रकारके अवसरोंपर; शत्रु राजाके, देवतामें उसकी भक्तिके अनुसार, पूजाके लिये आने जानेके अनेक प्रसंग आसकते हैं । इन्हीं अवसरोंपर शत्रु राजाके प्रति कूट उपायोंका प्रयोग किया जावे ॥ १ ॥

देवतागृहप्रविष्टस्योपरि यन्त्रमोक्षणेन गूढभित्तिं शिलां वा पातयेत् ॥ २ ॥ शिलाशस्त्रवर्षमुत्तमागारात् ॥ ३ ॥ कवाटमवपातितं वा, भित्तिप्रणिहितमेकदेशबन्धं वा परिघं मोक्षयेत् ॥४॥

अब उन प्रयोगोंकाही प्रकार बताते हैं:—जब राजा देवतागृहके अन्दर प्रविष्ट हो, तब उसके ऊपर, यन्त्रके छोड़देनेसे (यह यन्त्र, भींत और शिला इन दोनोंके सम्बन्धको जोड़नेवाला तथा दोनोंका आधारभूत होना चाहिये, जिसके निकालनेसे वह गूढभित्ति या शिला गिर पड़े), गूढभित्ति (खास तौरसे अधर बनी हुई दीवार) और शिलाको गिरा दिया जावे ॥ २ ॥ ऊपरके मकानकी छतसे उस शत्रुपर पत्थर तथा हथियारोंकी वर्षा कीजावे ॥ ३ ॥ अथवा नीचेसे उखाड़कर किवाड़कोही शत्रुके ऊपर डाल दिया जावे । अथवा भींतमें छिपे हुए तथा एक ओरसे बंधे हुए अर्गलेकोही शत्रुपर छोड़ दियाजावे ॥ ४ ॥

देवतादेहस्थप्रहरणानि वास्योपरिष्टात्पातयेत् ॥ ५ ॥ स्थानासनगमनभूमिषु वास्य गोमयप्रदेहेन गन्धोदकप्रसेकेन वा रस-

मतिचारयेत् पुष्पचूर्णोपहारेण वा ॥ ६ ॥ गन्धप्रतिच्छिन्नं वास्य तीक्ष्णं धूममतिनयेत् ॥ ७ ॥

अथवा देवताकी देहपर धारण कराये हुए हथियारोंको ही, शत्रुके ऊपर गिरा दियाजावे ॥ ५ ॥ अथवा इसके ठहरने बैठने और जानेकी भूमियों में, विषयुक्त गोबरसे लेपन करदिया जावे, विषयुक्त सुगन्धित जलोंसे छिड़काव कियाजावे; तथा विषयुक्त फूलोंके चूरेको, देवताकी भेंटके निमित्त, उसे लाकर दियाजावे ॥ ६ ॥ अथवा विषकी गन्धको दबाने वाली विशेष गन्ध से युक्त, तीव्र धुआं (गैस), इसको अत्यधिक मात्रा में ग्रहण कराया जावे ॥ ७ ॥

शूलकूपमवपातनं वा शयनासनस्याधस्ताद्यन्त्रबद्धतलमेनं कीलमोक्षणेन प्रवेशयेत् ॥ ८ ॥ प्रत्यासन्ने वामित्रे जनपदाच्चानवरोधक्षममतिनयेत् ॥ ९ ॥ दुर्गाच्चानवरोधक्षममपनयेत् ॥१०॥

अथवा इसके शयन और आसनके नीचे, लोहेकी अतितीक्ष्ण शलाकाओंसे युक्त कूआ तथा गहरा गढ़ा होवे, उसके ऊपर शत्रुकी चारपाई या अन्य कोई उठने बैठनेकी वस्तु, एक यन्त्रके आधारपर अधर बांधीजावे, जब शत्रु इसपर बैठे, तब ही उस यन्त्रकीलको खींच लेनेसे, चारपाई आदिके समेत उस शत्रुको, गढ़े आदेमें ढकेल दियाजावे ॥ ८ ॥ अथवा जब शत्रु समीप ही होवे, अर्थात् उसका देश अपने देशसे लगा हुआ ही होवे; तब अपने कार्यमें बाधा डालने वाले, उसके जनपदके पुरुषोंको पकड़कर जेलमे डालदेवे, जिससे कि वे फिर विजिगीषुको बाधा न पहुंचा सकें ॥ ९ ॥ तथा जो पुरुष विजिगीषुको बाधा पहुंचानेमें असमर्थ हों, और शत्रुने उनको बन्धन (जल आदि) में डाला हुआ हो, तो विजिगीषु उन्हें छुड़ा देवे ॥ १० ॥

प्रत्यादेयमरिविषयं वा प्रेषयेत् ॥ ११ ॥ जनपदं चैकस्थं शैलवननदीदुर्गेष्वटवीव्यवहितेषु वा पुत्रभ्रातृपरिगृहीतं स्थापयेत् ॥ १२ ॥ उपरोधहेतवो दण्डोपनतवृत्ते व्याख्याताः ॥ १३ ॥

शत्रुके प्रान्तसे लायाहुआ जो आदमी, अवश्य ही लौटाना पड़े, उसे स्वयं ही शत्रुके देशमें भेजदेवे ॥ ११ ॥ जो जनपद अकेले ही शत्रु राजाके शासनमें स्थित हो, उसके पर्वतदुर्ग वनदुर्ग और नदीदुर्गोंको तथा घने जंगलोंसे घिरेहुए अन्यप्रदेशको शत्रुके पुत्र या शत्रुके भाईकी अधीनतामें

करादेवे । अर्थात् एकच्छत्र शत्रुके जनपदमें से, इन उपर्युक्त प्रदेशोंपर शत्रुपुत्र आदिका आधिपत्य करादेवे ॥ १२ ॥ उपरोधके हेतुओंका व्याख्यान, दण्डोपनतवृत्त नामक प्रकरण में करादिया गया है। (देखो अधि० ७, अध्या० १५) ॥ १३ ॥

तृणकाष्ठमायोजनाद्दाहयेत् ॥ १४ ॥ उदकानि च दूषयेत् ॥ १५ ॥ अवास्रावयेच्च ॥ १६ ॥ कूटकूपावपातकण्टकिनीश्च बहिरुब्जयेत् ॥ १७ ॥

शत्रुके पड़ावके चारों ओर एक २ योजन (एक योजन=चार कोस) तक, घास तथा लकड़ी आदिको जलवादेवे; जिससे ये चीजें शत्रुको मिल न सकें ॥ १४ ॥ और जलोंको विष आदि मिलाकर दूषित करवादेवे ॥ १५ ॥ तथा जलाशयोंके किनारे या बांध आदिको तुड़वाकर जलको बाहर निकलवादेवे ॥ १६ ॥ और बाहर शत्रुकी सेनाके आनेके मार्गमें अन्धेरे कूए घास आदिसे ढकेहुए गढ़े तथा स्थान २ पर कांटेदार लोहेकी जंजीरोंके जाल बनवा देवे ॥ १७ ॥

सुरङ्गामभित्रस्थाने बहुमुखीं कृत्वा विचयमुख्यानभिहारयेत् ॥ १८ ॥ अमित्रं वा ॥ १९ ॥ परप्रयुक्तायां वा सुरङ्गायां परिखामुदकान्तिकीं खानयेत् ॥२०॥ कूपशालामनुसालं वा॥२१॥

शत्रुके ठहरनेके स्थानमें, बहुत मुंहवाली एक सुरंग बनवाकर, शत्रुके प्रधान व्यक्तियोंको उसीमें फंसा देवे ॥ १८ ॥ अथवा अवसर आनेपर शत्रुको भी उस ही में फंसादेवे ॥ १९ ॥ यदि शत्रु ही, विजिगीषुके दुर्गमें आनेके लिये सुरंग बनवावे, तो विजिगीषुको चाहिये, कि वह दुर्गके चारों ओर इतनी गहरी खाई खुदवावे, जिसमें कि जल निकल आवे। अर्थात् जल निकल आनेतक उस खाईको खुदवाता ही जावे ॥ २० ॥ यदि इतनी खाई खुदवानेमें असुविधा हो, तो परकोटेकी लम्बाईके मुताबिक उसके चारों ओर कूपशाला बनवादी जावे। (कूपशालासे तात्पर्य, चारों ओर बनाए जाने वाले गहरे २ कुओंसे है। ऐसा करनेसे शत्रुको दुर्गके भीतर आनेके लिये, सुरंग बनानेका रास्ता नहीं मिल सकेगा) ॥ २१ ॥

अतोयकुम्भान्कांस्यभाण्डानि वा शङ्कास्थानेषु स्थापयेत्खाताभिज्ञानार्थम् ॥२२॥ ज्ञाते सुरङ्गापथे प्रतिसुरङ्गां कारयेत् ॥२३॥ मध्ये भित्वा धूममुदकं वा प्रयच्छेत् ॥ २४ ॥

अथवा जिन स्थानोंमें सुरंग बनाये जानेकी आशंका हो, वहां जल रहित घड़ोंको अथवा कांसेके छोटे २ स्तूप या टुकड़ोंको रखदिया जावे, जिससे कि खुदेहुए सुरंगके मार्गका पता लगता रहे ॥ २२ ॥ शत्रुकी सुरंगके मार्गके मालूम होजानेपर, उसके विरुद्ध दूसरी सुरंग खुदवा देवे ॥ २३ ॥ अथवा बीचमें से उसको फोड़कर, विषैला धुआं (अथवा साधारण धुआं हो) । जल उसमें भरदेवे । (विषैले धुएंकी तरह जल भी उसमें विषयुक्त भरा जासकता है) ॥ २४ ॥

प्रतिविहितदुर्गो वा मूले दायादं कृत्वा प्रतिलोमामस्य दिशं गच्छेत् ॥ २५ ॥ यतो वा मित्रैर्बन्धुभिराटविकैर्वा संसृज्येत ॥ २६ ॥ परस्यामित्रैर्दूष्यैर्वा महद्भिः ॥ २७ ॥ यतो वा गतोऽस्य मित्रैर्वियोगं कुर्यात् ॥ २८ ॥ पार्ष्णिं वा गृह्णीयात् ॥ २९ ॥ राज्यं वास्य हारयेत् ॥ ३० ॥ वीवधासारप्रसारान्वा वारयेत् ॥ ३१ ॥

अथवा शक्तिके अनुसार दुर्गकी रक्षा करनेपर भी यदि पूर्ण सफलता न दीखे, तो दुर्बल राजा, मूलस्थानमें अपने पुत्र आदिको नियुक्त करके स्वयं शत्रुकी प्रतिकूल दिशाको चलाजावे । अर्थात् ऐसी दिशामें जावे, जहां जाकर शत्रुकी हानि करसके ॥ २५ ॥ अथवा जिस ओर जाकर, अपने मित्र, बन्धु-बान्धव और आटविकोंके साथ मिलकर शत्रुका अपकार करनेके लिये उचित अवसर प्राप्त करसके ॥ २६ ॥ अथवा अपने शत्रुके शत्रु, और अत्यन्त शक्तिशाली दूष्य पुरुषोंके साथ मिलकर शत्रुकी हानि करसके ॥ २७ ॥ अथवा जहां जाकर शत्रुका, उसके मित्रोंसे भेद करवा देवे ॥ २८ ॥ अथवा शत्रुपर पीछेकी ओरसे हमला करसके ॥ २९ ॥ अथवा शत्रुके राज्यको अपहरण करसके ॥ ३० ॥ अथवा शत्रुके वीवध आसार और प्रसारको उसके पास तक न पहुंचने देवे ॥ ३१ ॥

यतो वा शक्नुयादाक्षिकवदपक्षेपेणास्य प्रहर्तुम् ॥ ३२ ॥ यतो वा स्वं राज्यं त्रायेत ॥ ३३ ॥ मूलस्योपचयं वा कुर्यात् ॥ ३४ ॥ यतः संधिमभिप्रेतं लभेत ततो वा गच्छेत् ॥ ३५ ॥

अथवा जहां जाकर कपटी जुआरीकी तरह, कपट प्रयोगोंको करके शत्रुपर प्रहार करसके ॥ ३२ ॥ अथवा जहां जाकर अपने राज्यकी रक्षा करसके ॥ ३३ ॥ अथवा अपने मूलस्थानकी भलीभांति वृद्धि कर सके ॥ ३४ ॥

अथवा जहांसे अपनी इच्छाके अनुसार सन्धि करनेका अवसर मिलसके, ऐसे स्थानपर चला जावे ॥ ३५ ॥

सहप्रस्थायिनो वास्य प्रेषयेयुः ॥ ३६ ॥ अयं वै शत्रुरस्माकं हस्तगतः ॥ ३७ ॥ पण्यं विप्रकारं वापदिश्य हिरण्यमन्तःसारबलं च प्रेषयस्व एनमर्पयेम बद्धं प्रवासितं वेति ॥ ३८ ॥ प्रतिपन्ने हिरण्यं सारबलं चाददीत ॥ ३९ ॥

अथवा दुर्बल राजाके साथ २ जानेवाले, उसके (दुर्बल राजाके) गूढपुरुष, शत्रुके पास इस प्रकार सन्देश भिजवावें ॥ ३६ ॥ यह तुम्हारा शत्रु, इस समय हमारे हाथमें आया हुआ है ॥ ३७ ॥ इसलिये, किसी सौदेके बहानेसे सुवर्ण आदि धनको, और किसी अपकार आदिके बहानेसे अन्तस्सार सेनाको हमारे पास भेजो ; तदनन्तर हम, कैद किये हुए या मारे हुए तुम्हारे इस शत्रुको, तुम्हारे अर्पण करसकते हैं ॥ ३८ ॥ जब शत्रु इस बातको मानकर, सुवर्ण आदि धन और अन्तस्सार सेनाको (बहुत ही मज़बूत बहादुर सेनाको) भेजदेवे, तो दुर्बल राजा उस सब सामानको अपने अधीन करलेवे ॥ ३९ ॥

अन्तपालो वा दुर्गसंप्रदानेन बलैकदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत् ॥ ४० ॥ जनपदमेकस्थं वा घातयितुममित्रानीकमावाहयेत् ॥ ४१ ॥ तदवरुद्धदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत् ॥ ४२ ॥

अथवा अन्तपाल (सीमारक्षक अधिकारी), अपना दुर्ग, शत्रुके सुपुर्द करके, उसकी सेनाके कुछ हिस्सेको ऐसी जगह लेजावे, जहांसे उनका लौटना असम्भव हो, और विश्वासपूर्वक उन्हें वहींपर मारडाले ॥ ४० ॥ अथवा किसी उच्छृंखल, एकत्रित हुए २ जनपदको काबूमें करनेके लिये, अन्तपाल, शत्रुकी सेनाको बुलवालेवे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उस सेनाको ऐसे देशमें लेजावे, जहांसे निकलना अत्यन्त दुष्कर हो, वहां जाकर विश्वासपूर्वक उस सेनाको मरवाडाले ॥ ४२ ॥

मित्रव्यञ्जनो वा बाह्यस्य प्रेषयेत् ॥ ४३ ॥ क्षीणमस्मिन्दुर्गे धान्यं स्नेहाः क्षारो लवणं वा ॥ ४४ ॥ तदमुष्मिन्देशे काले च प्रवेक्ष्यति ॥ ४५ ॥ तदुपगृहाणेति ॥ ४६ ॥

अथवा मित्रके वेषमें रहनेवाला सत्री, शत्रुके पास इसप्रकार सन्देश भिजवावे ॥ ४३ ॥ इस दुर्गमें धान्य (अन्न आदि), स्नेह (घी तेल आदि), क्षार (गुड़ शक्कर आदि) तथा लवण (नमक) आदि सब पदार्थ समाप्त

होचुके हैं ॥ ४४ ॥ ये सब सामान, अमुक २ देश तथा अमुक कालमें लाये जावेंगे । (अर्थात् इन पदार्थोंके लानेके मार्ग और समय आदिसे, शत्रुको ठीक २ सूचित करदेवे) ॥ ४५ ॥ आप इस सब सामानको लेलेवें । अर्थात् रास्तेमेंही ठीक समयपर पहुंचकर इस सब सामानको लूटकर अपने अधीन करलेवें ॥ ४६ ॥

ततो रसविद्धं धान्यं स्नेहं क्षारं लवणं वा दूष्यामित्राटविकाः प्रवेशयेयुः ॥ ४७ ॥ अन्ये वाभित्यक्ताः ॥ ४८ ॥ तेन सर्वभाण्डवीवधग्रहणं व्याख्यातम् ॥ ४९ ॥

तदनन्तर विजिगीषुके दूष्य, शत्रु तथा आटविक पुरुष, विषसे युक्त हुए २ धान्य, स्नेह, क्षार तथा लवण आदि पदार्थोंको लेकर ठीक समयपर उन्हीं निर्दिष्ट मार्गोंसे होकर गुजरें ॥ ४७ ॥ अथवा अन्य वध्यपुरुष इस कार्यको करें । अर्थात् विषयुक्त धान्य आदिको लेकर निर्दिष्ट समयपर निर्दिष्ट मार्गोंसे होकर दुर्गकी ओर जावें । (तात्पर्य यह है, कि इसप्रकार शत्रु, लूटमें विषयुक्त धान्य आदि लेजाकर अपने कार्यमें लावेगा, और मारा जायगा) ॥ ४८ ॥ इसीप्रकार सब तरहके अन्य खाद्य पदार्थोंको विषयुक्त बनाकर, शत्रुको ग्रहण करानेके सम्बन्धमें भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ ४९ ॥

संधिं वा कृत्वा हिरण्यैकदेशमसै दद्यात् ॥ ५० ॥ विलम्बमानः शेषम् ॥ ५१ ॥ ततो रक्षाविधानान्यवस्रावयेत् ॥ ५२ ॥ अग्निरसशस्त्रैर्वा प्रहरेत् ॥ ५३ ॥ हिरण्यप्रतिग्राहिणो वास्य वल्लभाननुगृह्णीयात् ॥ ५४ ॥

अथवा दुर्बल राजा, शत्रुके साथ सन्धि करके, प्रतिज्ञात धनका कुछ भाग उसे तत्कालही देदेवे ॥ ५० ॥ और शेष भाग विलम्ब करके, देनेको कहकर, फिर ठीक समयपर देदेवे ॥ ५१ ॥ तदनन्तर शत्रुपर अपना विश्वास जमाकर (अर्थात् शत्रु जब उसपर पूरा विश्वास करने लगे) अपने चारों ओर रक्षाके लिये रक्खी हुई शत्रु सेनाको हटवा देवे ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर स्वतन्त्र होकर, अग्नि विष तथा शस्त्रोंके द्वारा शत्रुपर प्रहार करे । (५२वें सूत्र का यह भी अभिप्राय होसकता है, कि शत्रुराजा, दुर्बलपर विश्वास होनेके कारण, उसके सामने अपनी रक्षाकी अपेक्षा न रक्खे ; इस प्रकार जब कभी दुर्बलके सामने शत्रु सर्वथा अरक्षित हो, तो आग, विष तथा शस्त्र आदिके द्वारा उसे नष्ट करवा डाले) ॥ ५३ ॥ अथवा धन आदि लेकर काबूमें आने

वाले, शत्रुके प्रिय पुरुषोंकोही इस कार्यके करनेके लिये तैयार करे । अर्थात् धन आदि देकर उन्हींके द्वारा शत्रुको मरवा देवे ॥ ५४ ॥

परिक्षीणो वासै दुर्गं दत्त्वा निर्गच्छेत् सुरुङ्गया ॥ ५५ ॥ कुक्षिप्रदरेण वा प्राकारभेदेन निर्गच्छेत् ॥ ५६ ॥

अथवा यदि दुर्बल राजा, सर्वथाही हीनशक्ति होजावे, अर्थात् शत्रुका निवारण करनेमें किसी तरह भी समर्थ न होसके, तो अपना दुर्ग शत्रुको देकर सुरंगके रास्तेसे बाहर निकल जावे । अर्थात् दुर्गको छोड़कर भाग जावे ॥ ५५ ॥ अथवा किलेमें सुरंग न होनेपर, परकोटेकी दीवार जहांसे कमज़ोर हो, वहींसे उसे फोड़कर बाहर निकल जावे ॥ ५६ ॥

रात्राववस्कन्दं दत्त्वा सिद्धस्तिष्ठेत् ॥ ५७ ॥ असिद्धः पार्श्वेनापगच्छेत् ॥ ५८ ॥ पाषण्डच्छद्मना मन्दपरिवारो निर्गच्छेत् ॥ ५९ ॥ प्रेतव्यञ्जनो वा गूढैर्निर्ह्रियेत ॥ ६० ॥ स्त्रीवेषधारी वा प्रेतमनुगच्छेत् ॥ ६१ ॥

रातमें सोते समय शत्रुसेनाके ऊपर छापा मारकर यदि कार्यसिद्धि होजावे, तो दुर्बल अपने दुर्गमेंही ठहरा रहे ॥ ५७ ॥ यदि कार्यसिद्धि न होवे, तो पाससे होकर निकल जावे ॥ ५८ ॥ निकलनेके प्रकार ये हैं:—पाषण्ड (पाखण्डी=धर्मध्वजी) का वेष बनाकर थोड़ेसे परिवारके साथ बाहर निकल जावे ॥ ५९ ॥ अथवा मरे हुएके वेषमें, गूढ पुरुषोंके द्वारा लेजाया जावे । अर्थात् गूढ पुरुष, राजाको मरे हुएके समान अर्थीपर बांधकर दुर्गसे बाहर निकाल लेजावें ॥ ६० ॥ अथवा स्त्रीका वेष धारण करके किसी मृतपुरुषके पीछे २ निकल जावे ॥ ६१ ॥

दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणेषु वा रसविद्धमन्नपानमवसृज्य कृतोपजापो दूष्यव्यञ्जनैर्निष्पत्य गूढसैन्योऽभिहन्यात् ॥ ६२ ॥

दैवतोपहार (देवताओंको बलि देने), श्राद्ध, तथा प्रहवण आदि (उद्यान आदिमें मित्रोंको भोजन कराने=पार्टियों) के अवसरोंपर शत्रुको विषयुक्त अन्नपान आदि देकर; या दूष्यके वेषमें रहनेवाले सत्रियोंके द्वारा शत्रु पक्षमें प्रवेश करके, और उनको वहां अच्छी तरह उपजाप करके (अर्थात् उनको उनके स्वामीसे भिन्न करके), छिपी हुई अपनी सेनाके सहित दुर्बल राजा, शत्रुको नष्ट करदेवे ॥ ६२ ॥

एवं गृहीतदुर्गो वा प्राश्यप्राशं चैत्यमुपस्थाप्य दैवतप्रतिमाच्छिद्रं प्रविश्यासीत ॥ ६३ ॥ गूढभित्तिं वा दैवतप्रतिमायुक्तं भूमिगृहम् ॥ ६४ ॥

अब अकेलाही विजिगीषु किसप्रकार शत्रुका अभिभव करसकता है, इस बातका निरूपण किया जायगाः—इसप्रकार शत्रुके द्वारा अपने दुर्गके छिन जानेपर विजिगीषु, खाने योग्य प्रचुर अन्नसे युक्त किसी देवालयमें उपस्थित होकर, वहां देवताकी प्रतिमाके छेदमें प्रवेश करके निवास करे ॥ ६३ ॥ अथवा छिपकर रहने योग्य किसी दीवारके बीचमेंही ठहरे। अर्थात् जिस दीवारपर पाहचाने जानेके लिये कोई बाह्यचिन्ह न हो, वहीं छिपकर बैठजावे। या देवताकी प्रतिमासे युक्त किसी तैखाने (=भूमिगृह) में जाकर छिपजावे ॥ ६४ ॥

विस्मृते सुरुङ्गया रात्रौ राजावासमनुप्रविश्य सुप्तमामित्रं हन्यात् ॥६५॥ यन्त्रविश्लेषणं वा विश्लेष्याधस्तादवपातयेत् ॥६६॥ रसाग्नियोगेनावलिप्तं गृहं जतुगृहं वाधिशयानममित्रमादीपयेत् ॥ ६७ ॥

जब शत्रु राजा इस बातको भूलजावे, अर्थात् शत्रुको जब यह निश्चय होजावे, कि हमारा विरोधी अमुक राजा सर्वथा नष्ट होचुका है, इसलिये इसकी ओरसे जब शत्रुकी उपेक्षादृष्टि होजावे, तो यह सुरंगके द्वारा रातमें, राजाके निवास करनेके मकानमें प्रविष्ट होकर, सोतेहुए शत्रुराजाको मारडाले ॥६५॥ अथवा यन्त्रको ढीला करके उसे शत्रुके ऊपर गिरादेवे। (संभवतः इसका यह अभिप्राय प्रतीत होता है, कि राजाओंके शयनगृह आदिमें कोई इस प्रकारके विशेष यन्त्र होते थे, जिनके हिलाने डुलानेसे मकानकी परिस्थितिमें विशेष अन्तर पड़सकता था; अथवा ऊपरसे झाड़फानूस आदिके गिरानेकी भी कल्पना कीजासकती है) ॥ ६६ ॥ अथवा आग लगानेमें सहायता देनेवाले ख़ास तरहके मसाले से लिपेहुए (औपनिषदिक अधिकरणके प्रलम्भन प्रकरण में इसतरहके मसालोंका ज़िक्र किया गया है) घरमें; या लाखके घरमें शत्रुके सोतेहुए होनेपर, उस घरको आग लगादेवे ॥ ६७ ॥

प्रमदवनविहाराणामन्यतमे वा विहारस्थाने प्रमत्तं भूमिगृहसुरुङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णा हन्युः ॥ ६८ ॥ गूढप्रणिहिता वा रसेन ॥ ६९ ॥ स्वपतो वा निरुद्धे देशे गूढाः स्त्रियः सर्प-

साग्निधूमानुपरि मुञ्चेयुः ॥ ७० ॥

प्रमदस्थान वनस्थान और विहारस्थानमें अथवा इनमेंसे एक विहार' स्थानमें ही प्रमत्त हुए २ शत्रुको; भूमिगृह सुरंग या गूढभित्तियोंमें छिपेहुए तीक्ष्ण पुरुष, मारडालें ॥ ६८ ॥ अथवा छिपकर रहनेवाले सूद आरालिक आदि गूढपुरुष, विष देकर शत्रुको मारडालें ॥ ६९ ॥ अथवा किसी घिरेहुए स्थानमें (जहां पर लोगोंके आने जाने का सर्वथा निषेध हो) सोतेहुए शत्रुराजाके ऊपर, गुप्त वेषमें रहने वाली स्त्रियां, सर्प, विष अग्नि तथा विषैले धुएंको छोड़देवें । अर्थात् शत्रुको मारनेके लिये सोते समय उसपर इन चीजों का प्रयोग करें ॥ ७० ॥

प्रत्युत्पन्ने वा कारणे यद्यदुपपद्येत तत्तदमित्रेऽन्तःपुरगते गूढसंचारः प्रयुञ्जीत ॥ ७१ ॥ ततो गूढमेवापगच्छेत् ॥ ७२ ॥ स्वजनसंज्ञां च प्ररूपयेत् ॥ ७३ ॥

अथवा समयानुसार उन २ कारणोंके उत्पन्न होनेपर, जैसा अवसर हो उसीके अनुकूल, विजिगीषु, अन्तःपुरमें गयेहुए शत्रुके ऊपर, गूढ रीतिसे उसे नष्ट करनेवाले उपायोंका प्रयोग करे ॥ ७१ ॥ तदनन्तर छिपे तौरपर ही वहांसे बाहर निकलजावे ॥ ७२ ॥ तथा अपने आदमियोंको (जो वहींपर इधर उधर छिपे हों) इशारोंसे इस बातकी खबर देदेवे ॥ ७३ ॥

द्वाःस्थान्वर्षवरांश्चान्यान्निगूढोपहितान्परे ।
तूर्यसंज्ञाभिराहूय द्विषच्छेषाणि घातयेत् ॥ ७४ ॥

इत्याबलीयसे द्वादशेऽधिकरणे योगातिसंधानं दण्डातिसंधानं एकविजयश्च पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदितश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४० ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य आबलीयसं द्वादशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

अन्तिम उपसंहार श्लोकमें इसी बातका स्पष्ट निरूपण कियाजाता है:- द्वारपाल, नपुंसक, तथा अन्तःपुर आदिके अन्य कर्मचारियोंके वेषमें रहनेवाले; तथा शत्रुके ऊपर छिपे तौरपर नियुक्त कियेहुए अपने गुप्तपुरुषोंको बाजे आदि के इशारोंसे बुलाकर, शत्रुके शेष आदमियोंको भी, विजिगीषु, उन्हींके द्वारा मरवाडाले । अर्थात् वे गुप्तपुरुष ही दुश्मनके बाकी आदमियोंको मारडालें। (इस श्लोकमें 'घातयेत्' पदके स्थानपर किसी पुस्तकमें 'कारयेत्' भी पाठ है । अर्थ उसका भी यही करना चाहिये) ॥ ७४ ॥

आबलीयस द्वादश अधिकरण में पांचवां अध्याय समाप्त ।

आबलीयस द्वादश अधिकरण समाप्त ।

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरण

पहिला अध्याय

१७१ प्रकरण

उपजाप

यह दुर्गलम्भोपाय तेरहवां अधिकरण है । इस अधिकरणमें शत्रुके दुर्गोंको प्राप्त करनेके उपायोंका निरूपण किया जायगा । अब सबसे पहिले प्रकरणमें उपजाप अर्थात् भेदका निरूपण किया जाता है ।

विजिगीषुः परग्राममवाप्तुकामः सर्वज्ञदैवतसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत् ॥ १ ॥ परपक्षं चोद्वेजयेत् ॥ २ ॥

शत्रुके ग्राम या नगर आदिको प्राप्त करनेकी इच्छा रखता हुआ विजिगीषु, अपने आपको सर्वज्ञ तथा देवताका साक्षात्कार करनेवाला प्रसिद्ध करके अपने पक्षको उत्साहित करे ॥ १ ॥ और इन्हीं कारणोंसे शत्रुके पक्षको उद्विग्न (=खिन्न=बेचैन) करे ॥ २ ॥

सर्वज्ञख्यापनं तु—॥ ३ ॥ गृहगुह्यप्रवृत्तिज्ञानेन प्रत्यादेशो मुख्यानाम् ॥ ४ ॥ कण्टकशोधनापसर्पागमेन प्रकाशनं राजद्विष्टकारिणाम् ॥ ५ ॥ विज्ञाप्योपायनख्यापनमदृष्टसंसर्गविद्यासंज्ञादिभिः ॥ ६ ॥ विदेशप्रवृत्तिज्ञानं तदहरेव गृहकपोतेन मुद्रासंयुक्तेन ॥ ७ ॥

अपनी सर्वज्ञताको प्रसिद्ध करनेके लिये विजिगीषु निम्नलिखित उपायोंका प्रयोग करे—॥३॥ मुख्य व्यक्तियोंके घरोंमें होनेवाले किन्हीं छिपेहुए बुरे कामोंको गूढपुरुषोंके द्वारा जानकर, मुख्य पुरुषोंको ऐसे काम करनेसे रोके ॥ ४ ॥

कण्टकशोधन अधिकरणके पांचवें अध्यायमें बतलाये हुए अपसर्पोपदेश (गूढ पुरुषोंके कथन । देखो, अधि० ४, अध्या० ५, सू० २०-२५) के द्वारा, राजाके साथ शत्रुता करनेवाले पुरुषोंके छिपे भेदोंको जानकर, उन्हें उनके सामने प्रकट करे, और ऐसा करनेसे उन लोगोंको रोके ॥ ५ ॥ अन्य पुरुषोंसे न जानीहुई संसर्गविद्या (नाचना, गाना बजाना आदि विशेष विद्या) के इशारोंसे तथा गुप्तचर आदिसे जानकर, राजाके पास आनेवाली भेंटको आनेसे पहिले ही प्रकट करदेवे ॥ ६ ॥ विदेशमें होनेवाली घटनाको जिसदिन वह घटना होवे उसी दिन, अपने घरमें रहनेवाले मुद्रायुक्त कबूतरके द्वारा बतला देवे (अभिप्राय यह मालूम होता है, कि दूर देशकी किन्हीं विशेष घटनाओंको बहुत जल्दी जान लेनेके लिये कबूतरों का उपयोग उस समय किया जाता था; इसीतरह जब कोई शिक्षित कबूतर, लिखेहुए पत्रके रूपमें किसी समाचारको राजाके पास लावे, तो राजा उसको इसप्रकार प्रकट करे, जैसे उसने किसी अदृष्ट या अज्ञेय कारणसे ही यह सब जान लिया है ॥ ७ ॥

दैवतसंयोगख्यापनं तु—॥ ८ ॥ सुरुङ्गामुखेनाग्निचैत्यदैवतप्रतिमाच्छिद्रानुप्रविष्टैरग्निचैत्यदैवतव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च ॥ ९ ॥ उदकादुत्थितैर्वा नागवरुणव्यञ्जनैः संभाषणं पूजनं च ॥ १० ॥

देवताके साथ साक्षात् संयोगकी प्रसिद्धि करनेके लिये, इन उपायोंको प्रयोगमें लावे ॥ ८ ॥ सुरंगके द्वारा अग्निके बीचमें तथा पोली देवताओंकी प्रतिमाओंके बीचमें प्रविष्ट हुए २, अग्निचैत्य (अग्निके बीचमें रहने वाले गूढपुरुषोंके साथ राजा सम्भाषण करे, और उनका पूजन भी करे ॥ ९ ॥ अथवा जलसे उठेहुए अर्थात् जलसे निकले हुए, नाग (सर्पदेव) और वरुणदेवके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुषोंके साथ राजा सम्भाषण करे, तथा उनका पूजन भी करे ॥ १० ॥

रात्रावन्तरुदके समुद्रवालुकाकोशं प्रणिधायाग्निमालादर्शनम् ॥ ११ ॥ शिलाशिक्यावगृहीते प्लवके स्थानम् ॥ १२ ॥

रात्रिके समय जलाशय आदिके बीचमें मुहर लगी हुई मजबूत पेटियोंके अन्दर (जिनमें कि सर्वथा जलका प्रवेश न होसके) रेता भरकर छिपा दिया जावे; उसके सहारेसे रक्खी हुई आगको जलमेंसे निकालकर फिर दिखलाया जावे ॥ ११ ॥ भारी शिलासे युक्त छींके आदिके द्वारा जकड़ी हुई छोटी २ नावोंको

पानीकी तेज़धारमें स्थिरतासे खड़े करदेना। (अभिप्राय यह प्रतीत होता है, एक छोटी सी नावको, पानीकी तेज़ धारमें, उसके ऊपर रस्सियोंमें पत्थर बांधकर नीचे पानीमें उन्हें लटकाकर, खड़ा करदेवे। अनन्तर लोगों को बतलावें, कि देखो, राजाका इतना प्रभाव देवताओंके साथ सम्बन्ध होनेके कारण ही है, इसीलिये इसने जलकी तेज़ चलती हुई धारमें नावको निश्चल खड़ा करदिया है) ॥ १२ ॥

उदकवस्तिना जरायुणा वा शिरोऽवगूढनासः पृषतान्त्रकुलीरनक्रशिंशुमारोद्रवसाभिर्वा शतपाक्यं तैलं नस्तः प्रयोगः ॥ १३ ॥ तेन रात्रिगणश्चरतीत्युदकचरणानि ॥ १४ ॥

उदकवस्ती (जलको भीतर प्रवेश करनेसे रोकनेवाला एक वस्त्र विशेष), अथवा जरायु (गर्भकी थैलीके समान बनीहुई चमड़ेकी एक थैली) से सिर और नासिकाको ढककर, चीतल हरिणकी आंत तथा केंकड़ा, नाकू, शिशुमार (शिरस नामकी मछली) और उद्र (हूद नामकी मछली) की चरबीके साथ तैलको एकसौ बार पकाकर, नासिकामें उसका प्रयोग कियाजावे; अर्थात् उस तैलको नाकमें डालाजावे ॥ १३ ॥ ऐसा करनेसे रात्रिमें झुण्डके झुण्ड पुरुष, जलमें सञ्चरण करसकते हैं ॥ १४ ॥

तैर्वरुणनागकन्यावाक्यक्रिया संभाषणं च ॥१५॥ कोपस्थानेषु मुखादग्निधूमोत्सर्गः ॥ १६ ॥

जलमें घूमनेवाले उन पुरुषोंके द्वारा, राजा, वरुण तथा सर्पदेवोंकी कन्याओंके समान आवाज करवावे। अर्थात् वे पुरुष, वरुण आदिकी कन्याओं के समान शब्द करें; और राजा उनके साथ बातचीत करे ॥ १५ ॥ कोपके कारण उपस्थित होनेपर अर्थात् क्रोध आने के अवसरों में राजा, अपने मुंहसे आग और धुएंको निकाले। अर्थात् मुंहसे औषध आदिके योगसे इसतरहका कार्य करे ॥ १६ ॥

तदस्य स्वविषये कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकेक्षणिकगूढपुरुषाः साचिव्यकरास्तद्दर्शिनश्च प्रकाशयेयुः ॥ १७ ॥ परस्य विषये दैवतदर्शनं दिव्यकोशदण्डोत्पत्तिं चास्य ब्रूयुः ॥१८॥

राजाकी इन सब उपर्युक्त बातोंको, इसके अपने देशमें; इसकी (राजाकी) सहायता करनेवाले तथा इन सब कामोंको देखनेवाले कार्तान्तिक (वैद्य) नैमित्तिक (यथायोग्य लक्षणोंको देखकर शुभाशुभकी सूचना देनेवाले=भरारे), मौहूर्त्तिक (ज्योतिषी), पौराणिक (पुराण आदिकी

कथा करनेवाले), ईक्षणिक (प्रश्न करके भविष्य शुभाशुभको बतानेवा ले), तथा गूढपुरुष, सर्वत्र प्रकाशित करदेवें ॥ १७ ॥ तथा शत्रुके देशमें, इसके देवताओंके दर्शन और दिव्य कोश तथा दिव्य सेनाके प्रादुर्भावको बतावें। अर्थात् 'इसका देवताओंके साथ साक्षात्कार होता है, यह अपनी इच्छानुसार जब चाहे, अपनी सहायताके लिये अपरिमित दिव्य कोश तथा दिव्य सेनाको उत्पन्न करसकता है' इत्यादि बातोंको शत्रुदेशमें प्रसिद्ध करदेवें ॥ १८ ॥

दैवतप्रश्ननिमित्तवायसाङ्गविद्यास्वप्नमृगपक्षिव्याहारेषु चास्य विजयं ब्रूयुः ॥ १९ ॥ विपरीतममित्रस्य सदुन्दुभिम् ॥ २० ॥ उल्कां च परस्य नक्षत्रे दर्शयेयुः ॥ २१ ॥

दैवतप्रश्न (शुभाशुभ कर्म विषयक प्रश्न=अर्थात् अपने भाग्य के सम्बन्धमें पूछना), निमित्त (शकुन), कौए आदिका बोलना, अङ्गविद्या (शरीरके अंगोंका स्पर्श करनेसे शुभाशुभको बतलाने वाली विद्या=सामुद्रिकका विशेष भाग), स्वप्न, तथा पशु पक्षी आदिके बोलनेके समयमें इस राजाके विजय का ही सदा कथन करें। अर्थात् प्रत्येक निमित्तके होनेपर यही कहें, कि देखो—इस लक्षणसे मालूम होता है, कि इस राजाका विजय अवश्य होगा ॥ १९ ॥ शत्रु राजाके सम्बन्धमें, नक्षत्र (आकाश) में उल्का दर्शन करावें। अर्थात् उल्कापात आदिके दिखानेसे इस बातको प्रसिद्ध करें, कि शत्रुका कोई भारी अनिष्ट होनेवाला है ! (उल्कापातके सम्बन्धमें देखो,—अधि० १४, अध्या० २, सू० ३२ के लगभग) ॥ २१ ॥

परस्य मुख्यान्मित्रत्वेनापदिशन्तो दूतव्यञ्जनाः स्वामिसत्कारं ब्रूयुः ॥ २२ ॥ स्वपक्षबलाधानं परपक्षप्रतिघातं च तुल्ययोगक्षेममममात्यानामायुधीयानां च कथयेयुः ॥ २३ ॥ तेषु व्यसनाभ्युदयावेक्षणमपत्यपूजनं च प्रयुञ्जीत ॥ २४ ॥

शत्रुके मुख्य पुरुषोंके साथ मित्र रूपसे व्यवहार करने वाले, दूत वेषधारी पुरुष; उन मुख्य व्यक्तियोंके सन्मुख, अपने स्वामीके द्वारा किएहुए अपने सत्कारका खूब बखान करें। (जिससे कि उनके हृदयमें भी इस सत्कारको प्राप्त करनेका लोभ उत्पन्न होजावे) ॥ २२ ॥ शत्रुके अमात्य तथा सैनिक पुरुषोंके सामने, अपने पक्षकी सेनाकी उन्नति और शत्रु पक्षकी सेनाके ह्रासका, तथा दोनोंके तुल्य योगक्षेमका अच्छीतरह कथन करें ॥ २३ ॥ और अमात्य तथा सैनिक पुरुषोंके सामने, ये पुरुष यह भी कहें, कि हमारा राजा अपने अनुचरोंके आपत्तिकालमें पूर्ण सहायता करता है, तथा

अभ्युदयके समयमें अभिनन्दन आदिसे उन्हें अच्छीतरह सन्तुष्ट करता है। तथा अमात्य आदिके मरजानेपर उनके पुत्रोंका भी बहुत अच्छीतरह सत्कार करता है ॥ २४ ॥

तेन परपक्षमुत्साहयेद्यथोक्तं पुरस्तात् ॥ २५ ॥ भूयश्च वक्ष्यामः—॥ २६ ॥ साधारणगर्दभेन दक्षान् ॥ २७ ॥ लकुट-शाखाहननाभ्यां दण्डचारिणः ॥ २८ ॥ कुलैलकेन चोद्विग्नान् ॥ २९ ॥ अशनिवर्षेण विमानितान् ॥ ३० ॥

इन सबही उपर्युक्त प्रकारोंसे शत्रुपक्षको उत्साहित करे। अर्थात् शत्रुके अमात्य आदि कर्मचारियोंको शत्रुसे भिन्न करदेवे ॥ २५ ॥ शत्रु पक्षमें भेद डालनेके अन्य उपायोंका भी अब निरूपण किया जायगा:—॥ २६ ॥ जो पुरुष आलस्य रहित होकर कार्य करनेमें अत्यन्त चतुर तथा तत्पर रहते हों, उनको गर्दभ आदि शब्दोंके द्वारा, उनके स्वामीसे भिन्न करें। इसका अभिप्राय यह है, कि इस तरह कार्य करनेवाले, शत्रुके कर्मचारियोंको यह कहा जाय, कि तुम लोग बिल्कुल गधेकी बराबर हो, जैसे गधा लगातार काम करता रहता है, परन्तु उसको उस कार्यके फलका कुछ भी ज्ञान नहीं होता, इसी तरह आप लोग भी अपने कार्यके फलसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इसी तरहके उदाहरण देकर उनको उस कार्यसे अन्यमनस्क करदिया जाय; इसीसे उनको अपने स्वामीके साथ मनमुटाव होजायगा। अगले सूत्रोंमेंभी इसी तरहके अभिप्राय समझने चाहियें) ॥ २७ ॥ सैनिक पुरुषोंको, लाठी तथा कुल्हाड़े आदिका उदाहरण देकर उत्साहित करे, अर्थात् उनके स्वामीसे उन्हें भिन्न करे ॥ २८ ॥ उद्विग्न अर्थात् शत्रुसे डरनेवाले कर्मचारियोंको, अपने झुण्डसे अलहदा हुए २ जीवनसे निराश मेंढे या बकरेका उदाहरण देकर, उत्साहित किया जावे ॥ २९ ॥ शत्रुसे तिरस्कृत हुए २ व्यक्तियोंको, 'तुमने वज्रपातके समान तिरस्कारको कैसे सहन करलिया' यह कहकर उत्साहित किया जावे ॥३० ॥

विदुलेनावकेशिना वायसपिण्डेन कैतवजमेघेनेति विहता-शान् ॥ ३१ ॥ दुर्भगालंकारेण द्वेषिणेतिपूजाफलान् ॥ ३२ ॥ व्याघ्रचर्मणा मृत्युकूटेन चोपहितान् ॥ ३३ ॥ पीलुविखादनेन करकयोष्ट्र्या गर्दभीक्षीराभिमन्थनेनेति ध्रुवापकारिण इति ॥३४॥

शत्रुसे भग्न मनोरथ हुए २ (अर्थात् जिनको अपने स्वामीकी ओरसे किसी तरहकी भी आशा न रही हो, ऐसे) पुरुषोंको, फलहीन बेंत अथवा लोहमय अर्थात् खानेके सर्वथा अयोग्य अन्नपिण्ड, या न बरसनेवाले बादलकी उपमा देकर, उनके स्वामीके विरुद्ध उत्साहित किया जावे ॥ ३१ ॥ अलङ्कार आदि देकर पूजा किये हुए पुरुषोंको (अर्थात् पूजाके साथ जिनको विशेष अलङ्कार आदि मिले हों, और उसे ये अपने कर्मोंका फल समझते हों, ऐसे पुरुषोंको) बुराई करनेवाले अनिष्टकारक अलङ्कारोंका उदाहरण देकर उत्साहित करें ॥ ३२ ॥ शत्रुके द्वारा प्रयुक्त हुई २ चालोंसे ठगे हुए पुरुषोंको, मृत्युके स्थान–बनावटी व्याघ्रका उदाहरण देकर (अर्थात् व्याघ्र चर्म पहिनकर बनावटी बने हुए व्याघ्रका उदाहरण देकर) उनके स्वामीके विरुद्ध उत्साहित करें ॥ ३३ ॥ जो पुरुष सदाही अपकार करते रहते हैं उनको पीलुफलके खाने, करका (तिक्तरसका एक शाक विशेष), उष्ट्री (यह भी तिक्तरसकी एक ओषधि होती है), तथा गधीके दूधके बिलोनेका उदाहरण देकर, उनके स्वामीसे भिन्न करें ॥ ३४ ॥

प्रतिपन्नानर्थमानाभ्यां योजयेत् ॥ ३५ ॥ द्रव्यभक्तच्छिद्रेषु चैनान्द्रव्यभक्तदानैरनुगृह्णीयात् ॥ ३६ ॥ अप्रतिगृह्णतां स्त्रीकुमारालंकारानभिहरेयुः ॥ ३७ ॥

जो पुरुष, इन बातोंको मानकर शत्रुके विरुद्ध कार्य करें, उनको धन और मान (सत्कार) से युक्त किया जावे । अर्थात् धन मान आदिसे उनको अच्छी तरह सत्कृत किया जावे ॥ ३५ ॥ तथा इनपर जब धनसम्बन्धी या अन्नसम्बन्धी संकट आवे, तब धन और अन्न देकर इनकी अच्छी तरह सहायता की जावे ॥ ३६ ॥ यदि ये लोग अपना गौरव नष्ट होजानेके विचारसे, इस प्रकार धन और अन्न आदि न लेना चाहें, तो इनकी स्त्री और बच्चों आदिके लिये सत्कारपूर्वक आभूषण आदि बनवाकर देवे ॥ ३७ ॥

दुर्भिक्षस्तेनाटव्युपघातेषु च पौरजानपदानुत्साहयन्तः सत्त्रिणो ब्रूयुः ॥ ३८ ॥ राजानमनुग्रहं याचामहे ॥ ३९ ॥ निरनुग्रहाः परत्र गच्छाम इति ॥ ४० ॥

दुर्भिक्ष, और चोर तथा आटविकोंके आक्रमण करनेपर (अर्थात् दुर्भिक्ष की अवस्थामें और जब चोर तथा आटविक, प्रान्तमें प्रायः लूट मारकर प्रजा को सता रहे हों, तब) सत्री पुरुष, नगर निवासी तथा जनपदनिवासी पुरुषोंको उत्साहित करते हुए, इसप्रकार कहें:—॥ ३८ ॥ हम लोग, राजासे

सहायताके लिये याचना करते हैं ॥ ३९ ॥ यदि राजा, हमको सहायता नहीं देता है, तो हमसब लोग, दूसरे राजाके आश्रयमें चले जावेंगे । इसप्रकार सत्री, पौर जानपदोंको उनके स्वामीसे भिन्न करें ॥ ४० ॥

तथेति प्रतिपन्नेषु द्रव्यधान्यपरिग्रहैः ।
साचिव्यं कार्यमित्येतदुपजापाद्भुतं महत् ॥ ४१ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे उपजापः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदित एकचत्वारिंशच्छतः ॥ १४१ ॥

जब पौर जानपद पुरुष अपने स्वामीसे सहायता प्राप्त न कर, सत्री पुरुषोंके कथनको स्वीकार करनेके लिये तैयार होजावें ; तब धन धान्य और वासस्थान आदि देकर इनकी सहायता कीजावे । अर्थात् विजिगीषु उनकी इसप्रकार सहायता करे । शत्रुके आदमियोंका शत्रुसे भेद डालनेके लिये, यह एक बहुतही अद्भुत उपाय है ॥ ४१ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१७२ प्रकरण

योगवामन

योग अर्थात् कपटसे, शत्रुको दुर्गसे बाहर निकालदेना 'योगवामन' कहाता है । इस प्रकरणमें शत्रुको, कपटपूर्वक दुर्गसे बाहर निकाल देनेका ही निरूपण किया जायगा ।

मुण्डो जटिलो वा पर्वतगुहावासी चतुर्वर्षशतायुर्ब्रुवाणः प्रभूतजटिलान्तेवासी नगराभ्याशे तिष्ठेत् ॥ १ ॥ शिष्याश्चास्य मूलफलोपगमनैरमात्यान् राजानं च भगवद्दर्शनाय योजयेयुः ॥२॥

पहाड़की गुफ़ामें रहनेवाला, चारसौ बरसकी अपनी उमर बतानेवाला, बहुतसे जटाधारी छात्रोंसे युक्त, मुण्ड अथवा जटिल (जटाधारी) के वेषमें रहताहुआ गूढपुरुष, नगरके समीप ही अपनी स्थिति करे ॥ १ ॥ और इसके शिष्य, फल मूल (कन्द) आदि लेकर राजा और अमात्योंको भगवद्दर्शन (भगवानके दर्शन=उस जटाधारी सिद्धके वेषमें रहतेहुए गूढपुरुषके दर्शन करने) के लिये प्रेरित करें ॥ २ ॥

समागतश्च राज्ञा पूर्वराजदेशाभिज्ञानानि कथयेत् ॥ ३ ॥ शते शते च वर्षाणां पूर्णे ऽहमग्निं प्रविश्य पुनर्बालो भवामि ॥ ४ ॥ तदिह भवत्समीपे चतुर्थमग्निं प्रवेक्ष्यामि ॥ ५ ॥ अवश्यं मे भवान्मानयितव्यः ॥ ६ ॥ त्रीन्वरान्वृणीष्वेति ॥ ७ ॥

राजाके साथ समागम होनेपर, वह गूढपुरुष, पहिले राजा और देशोंके चिन्होंको बतलावे ॥ ३ ॥ और कहे कि-'मैं सौ सौ बरसके पूरे होनेपर, अग्निमें प्रवेश करके फिर बालक बनजाता हूं ॥ ४ ॥ अब यहां आपके पास चौथीबार अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ ५ ॥ मेरी ओरसे आपका, वर आदिके द्वारा अवश्य सत्कार होना चाहिये ॥ ६ ॥ आप मुझसे, इच्छानुसार तीन वर मांग सकते हैं ॥ ७ ॥

प्रतिपन्नं ब्रूयात् ॥ ८ ॥ सप्तरात्रमिह सपुत्रदारेण प्रेक्षाप्रहवणपूर्वं वस्तव्यमिति ॥ ९ ॥ वसन्तमवस्कन्देत ॥ १० ॥

यदि राजा इन सब बातोंको स्वीकार करले, तो उससे इस प्रकार कहे ॥ ८ ॥ आप सात रात्रि पर्यन्त, अपने पुत्र और स्त्री सहित, खेल तमाशा आदि करातेहुए (=प्रेक्षापूर्व) और प्रसन्नता पूर्वक सब ही आगन्तुक पुरुषोंको भोजन आदि देतेहुए (=प्रहवणपूर्व) यहां मेरे पास निवास करें ॥ ९ ॥ जब वह राजा, वहां इसप्रकार रहने लगे, तो छिपकर या सोते समयमें उसे मारडाले ॥ १० ॥

मुण्डो वा जटिलो वा स्थानिकव्यञ्जनः प्रभूतजटिलान्तेवासी वस्तशोणितदिग्धां वेणुशलाकां सुवर्णचूर्णेनावलिप्य वल्मीके निदध्यात्, उपजिह्विकानुसरणार्थं, स्वर्णनालिकां वा ॥ ११ ॥ ततः सत्त्री राज्ञः कथयेत् ॥ १२ ॥ असौ सिद्धः पुष्पितं निधिं जानातीति ॥ १३ ॥

अथवा किसी विशेष स्थानके अध्यक्षके रूपमें रहनेवाला (=स्थानिकव्यञ्जनः) मुण्ड या जटिल गूढपुरुष, बहुतसे जटाधारी छात्रोंको अपने समीप रखताहुआ, बकरेके खूनसे सनीहुई और सोनेके बुरादे (चूरे) से लिपटी हुई एक बांसकी शलाकाको; अथवा सुवर्णसे युक्त एक बांसकी नलीको, बमीकी पहिचानके लिये उस बमी (जंगलोंमें दीमक, जमीनसे मट्टी उठा २ कर जो ऊंचा सा ढेर बना देती है, उस ही को बमी कहते हैं) में ही रखदेवे ॥ ११ ॥ इसके बाद सत्री, राजाको जाकर कहे, कि—॥ १२ ॥ वह सिद्ध

पुरुष फूलेहुए ख़जानेको (=पुष्पितं निधिं=ऐसा ख़जाना, जो अभी तक फल न लाया हो, फल आनेसे पहिलेकी अवस्थामें रक्खाहुआ; ऐसे ख़जानेको) जानता है ॥ १३ ॥

स राज्ञा पृष्टस्तथेति ब्रूयात् ॥ १४ ॥ तच्चाभिज्ञानं दर्शयेत् ॥ १५ ॥ भूयो वा हिरण्यमन्तराधाय ब्रूयाच्चैनम् ॥ १६ ॥ नागरक्षितो ऽयं निधिः प्रणिपातसाध्य इति ॥ १७ ॥ प्रतिपन्नं ब्रूयात् ॥ १८ ॥ सप्तरात्रमिति समानम् ॥ १९ ॥

जब राजा, उस सिद्ध पुरुषसे पूछे, कि तुम ऐसा जानते हो ? तो वह कहदेवे, कि हां जानता हूं ॥ १४ ॥ और उस चिन्हको दिखलादेवे, (अर्थात् बमीमें लगीहुई, सुवर्णयुक्त बांसकी नलीको दिखलादेवे) ॥ १५ ॥ अथवा फिर वहां और भी बहुत अधिक सुवर्ण रखकर राजाको कहे, कि—॥ १६ ॥ यह ख़जाना सांपोंसे सुरक्षित है; इसलिये नम्रतापूर्वक ही वशमें किया जासकता है ॥ १७ ॥ जब राजा, सिद्धकी इन सब बातोंको स्वीकार करले, तो उससे कहे, कि ॥ १८ ॥ आपको सात रात्रि पर्यन्त मेरे यहां रहना चाहिये; इत्यादि आगे सब पहिलेकी तरह ही समझना चाहिये। अर्थात् जब राजा पुत्रस्त्रीसहित वहां पूर्ववत् रहनेलगे, तो उसे मारडाले ॥ १९ ॥

स्थानिकव्यञ्जनं वा रात्रौ तेजनाग्नियुक्तमेकान्ते तिष्ठन्तं सत्त्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः ॥ २० ॥ असौ सिद्धः सामेधिक इति ॥ २१ ॥ तं राजा यमर्थं याचेत तमस्य करिष्यमाणः सप्तरात्रमिति समानम् ॥ २२ ॥

अथवा रात्रि में तेजन अग्नि (अपने शरीरको अग्निके समान प्रज्वलित करके अद्भुत रूपमें दिखानेवाले प्रयोग; देखो–अधि० १४, अध्या० २) से युक्त हुए २ तथा एकान्तमें बैठेहुए, धीरे २ अपना रूप दिखातेहुए, उस स्थानिकव्यञ्जन गूढपुरुषको, सत्री पुरुष, राजाको दिखाकर, राजासे यह कहें, कि—॥ २० ॥ वह सिद्ध पुरुष भविष्यमें होनेवाली समृद्धिको बतला देता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर राजा, उस सिद्ध पुरुषसे जिस अर्थकी याचना करे, उसी को भविष्यमें पूरा करदेनेका वादा करके उससे कहे, कि आप सात रात्रि पर्यन्त मेरे पास रहें। शेष पूर्ववत् ही समझना चाहिये ॥ २२ ॥

सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं जम्भकविद्याभिः प्रलोभयेत् ॥ २३ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २४ ॥ सिद्धव्यञ्जनो वा देशदे-

वतामभ्यर्हितामाश्रित्य प्रहवणैरभीक्ष्णं प्रकृतिमुख्यानभिसंवास्य क्रमेण राजानमतिसंदध्यात् ॥ २५ ॥

अथवा सिद्धके वेषमें रहने वाला गूढपुरुष, राजाको कपट विद्याओंसे वशमें करे ॥ २३ ॥ जब राजा, उसके प्रलोभनमें फंस जावे, तो उससे कहे, कि सात रात्रिपर्यन्त मेरे समीप रहो । शेष सब पूर्ववत्ही समझना चाहिये ॥ २४ ॥ अथवा सिद्धके वेषमें रहने वाला गूढपुरुष, देशकी पूज्य देवताका आश्रय लेकर (उस देशमें जो सबसे प्रधान देवता मानी जातीहो, उसीका आश्रय लेकर) निरन्तर उत्सव और सहभोज (पार्टियों) आदिके द्वारा, वहां-की अमात्य आदि प्रधान प्रकृतियोंको अपने वशमें करके, फिर धीरे २ अर्थात् उन अमात्य आदिके द्वाराही, वहांके राजाकीभी वञ्चना करे ॥ २५ ॥

जटिलव्यञ्जनमन्तरुदकवासिनं वा सर्पचैत्यसुरङ्गाभूमिगृहा-पसरणं वरुणं नागराजं वा सत्त्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः ॥ २६ ॥ तं राजेति समानम् ॥ २७ ॥

उदकचारी विद्याओंके द्वारा, जलके बीचमेंही रहने वाले, सब अंगों-से सफेद (अर्थात् अत्यन्त बूढ़े=जिनके सबही स्थोंके बाल सफेद होगये हों; अथवा देवताके वर्णके समानही जिसके सब अंगोंका सफेद वर्ण होगया, जिसके देखनेसे यह विश्वास होजाय, कि यह वस्तुतः देवतासम्बन्धीही रूप है; इस तरहके श्वेतवर्ण) हुए २, किनारेकी सुरंग (छेद) या भूमिगृहसे निकलने वाले, वरुणके रूपमें या नागराजके रूपमें धीरे २ अपने अनुकूल बनाये हुए, जटिल वेषधारी सिद्ध पुरुषके सम्बन्धकी सब बातोंको सत्री पुरुष, राजासे कहें ॥ २६ ॥ जब राजा, उससे अपने किसी अभिलषित पदार्थकी याचना करे, तब वह शेष सम्पूर्ण व्यवहार पूर्ववत्ही करे ॥ २७ ॥

जनपदान्तेवासी सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं शत्रुदर्शनाय योजयेत् ॥ २८ ॥ प्रतिपन्नं बिम्बं कृत्वा शत्रुमावाहयित्वा निरु-द्धे देशे घातयेत् ॥ २९ ॥

अथवा जनपदकी सीमामें रहनेवाला, सिद्धका वेष धारण किये हुए गूढपुरुष, वहांके राजाको शत्रुके देखनेके लिये प्रेरित करे। अर्थात् उन दोनोंको उस सीमाप्रान्तमें परस्पर मिलानेकी योजना करे ॥ २८ ॥ जब राजा इस बातको स्वीकार करले, तो पहिलेसे संकेत किये हुए विशेष चिन्होंके द्वारा शत्रु-को वहां बुलाकर, किसी छिपे हुए स्थानमें उसे मरवाडाले ॥ २९ ॥

अश्वपण्योपयाता वैदेहकव्यञ्जनाः पण्योपयाननिमित्तमाहूय राजानं पण्यपरीक्षायामासक्तमश्वव्यतिकीर्णं वा हन्युरश्वैश्च प्रहरेयुः ॥ ३० ॥

घोड़े आदि बेचने वाले व्यापारीके वेषमें रहते हुए गूढपुरुष, बिक्रीके योग्य घोड़ोंको साथ लेकर, उस सौदेको दिखलानेके बहानेसे शत्रुराजाको वहां बुलवावें । जब वह उस सौदेकी (=घोड़ोंकी) परीक्षा अर्थात् अच्छी तरह देखभालमें लगा हुआ हो; या घोड़ोंकी भारी भीड़में घिर गया हो; तब उसको मारडालें । और उन घोड़ोंके द्वाराही (अर्थात् उन घोड़ों पर सवार होकरही) उसके मूलस्थान पर हमला कर देवें ॥ ३० ॥

नगराभ्याशे वा चैत्यमारुह्य रात्रौ तीक्ष्णाः कुम्भेषु नालीन्वा विदलानि धमन्तः 'स्वामिनो मुख्यानां वा मांसानि भक्षयिष्यामः पूजा नो वर्तता' मित्यव्यक्तं ब्रूयुः ॥ ३१ ॥ तदेषां नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः ख्यापयेयुः ॥ ३२ ॥

अथवा नगरके समीप रातमें किसी निर्दिष्ट (श्मशान आदिके) विशेष वृक्षपर चढ़कर सत्री पुरुष, अव्यक्त (अस्पष्ट) रूपमें इसप्रकार बोलें;—'हम स्वामीके (राजाके) या अमात्य आदि मुख्य प्रकृतियोंके मांसको अवश्य खायेंगे, हमारी पूजा होनी चाहिये' ॥ ३१ ॥ इन गूढपुरुषोंकी इस कही हुई बातको, नैमित्तिक (शकुन आदि बताने वाले) तथा मौहूर्तिक (ज्योतिषी) के वेषमें रहने वाले गुप्तपुरुष, सर्वत्र प्रसिद्ध करदेवें ॥ ३२ ॥

मङ्गल्ये वा ह्रदे तटाकमध्ये वा रात्रौ तेजनतैलाभ्यक्ता नागरूपिणः शक्तिमुसलान्ययोमयानि निष्पेषयन्तस्तथैव ब्रूयुः ॥ ३३ ॥

अथवा किसी मांगलिक गहरे जलाशय (तालाब) में रातके समय, दीप्तियुक्त तैलकी मालिश किये हुए, नाग देवताके रूपमें दिखने वाले सिद्ध वेषधारी गूढपुरुष, लोहेके बने हुए शक्ति और मूसलोंको परस्पर रगड़ते हुए उसी प्रकार बोलें । अर्थात् यह कहें, कि 'हम राजा और मन्त्रियोंका मांस खावेंगे, हमारी पूजा होनी चाहिये' ॥ ३३ ॥

ऋक्षचर्मकञ्चुकिनो वाग्निधूमोत्सर्गयुक्ता रक्षोरूपं वहन्तस्त्रिरपसव्यं नगरं कुर्वाणाः शिवसृगालवाशितान्तरेषु तथैव ब्रूयुः ॥ ३४ ॥ चैत्यदैवतप्रतिमां वा तेजनतैलेनाभ्रपटलच्छन्नेनाग्निना

वा रात्रौ प्रज्वाल्य तथैव ब्रूयुः ॥ ३५ ॥ तदन्ये ख्यापयेयुः ॥ ३६ ॥

अथवा रीछके चमड़ेको ऊपर ओढ़े हुए मुंहसे आग और धुआं निकालते हुए राक्षसोंका रूप धारण किये हुए, नगरके चारों ओर बाईं ओरसे तीनवार घूमते हुए, गूढपुरुष, कुत्ते तथा सृगाल (गीदड़) आदिके शब्दोंमें उसी प्रकार बोलें ॥ ३४ ॥ अथवा श्मशानके देवताकी, प्रतिमाको, दीप्तियुक्त तैलसे या अभरकके बीचमें छिपी हुई (ढकी हुई) आगसे रातमें प्रज्वलित करके, गूढपुरुष, उसी प्रकार बोलें ॥ ३५ ॥ तदनन्तर दूसरे सत्री पुरुष, इनकी कही हुई इस बातको सर्वत्र प्रसिद्ध करदेवें ॥ ३६ ॥

दैवतप्रतिमानामभ्यर्हितानां वा शोणितेन प्रस्रावमतिमात्रं कुर्युः ॥ ३७ ॥ तदन्ये दैवरुधिरसंस्रावे संग्रामे पराजयं ब्रूयुः ॥ ३८ ॥

अथवा गूढपुरुष, देवताओंमेंसे प्रधान देवताओंकी प्रतिमाओंका अत्यन्त रुधिरस्राव करें । तात्पर्य यह है, कि बकरे आदिका खून लेकर गूढपुरुष, उसको प्रतिमाओंके अन्दरसे होकर निकालें, जिससे देखने वालोंको यह प्रतीत हो, कि यह प्रतिमाही स्वयं खून बाहर निकाल रही है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उस दैवी रुधिरके बहने पर, अन्य सत्री पुरुष, सर्वत्र इस बातको प्रसिद्ध करें, कि इनलक्षणोंसे मालूम होता है, कि संग्राममें अवश्यही राजाका पराजय हो जायगा ॥ ३८ ॥

संधिरात्रिषु श्मशानप्रमुखे वा चैत्यमूर्ध्वभक्षितैर्मनुष्यैः प्ररूपयेयुः ॥ ३९ ॥ ततो रक्षोरूपी मनुष्यकं याचेत ॥ ४० ॥ यश्चात्र शूरवादिको ऽन्यतमो वा द्रष्टुमागच्छेत्तमन्ये लोहमुसलैर्हन्युः ॥ ४१ ॥ यथा रक्षोभिर्हत इति ज्ञायेत ॥ ४२ ॥

अथवा पर्वकी रातोंमें (अर्थात् पूर्णमासी अमावस्या आदिकी रातमें) मुख्य श्मशान स्थानमें, ऊपरसे खाये हुए मनुष्योंके द्वारा चिताके चिन्होंको. गूढपुरुष दिखलावें ॥ ३९ ॥ तदनन्तर राक्षसके रूपमें, एक गूढपुरुष; अपने खानेके लिये एक पुरुषको मांगे ॥ ४० ॥ जो कोई अपने आपको बहादुर कहने वाला, या और कोई पुरुष, वहां इसको देखनेके लिये आवे, उस पुरुषको दूसरे सत्री आदि मिलकर लोहेके मूसलोंसे मार डालें ॥ ४१ ॥ जिससे सब पुरुषोंको यही मालूमहो, कि अमुक मनुष्यको राक्षसोंने मारडाला है ॥ ४२ ॥

तदद्भुतं राज्ञस्तद्दर्शिनः सत्त्रिणश्च कथयेयुः ॥ ४३ ॥ ततो नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः शान्तिं प्रायश्चित्तं ब्रूयुः ॥ ४४ ॥ अन्यथा महदकुशलं राज्ञो देशस्य चेति ॥ ४५ ॥ प्रतिपन्नमेतेषु सप्तरात्रमेकैकमन्त्रबलिहोमं स्वयं राज्ञा कर्तव्यमिति ब्रूयुः ॥४६॥ ततः समानम् ॥ ४७ ॥

इस अद्भुत समाचारको, यह सब कुछ देखने वाले, अथवा दूसरे सत्री पुरुष, राजासे जाकर कहें ॥ ४३ ॥ तदनन्तर नैमित्तिक तथा मौहूर्त्तिकके वेषमें रहने वाले गुप्तपुरुष, शान्ति और प्रायश्चित्तके सम्बन्धमें राजासे कहें ॥ ४४ ॥ और यहभी कहें, कि यदि इस प्रकार न किया जायगा, तो राजाका और देशका बड़ा अमंगल होगा ॥ ४५ ॥ जब राजा सब बातोंको स्वीकार करले, तब ये पुरुष कहें, कि इन दुर्निमित्तोंके सम्बन्धमें सात रात्रि पर्यन्त राजाको स्वयंही, एक २ दुर्निमित्तके लिये एक २ बलि मन्त्र होम करना चाहिये। अर्थात् एक बलि (एक बकरे आदिकी भेंट चढ़ाना,) एक मन्त्र (= विशेष मन्त्रका जप करना), एक होम (अग्निमें आहुति डालकर यज्ञ करना), सात दिन तक प्रतिदिन करना चाहिये ॥ ४६ ॥ जब राजा वहां आकर रहता हुआ इस कामको करने लगे, तो अवसर पाकर गूढपुरुष, उसको मार डालें, यह सब पूर्ववत् ही समझना चाहिये ॥ ४७ ॥

एतान्वा योगानात्मनि दर्शयित्वा प्रतिकुर्वीत परेषामुपदेशार्थम् ॥ ४८ ॥ ततः प्रयोजयेद्योगान् ॥ ४९ ॥ योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोशाभिसंहरणं कुर्यात् ॥ ५० ॥

राजको चाहिये, इन सब योगोंको अपने आप दिखलाकर इनका प्रतीकार करे, और अपनी सहायता करने वाले पुरुषोंको सिखलावे। (अभिप्राय यह है, जो गूढपुरुष, विजिगीषुके मुकाबलेमें इन प्रयोगोंको आकर करें, विजिगीषु स्वयं इन प्रयोगोंको उन्हें दिखाकर कहे, कि देखो, मैं यह सब कुछ जानता हूं, तुम इन बातोंसे मुझे धोखा नहीं दे सकते, इस तरह कहकर शत्रुसे प्रयुक्त हुये इन प्रयोगोंका प्रतीकार करे। और अपने सहायक पुरुषोंको इन सब प्रयोगोंकी शिक्षा देवे,) ॥ ४८ ॥ तदन्तर अवसर आनेपर, शत्रुके ऊपर उनका प्रयोग करावे। अर्थात् उन प्रयोगोंके द्वारा शत्रुको अपने वशमें करे ॥ ४९ ॥ अथवा इन्हीं प्रयोगोंके द्वारा (अर्थात् इन उपायोंसे लोगोंके

दैवी कष्टोंका प्रतीकार करके) कोश बढ़ानेके लिये धनसञ्चयभी करे। (यह सूत्र पहिलेभी आया है। देखो अधि० ५, अध्या० २, सूत्र ५२) ॥ ५० ॥

हस्तिकामं वा नागवनपाला हस्तिना लक्षण्येन प्रलोभयेयुः ॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं गहनमेकायनं वा नीय घातयेयुर्बध्वा वापहरेयुः ॥ ५२ ॥ तेन मृगयाकामो व्याख्यातः ॥ ५३ ॥

अथवा हाथीकी इच्छा रखने वाले शत्रु राजाको, हाथियोंके जंगलोंकी रक्षा करने वाले, विजिगीषु पक्षके पुरुष, शुभलक्षणयुक्त हाथीके द्वारा प्रलोभन देवें। अर्थात् उस प्रकारका हाथी पकड़वा देनेकी अभिलाषा उसके हृदयमें उत्पन्न करा देवें ॥ ५१ ॥ जब वह इस बातको स्वीकार करले, तो उसे अकेलेही घने जंगलमें लेजाकर मरवा डालें, अथवा बांधकर अपने विजिगीषु राजाके पास लेजावें ॥ ५२ ॥ इसीके अनुसार, शिकार खेलनेकी इच्छा रखने वाले शत्रु राजाके सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये ॥ ५३ ॥

द्रव्यस्त्रीलोलुपमाढ्यविधवाभिर्वा परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिर्दायादनिक्षेपार्थमुपनीताभिः सत्त्रिणः प्रलोभयेयुः ॥ ५४ ॥ प्रतिपन्नं रात्रौ सत्त्रिच्छन्नाः समागमे शस्त्ररसाभ्यां घातयेयुः ॥ ५५ ॥

अथवा जो शत्रुराजा, धन और स्त्रियोंकी कामना रखता हो, उसको सत्री पुरुष, धनी विधवा स्त्रियोंके द्वारा, या अपने दायभाग तथा अमानत आदिके मुक़दमोंके बहानेसे वहां लाई हुई अन्य अत्यन्त रूपवती और जवान स्त्रियोंके द्वारा प्रलोभन देवें। अर्थात् इन स्त्रियोंके जालमें उस राजाको फंसावें ॥ ५४ ॥ जब राजा उनके काबूमें होजाय, और उनकी बातको स्वीकार करले, तब रातके समय उनके साथ समागम करनेके लिये किसी संकेतित स्थानमें राजाके आनेपर, सत्री पुरुषके साथ सम्बन्ध रखने वाले गूढपुरुष, शस्त्रप्रहार और विष आदि खिलाकर उस राजाको मार डालें ॥ ५५ ॥

सिद्धप्रव्रजितचैत्यस्तूपदैवतप्रतिमानामभीक्ष्णाभिगमनेषु वा भूमिगृहसुरङ्गागूढभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णाः परमभिहन्युः ॥ ५६ ॥

अथवा सिद्ध (साधु), प्रव्रजित (भिक्षु), श्मशानके स्तूप या देवताओं की प्रतिमाओंके देखनेके लिये बार २ जानेके अवसरोंपर ; भूमिगृह, सुरंग तथा गूढभित्तियोंमें छिपे हुए गूढपुरुष, शत्रुराजाको मार डालें ॥ ५६ ॥

येषु देशेषु याः प्रेक्षाः प्रेक्षते पार्थिवः स्वयम् ।
यात्राविहारे रमते यत्र क्रीडति वाम्भसि ॥ ५७ ॥

जिन देशोंमें राजा स्वयं, जिन नाचने गाने आदिके तमाशोंको देखता है, और यात्रा (विशेष उत्सव आदिमें सम्मिलित होनेके लिये जाना) तथा विहार (खेलकूद) आदिमें खूब लगा रहता है ; अथवा जहां जलक्रीडा आदिमें ही अपना खूब जीलगाता है; ॥ ५७ ॥

धिगुक्त्यादिषु सर्वेषु यज्ञप्रहवणेषु वा ।
सूतिकाप्रेतरोगेषु प्रीतिशोकभयेषु वा ॥ ५८ ॥

अथवा सब तरहकी धिक्कारोक्ति आदिमें (अर्थात् नाराज होकर गाली आदि देनेमें । किसी २ पुस्तकमें 'धिगुक्त्यादिषु सर्वेषु' के स्थानपर 'चाटूक्त्यादिषु कृत्येषु' ऐसा भी पाठ है ; इसका यह अर्थ करना चाहियेः—खुशामद आदि करनेके कामोंमें में, या इसी प्रकारके अन्य कामोंमें), यज्ञ और प्रीति-भोजन आदिमें, अथवा सूतक (बच्चा पैदा होना) मृत और रोगके अवसरोंपर यथाक्रम प्रसन्न, दुःखी और भयभीत रहनेमें, लगा रहता है; ॥ ५८ ॥

प्रमादं याति यस्मिन्वा विश्वासात्स्वजनोत्सवे ।
यत्रास्यारक्षिसंचारो दुर्दिने संकुलेषु वा ॥ ५९ ॥

अथवा जब किसी अपने सम्बन्धी जनोंके उत्सवमें विश्वासके कारण प्रमादको प्राप्त होता है, अर्थात् धोखा खाता है; अथवा जहां रक्षक पुरुषोंसे रहित होकर इसका आना जाना होता है; अथवा दुर्दिन में या भारी भीड़के अवसरोंपर; ॥ ५९ ॥

विप्रस्थाने प्रदीप्ते वा प्रविष्टे निर्जने ऽपि वा ।
वस्त्राभरणमाल्यानां फेलाभिः शयनासनैः ॥ ६० ॥

अथवा मार्ग छोड़कर निर्जन स्थानसे चलनेपर, अथवा नगर आदिमें आग लगजानेपर, या घने जनशून्य जंगलमें शत्रुके प्रविष्ट होजानेपर; उपभोग से बचेहुए वस्त्र आभरण तथा माला सम्बन्धी शयन और आसनों (सोने बैठनेके वस्त्र आदि) के द्वारा; ॥ ६० ॥

मद्यभोजनफेलाभिस्तूर्यैर्वाभिहतैः सह ।
प्रहरेयुररींस्तीक्ष्णाः पूर्वप्रणिहितैः सह ॥ ६१ ॥

अथवा मद्य और भोजनके उच्छिष्टके द्वारा प्रसन्न हुए २, तथा इशारे के लिये नियमानुसार बाजे बजातेहुए, और पहिलेसे नियुक्त हुए २ अपने

साथी गूढपुरुषोंके साथ २ ही तीक्ष्ण पुरुष, शत्रुओंके ऊपर प्रहार करके उन्हें मारडालें। (५७ वें श्लोकसे लगाकर यहांतक पांच श्लोकोंका इकट्ठा ही अन्वय समझना चाहिये) ॥ ६१ ॥

यथैव प्रविशेयुश्च द्विषतः सत्त्रहेतुभिः।
तथैव चापगच्छेयुरित्युक्तं योगवामनम् ॥ ६२ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे योगवामनं द्वितीयो ऽध्यायः ॥ २ ॥
आदितो द्विचत्वारिंशच्छतः ॥ १४२ ॥

जिसप्रकारसे शत्रुओंके बीचमें, सत्त्री पुरुष, कपटपूर्वक प्रवेश करें, उसी प्रकार कपटपूर्वक उन्हें, उनके बीचमें से बाहर निकल आना चाहिये। अन्यथा शत्रुओंके द्वारा उनके पकड़े जानेकी सम्भावना होसकती है। यहांतक योग-वामनका निरूपण करदिया गया ॥ ६२ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय

१७३ प्रकरण

गूढपुरुषोंका शत्रुदेशमें निवास।

{ गूढपुरुषोंका ही नाम 'अपसर्प' है। उनको शत्रुके देशमें भेजकर, वहां रखना ही 'अपसर्पप्रणिधि' कहाजाता है। इस प्रकरणमें इसी बातका निरूपण किया जायगा।

श्रेणीमुख्यमाप्तं निष्पातयेत् ॥ १ ॥ स परमाश्रित्य पक्षा-पदेशेन स्वविषयात्साचिव्यकरणसहायोपादानं कुर्वीत ॥ २ ॥ कृतापसर्पोपचयो वा परमनुमान्य स्वामिनो दूष्यग्रामं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यं दण्डमाक्रन्दं वा हत्वा परस्य प्रेषयेत् ॥ ३ ॥

विजिगीषु, अपने अत्यन्त विश्वस्त श्रेणीमुख्य पुरुषको, अपने यहांसे निकाल देवे। (इसका अभिप्राय यही है, कि ऊपरसे बनावटी शत्रुता दिखाकर उसको अपने यहांसे बाहर करदेवे, जिससे कि बिना सन्देहके वह शत्रुके पास आश्रय लेसके) ॥ १ ॥ वह विश्वस्त पुरुष, शत्रुका आश्रय लेकर, शत्रुपक्षके कार्यके बहानेसे, अपने देशसे अपनी सहायता करनेवाले पदार्थोंका संग्रह करे ॥ २ ॥ जब अपनी सहायताके लिये बहुतसे गूढपुरुषोंको इकट्ठा करलेवे,

तो शत्रुकी अनुमति लेकर, विजिगीषु (अपने वास्तविक स्वामी) के दूष्यवर्ग को, घोड़े तथा हाथियोंसे रहित, और दूष्य अमात्योंसे युक्त सेनाको, और आक्रन्द अर्थात् पृष्ठस्थित मित्रको जीतकर शत्रुके पास भेजदेवे ॥ ३ ॥

जनपदैकदेशं श्रेणीमटवीं वा सहायोपादानार्थं संश्रयेत ॥ ४ ॥ विश्वासमुपगतः स्वामिनः प्रेषयेत् ॥ ५ ॥ ततः स्वामी हास्ति-बन्धनमटवीघातं वापदिश्य गूढमेव प्रहरेत् ॥ ६ ॥ एतेनामात्याटविका व्याख्याताः ॥ ७ ॥

जनपदके एकदेश, श्रेणी (बलवान् पुरुषोंका कोई संघ), अथवा आटविक पुरुषोंको स्वामीकी सहायताके बहानेसे अपने वशमें करके, उनके साथ गूढ व्यवहार करे ॥ ४ ॥ जब ये लोग अपने पूर्ण विश्वस्त होजावें, तो अपने असली मालिक विजिगीषुकी सहायताके लिये, उन्हें उसके पास भेज देवे ॥ ५ ॥ तदनन्तर स्वामी अर्थात् विजिगीषु, अपने हाथियोंके पकड़े जाने या जंगलके नष्ट करदेनेका बहाना करके, चुपचाप ही (शत्रुके तैयार हुए विना ही), शत्रुपर चढ़ाई करदेवे ॥ ६ ॥ इसीके अनुसार, अमात्य तथा आटविकको गूढपुरुष बनाकर, शत्रुके देशमें भेजनेका प्रकार भी समझ लेना चाहिये ॥ ७ ॥

शत्रुणा मैत्रीं कृत्वामात्यानवक्षिपेत् ॥ ८ ॥ ते तच्छत्रोः प्रेषयेयुः ॥ ९ ॥ भर्तारं नः प्रसादयेति ॥ १० ॥ स यं दूतं प्रेषयेत् तमुपालभेत ॥ ११ ॥ भर्ता ते माममात्यैर्भेदयति ॥ १२ ॥ न च पुनरिहागन्तव्यमिति ॥ १३ ॥

गूढपुरुषको शत्रुके देशमें भेजनेका अब और प्रकार बताते हैं:—विजिगीषु, अपने शत्रुके साथ ऊपरसे बनावटी मित्रता करके, अपने अमात्योंको धिक्कारपूर्वक तिरस्कृत करे ॥ ८ ॥ वे अमात्य, उस शत्रुके पास अपने दूत को निम्नलिखित सन्देश देकर भेजें, कि ॥ ९ ॥ आप हमारे मालिकको प्रसन्न करा दीजिये ॥ १० ॥ तदनन्तर वह शत्रु, अपने जिस दूतको, विजिगीषुके पास वह काम करनेके लिये भेजे, विजिगीषु उसको यह कहकर घुड़क देवे, कि ॥ ११ ॥ 'तुम्हारा मालिक हमारे अमात्योंसे मेरा भेद कराना चाहता है ॥ १२ ॥ याद रक्खो ! इस तरहका सन्देश लेकर मेरे पास फिर कभी मत आना ॥ १३ ॥

अथैकममात्यं निष्पातयेत् ॥ १४ ॥ स परमाश्रित्य योगापसर्पापरक्तदूष्यानशक्तिमतः स्तेनाटविकानुभयोपघातकान्वा परस्योपहरेत् ॥ १५ ॥ आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषोपघातमस्योपहरेत् ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर, विजिगीषु, उन अमात्योंमेंसे एक अमात्यको अपने यहांसे निकाल देवे ॥ १४ ॥ वह अमात्य शत्रु का आश्रय लेकर; कपटी गूढ़पुरुष, स्वामीसे अपरक्त हुए २ दूष्यपुरुष, शक्ति रहित चोर तथा आटविक पुरुषोंको, अथवा विजिगीषु और शत्रु दोनों का ही नाश करनेवाले पुरुषोंको, यह कहता हुआ शत्रु के पास लेजावे, कि मैंने तुम्हारे इतने नये सहायक तैयार किये हैं ॥ १५ ॥ जब शत्रु इस अमात्य पर पूरा विश्वास करने लगे, तो वह अमात्य शत्रुके शक्तिशाली पुरुषोंको मार डाले ॥ १६ ॥

अन्तपालमाटविकं दण्डचारिणं वा ॥ १७ ॥ दृढमसौ चासौ च ते शत्रुणा संधत्त इति ॥ १८ ॥ अथ पश्चादभित्यक्तशासनैरेनान्घातयेत् ॥ १९ ॥ दण्डबलव्यवहारेण वा शत्रुमुद्योज्य घातयेत् ॥ २० ॥

उनके नष्ट करनेका उपाय निम्नलिखित रीतिसे समझना चाहियेः—वह अमात्य, आटविक (जंगलकी रक्षा करने वाला) तथा सैनिक पुरुषोंकी दुष्टताकी सूचना, शत्रु राजाको देवे । अर्थात् राजाको कहे, कि आपके ये आटविक और सैनिक पुरुष, बड़े दुष्ट होगये हैं ॥ १७ ॥ मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं; कि अमुक २ आटविक या सैनिक पुरुष, शत्रुके साथ सन्धि कररहे हैं ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर, विजिगीषुके वध्य पुरुषोंके पास, आटविक और विजिगीषुकी परस्पर मित्रताको प्रगट करनेवाले कपट लेखोंको शत्रुको दिखाकर अन्तपाल आदिको मरवा डाले ॥ १९ ॥ अथवा, शत्रुको सैनिक सहायता देनेका वादा करके, उसके शत्रुसे उसे भिड़ादेवे, बादमें उसे सहायता न देकर, उसके शत्रु द्वाराही उसे मरवा डाले ॥ २० ॥

कृत्यपक्षोपग्रहेण वा परस्यामित्रं राजानमात्मन्यपकारयित्वाभियुञ्जीत ॥ २१ ॥ ततः परस्य प्रेषयेत् ॥ २२ ॥ असौ ते वैरी ममापकरोति ॥ २३ ॥ तमेहि संभूय हनिष्यावः ॥ २४ ॥ भूमौ हिरण्ये वा ते परिग्रह इति ॥ २५ ॥

अथवा शत्रुके कृत्यपक्ष (क्रुद्ध, लुब्ध तथा भीतवर्ग) को अपने अनुकूल बनाकर विजिगीषु, शत्रुके शत्रुराजासे अपने ऊपर कुछ अपकार करवाकर, उसपर चढ़ाई करने की तैयारी कर देवे ॥ २१ ॥ तदनन्तर शत्रुके पास निम्न-लिखित सन्देश देकर अपने दूतको भेजे ॥ २२ ॥ वह तुम्हारा शत्रु बराबर मेरा अपकार कररहा है ॥ २३ ॥ आओ, हम दोनों मिलकर उसपर चढ़ाई करेंगे; अर्थात् उसको मिलकर मारेंगे ॥ २४ ॥ शत्रुपर विजय प्राप्त होनेपर भूमि और हिरण्य (धन) में तुम्हारा हिस्सा होगा ॥ २५ ॥

प्रतिपन्नमभिसत्कृत्यागतमवस्कन्देन प्रकाशयुद्धेन वा शत्रुणा घातयेत् ॥ २६ ॥ अभिविश्वासनार्थं भूमिदानपुत्राभिषेकरक्षापदेशेन वा ग्राहयेत् ॥ २७ ॥ अविषह्यमुपांशुदण्डेन वा घातयेत् ॥ २८ ॥

जब शत्रु इस बातको स्वीकार करले,और अपने पास आजावे तो पहिले उसको अच्छी तरह सत्कार करके, फिर सोनेके समय छिपकर मारडाले । अथवा प्रकाशयुद्धके समय शत्रुके द्वाराही मरवा डाले ॥ २६ ॥ यदि ये दोनों मिलकर शत्रुको जीत लेवें, तो विजिगीषु, प्रथम प्रतिज्ञा कीहुई भूमिको देने. पुत्रके राज्याभिषेक करने तथा अपनी रक्षा करनेके बहानेसे शत्रुको पकड़वा देवे ॥ २७ ॥ यदि शत्रु, इस प्रकार भी काबू में न आवे, तो उपांशुदण्डके द्वारा उसका वध करवा देवे । अर्थात् छिपकर तीक्ष्ण पुरुषोंके द्वारा मरवा देवे ॥ २८ ॥

स चेद्दण्डं दद्यान्न स्वयमागच्छेत्तमस्य वैरिणा घातयेत् ॥ २९ ॥ दण्डेन वा प्रयातुमिच्छेन्न विजिगीषुणा, तथाप्येनमुभयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ३० ॥

शत्रुको नष्ट करनेके ये पूर्वोक्त उपाय उसी समय किये जासकते हैं, जब शत्रु स्वयं ही विजिगीषुकी सहायताके लिये आजावे । यदि वह अपनी सेनाको ही विजिगीषुकी सहायताके लिये भेजदेवे, और स्वयं न आवे; तो उसकी सेनाको उसके शत्रुके द्वारा मरवा डाले । अर्थात् शत्रुके मुकाबलेमें लड़ाकर नष्ट करवा देवे ॥ २९ ॥ यदि विजिगीषुके साथ मिलकर, अपने शत्रुसे युद्ध करनेके लिये आया हुआ शत्रु, अपनी सेनाके साथही चलना चाहता है, विजिगीषुके साथ चलना नहीं चाहता, तोभी इसको दोनों ओरसे घेरकर मरवा डाले ॥ ३० ॥

अविश्वस्तो वा प्रत्येकशो यातुमिच्छेच्चद्राज्यैकदेशं वा यातव्यस्यादातुकामस्तथाप्येनं वैरिणा सर्वसन्दोहेन वा घातयेत् ॥ ३१ ॥ वैरिणा वा सक्तस्य दण्डोपनयेन मूलमन्यतो हारयेत् ॥ ३२ ॥

यदि शत्रु, विजिगीषुपर अविश्वास रखनेके कारण, अपनी सेनाको अलहदाही लेकर इस कामनासे उस शत्रु राजापर चढ़ना चाहता है ; कि उसके राज्यके एक हिस्सेको मैं अपने वशमें करलूंगा ; तोभी विजिगीषु, इस शत्रुको इसके शत्रुके द्वारा अथवा अपनीही सम्पूर्ण सैनिक शक्तिके द्वारा अवश्य मरवा डाले ॥ ३१ ॥ अथवा अपने शत्रुके ऊपर चढ़ाई करके, उसके साथ लड़ाईमें लगे हुए शत्रुके मूलस्थानकोही ; विजिगीषु, सेना भेजकर अपहरण करवा लेवे । अर्थात् शत्रु, अपने शत्रुपर चढ़ाई करके जावे, और विजिगीषु उसकी राजधानीपर लूटमार करदेवे ॥ ३२ ॥

शत्रुभूम्या वा मित्रं पणेत ॥ ३३ ॥ मित्रभूम्या वा शत्रुम् ॥ ३४ ॥ ततः शत्रुभूमिलिप्सायां मित्रेणात्मन्यपकारयित्वाभियुञ्जीत ॥ ३५ ॥ इति समानाः पूर्वेण सर्व एव योगाः ॥ ३६ ॥

अथवा विजिगीषु, मित्रके साथ निम्नलिखित रीतिसे छिपे तौरपर सन्धि करे, कि यदि हम दोनोंने मिलकर शत्रुको जीत लिया, तो उसकी भूमिको आधा २ बांटलेंगे ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार विजिगीषु, शत्रुके साथ भी छिपे तौरपर शर्त्त करे, कि हम तुम मिलकर, तुम्हारे अमुक शत्रुपर (अर्थात् विजिगीषुके मित्रपर) चढ़ाई करके, उसकी भूमिको बराबर बांटलेंगे ॥ ३४ ॥ इसतरह जब शत्रुकी भूमिको लेने की इच्छा हो, तो विजिगीषु, मित्रके द्वारा अपने ऊपर कुछ अपकार करवाके, इसी बहानेसे उसके ऊपर आक्रमण करने की तैयारी करदेवे ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर सब कार्य पूर्ववत् ही करना चाहिये । (अर्थात् मिलकर चढ़ाई करनेके लिये शत्रुको अपने समीप बुलाकर, उसे उपर्युक्त विविध उपायोंसे मारडाले) ॥ ३६ ॥

शत्रुं वा मित्रभूमिलिप्सायां प्रतिपन्नं दण्डेनानुगृह्णीयात् ॥३७॥ ततो मित्रगतमतिसंदध्यात् ॥ ३८ ॥ कृतप्रतिविधानो वा व्यसनमात्मनो दर्शयित्वा मित्रेणामित्रमुत्साहयित्वात्मानमभियोजयेत् ॥ ३९ ॥

अथवा जब शत्रुको, विजिगीषुके मित्रकी भूमि लेनेकी इच्छा हो, तो शत्रुके तैयार होनेपर, उसको अपनी ओरसे सैनिक सहायता देवे। अर्थात् अपनी सेना साथ देकर मित्रके देशपर उससे चढ़ाई करवादेवे ॥ ३७ ॥ जब वह मित्रके देशमें पहुंचजावे, तो मित्रसे मिलकर, शत्रुको नष्ट करवादेवे ॥३८॥ अथवा हरतरहकी आपत्तिका प्रतीकार करके विजिगीषु, अपने आपके ऊपर कोई बनावटी आपत्ति दिखाकर, अपने मित्रके द्वारा शत्रुको उत्साहित करके अपने ऊपर चढ़ाई करवादेवे (इस सूत्रमें कृतप्रधानो वा' इसके स्थानपर किसी २ पुस्तकमें 'ततः प्रतिविधानेन वा' ऐसा भी पाठ है। परन्तु दोनों पाठोंका अर्थ समान ही है) ॥ ३९ ॥

ततः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥ जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत् ॥ ४१ ॥ मित्रेणाहूतश्चेच्छत्रुरग्राह्य स्थातुमिच्छेत्सामन्तादिभिर्मूलमस्य हारयेत् ॥ ४२ ॥ दण्डेन वा त्रातुमिच्छेत्तमस्य घातयेत् ॥ ४३ ॥

इसप्रकार विजिगीषुके मित्रके साथ मिलकर, जब शत्रु विजिगीषुपर चढ़ाई करदेवे, तो विजिगीषु और उसका मित्र, दोनों ही, शत्रुको बीचमें घेरकर मारडालें ॥ ४० ॥ अथवा जीते हुए ही उसे पकड़कर, उसके राज्यका परिवर्त्तन करदें। अर्थात् उसको बन्धनमें डालदेवें, और उसकी गद्दीपर, अपने आज्ञाकारी उसके पुत्र या अन्य किसी सम्बन्धीको बैठा देवें ॥ ४१ ॥ यदि विजिगीषुके मित्रसे बुलायाहुआ शत्रु, उस मित्रसे अलहदा रहना चाहे अर्थात् उसके साथ २ मिलकर लड़ाई करनेको न जाना चाहे, किन्तु पृथक् होकर ही जाना चाहे; तो सामन्त (शत्रुके समीप देशके राजा) आदिके द्वारा इसकी राजधानीका अपहरण करवादेवे ॥ ४२ ॥ यदि सेनाके द्वारा वह अपनी रक्षा करना चाहे, तो उस सेनाको मरवा दियाजावे ॥ ४३ ॥

तौ चेन्न भिद्येयातां प्रकाशमेवान्योन्यस्य भूम्या पणेत ॥ ४४ ॥ ततः परस्परं मित्रव्यञ्जनोभयवेतना वा दूतान्प्रेषयेयुः ॥ ४५ ॥ अयं ते राजा भूमिं लिप्सते शत्रुसंहित इति ॥ ४६ ॥ तयोरन्यतरो जाताशङ्कारोषः पूर्ववच्चेष्टेत ॥ ४७ ॥

मित्र और शत्रु, यदि छिपे तौरपर शर्त्त करनेसे भेदको प्राप्त न होवें, तो प्रकटरूपमेंही एक दूसरेकी भूमिकी शर्त्त करे। अर्थात् मित्रकी भूमिसे शत्रुके साथ, और शत्रुकी भूमिसे मित्रके साथ खुले तौरपरही शर्त्त करलेवे

॥ ४४ ॥ तदनन्तर शत्रु और मित्र दोनोंकेही पास, शत्रु और मित्रके दोनोंके मित्रके वेषमें रहनेवाले गूढ़पुरुष, अथवा दोनों ओरसे (विजिगीषु और मित्रकी ओरसे) वेतन पानेवाले गुप्तपुरुष, निम्नलिखित संदेशको देकर अपने दूतोंको भेजें ॥ ४५ ॥ वह संदेश यह है:—'यह राजा, शत्रुके साथ मिलकर तुम्हारी भूमिको लेना चाहता है ॥ ४६ ॥ उन दोनों (मित्र शत्रुओं) मेंसे कोई एक शङ्कितचित्त तथा क्रुद्ध होकर, पूर्ववत्ही चेष्टा करे। अभिप्राय यह है, उन दोनों मेंसे जो क्रुद्ध होकर विजिगीषुपर चढ़ाई करे, उससे दूसरेके साथ मिलकर विजिगीषु, पूर्वोक्त उपायोंके द्वारा आक्रमणकारीको नष्ट करडाले ॥ ४७ ॥

दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यान्वा कृत्यपक्षहेतुभिरभिविख्याप्य प्रव्राजयेत् ॥ ४८ ॥ ते युद्धावस्कन्दावरोधव्यसनेषु शत्रुमतिसंदध्युः ॥ ४९ ॥ भेदं वास्य स्ववर्गेभ्यः कुर्युः ॥ ५० ॥ अभित्यक्तशासनैः प्रतिसमानयेयुः ॥ ५१ ॥

अथवा दुर्ग (मूलस्थान=राजधानी), राष्ट्र (जनपद) और सेनाके मुख्य व्यक्तियोंको ; अपने (विजिगीषुके) कृत्यपक्ष (क्रुद्ध लुब्ध भीतवर्ग) की सहायता करनेका बहाना करके, अर्थात् ये लोग मेरे कृत्यपक्षको सहायता देते हैं, इस प्रकार सर्वत्र प्रसिद्ध करके, उनको विजिगीषु, अपने देशसे बाहर निकाल देवे ॥ ४८ ॥ वे सब लोग, शत्रुके आश्रयमें जाकर ; कभी युद्धके अवसरपर, सोते समय, अन्तःपुरमें रहनेके समय, या किसी विशेष आपत्तिके समयमें मौका पाकर शत्रुको मारडालें ॥ ४९ ॥ अथवा इसके अपने अमात्य आदि वर्गोंसेही इसका भेद करवा देवें ॥ ५० ॥ और विजिगीषुके वध्य पुरुषोंके द्वारा लाये गये कपटपूर्ण लेखोंके साथ, अपनी मिथ्याकल्पित बातकों मिला देवें। अभिप्राय यह है, कि इस प्रकार अमात्य आदिके साथ राजाका भेद डलवा देवे ॥५१॥

लुब्धकव्यञ्जना वा मांसविक्रयेण द्वाःस्था दौवारिकापाश्रयाश्चोराभ्यागमं परस्य द्विस्त्रिरिति निवेद्य लब्धप्रत्यया भर्तुरनीकं द्विधा निवेश्य ग्रामवधेऽवस्कन्दे च द्विषतो ब्रूयुः ॥ ५२ ॥ आसन्नश्चोरगणो महांश्चाक्रन्दः प्रभूतं सैन्यमागच्छत्विति ॥ ५३ ॥

अथवा शिकारीके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुष, मांस बेचनेके बहानेसे दरवाजेपर ठहरकर, द्वारपालोंके आश्रयसे, दो तीन बार चिल्लाकर इस बातको कहें, कि शत्रुके गांवोंमें चोर आते हैं। इस तरह जब राजाको इन बातोंपर विश्वास होजावे, तो ये अपने राजाकी सेनाको, ग्रामवध और रात्रिको सोते समयकी लूटमारके लिये दो भागोंमें विभक्त करके शत्रुसे कहें:—॥ ५२ ॥

चोरोंका झुण्ड बहुत नजदीक आया हुआ है; आदमियोंका बहुत कोलाहल मचरहा है ; आपकी बहुतसी सेना उनके प्रतीकारके लिये हमारे साथ आनी चाहिये ॥ ५३ ॥

तदर्पयित्वा ग्रामघातदण्डस्य सैन्यमितरदादाय रात्रौ दुर्गद्वारेषु ब्रूयुः ॥ ५४ ॥ हतश्चोरगणः ॥ ५५ ॥ सिद्धयात्रमिदं सैन्यमागतम् ॥ ५६ ॥ द्वारमपाव्रियतामिति ॥ ५७ ॥ पूर्वप्रणिहिता वा द्वाराणि दद्युः ॥ ५८ ॥ तैः सह प्रहरेयुः ॥ ५९ ॥

इसप्रकार उस सेनाको, ग्रामवधके लिये नियुक्त हुई सेनाके सुपुर्द करके, अपनी सेनाके दूसरे हिस्सेको लेकर, रातके समय दुर्गके दरवाजोंपर आकर इसतरह कहें:—॥ ५४ ॥ चोरोंके समूहको हम लोगोंने मारडाला है ॥ ५५ ॥ यह सेना अपनी यात्राको सफल करके, अर्थात् अपने कार्यको पूरा करके यहां पहुंच गई है ॥ ५६ ॥ इसलिये दुर्गके दरवाजोंको खोलदिया जावे' ॥ ५७ ॥ अथवा पहिले नियुक्त हुए २ गूढपुरुषही इशारा पाकर दरवाजा खोलदेवें ॥ ५८ ॥ और आई हुई सेनाके साथही वे लोग भी दुर्गपर हमला बोलदेवें ॥ ५९ ॥

कारुशिल्पिपाषण्डकुशीलववैदेहकव्यञ्जनानायुधीयान्वा परदुर्गे प्रणिदध्यात् ॥ ६० ॥ तेषां गृहपतिकव्यञ्जनाः काष्ठतृणधान्यपण्यशकटैः प्रहरणावरणान्यभिहरेयुः ॥ ६१ ॥ देवध्वजप्रतिमाभिर्वा ॥ ६२ ॥

अथवा कारु, शिल्पी, पाखण्डी, कुशीलव (नट) और वैदेहक (व्यापारी) के वेषमें रहनेवाले या आयुधजीवीके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुषोंको शत्रुके दुर्गमें भेदिया बनाकर नियुक्त किया जावे ॥ ६० ॥ उनमेंसे गृहस्थके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुष, लकड़ी घास अनाज और दूसरे सौदोंकी गाड़ियों द्वारा हथियार तथा कवच आदि युद्धोपयोगी सामग्रीका संग्रह करके, उन कारु आदिके वेषमें रहनेवाले गूढपुरुषोंको देदेवें ॥ ६१ ॥ अथवा देवताओंकी ध्वजारूप तलवारोंके साथ या प्रतिमाओंके साथ लाकर भी हथियार आदिका संग्रह करके; कारु आदि गुप्तपुरुषोंको देदेवें ॥ ६२ ॥

ततस्तद्व्यञ्जनाः प्रमत्तवधमवस्कन्दप्रतिग्रहमभिप्रहरणं पृष्ठतः शङ्खदुन्दुभिशब्देन वा प्रविष्टमित्यावेदयेयुः ॥ ६३ ॥ प्राकारद्वाराट्टालकदानमनीकभेदं घातं वा कुर्युः ॥ ६४ ॥

तदनन्तर कारु आदिके वेषमें रहने वाले गूढपुरुष, प्रमादी पुरुषोंके वध, बलात्कार लूटमार और चारों ओरसे आक्रमणके सम्बन्धमें; तथा शंख और नगाड़ेके शब्दके साथ, पीछेकी ओरसे हमला करनेके सम्बन्धमें निवेदन करदेवें । अर्थात् आसन्न भविष्यमें होने वाली इस घटनाकी सूचना, शत्रुको देदेवें ॥ ६३ ॥ जब शत्रु, उनके प्रतीकारके लिये, अपनी सेनाके साथ पीछेकी ओरको जावे, तो इधरसे कारु आदिके वेषमें गूढपुरुष; परकोटा, प्रधान दरवाजा तथा दरवाजेके ऊपरके चौबारे आदिको तोड़नेके साथ २ ही पूर्ववत् शत्रुकी सेनाकोभी विभक्त करदेवें । अथवा अवसर पाकर सर्वथा नष्टही करडालें ॥ ६४ ॥

सार्थगणवासिभिरातिवाहिकैः कन्यावाहिकैरश्वपण्यव्यवहारिभिरुपकरणहारकैर्धान्यक्रेतृविक्रेतृभिर्वा प्रव्रजितलिङ्गिभिर्दूतैश्च दण्डातिनयनं संधिकर्म विश्वासनार्थमिति राजापसर्पाः ॥ ६५ ॥

शत्रुकी सेनामें भेद डालनेके समान, उसे दुर्गम मार्गोंसे लंघानाभी गूढपुरुषकाही कार्य है, इसी बातका अब निरूपण करते हैं:—दुर्गम मार्गोंसे पार करने वाले व्यापारियोंके झुण्डके रूपमें रहते हुए, कन्याओंको लेजाते हुए, घोड़ोंका व्यापार करते हुए, उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे सौदे बेचते हुए या उनको इधरसे उधर ढोते हुए, अनाज आदिकी खरीद फरोख्त करते हुए तथा संन्यासियोंके वेषमें रहते हुए दूतही, सेनाओंको दुर्गम मार्गोंसे निकाल कर बाहर लेजावें; तथा शत्रुके विश्वासके लिये सन्धिकी शर्तोंका पूरा २ ध्यान रक्खें । इसप्रकार यहां तक राजाओंके गूढपुरुषोंका निरूपण कर दिया गया ॥ ६५ ॥

एत एवाटवीनामपसर्पाः कण्टकशोधनोक्ताश्च ॥ ६६ ॥ व्रजमटव्यासन्नमपसर्पाः सार्थं वा चोरैर्घातयेयुः ॥ ६७ ॥ कृतसंकेतमन्नपानं चात्र मदनरसविद्धं वा कृत्वापगच्छेयुः ॥ ६८ ॥ गोपालकवैदेहकाश्च ततश्चोरान् गृहीतलोप्त्रभाराः मदनरसविकारकाले ऽवस्कन्दयेयुः ॥ ६९ ॥

कण्टकशोधन अधिकरणमें कहे हुए, तथा ये यहां कहे हुए गूढपुरुषही, आटविकोंकेभी समझने चाहियें । तात्पर्य यह है, कि आवश्यकता होने पर आटविकोंमेंभी येही गूढपुरुष कार्य करें ॥ ६६ ॥ आटविकोंमें, गूढपुरुष, यह कार्य करें:—जंगलके समीपकी गोशालाओं तथा मार्गमें चलने वाले पुरुषोंको, आटविकों (=चोरों=चोरवृत्ति पुरुषही आटविक कहलाते हैं) के साथ मिलकर लूटलें, या उन्हें नष्ट करडालें ॥ ६७ ॥ तदनन्तर संकेत पाकर, उनके खाने

पीनेकी वस्तुओंमें, मादकता करने वाले विषोंको मिलाकर, अवसर पातेही वहांसे भाग जावें ॥ ६८ ॥ तदनन्तर ग्वाले और व्यापारी, चोरोंसे चुराये हुए माल (=भार) को पकड़कर, अर्थात् उनको स्वयं लेकर, विषका विकार होनेके समयमें (अर्थात् विषयुक्त खाद्य पदार्थ खाजानेके कारण, उसका असर होनेके समयमें) चोरोंको गिरफ्तार करलेवें ॥ ६९ ॥

संकर्षणदैवतीयो वा मुण्डजटिलव्यञ्जनः प्रहवणकर्मणा मदनरसयोगाभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ७० ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ७१ ॥ शौण्डिकव्यञ्जनो वा दैवतप्रेतकार्योत्सवसमाजेष्वाट-विकान्सुराविक्रयोपायननिमित्तं मदनरसयोगाभ्यामतिसंदध्यात् ॥ ७२ ॥ अथावस्कन्दं दद्यात् ॥ ७३ ॥

अथवा संकर्षण देवताको माननेवाला (शराबके साथ बहुत मुहब्बत रखनेवाले बलभद्रको ही अपना इष्टदेव समझनेवाला), मुण्ड तथा जटाधारी के वेषमें रहता हुआ गूढपुरुष ही, सन्तुष्ट होकर सहभोज आदिके कराने (अर्थात् पार्टी देने) के द्वारा, तथा मादकतायुक्त विष या अन्य प्रयोगोंसे आटाविकोंको ठगे; अर्थात् उन्हें वशमें करे ॥ ७० ॥ इसके बाद जब उनको विष आदिका असर हो जावे, तो उन्हें गिरफ्तार कर लेवे ॥ ७१ ॥ अथवा शराब बेचनेवालेके वेषमें रहनेवाला गूढपुरुष; देवतासम्बन्धी कार्य, प्रेतकार्य, उत्सव तथा अन्य सभा समाजोंके अवसरोंपर, आटविक पुरुषोंको, विक्रयार्थ सुराके लानेका बहाना करके मदकारक विष आदि रस, तथा अन्य योगोंके द्वारा अपने वशमें करे ॥ ७२ ॥ जब उनके ऊपर, इन रस आदिका प्रभाव होजाय तो उनको गिरफ्तार कर लिया जावे ॥ ७३ ॥

ग्रामघातप्रविष्टां वा विक्षिप्य बहुधाटवीम् ।
घातयेदिति चोराणामपसर्पाः प्रकीर्तिताः ॥ ७४ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे अपसर्पप्रणिधिस्तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥
आदितस्त्रिचत्वारिंशच्छतः ॥ १४३ ॥

ग्राम आदि को नष्ट करनेके लिये, गांवमें प्रविष्ट हुए २ आटविक पुरुषों को, भिन्न २ प्रकारसे उनके चित्तमें विकार उत्पन्न करके, नष्ट करदिया जावे । यहां तक आटाविक अर्थात् चोरोंके सम्बन्धमें, गूढपुरुषोंके कार्यों का निरूपण करादिया गया ॥ ७४ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त

चौथा अध्याय

१७४-१७५ प्रकरण

शत्रुके दुर्गको घेरना तथा शत्रुके दुर्गका अवमर्द

इस अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें 'शत्रुके दुर्गको चारों ओरसे घेरकर, फिर सेनाको क्या करना चाहिये' इस बातका निरूपण किया जायगा । शत्रुके दुर्गको अपने अधिकारमें करलेना 'अवमर्द' कहाता है; यह अवमर्द कब और किस समय करना चाहिये; इत्यादि बातोंका दूसरे प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ।

कर्शनपूर्वं पर्युपासनकर्म ॥ १ ॥ जनपदं यथानिविष्टमभये स्थापयेत् ॥ २ ॥ उत्थितमनुग्रहपरिहाराभ्यां निवेशयेदन्यत्रापसरतः ॥ ३ ॥

शत्रुके कोश और सैन्यका नाश करते हुए, तथा अमात्य आदिका वध करते हुएही, विजिगीषुको शत्रुके दुर्गके चारों ओर घेरा डालनेका काम करना चाहिये ॥ १ ॥ परन्तु इस अवस्थामेंभी विजिगीषु, शत्रुके जनपदको पहिलेके समानही अभयस्थानमें रक्खे, अर्थात् जनपदको किसी तरहकी पीड़ा न होने देवे, प्रत्युत उसकी रक्षाही करे ॥ २ ॥ यदि जनपद, विजिगीषुके विरुद्ध आन्दोलन करे, तो उसे धन आदि देने तथा टैक्स आदिके छोड़ देनेसे, शान्त करे । परन्तु यह उसी अवस्थामें करना चाहिये, जब कि जनपद अपने स्थानको छोड़ कर कहीं बाहर न जारहा हो । बाहर जानेके लिये तैयार होनेपर तो उसे किसी तरहकी भी सहायता न देवे ॥ ३ ॥

समग्रमन्यस्यां भूमौ निवेशयेदेकस्यां वा वासयेत् ॥ ४ ॥ न ह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवतीति कौटल्यः ॥५॥ विषमस्थस्य मुष्टिं सस्यं वा हन्याद्वीवधप्रसारौ च ॥ ६ ॥

उस जनपदमें भिन्न२ स्थानोंपरही, अधिक आदमियोंको बसावे; अथवा कहीं एक स्थानपर भी अधिक आदमियोंको बसावे॥४॥ क्योंकि मनुष्योंसे रहित प्रदेश, जनपद नहीं कहला सकता; और जनपदसे रहित, राज्य नहीं होसकता; क्योंकि, यदि जनपदही न होगा, तो राज्य किस पर किया जायगा, यह कौटल्य आचार्यका अपना मत है ॥५॥ अब शत्रुको पीड़ा पहुंचानेके प्रकारोंका

निरूपण किया जाता है:-जब शत्रुपर कोई आपत्ति आई हुईही, तो विजिगीषु, उसकी फसलको, तथा उत्पन्न हुए अन्न आदिको नष्ट करदेवे, और वीवध (अनाज घी तैल आदिका प्रदेशमें आना) तथा प्रसार (घास लकड़ी आदिका राज्यमें आना; इन दोनों) को भी नष्ट करडाले ॥ ६ ॥

प्रसारवीवधच्छेदान्मुष्टिसस्यवधादपि ।
वमनाद्गूढघाताच्च जायते प्रकृतिक्षयः ॥ ७ ॥

अब शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके क्षय होनेका प्रकार बताते हैं:-प्रसार तथा वीवधका उच्छेद होनेसे, और फसल तथा अनाज आदिका नाश करदेनेसे; इसीप्रकार प्रकृतियोंको कहीं दूसरी जगह लेजाने, या छिपकर मार देनेसेभी उसका क्षय (नाश) होजाता है ॥ ७ ॥

प्रभूतगुणवद्धान्यकुप्ययन्त्रशस्त्रावरणविष्टिरश्मिसमग्रं मे सैन्यमृतुश्च पुरस्तात् ॥ ८ ॥ अपर्तुः परस्य व्याधिदुर्भिक्षनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्चेति पर्युपासीत ॥ ९ ॥

किस अवस्थामें शत्रुके दुर्गको घेरना चाहिये, इसका अब निरूपण करते हैं:-जबकि अपनी सेना, अत्यधिक गुणोंसे युक्त, तथा धान्य (अनाज), कुप्य (लोहा तांबा वस्त्र आस्तरण आदि) यन्त्र (मैशीन), शस्त्र (हाथियार) आवरण (चमड़ेकी पेटी आदि, तथा अन्य कवच आदि), विष्टि (सेवा करने वाले कर्मचारी) और रश्मि (रस्सी) आदि सम्पूर्ण सामग्रीसे युक्तही, और ऋतुभी अपने अनुकूल हो । अर्थात् जिस समय अपनी सेना और ऋतु आदिकीतो इसतरह अनुकूलता हो ॥ ८ ॥ परन्तु शत्रुके लिये ऋतु सर्वथा विपरीत हो; व्याधि, दुर्भिक्ष, धान्य आदिके संग्रहका तथा रक्षक पुरुषोंका अभाव उपस्थितहो; खरीदी हुई अर्थात् केवल वेतनभोगी सेना सहायता देनेसे इन्कार करती हो, और मित्रकी सेनाभी खिन्न होचुकी हो; इस अवस्थामें शत्रुके दुर्गका घेरा डाला जावे ॥ ९ ॥

कृत्वा स्कन्धावारस्य रक्षां वीवधासारयोः पथश्च परिक्षिप्य दुर्गं खातसालाभ्यां दूषयित्वोदकमवस्राव्य परिखाः संपूरयित्वा वा सुरङ्गाबलकुटिकाभ्यां वप्रप्राकारौ हारयेत् ॥ १० ॥

घेरा डालनेका यह प्रकार समझना चाहियेः-पहिले विजिगीषु अपनी छावनी, वीवध, आसार (मित्रसेना), तथा अपने मार्गकी रक्षा करके; दुर्गकी खाई और परकोटेके अनुसार दुर्गको चारों ओरसे घेरकर ; विष आदिसे

जलको दूषित करके अथवा बांध आदिके तोड़देनेसे उसे बहाकर; खाईयोंको भरकर, सुरंग तथा टेढ़ी खुदी हुई खाईयोंके द्वारा बाहरकी ओरके परकोटे तथा बाड़के ऊपर हमला करे ॥ १० ॥

दारं च गुलेन निम्नं वा पांसुमालयाच्छादयेत् ॥ ११ ॥ बहुलारक्षं यन्त्रैर्घातयेत् ॥ १२ ॥ निष्करादुपनिष्कृष्याश्वैश्च प्रहरेयुः ॥ १३ ॥ विक्रमान्तेषु च नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपाया· नां सिद्धिं लिप्सेत दुर्गवासिनः ॥ १४ ॥

फटी हुई दरड़ोंको डलोंसे, तथा गहरी नीची जगहको मट्टीसे आटकर ढक दिया जावे ॥ ११ ॥ दुर्गके जिस प्रदेशमें रक्षाका बहुत अधिक प्रबन्ध हो, उसे यन्त्रोंके द्वारा नष्ट करवा देवे ॥ १२ ॥ कपटसे (=निष्करात्) अथवा हाथियोंकी सूंड लम्बी करके खड़ा करनेसे रक्षक पुरुषोंको बाहर निकालकर, घोड़े तथा हाथियोंके द्वारा उनपर आक्रमण कर देवें ॥ १३ ॥ जब शत्रुकी सेना युद्धमें विशेष पराक्रम दिखाने लगे, तब उपायोंके (साम दान दण्ड और भेद ये चार उपाय होते हैं) नियोग (अमुक अवसरपर इसी उपायसे काम लेना चाहिये दूसरसे नहीं, इस प्रकारकी व्यवस्था करना 'नियोग' कहाता है), विकल्प (इस अवसरपर चाहे इस उपायसे काम लेना चाहिये, चाहे इस दूसरे उपायसे; इस प्रकारकी व्यवस्थाको 'विकल्प' कहते हैं) और समुच्चय (इस अवसरपर अमुक २ दोनों या दो से भी अधिक उपायोंसे इकट्ठाही काम लेना चाहिये; इसको 'समुच्चय' कहते हैं) से यथावसर काम लेकर 'दुर्गनिवासी शत्रुसे सिद्धिलाभ (विजयलाभ) की इच्छा करे ॥ १४ ॥

श्येनकाकनप्तृभासशुकशारिकोलूककपोतान्ग्राहयित्वा पुच्छे· ष्वग्नियोगयुक्तान्परदुर्गे विसृजेयुः ॥ १५ ॥ अपकृष्टस्कन्धावा- रादुच्छ्रितध्वजधन्वारक्षा वा मानुषेणाग्निना परदुर्गमादीपयेयुः ॥ १६ ॥

श्येन (बाज), कौआ, नप्ता (मुर्गेके समान एक पक्षी), भास (गिद्ध), तोता, मैना, उल्लू, तथा कबूतर, इन पक्षियोंको पकड़वाकर; इनकी पूछमें, आग लगाने वाली औषधियोंका संसर्ग करके, इनको शत्रुके दुर्गमें छोड़ देवें। जिससे वहां आग लग जावे ॥ १५ ॥ शत्रुके दुर्गसे बाहर नीचेकी ओर पड़ी हुई अपनी (विजिगीषुकी) छावनीसे, शत्रुके दुर्गपर आग फेंकनेके लिये ध्वजा तथा धनुष आदिको उठाये हुए पुरुष, शत्रुके दुर्गमें, मानुष अग्निके

द्वारा (शत्रुसे मारे हुए या शूलीपर चढ़ाकर मारे हुए पुरुषकी हड्डीमें चितकबरे बांसके घिसनेसे उत्पन्न हुई २ अग्निके द्वारा) शत्रुके दुर्गमें आग लगा देवें। अथवा पहरेदारही इस कामको करें ॥ १६ ॥

गूढपुरुषाश्चान्तदुर्गपालका नकुलवानरविडालशुनां पुच्छेष्वग्नियोगमाधाय काण्डनिचयरक्षाविधानवेश्मसु विसृजेयुः ॥१७॥ शुष्कमत्स्यानामुदरेष्वग्निमाधाय वल्लूरे वा वायसोपहारेण वयोभिर्हारयेयुः ॥ १८ ॥

अन्तपाल या दुर्गपालके वेषमें रहने वाले गूढपुरुष; नेवला, बन्दर, बिलाव तथा कुत्तेकी पूंछमें, आग लगा देनेवाली औषधियोंको लगाकर, इनको शत्रुके उन घरोंमें छोड़ देवें, जहांपर बाण तथा कुप्य आदि सबही रक्षा करनेके सामान रक्खे हुए हों । १७ ॥ सूखी मछलीके पेटमें, अथवा सूखे हुए मांसमें अग्नियोग (आग लगानेवाली औषधियोंके समूह) को रखकर उस मांसको, पक्षियोंको खिलानेके बहानेसे पक्षियोंके द्वारा अपहरण करा देवें। (अर्थात् पक्षियोंके द्वारा, उस शत्रुके दुर्गमें पहुंचाकर, वहां आग लगा देवें) ॥ १८ ॥

सरलदेवदारुपूतितृणगुग्गुलुश्रीवेष्टकसर्जरसलाक्षागुलिकाः खरोष्ट्राजावीनां लण्डं चाग्निधारणम् ॥ १९ ॥ प्रियालचूर्णमवल्गुजमषीमधूच्छिष्टमश्वखरोष्ट्रगोलण्डमित्येष क्षेप्यो ऽग्नियोगः ॥ २० ॥

सरु, देवदार, पूतितृण (एक प्रकारकी घास, जिसमेंसे सुगन्ध आती है), गूगल, सरुका गोंद, राल और लाख, इन सब चीजोंकी बनाई हुई गोलियां, तथा गधा ऊंट बकरा और मेंढा, इन जानवरोंका लिङ्ग ; अग्निको धारण करनेवाले होते हैं अर्थात् इनमें अग्निका अंश बहुत अधिक होता है ॥ १९ ॥ चिरोंजीका चूरा, बावचीका दड़दड़ा चूरा (अर्थात् जौकुटसा हुआ२) शहद, और घोड़ा गधा ऊंट तथा बैलका लिंग, इन सब चीजोंको मिलाकर, फेंककर काममें आनेवाला अग्नियोग तैयार होता है ॥ २० ॥

सर्वलोहचूर्णमग्निवर्णं वा कुम्भीसीसत्रपुचूर्णं वा पारिभद्रकपलाशपुष्पकेशमषीतैलमधूच्छिष्टकश्रीवेष्टकयुक्तो ऽग्नियोगो विश्वासघाती वा ॥ २१ ॥ तेनावलिप्तः शणत्रपुसवल्कवेष्टितो बाण इत्यग्नियोगः ॥ २२ ॥

अथवा अग्निके समान वर्णवाला, सब तरहके लोहेका चूरा ; अथवा कापफल सीसा और रांग इन सब चीजों का चूरा; नीम और ढाकके फूल, नेत्रवाला का चूरा, तेल, शहद तथा सरूका गोंद, इन सब वस्तुओंके साथ मिलाकर बनाया हुआ अग्नियोग निश्चय ही विश्वासघाती होता है, अर्थात् जहां आग लगने की सम्भावना भी न हो, वहां भी इसका प्रयोग किये जाने पर अवश्य आग लग जाती है, इसलिये इसको बड़ा तीव्र अग्नियोग माना गया है ॥ २१ ॥ उपर्युक्त इन सब चीजों से सनाहुआ, तथा सन और ककड़ी की बेलकी छालसे लपेटा हुआ बाणभी अग्नियोग होता है । अर्थात् वह जहां जाकर लगेगा, वहीं आग लगा देगा । (इस सूत्रमें आये हुए 'बाण' शब्दका अर्थ, महामहोपाध्याय त. गणपति शास्त्रीने 'अर्जुनवृक्ष' किया है ॥ २२ ॥

न त्वेव विद्यमाने पराक्रमे ऽग्निमवसृजेत् ॥ २३ ॥ अविश्वास्यो ह्यग्निः दैवपीडनं च ॥ २४ ॥ अप्रतिसंघातप्राणिधान्यपशुहिरण्यकुप्यद्रव्यक्षयकरः ॥ २५ ॥ क्षीणनिचयं चावाप्तमपि राज्यं क्षयायैव भवति ॥ २६ ॥ इति पर्युपासनकर्म ॥ २७ ॥

पराक्रमके समयमें, (अर्थात् जिस समय युद्ध प्रारम्भ हुआ २ हो, उस समयमें) इन अग्नियोगोंको न छोड़ें ॥ २३ ॥ क्योंकि अग्नि का कुछ विश्वास नहीं होता, और यह दैवपीडन बताया गया है (देखो अधि० ८ अध्या० ४ सू० १) ॥ २४ ॥ तथा यह अग्नि, असंख्यात प्राणियों, धान्य पशु धन तथा अन्य कुप्य आदि द्रव्यों का नाश करने वाला होता है ॥ २५ ॥ जिस राज्यमें सब प्रकारके संग्रहोंका क्षय होगया हो वह राज्य अपने हाथमें आजाने पर भी क्षयके लिये ही होता है । अर्थात् ऐसे राज्य को जीतकर भी विजिगीषु कभी उन्नत नहीं होसकता ॥ २६ ॥ यहांतक शत्रुके दुर्गको चारों ओरसे घेरनेके सम्बन्धमें निरूपण करादिया गया ॥ २७ ॥

सर्वारम्भोपकरणविष्टिसंपन्नो ऽस्मि ॥ २८ ॥ व्याधितः पर उपधाविरुद्धप्रकृतिरकृतदुर्गकर्मनिचयो वा निरासारः सासारो वा पुरा मित्रैः संधत्ते इत्यवमर्दकालः ॥ २९ ॥

अब इसके आगे शत्रुके दुर्ग को, कब और किस समय अपने अधिकारमें करना चाहिये, इस बात का निरूपण किया जाता है:-जब विजिगीषु यह समझे, कि मैं सब तरहके युद्धोपयोगी साधनोंसे युक्त हूं, मेरे पास सब तरह का कार्य करनेके लिये आदमी मौजूद हैं ॥ २८ ॥ शत्रु व्याधिग्रस्त है,

उसकी अमात्य आदि प्रकृति उसको धोखा देनेवाली हैं, दुर्ग आदिकी मरम्मत तथा धान्य आदि का संग्रह भी इसने अभी तक नहीं किया है, मित्र की भी इसे कोई सहायता नहीं है, अथवा सहायता की सम्भावना होने पर भी अभी तक उनके साथ सन्धि ही कररहा है, अर्थात् इसका सबसे पहिला काम मित्रोंके साथ सन्धि करने का है, वह भी अभी तक शत्रुने निश्चय करके समाप्त नहीं किया है। इसप्रकार जब विजिगीषु समझे, उसी समयमें शत्रुपर आक्रमण करदेवे। अर्थात् शत्रुके कुचलने का यही समय होता है ॥ २९ ॥

स्वयमग्नौ जाते समुत्थापिते वा प्रहवणे प्रेक्षानीकदर्शनसङ्गसौरिककलहेषु नित्ययुद्धश्रान्तबले बहुलयुद्धप्रतिविद्धप्रेतपुरुषे जागरणक्लान्तसुप्तजने दुर्दिने नदीवेगे वा नीहारसंप्लवे वावमृद्नीयात् ॥ ३० ॥

अथवा शत्रुके दुर्ग आदिमें स्वयं अग्नि लगजाने पर, या आनन्दोत्सव आदिके मनाने का ही दौरदौरा होने पर (तात्पर्य यह है कि जब राजा सहभोज या पार्टी आदिमें ही लगातार लगा रहता हो, या तमाशे और चांदमारीमें ही अधिक आसक्त रहता हो, या शराबियोंके द्वारा कोई झगड़ा खड़ा करदेने पर, लगातार युद्ध करनेसे सेनाके थक जाने पर, लम्बा युद्ध होनेके कारण अत्यधिक आदमियोंके जखमी होजाने और मरजानेपर, जागनेके कारण बेचैन हुए २ पुरुषोंके सोजाने पर, दुर्दिनमें अर्थात् जिस दिन आंधीमेह आदि बहुत होरहा हो, या जब शत्रु किसी वेगवती नदीको पार कररहाहो, या जिस दिन कुहरा आदि बहुत पड़रहा हो, ऐसे समयमें अर्थात् शत्रुकी ऐसी अवस्था होने पर, विजिगीषु उसको कुचल डाले ॥ ३० ॥

स्कन्धावारमुत्सृज्य वा वनगूढः शत्रुं सत्रान्निष्क्रान्तं घातयेत् ॥ ३१ ॥ मित्रासारमुख्यव्यञ्जनो वा संरुद्धेन मैत्रीं कृत्वा दूतमभित्यक्तं प्रेषयेत् ॥ ३२ ॥ इदं ते छिद्रम् ॥ ३३ ॥ इमे दूष्याः ॥ ३४ ॥ संरोद्धुर्वा छिद्रमयं ते कृत्यपक्ष इति ॥ ३५ ॥

अथवा छावनी को छोड़कर विजिगीषु, जंगलमें जाकर कहीं छिपजावे और वहां जंगलसे निकलते हुए शत्रुको मरवाडाले ॥ ३१ ॥ मित्रके वेषमें रहने वाला अथवा मित्रकी सेनाके मुखियाके वेषमें रहने वाला गूढपुरुष, संरुद्ध (घिरे हुए) शत्रु राजाके साथ मित्रता करके, अपने एक वध्य दूतको निम्न लिखित संदेश देकर उसके पास भेजे ॥ ३२ ॥ तुम्हारे अन्दर अमुक २ दोष

या निर्बलता है ॥ ३३ ॥ वे अमुक २ तुम्हारे कृत्य पुरुष हैं ॥ ३४ ॥ संरोद्धा विजिगीषु की अमुक २ निर्बलता है, और यह तुम्हारा कृत्यपक्ष है, अर्थात् संरोद्धा विजिगीषुके क्रुद्ध लुब्ध भीत आदि वर्गमेंसे अमुक पुरुष तुम्हारी ओर मिलने को तैयार हैं ॥ ३५ ॥

तं प्रतिदूतमादाय निर्गच्छन्तं विजिगीषुर्गृहीत्वा दोषमभिविख्याप्य प्रवास्यापगच्छेत् ततः ॥ ३६ ॥ मित्रासारव्यञ्जनो वा संरुद्धं ब्रूयात् ॥ ३७ ॥ मां त्रातुमुपनिर्गच्छ ॥ ३८ ॥ मया वा सह संरोद्धारं जहीति ॥ ३९ ॥

जब वह दूत, उस संदेशका उत्तर लेकर लौटकर आवे, तो मार्गमें निकलते हुए उस दूतको विजिगीषु पकड़लेवे; और उसके इसी दोषको प्रसिद्ध करके, कि यह हमारा अपकार करता है, उसको मारकर, वहांसे चलाजावे । (तथा उस उत्तर लेखपत्रको अपने काबू में रक्खे) ॥ ३६ ॥ अथवा मित्रके वेषमें या मित्रकी सेनाके वेषमें रहनेवाला गूढ़पुरुष, संरुद्ध राजाको ही कहे ॥ ३७ ॥ 'मेरी रक्षाके लिये तुम्हें उठ खड़ा होना चाहिये ॥ ३८ ॥ अथवा मेरे साथ चलकर संरोद्धा (रोकनेवाले विजिगीषु राजा) को मारो; अर्थात् चलो, हम दोनों मिलकर विजिगीषुको मारें ॥ ३९ ॥

प्रतिपन्नमुभयतः संपीडनेन घातयेत् ॥ ४० ॥ जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत् ॥ ४१ ॥ नगरं वास्य प्रमृद्नीयात् ॥ ४२ ॥ सारबलं वास्य वमयित्वाभिहन्यात् ॥ ४३ ॥ तेन दण्डोपनताटविका व्याख्याताः ॥ ४४ ॥

वह जब इस बातको स्वीकार करले, तो दोनों ओरसे घेरकर उसे मारदिया जावे ॥ ४० ॥ अथवा उसे जीवित ही पकड़कर उसके राज्यको बदल दियाजावे ॥ ४१ ॥ या उसके नगरको (अर्थात् राजधानीको बरबाद करादिया जावे ॥ ४२ ॥ अथवा इसके सारबलको (बढ़िया मज़बूत सेनाको) दुर्गसे बाहर निकालकर मारडाले ॥ ४३ ॥ इसीके अनुसार दण्डोपनत (अपनी सैनिक शक्तिके भरोसेपर बलपूर्वक अपने वशमें कियेहुए राजा) और आटविकोंके सम्बन्धमें भी व्याख्यान समझलेना चाहिये ॥ ४४ ॥

दण्डोपनताटविकयोरन्यतरो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ४५ ॥ अयं संरोद्धा व्याधितः पार्ष्णिग्राहेणाभियुक्तश्छिद्रमन्यदुत्थितमन्यस्यां भूमावपयातुकाम इति ॥ ४६ ॥ प्रतिपन्ने संरोद्धा

स्कन्धावारमादीप्यापयायात् ॥ ४७ ॥ ततः पूर्ववदाचरेत् ॥ ४८ ॥

अथवा दण्डोपनत और आटविक, इन दोनोंमेंसे कोई एक, संरुद्ध (घिरेहुए) शत्रु राजाके पास यह निम्नलिखित संदेश भेजे ॥ ४५ ॥ 'यह संरोद्धा (घेरा डालनेवाला विजिगीषु राजा) आजकल व्याधिपीड़ित होरहा है, पार्ष्णिग्राहने इसपर हमला करदिया है यह एक और भी उपद्रव खड़ा होगया है, अब यह, यहांसे दूसरी किसी जगहमें भागजानेकी इच्छा कररहा है' इत्यादि ॥ ४६ ॥ जब घिराहुआ शत्रु राजा, इन सब बातोंको स्वीकार करले, तब संरोद्धा विजिगीषु अपनी छावनीमें आग लगाकर वहांसे चला जावे ॥ ४७ ॥ तदनन्तर पूर्ववत् ही सब काम कियाजावे। अर्थात् जब शत्रु, विजिगीषुपर धावा करनेलगे, तो उसे बीचमें घेरकर मारदिया जावे ॥ ४८ ॥

पण्यसंपातं वा कृत्वा पण्येनैनं रसविद्धेनातिसंदध्यात् ॥४९॥ आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य दूतं प्रेषयेत् ॥ ५० ॥ मया बाह्यमभिहतमुपनिर्गच्छाभिहन्तुमिति ॥ ५१ ॥ प्रतिपन्नं पूर्ववदाचरेत् ॥ ५२ ॥ मित्रं बन्धुं वापादिश्य योगपुरुषाः शासनमुद्राहस्ताः प्रविश्य दुर्गं ग्राहयेयुः ॥ ५३ ॥

अथवा व्यापारियोंके संघका आगमन दिखलाकर (अर्थात् यह प्रकट करके, कि बाहरसे एक व्यापारियोंका संघ आया है, उसके द्वारा दी हुई) विष आदि रसमिश्रित खाद्य वस्तुओंके द्वारा ही, इस शत्रुको नष्ट करदिया जावे ॥ ४९ ॥ अथवा मित्रसेनाके वेषमें रहनेवाला गूढपुरुष, संरुद्ध शत्रु राजाके पास निम्नलिखित संदेश देकर एक दूतको भेजे ॥ ५० ॥ मैंने तुम्हारे इस बाह्य शत्रुको मार २ कर खूब कमजोर बना रक्खा है, अब इसे सर्वथा नष्ट करनेके लिये तुम दुर्गसे बाहर निकल आओ ॥ ५१ ॥ जब शत्रु, इस बातको स्वीकार करले, तो पहिलेकी तरह दोनों ओरसे, उसे घेरकर मारदिया जावे ॥ ५२ ॥ अथवा अपने आपको मित्र या बन्धु बतलाकर, मुहर लगेहुए बनावटी लेखपत्रको हाथमें लेकर गूढपुरुष, दुर्गके भीतर चलेजावें। और वहां किसी उपायसे द्वार आदि खोलकर, दुर्गको विजिगीषुके अधिकारमें करवा देवें ॥ ५३ ॥

आसारव्यञ्जनो वा संरुद्धस्य प्रेषयेत् ॥ ५४ ॥ अमुष्मिन्देशे काले च स्कन्धावारमभिहनिष्यामि ॥ ५५ ॥ युष्माभिरपि

योद्धव्यमिति ॥ ५६ ॥ प्रतिपन्नं यथोक्तमभ्याघातसंकुलं दर्शयित्वा रात्रौ दुर्गान्निष्क्रान्तं घातयेत् ॥ ५७ ॥

अथवा मित्र सेनाके वेषमें, रहनेवाला गूढपुरुष, घिरेहुए शत्रुराजाके पास यह सन्देश भिजवावे ॥ ५४ ॥ 'मैं अमुक देश और अमुक समयमें छावनीके ऊपर हमला करूंगा ॥ ५५ ॥ आपको भी उस समय मेरी ओरसे ही युद्ध करना चाहिये ॥ ५६ ॥ जब शत्रु राजा इस बातको स्वीकार करले, तो पूर्व कथनानुसार विजिगीषुकी छावनीमें लड़ाईका घमासान दिखलावे; जब उसे देखकर रातमें शत्रु विश्वासपूर्वक अपने दुर्गसे बाहर निकले, तो उसे बीचमें घेरकर मारदिया जावे ॥ ५७ ॥

यद्वा मित्रमावाहयेत् आटविकं वा, तमुत्साहयेत् ॥ ५८ ॥ विक्रम्य संरुद्धे भूमिमस्य प्रतिपद्यस्वेति ॥ ५९ ॥ विक्रान्तं प्रकृतिभिर्दूष्यमुख्योपग्रहेण वा घातयेत्, स्वयं वा रसेन ॥ ६० ॥ मित्रघातको ऽयमित्यवाप्तार्थः ॥ ६१ ॥

अथवा विजिगीषु, अपने मित्र या आटविकको वहां बुलवावे, तथा उसको इसतरह उत्साहित करे ॥ ५८ ॥ 'संरुद्ध शत्रु राजापर आक्रमण करके, उसकी भूमिको अर्थात् उसके राज्यको अपने अधीन करलो ॥ ५९ ॥ जब वह या आटविक, उस घिरेहुए शत्रुपर आक्रमण करदेवे, तब उसको, उसकी अमात्य आदि प्रकृतियोंके द्वारा, या अपने अनुकूल बनाएहुए उसके दूष्य मुख्य पुरुषोंके द्वारा ही उसको मरवाडाले। अथवा आप ही विष आदिके योगसे उसे मारडाले ॥ ६० ॥ तदनन्तर 'यह शत्रु मेरे मित्रको मारनेवाला है' इस बातको प्रसिद्ध करके अपने कार्यको सिद्ध करे ॥ ६१ ॥

विक्रमितुकामं वा मित्रव्यञ्जनः परस्याभिशंसेत् ॥ ६२ ॥ आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषानस्योपघातयेत् ॥ ६३ ॥ संधिं वा कृत्वा जनपदमेनं निवेशयेत् ॥ ६४ ॥ निविष्टमन्यजनपदमविज्ञातो हन्यात् ॥ ६५ ॥

अथवा मित्रके वेषमें रहनेवाला गूढपुरुष, शत्रुको इसप्रकार कहे, कि 'विजिगीषु' तुम्हारे ऊपर आक्रमण करना चाहता है ॥ ६२ ॥ इसतरह जब यह शत्रुका अत्यन्त विश्वस्त होजावे, तब उसके प्रवीर पुरुषों (मुख्य बहादुर आदमियों) को मरवाडाले ॥ ६३ ॥ अथवा शत्रुके साथ सन्धि करके उसको उसी जनपदमें रहनेदेवे। अथवा इसके ही द्वारा एक अन्य जनपदको

आबाद करवावे ॥ ६४ ॥ और उस नये आबाद हुए २ जनपदको, शत्रुके बिना जाने ही फिर नष्ट करडाले । अर्थात् स्वयं उसे बरबाद करडाले ॥६५॥

अपकारयित्वा दूष्याटविकेषु वा बलैकदेशमतिनीय दुर्गमवस्कन्देन हारयेत् ॥ ६६ ॥ दूष्यामित्राटविकद्वेष्यप्रत्यपसृताश्च कृतार्थमानसंज्ञाचिह्नाः परदुर्गमवस्कन्देयुः ॥ ६७ ॥

अथवा अपने दूष्य और आटविकोंके द्वारा अपना कुछ अपकार करवाकर उन दूष्य और आटविकोंपर आक्रमण करनेके बहानेसे, शत्रुकी सेनाके एक हिस्सेको बहुत दूर किसी देशमें लेजावे । और फिर थोड़ी सेनासे युक्त, शत्रुके दुर्गको आक्रमणकर बलपूर्वक छीन लेवे ॥ ६६ ॥ शत्रुके दुर्गपर आक्रमण करनेके लिये कौन पुरुष सहायक होवें यह बतलाते हैं:-शत्रुके दूष्य पुरुष, शत्रु, आटविक, जिनसे शत्रु द्वेष रखता हो, तथा शत्रुके पाससे एकबार जाकर फिर वापस उसीके पास आये हुए, तथा विजिगीषुके द्वारा धन मान आदि से सत्कृत किये हुए, और आक्रमणके समय, आदिसे सूचित कियेहुए, शत्रुके दुर्गका अपहरण करनेमें सहायता देवें ॥ ६७ ॥

परदुर्गमवस्कन्द्य स्कन्धावारं वा पतितपराङ्मुखाभिपन्नमुक्तकेशशस्त्रभयविरूपेभ्यश्चाभयमयुध्यमानेभ्यश्च दद्युः ॥ ६८ ॥ परदुर्गमवाप्य विशुद्धशत्रुपक्षः कृतोपांशुदण्डप्रतीकारमन्तर्बहिश्च प्रविशेत् ॥ ६९ ॥

शत्रुके दुर्गको अथवा उसकी छावनीको हस्तगत करके, विजिगीषु-पक्षके पुरुषोंको उचित है, कि वे पतित (युद्धके मैदानमें गिरे हुए), पराङ्मुख (युद्धसे भागे हुए), विपद्ग्रस्त, मुक्तकेश (बिखरे हुए बालोंवाले), हथियारोंसे डरकर विकृत आकारवाले, तथा युद्ध न करनेवाले पुरुषोंके लिये सर्वथा अभय देदेवें ॥ ६८ ॥ शत्रुके दुर्गको प्राप्त करके, और वहांसे शत्रुपक्षके सबही पुरुषोंकी सफाई करके, विजिगीषु, अपना विरोध करनेवाले पुरुषोंका उपांशु-दण्डसे प्रतीकार करता हुआ, दुर्गके अन्दर और बाहर प्रवेश करे । (इस सूत्रमें 'विशुद्धशत्रुपक्षः' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'विशुद्धशत्रुत्रपक्षं' भी पाठ है । इस पाठमें यह पद क्रियाविशेषण समझना चाहिये) ॥ ६९ ॥

एवं विजिगीषुरमित्रभूमिं लब्ध्वा मध्यमं लिप्सेत ॥ ७० ॥ तत्सिद्धावुदासीनम् ॥ ७१ ॥ एष प्रथमो मार्गः पृथिवीं जेतुम् ॥ ७२ ॥

इस प्रकार विजिगीषु, शत्रुकी भूमिको प्राप्त करके, मध्यमको प्राप्त करनेकी इच्छा करे ॥ ७० ॥ उसको भी प्राप्त करलेनेपर, उदासीन राजाको अपने अधीन करनेका यत्न करे ॥ ७१ ॥ पृथिवीको विजय करनेके लिये यह प्रथम मार्ग है ॥ ७२ ॥

मध्यमोदासीनयोरभावे गुणातिशयेनारिप्रकृतीः साधयेत् ॥ ७३ ॥ तत उत्तराः प्रकृतीः ॥ ७४ ॥ एष द्वितीयो मार्गः ॥ ७५ ॥

मध्यम और उदासीन राजाओंके न होनेपर, अपने गुणोंके आधिक्य के द्वारा (अर्थात् शत्रुके गुणोंकी अपेक्षा अपने गुणोंके अतिशयसे) शत्रुकी अमात्य आदि प्रकृतियोंको अपने अनुकूल बनावे ॥ ७३ । तदनन्तर शत्रुकी, अन्य कोश सेना आदि प्रकृतियोंको अपने वशमें करनेका प्रयत्न करे ॥ ७४ ॥ पृथिवीको विजय करनेका यह द्वितीय मार्ग है ॥ ७५ ॥

मण्डलस्याभावे शत्रुणा मित्रं मित्रेण वा शत्रुमुभयतः संपीडनेन साधयेत् ॥ ७६ ॥ एष तृतीयो मार्गः ॥ ७७ ॥

सम्बद्ध राजमण्डलके न होनेपर (दश प्रकारके राजाओंके समूहका नामही 'मण्डल' या राजमण्डल होता है ; देखोः—अधि. ७, अध्या. १८), शत्रुके द्वारा मित्रको और मित्रके द्वारा शत्रुको, दोनों ओरसे घेरकर या दबाकर अपने अनुकूल बनावे ॥ ७६ ॥ पृथिवीको विजय करनेका यह तृतीय मार्ग है ॥ ७७ ॥

शक्यमेकं वा सामन्तं साधयेत् ॥ ७८ ॥ तेन द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम् ॥ ७९ ॥ एष चतुर्थो मार्गः पृथिवीं जेतुम् ॥ ८० ॥ जित्वा च पृथिवीं विभक्तवर्णाश्रमां स्वधर्मेण भुञ्जीत ॥ ८१ ॥

अथवा जीतसकने योग्य एकही सामन्त (समीपस्थित राजा) को अपने अनुकूल बनावे ॥ ७८ ॥ उसके अनुकूल बनजानेपर जब अपनी शक्ति द्विगुण होजावे, तो और दूसरे सामन्तको अपने अनुकूल बनानेका प्रयत्न करे। जब उसके अनुकूल बनजानेपर अपनी शक्ति त्रिगुण होजावे, तो विजिगीषु, तीसरे सामन्तको अपने वशमें करनेका प्रयत्न करे ॥ ७९ ॥ पृथिवीको विजय करनेका यह चतुर्थ मार्ग है ॥ ८० ॥ इसप्रकार पृथिवीको जीतकर, वर्ण और आश्रमोंका ठीक २ विभाग करके, राजा, धर्मपूर्वक पृथिवीका भोग करे ॥ ८१ ॥

उपजापापसर्पौ च वामनं पर्युपासनम् ।
अवमर्दश्च पञ्चैते दुर्गलम्भस्य हेतवः ॥ ८२ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे पर्युपासनकर्म, अवमर्दश्च चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ आदितश्चतुश्चत्वारिंशच्छतः ॥ १४४ ॥

उपजाप (शत्रुके आदमियोंको बहकाना), अपसर्प (अपने गूढ़पुरुषोंके द्वारा शत्रुपक्षका नाश करना), वामन (विष आदि विषम उपायोंका प्रयोग करके शत्रुका नाश करना), पर्युपासन (शत्रुके दुर्गके चारों ओर घेरा डालना), तथा अवमर्द (अन्य उपायोंसे शत्रुके दुर्ग आदिका विध्वंस करना) ये पांच, शत्रुके दुर्गको प्राप्त करनेके हेतु बताये गये हैं। (इस सूत्रमें 'उपजापापसर्पौ च' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'उपजापोऽपसर्पो वा' ऐसा भी पाठ है । अर्थमें कोई भेद नहीं) ॥ ८२ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ।

पांचवां अध्याय

१७६ प्रकरण

विजित दुर्ग आदि में शान्ति स्थापित करना

विजिगीषु को चाहिये कि वह शत्रुके दुर्ग आदि को जीतकर उनमें शान्ति की स्थापना करे । इसका यही प्रयोजन होता है। कि दुर्ग आदिमें निवास करने वाले पुरुषों को अपने नये स्वामी के विषयमें कोई शङ्का नहीं रहती; प्रजाजन उसपर पूर्ण विश्वास करने लगते हैं । इन्हीं सब बातोंका इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ।

द्विविधं विजिगीषोः समुत्थानम् ॥ १ ॥ अटव्यादिकमेकग्रामादिकं च ॥ २ ॥ त्रिविधश्चास्य लम्भः ॥ ३ ॥ नवो भूतपूर्वः पित्र्य इति ॥ ४ ॥

विजिगीषु का समुत्थान (=अभ्युत्थान=उद्योग) दो प्रकार का होता है अर्थात् विजिगीषु का उद्योग, दो रूपोंमें फलता है ॥ १ ॥ एक अटवी आदिके (आदि शब्दसे खान आदिका भी ग्रहण करलेना चाहिये) और दूसरा एकग्राम आदिके रूपमें (आदि शब्दसे नगर आदि का भी ग्रहण करलेना चाहिये)॥२ ॥

विजिगीषु का लाभ, तीन प्रकार का होता है ॥ ३ ॥ (१) नव (=नया, जो विजिगीषुने शत्रुको जीतकर प्राप्त किया हो), (२) भूतपूर्व (जो पहिले अपने ही पास हो, परन्तु बीचमें शत्रुके पास जाकर फिर विजिगीषु ने उस से अपहरण कर लिया हो , (३) और पित्र्य (अपने पिता आदि से प्राप्त हुआ २, जो बीचमें शत्रुके हाथमें जाकर, विजिगीषुने फिर उससे वापस ले लिया हो) ॥ ४ ॥

नवमवाप्य लाभं परदोषान्स्वगुणैश्छादयेत् गुणान्गुणद्वैगुण्येन ॥ ५ ॥ स्वधर्मकर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिश्च प्रकृतिप्रियहितान्यनुवर्तेत ॥ ६ ॥ यथासंभाषितं च कृत्यपक्षमुपग्राहयेत् ॥ ७ ॥ भूयश्च कृतप्रयासम् ॥ ८ ॥

नये लाभ को प्राप्त करके विजीगीषु, शत्रु के दोषों को अपने गुणों से ढक दे, तथा शत्रु के गुणों को अपने दुगने गुणों से ढक देवे ॥ ५ ॥ विजिगीषु, सदा अपने धर्म (प्रजा पालन आदि), कर्म (यज्ञानुष्ठान आदि), अनुग्रह (समय २ पर प्रजावर्ग की सहायता करना), परिहार (भूमि पर राजकीय कर आदि को छोड़ देना), दान, और सत्कार आदि कार्यों के द्वारा प्रजा के अनुकूल हित करने में ही लगा रहे ॥ ६ ॥ अपने पूर्व कथन के अनुसार कृत्यपक्ष (क्रुद्ध लुब्ध भीतवर्ग) को, धन आदि देने के द्वारा सदा प्रसन्न रक्खे ॥ ७ ॥ तथा जिसने विजिगीषुके लिये बहुत परिश्रम किया हो, उसे और भी अधिक धन आदि देकर खूब प्रसन्न रक्खे ॥ ८ ॥

अविश्वास्यो हि विसंवादकः स्वेषां परेषां च भवति प्रकृतिविरुद्धाचारश्च ॥ ९ ॥ तस्मात्समानशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत् ॥ १० ॥ देशदैवतसमाजोत्सवविहारेषु च भक्तिमनुवर्तेत ॥ ११ ॥

क्योंकि पहिले कहकर फिर मुकरजानेवाला राजा, अपने और पराये सबहीके लिये अविश्वसनीय होजाता है । तथा वह राजा भी सबका अविश्वसनीय होजाता है; जोकि अपने प्रजावर्गके विरुद्ध आचरण करता है ॥ ९ ॥ इसलिये राजाको उचित है, कि वह अपने प्रजावर्गके समानही शील, वेष, भाषा तथा आचरणका ग्रहण करे ॥ १० ॥ और देशकी देवता, समाज, उत्सव तथा विहारोंमें, भक्तिभावना रक्खे । अर्थात् इन कार्योंमें समय २ पर सहयोग देता रहे ॥ ११ ॥

देशग्रामजातिसंघमुख्येषु चाभीक्ष्णं सत्त्रिणः परस्यापचारं दर्शयेयुः ॥ १२ ॥ माहाभाग्यं भक्तिं च तेषु स्वामिनः स्वामिसत्कारं च विद्यमानम् ॥ १३ ॥ उचितैश्चैनान्भोगपरिहाररक्षावेक्षणैः भुञ्जीत ॥ १४ ॥

देश, ग्राम, जाति, संघ और मुख्योंमें जाकर, विजिगीषुके सत्रीपुरुष, बारबार, शत्रुके अहित अनुष्ठानको (प्रजाके प्रति किये गये अपकारको) दिखलावें ॥ १२ ॥ और उनके विषयमें (देश ग्राम आदिके विषयमें) अपने स्वामीकी (नये राजा विजिगीषुकी) महाभागता (उदारता), भक्ति (प्रेम) तथा स्वामीके द्वारा किये गये विद्यमान सत्कारकोभी अच्छीतरह दिखलावें । (इसका प्रयोजन यही है, कि प्रजावर्गकी आस्था, शत्रुकी ओरसे हटकर, सर्वथा विजिगीषुकी ओरही होजावे) ॥ १३ ॥ तथा उचित भोग (राजभागका देना), परिहार (टैक्स आदिका न लेना), और रक्षावेक्षणोंसे (कण्टक शोधन अधिकरणमें कहे हुए कण्टकोंका उद्धार करनेसे) अर्थात् प्रजाजनोंके लिये ये सुभीते करके, उनको समयानुसार अपने उपयोगमें लावे ॥ १४ ॥

सर्वदेवताश्रमपूजनं च विद्यावाक्यधर्मशूरपुरुषाणां च भूमिद्रव्यदानपरिहारान्कारयेत् ॥ १५ ॥ सर्वबन्धनमोक्षणमनुग्रहं दीनानाथव्याधितानां च ॥ १६ ॥

विजिगीषु, सब देवताओं और आश्रमोंका पूजन करवावे । तथा विद्याशूर (विद्वान्) वाक्यशूर (वाग्मी=बहुत अच्छा बोलने वाले), और धर्मशूर (धार्मिक) पुरुषोंके लिये भूमि और द्रव्य देवे, तथा उनसे भूमि आदिका कर न लेवे ॥ १५ ॥ दीन अनाथ तथा व्याधित पुरुषोंको, सब तरहसे अनुगृहीत करे, अर्थात् हरतरहसे इनकी सहायता करे; और सबही पुरुषोंको, कारागार आदिके बन्धनसे छुड़वा देवे ॥ १६ ॥

चातुर्मास्येष्वर्धमासिकमघातम् ॥ १७ ॥ पौर्णमासीषु च चातूरात्रिकम् ॥ १८ ॥ राजदेशनक्षत्रेष्वैकरात्रिकम् ॥ १९ ॥ योनिबालवधं पुंस्त्वोपघातं च प्रतिषेधयेत् ॥ २० ॥

चार २ महीनोंके वर्गमेंसे पन्द्रह दिनतक, प्राणदण्ड आदिका प्रतिषेध करदेवे । अर्थात् चार महीनेमें पन्द्रह दिन ऐसे रक्खे, जिनमें कि प्राणदण्ड आदि न दिये जावें ॥ १७ ॥ तथा सम्पूर्ण पूर्णमासियोंमेंसे चार पूर्णमासी तिथियोंमें किसीका वध न किया जावे ॥ १८ ॥ राजाके गद्दीपर बैठनेके, तथा

देशकी प्राप्तिके नक्षत्रमें भी एक दिनतक किसीका वध न किया जावे ॥ १९॥ बच्चे पैदा करनेकी शक्ति रखनेवाले मादा जानवरों, तथा छोटे बच्चोंको विजिगीषु न मारने देवे । और नर जानवरोंको पुंस्त्वहीन न बनाने दिया जावे ॥२०॥

यच्च कोशदण्डोपघातिकमधार्मिष्ठं वा चरित्रं मन्येत तदपनीय धर्म्यव्यवहारं स्थापयेत् ॥ २१ ॥ चोरप्रकृतीनां म्लेच्छजातीनां च स्थानविपर्यासमनेकस्थं कारयेत् दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यानां च ॥ २२ ॥

जिस चरित्रको विजिगीषु, कोश और सेनाके नष्ट करनेवाला तथा अधर्म युक्त समझे, उसको हटाकर धर्मयुक्त व्यवहारकी स्थापना करे ॥ २१ ॥ चोरप्रकृति म्लेच्छ जातियोंका, तथा दुर्ग, राष्ट्र और सेनाके मुख्य व्यक्तियोंका, दूर २ पर स्थानविपर्यय करता रहे । तात्पर्य यह है, कि इन लोगोंको इकट्ठा एक स्थानपर न रहनेदेवे ॥ २२ ॥

परोपगृहीतानां च मन्त्रिपुरोहितादीनां परस्य प्रत्यन्तेष्वनेकस्थं वासं कारयेत् ॥ २३ ॥ अपकारसमर्थाननुक्षियतो वा भर्तृविनाशमुपांशुदण्डेन प्रशमयेत् ॥ २४ ॥ स्वदेशीयान्वा परेण वावरुद्धानपवाहितस्थानेषु स्थापयेत् ॥ २५ ॥

शत्रुसे उपकृत मंत्री और पुरोहित आदिकों, शत्रुके सीमाप्रान्तोंमें भिन्न २ स्थानोंपर निवास कराये । जिससे ये परस्पर एक दूसरेके साथ मिलने न पावें ॥ २३ ॥ तथा जो व्यक्ति, अपना (विजिगीषुका) अपकार करने में समर्थ हों, अथवा विजिगीषुका विनाश करनेके विचारसेही वहां रहते हों, उनको उपांशुदण्डसे नष्ट करडाले ॥ २४ ॥ अपने देशके पुरुषोंको, अथवा शत्रुके द्वारा कारागारके बन्धनमें डाले गये पुरुषोंको ; विजिगीषु, अपने २ अधिकारोंसे च्युत किये गये शत्रुपक्षीय पुरुषोंके अधिकार पदोंपर नियुक्त करे । अर्थात् शत्रुपक्षके पुरुषोंको अधिकार पदसे हटाकर, उन स्थानोंपर इनको नियुक्त करे ॥ २५ ॥

यश्च तत्कुलीनः प्रत्यादेयमादातुं शक्तः प्रत्यन्ताटवीस्थो वा प्रबाधितुमभिजातस्तस्मै विगुणां भूमिं प्रयच्छेत् ॥ २६ ॥

शत्रुसे छीनी हुई भूमिको, उसके वंशकाही कोई पुरुष, यदि फिर वापस लेनेके लिये समर्थ हो, अथवा सीमाप्रान्तके सामन्त या आटविकके

द्वारा उस भूमिपर बाधा पहुंचाये जासकनेकी आशंका हो ; तो विजिगीषु उनके लिये, किसी गुणहीन भूमिका कुछ हिस्सा देदेवे ॥ २६ ॥

गुणवत्याश्चतुर्भागं वा कोशदण्डदानमवस्थाप्य, यदुपकुर्वाणः पौरजानपदान्कोपयेत् ॥ २७ ॥ कुपितैस्तैरेनं घातयेत् ॥ २८ ॥ प्रकृतिभिरुपक्रुष्टमपनयेत् ॥ २९ ॥ औपघातिके वा देशे निवेशयेदिति ॥ ३० ॥

अथवा गुणवाली भूमिकाही चौथा हिस्सा इस शर्तपर देदेवे, कि वह सामन्त, विजिगीषुके लिये कोश और सेनाकी बहुत अधिक संख्या देता रहेगा। जिसके लिये (अर्थात् जिस कोश और सेनाको इकट्ठा करनेके लिये) वह अपने नगरनिवासी तथा जनपदनिवासी पुरुषोंको कुपित करलेगा । अर्थात् उतना धन और सेनाको इकट्ठा करनेके लिये प्रजाको तंग किये जानेपर, प्रजा उससे कुपित हो उठेगी ॥ २७ ॥ प्रजाजनोंके कुपित होनेपर, विजिगीषु, उन्हींके द्वारा, उस सामन्तको मरवा डाले ॥ २८ ॥ अथवा अमात्य आदि प्रकृतियोंसे निन्दा किये जानेपर उसको वहांसे हटा देवे ॥ २९ ॥ या उसको ऐसे प्रदेशमें भेजदेवे, जहां उसके नाश करनेके लिये अनेक साधन उपस्थित हों ॥ ३० ॥

भूतपूर्वं येन दोषेणापवृत्तस्तं प्रकृतिदोषं छादयेत् ॥ ३१ ॥ येन च गुणेनोपावृत्तस्तं तीव्रीकुर्यादिति ॥ ३२ ॥ पित्र्ये पितृदोषांश्छादयेत् ॥ ३३ ॥ गुणांश्च प्रकाशयेदिति ॥ ३४ ॥

पहिले जिस दोषके कारण, अपना राज्य शत्रुके हाथमें चलागया हो, उस प्रकृतिदोषको सदा दबाये रक्खे ॥ ३१ ॥ तथा जिस गुणके कारण, शत्रुके हाथमें गयाहुआ राज्य फिर वापस लेलिया गया हो, उस गुणको सदा तीव्र करता रहे, अर्थात् बढ़ाता रहे ॥ ३२ ॥ यदि राज्यके शत्रुहस्तगत होनेमें पिताका दोष हो, तो उन दोषोंको भी छिपाये रक्खे ॥ ३३ ॥ और पिताके जो कुछ गुण हों, उन सबको बराबर प्रकट करता रहे ॥ ३४ ॥

चरित्रमकृतं धर्म्यं कृतं चान्यैः प्रवर्तयेत् ।
प्रवर्तयेन्न चाधर्म्यं कृतं चान्यैर्निवर्तयेत् ॥ ३५ ॥

इति दुर्गलम्भोपाये त्रयोदशे ऽधिकरणे लब्धप्रशमनं पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥ आदितः पञ्चचत्वारिंशच्छतः ॥ १४५ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशाधिकरणं समाप्तम् ॥ १३ ॥

जिन धर्मयुक्त चरित्रोंका आचरण न कियाजाता हो, विजिगीषु उनको प्रवृत्त करे; तथा अन्य पुरुषोंसे किये गये धर्मयुक्त व्यवहारोंको भी प्रवृत्त रक्खे। अधर्मयुक्त व्यवहारोंको कभी प्रवृत्त न होने दे; तथा जो अधर्मयुक्त व्यवहार प्रवृत्त हुए २ हों, उनको प्रयत्नपूर्वक रोके ॥ ३५ ॥

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरणमें पांचवां अध्याय समाप्त ।

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरण समाप्त
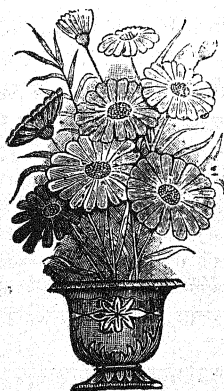
औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण

पहिला अध्याय

१७७ प्रकरण

परघातप्रयोग

{ इस चौदहवें अधिकरणका नाम 'औपनिषदिक' है। औषध और मन्त्रोंके रहस्यको 'उपनिषद्' कहते हैं। इसीका निरूपण करनेके कारण यह अधिकरण 'औपनिषदिक' कहाता है। इसके पहिले प्रकरणमें, शत्रुका वध करनेके लिये औषध प्रयोगका कथन किया जायगा।

चातुर्वर्ण्यरक्षार्थमौपनिषदिकमधर्मिष्ठेषु प्रयुञ्जीत ॥ १ ॥ कालकूटादिः विषवर्गः श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाजनापदेशैः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मभिः म्लेच्छजातीयैरभिप्रेतैः स्त्रीभिः पुंभिश्च परशरीरोपभोगेष्ववधातव्यः ॥ २ ॥

विजिगीषु, चातुर्वर्ण्यकी रक्षाके लिये, अधार्मिक पुरुषोंमें औपनिषदिकका प्रयोग करे ॥ १ ॥ कालकूट आदि (आदि शब्दसे वत्सनाभ हलाहल आदिका भी ग्रहण करलेना चाहिये) विषसमूहको; अपने विश्वसनीय देश वेष शिल्प तथा सुपात्रत्व (योग्यता) को प्रकट करनेवाले, कुबड़े बौने पस्तकद गूंगे बहिरे मूर्ख तथा अन्धेके वेषमें रहनेवाले, और म्लेच्छ जातिके प्रिय पुरुषों तथा स्त्रियोंके द्वारा; शत्रुके शरीरसे उपभोग्य वस्त्र आदिमें संयुक्त करदिया जावे। तात्पर्य यह है, कि ये उपर्युक्त पुरुष या स्त्री आदि, शत्रुके वस्त्र आदिमें विष का संसर्ग करदेवें ॥ २ ॥

राजक्रीडाभाण्डनिधानद्रव्योपभोगेषु गूढाः शस्त्रनिधानं कुर्युः ॥ ३ ॥ सत्त्राजीविनश्च रात्रिचारिणोऽग्निजीविनश्चाग्निनिधानम् ॥ ४ ॥

शत्रु राजाके खेलनेकी वस्तुओंके रखनेके स्थानमें, भूषण रखनेके स्थानमें, तथा सुगन्धि द्रव्योंके रखनेके स्थानमें, गूढपुरुष हथियारोंको छिपा

कर रखदेवें। अथवा इस सूत्रका अर्थ इसप्रकार करना चाहिये:—विजिगीषु के गूढपुरुष, शत्रुके खेलनेके समय, भूषण आदि धारण करनेके समय. तथा सुगन्धि आदि द्रव्योंका उपभोग करनेके समयमें, उसपर (शत्रुपर) शस्त्रोंका प्रयोग करें ॥ ३ ॥ और रात्रिमें इधर उधर घूमनेवाले सत्री पुरुष, तथा लुहार आदि अग्निजीवी (अग्निके द्वारा अपनी जीविका करनेवाले) पुरुष, शत्रुस्थानमें अग्निको रख देनेका कार्य करें ॥ ४ ॥

चित्रभेककौण्डिन्यककृकणपञ्चकुष्ठशतपदीचूर्णमुच्चिदिङ्गकंबलीशतकन्देध्मकृकलासचूर्णं गृहगोलिकान्धाहिककृकणकपूतिकीटगोमारिकाचूर्णं भल्लातकावल्गुकारसयुक्तं सद्यःप्राणहरमेतेषां वा धूमः ॥ ५ ॥

चितकबरा मेंडक, कौण्डिन्यक (एक प्रकारका कीड़ा, जिसका पेशाब और पखाना, विषके समान होता है), जंगली तीतर, कूटके पांचों अंग (कूट एक वृक्ष होता है, उसके पत्ते फल फूल छाल और जड़ ये पांच अंग), कानखजूरा, इन सब चीजोंका चूर्ण ; अथवा उच्चिदिङ्ग (एक प्रकारका कीड़ा); कम्बली (=कमला=छोटी अंगुलीकी तरह लम्बा गोल कीड़ा होता है); शत (=शतमूली=शतावरी). जमीकन्द, ढाककी लकड़ी, और कृकलास (=करकैंटा=गिरगट), इन सब चीजोंका चूर्ण ; अथवा छपकली (किरली), अन्धाहिक (विषरहित सांप; त. गणपति शास्त्रीने इसका अर्थ 'एक प्रकारकी मछली' किया है), कृकणक (जंगली तीतर), पूतिकीट (एक प्रकारका कीड़ा), गोमारिका (एक प्रकारकी औषधि) इन सब चीजोंका चूर्ण; भिलावा और बावचीके रसके साथ मिला लिया जावे ; ये चीजें, तथा इन चीजोंका धुआं, तत्कालही प्राणोंको हरण करने वाला होता है ॥ ५ ॥

कीटो वान्यतमस्तप्तः कृष्णसर्पप्रियङ्गुभिः ।
शोषयेदेष संयोगः सद्यः प्राणहरो मतः ॥ ६ ॥

ऊपर कहे हुए कीड़ोंमेंसे किसी एक कीड़ेको अग्निमें तपाकर घ्राण आदिसे यदि उसका उपयोग किया जावे, तो वह सूंघनेवालेके शरीरको सुखा देता है। यदि काले सांप और कांगनीके साथ इसका योग करदिया जावे, तो यह तत्कालही प्राणोंको हरण करनेवाला माना गया है ॥ ६ ॥

धामार्गवयातुधानमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तमार्धमासिकः ॥ ७ ॥ व्याघातकमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तं कीटयोगो मासिकः

॥ ८ ॥ कलामात्रं पुरुषाणां द्विगुणं खराश्वानां चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ॥ ९ ॥

धामार्गव (=अपामार्ग=चिडचिड़ा=पुठकंडा, या कड़वी तोरई), और यातुधान (इस नामकी या राक्षक नामकी एक औषधि), की जड़को, यदि भिलावेके फूलोंके चूर्णके साथ मिला लिया जावे, तो यह योग पन्द्रह दिनमें प्राण हरलेता है ॥ ७ ॥ अमलतासकी जड़, भिलावेके फूलके चूर्णके साथ मिलाकर, उसमें यदि किसी भी तसकीटका योग करादिया जावे, तो यह प्रयोग, एक महीनेतक प्राण हरण करता है। (इस सूत्रमें 'व्याघातकमूलं' के स्थानपर यदि 'व्याधिघातकमूलं' ऐसा पाठ हो, तो युक्त मालूम होता है, क्योंकि 'व्याधिघातक' शब्दही अमलतासका पर्याय है। प्राचीन व्याख्याकारों ने 'व्याघातक' शब्दका भी अर्थ अमलतासही किया है ॥ ८ ॥ इस कीटयोग की मात्रा पुरुषको एक कला (थोड़ीसी) देनी चाहिये ; उससे दुगनी गधे और घोड़ोंको, तथा चौगुनी हाथी और ऊंटोंको देनी चाहिये ॥ ९ ॥

शतकर्दमोच्चिदिङ्गकरवीरकटुतुम्बीमत्स्यधूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रवातानुवाते प्रणीतो यावच्चरति तावन्मारयति ॥ १० ॥

शतावरी, कर्दम (=यक्षकर्दम, कपूर अगर कस्तूरी और कंकोल इन चारों चीजोंके पिसे हुए लेपको यक्षकर्दम या कर्दम कहते हैं), उच्चिदिंग, कनेर, कड़वी तूंबी, और मछली इन सब चीजोंका धुआं ; धतूरा कोदों और पुरालके (धान आदिकी बालको काटकर नीचेके रहे हुए हिस्सेके) साथ, अथवा धनिया ढाक और पुरालके साथ, यदि सामने तेज हवाके चलते हुए होनेपर किया जावे, तो यह धुआं जहांतक जाता है, वहांतकके प्राणियोंको मार देता है ॥ १० ॥

पूतिकीटमत्स्यकटुतुम्बाशितकर्दमेन्द्रगोपचूर्णं पूतिकीटक्षुद्राशलाहेमविदारीचूर्णं वा बस्तशृङ्गखुरचूर्णयुक्तमन्धीकरो धूमः ॥ ११ ॥

पूतिकीट (एक प्रकारका कीड़ा, इसके ऊपर कुछ २ कांटेसे होते हैं) मछली, कड़वीतूम्बी, शतावरी, कर्दम, ढाककी लकड़ी, और इन्द्रगोप (मखमलकी तरह लाल रंगका कीड़ा, जिसको 'रामजीकी भैंस' कहते हैं , इन सब चीजोंका चूर्ण; अथवा पूतिकीट, कटेहरी या कटैरी, राल, धतूरा और विदारीकन्द, इन सब चीजोंका चूर्ण; यदि बकरेके सींग और खुरके

चूर्णके साथ मिलादिया जावे; तो इन सब वस्तुओंका किया हुआ धुआं प्राणियोंको अन्धा बनादेता है ॥ ११ ॥

पूतिकरञ्जपत्रहरितालमनःशिलागुञ्जारक्तकार्पासपललान्यास्फोटकाचगोशकृद्रसपिष्टमन्धीकरो धूमः ॥ १२ ॥ सर्पनिर्मोकं गोश्वपुरीषमन्धाहिकशिरश्चान्धीकरो धूमः ॥ १३ ॥

कांटेदार करंजुआ, पत्रक, हड़ताल, मनसिल, चूंटली (रत्ती), लाल रंगकी (नरमा) कपास, और पलल (फल रहित धान आदिका काण्ड=पुराल), इन सब चीजोंको, आखा आक), काच तथा गोबरके रसमें पीसा जावे; इन सब चीजोंका धुआं भी प्राणियोंको अन्धा करदेता है ॥ १२ ॥ सांपकी कैंचुली, गोबर और घोड़ेकी लीद, तथा अन्धाहिक (विषरहित सांप या विशेष मछली) का सिर, इन सब चीजोंका पृथक् २ धुआं भी प्राणियोंको अन्धा बनादेता है ॥ १३ ॥

पारावतप्लवकक्रव्यादानां हस्तिनरवराहाणां च मूत्रपुरीषं कासीसहिङ्गुयवतुषकणतण्डुलाः कार्पासकुटजकोशातकीनां च बीजानि गोमूत्रिकाभाण्डीमूलं निम्बशिग्रुफणिज्जकाक्षीबपीलुकभङ्गः सर्पशफरीचर्म हस्तिनखशृङ्गचूर्णमित्येष धूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रणीतः प्रत्येकशो यावच्चरति तावन्मारयति ॥ १४ ॥

कबूतर, बतख, गिद्ध, हाथी, मनुष्य और सूअर, इन सब प्राणियोंका मूत्र और पुरीष; या कसीस, हींग, जौका छिलका, टूटा दाना (कण) तथा पूरा दाना (अथवा जौका छिलका, दाना, और चावल), और कपास कुटज (=कुटकी=कुरैआ) तथा कड़वी तोरई या पुठकंडे (चिरचिड़ा) के बीज; या गोमूत्रिका (एक प्रकारकी घास जो कि गौके पेशाबकी तरह टेढ़ी २ ज़मीन पर फैलती है) और मंजीठकी जड़, या नीम, सैंजना, फणिज्ज (जंबीरका एक भेद=सफ़ेद मरवा), काक्षीब (सैंजनेका ही एक भेद) और पीलु, इन पांचों वृक्षोंका छिलका; या सांप और मछलीकी खाल; या हाथीके नाखून और दांतोंका चूरा; इन वस्तुओंके अपने प्रत्येक वर्गका धुआं; धतूरा कोदों और पलाल (फल रहित धान आदिके पेड़ोंका नीचेका हिस्सा=पुराल) के साथ; अथवा धनिया पलाश और पलालके साथ बनायाहुआ, जितनी दूरतक फैलता जाता है, उतने ही में सब प्राणियोंको मारता जाता है ॥ १४ ॥

कालीकुष्ठनडशतावरीमूलं सर्पप्रचलाककृकणपञ्चकुष्ठचूर्णं वा धूमः पूर्वकल्पेनार्द्रशुष्कपलालेन वा प्रणीतः संग्रामावतरणावस्कन्दनसंकुलेषु कृततेजनोदकाक्षिप्रतीकारैः प्रणीतः सर्वप्राणिनां नेत्रघ्नः ॥ १५ ॥

चकोतरा, कूठ, नरसल, और शतावरी, इन चीजोंकी जड़का; या सांप, मोरकी पूंछ, जंगली तीतर, कूटके पांचों अंग ('कूट' एक वृक्षका नाम है, उसके पत्ते फल फूल छाल और जड़, ये पांच अंग कहेजाते हैं), इन सब चीजोंके चूर्णका; पूर्वकल्प अर्थात् पहिले सूत्रमें बतलायेहुए योग (धतूरा, कोदों, पलाल; या धनिया, पलाश, पलाल; देखो सूत्र १४) के साथ मिलाकर जो धुआं बनाया जाता है; अथवा कुछ गीले और कुछ सूखे केवल पलाल (पुराल) के साथ जो धुआं बनाया जाता है; संग्राममें उतरने और रात्रिके बलात्कार आक्रमणकी भीड़के समयमें, तेजनोदक (देखो० अधि० १४, अध्या० ४, सूत्र १) के सहारेसे आंखोंका प्रतीकार कियेहुए पुरुषोंके द्वारा बनाया गयाहुआ वह धुआं, सब ही प्राणियोंके नेत्रोंको नष्ट करडालता है। तात्पर्य यह है, कि इस उपर्युक्त धुएंका प्रयोग करते समय, प्रयोग करनेवाले पुरुष, इसके प्रतीकारका प्रयोग अपनी आंखोंपर अवश्य करलें, नहीं तो उनकी भी आंखें नष्ट होजावेंगी (इस सूत्रमें 'आर्द्रशुष्कपलालेन' इस पदके स्थानपर किसी पुस्तकमें 'आर्द्रे शुष्कपलाले' ऐसा सप्तम्यन्त पाठ है। अर्थमें कोई भेद नहीं आता) ॥ १५ ॥

शारिकाकपोतबकबलाकालण्डमर्काक्षिपीलुकस्नुहिक्षीरपिष्टमन्धीकरणमञ्जनमुदकदूषणं च ॥ १६ ॥

मैंना, कबूतर, बगला और बगली, इन पक्षियोंकी विष्ठाको; आख (आक), अक्षी (सैंजने या बहेड़ेकी किसमका एक पेड़), पीलु, तथा सेंढ, इन चारों वृक्षोंके दूधमें पीसकर, अंजन तैयार किया जावे, यह अंजन प्राणियोंके अन्धा करनेवाला, तथा जलको दूषित करनेवाला होता है॥ १६ ॥

यवकशालिमूलमदनफलजातीपत्रनरमूत्रयोगः प्लक्षविदारीमूलयुक्तो मूकोदुम्बरमदनकोद्रवक्काथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्काथयुक्तो वा मदनयोगः ॥ १७ ॥

यवक (जौ, अथवा जलपीपल) और शाली (धान) की जड़, मैनफल, चमेली, पत्रक, और नरमूत्र (आदमी का पेशाब) इन सब चीजों को

मिलाकर, तथा इनमें पिलखन या लाख देने वाले पीपल और बिदारी की जड़ का योग करके, अथवा मलिन जल में बने हुए गूलर धतूरा और कोदों के क्वाथ का योग करके, अथवा धनियां और पलाश के क्वाथ का योग करके, 'मदनयोग' तैयार होजाता है। अर्थात् यह योग चित्त का उन्मादक, चित्त को भ्रममें डालने वाला होता है ॥ १७ ॥

शृङ्गिगौतमवृक्षकण्टकारमयूरपदीयोगो गुञ्जालाङ्गलीविषमूलिकेङ्गुदीयोगः करवीराक्षिपीलुकार्कमृगमारणीयोगो मदनकोद्रवक्काथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्काथयुक्तो वा मदनयोगः ॥ १८ ॥ समस्ता वा यवसेन्धनोदकदूषणाः ॥ १९ ॥

शृङ्गी नामकी मछलीका पित्ता (=शृङ्गिगौतम), लोध्र, सिंभल और मोरशिखा (अजमोदी) इन चीजों का योग; तथा चौंटली (रत्ती), जलपीपल या नारियल (गणपति शास्त्रीने 'लाङ्गली' का अर्थ 'पृथक्पर्णी' अर्थात् पिठवन किया है), कालकूट आदि विष और इंगुदी (हिंगनबेठ, या गोंदी। गणपति शास्त्री ने इसका अर्थ 'कटभी' अर्थात् मालकंगनी किया है), इन सब चीजों का योग; करवीर (कनेर), अक्षि (सेंजना या बहेडे की किस्म का एक पेड़), पीलु, आक, मृगमारणी (मृगको मारने वाली कोई औषधि विशेष), इन सब चीजोंका योग; धतूरा और कोदोंके क्वाथ के साथ, अथवा धनिया और पलाश के क्वाथके साथ 'मदनयोग' अर्थात् उन्माद करदेने वाला योग होजाता है ॥ १८ ॥ अथवा ये सब ही मदनयोग, पशुओंके चारे, ईन्धन और जल को भी दूषित करने वाले होते हैं ॥ १९ ॥

कृतकण्डलकृकलासगृहगोलिकान्धाहिकधूमो नेत्रवधमुन्मादं च करोति ॥ २० ॥

पकाई हुई नस नाड़ियोंवाले (जिनके स्नायु अर्थात् नस नाड़ियोंको पकालिया गया है ऐसे) गिरगट, छपकली और अन्धाहिक का धुआं नेत्रों को नष्ट कर देता है, तथा उन्माद का करने वाला भी होता है ॥ २० ॥

कृकलासगृहगोलिकायोगः कुष्ठकरः ॥२१॥ स एव चित्रभेकान्त्रमधुयुक्तः प्रमेहमापादयति ॥ २२ ॥ मनुष्यलोहितयुक्तः शोषम् ॥ २३ ॥

गिरगट और छपकली का योग, अर्थात् इन दोनों का धुआं कुष्ठको पैदा करनेवाला होता है ॥२१॥ यही योग (अर्थात् गिरगट और छपकली का योग),

चितकबरे मेंडककी आंत और मधुसे युक्त हुआ २, प्रमेह रोगको उत्पन्न करदेता है ॥ २२ ॥ यदि इस योग में मनुष्य का रक्त मिला दिया जावे, तो यह योग, क्षयरोग को उत्पन्न करता है ॥ २३ ॥

दूषीविषं मदनकोद्रवचूर्णमुपजिह्विकायोगः मातृवाहकाञ्जलिकारप्रचलाकभेकाक्षिपीलुकयोगो विषूचिकाकरः ॥ २४ ॥ पञ्चकुष्ठककौण्डिन्यकराजवृक्षमधुपुष्पमधुयोगो ज्वरकरः ॥ २५ ॥

ओषधि आदिके योगसे हीनशक्ति हुआ २ विष (अर्थात् शुद्ध हुआ २ विष), धतूरा, और कोद्रोंका चूर्ण, दीमकके साथ युक्त करके, फिर मातृवाहक (एक विशेष पक्षी), अञ्जलिकार (एक ओषधि विशेष), प्रचालक (मोरपंख=मोर की पूंछ का चंदौवा) मेंडक, अक्षी (खंजने या बहेड़े की किस्म का एक पेड़), और पीलुके साथ मिलाकर योग तैयार किया जावे; यह योग, विषूचिका अर्थात् हैज़ा करने वाला होता है ॥ २४ ॥ कूटके पांचों अंग (कूट एक वृक्ष का नाम है, उसके पत्ता फल फूल छाल और जड़, ये पाचों अंग), कौण्डिन्यक (एक प्रकारका कीड़ा, जिसका मल मूत्र विषके समान होता है) राजवृक्ष (अमलतास), शहद और पुष्पमधु (=मधूक=महुआ) इन सब चीजों का योग, ज्वर उत्पन्न करने वाला होता है ॥ २५ ॥

भासनकुलजिह्वाग्रन्थिकायोगः खरीक्षीरपिष्टो मूकबधिरकरो मासार्धमासिकः ॥ २६ ॥ कलामात्रं पुरुषाणामिति समानं पूर्वेण ॥ २७ ॥

गिद्ध, नेवला, और मंजीठ, इन चीजोंको मिलाकर, इन्हें गधीके दूधमें पीसा जावे, यह योग एक महीने या पन्द्रह दिनके अन्दर मनुष्यको गूंगा और बहिरा बना देता है ॥ २६ ॥ इन सब ही योगोंकी मात्रा पुरुषोंके लिये एक कला होनी चाहिये, शेष पूर्ववत् जान लेवें। अर्थात् घोड़े गधे आदिके लिये मनुष्योंसे दुगनी, और ऊंट हाथी आदिके लिये चौगुनी मात्रा देनी चाहिये ॥ २७ ॥

भङ्गक्काथोपनयनमौषधानां चूर्णं प्राणभृताम् ॥ २८ ॥ सर्वेषां वा क्वाथोपनयनमेवं वीर्यवत्तरं भवति ॥ २९ ॥ इति योगसंपत् ॥ ३० ॥

उपर्युक्त सबही योगोंमें, औषधोंका उपयोग कूटकर क्वाथ बनाकर लेना चाहिये। और प्राणियोंका उपयोग चूर्ण बनाकर लिया जावे ॥ २८ ॥

अथवा सबही चीजोंका क्वाथ (काढ़ा) बनाकर ही उपयोग लिया जावे। क्योंकि इसप्रकार उपयोग करनेसे औषधमें बहुत शक्ति आजाती है ॥ २९ ॥ यहांतक योगसम्पत्ति (विशेष २ योगों) का निरूपण कर दिया गया ॥३०॥

शाल्मलीविदारीधान्यसिद्धो मूलवत्सनाभसंयुक्तश्चुचुन्दरी-शोणितप्रलेपेन दिग्धो बाणो यं विध्यति स विद्धोऽन्यान्दशपुरुषान्दशति ॥ ३१ ॥ ते दष्टाश्चान्यान्दशन्ति पुरुषान् ॥ ३२ ॥

सिंभल, बिदारी और धनियेमें सिद्ध किया हुआ (अर्थात् भावना दिया हुआ), तथा पिप्लीमूल और वत्सनाभ (इसी नामसे प्रसिद्ध एक प्रकारका विष) से युक्त, और छछूंदरके रक्तके लेपसे सना हुआ बाण जिसको जाकर लगता है (अर्थात् बिंधता है), वह बाणसे चोट खाया हुआ आदमी अन्य दश पुरुषोंको काट लेता है ॥ ३१ ॥ काटे हुए वे दश पुरुष, अन्य दश २ पुरुषोंको काट खाते हैं, (इसी प्रकार विष फैल जानेसे शत्रुकी सम्पूर्ण सेना नष्ट हो जाती है ॥ ३२ ॥

भल्लातकयातुधानापामार्गबाणानां पुष्पैरेलकाक्षिगुग्गुलुहालाहलानां च कषायं बस्तनरशोणितयुक्तं दंशयोगः ॥ ३३ ॥

भिलावा, यातुधान (इस नामकी या राक्षस नामकी एक विशेष ओषधि), अपामार्ग (चिरचिड़ा=पुठकंडा) और बाण (अर्जुनवृक्ष), इन सब चीजोंके फूलोंसे सिद्ध किया हुआ, और इलायची, अक्षी, गूगल तथा हलाहल विष इन सब चीजोंका बनाया हुआ काढ़ा, बकरे और मनुष्यके रक्तसे युक्त करदिया जावे ; यह दंशयोग अर्थात् काटनेके लिये काममें लाये जानेवाला योग है । यह काढ़ा, जिसके शरीरमें चलाजाय, वह पुरुष भी अन्य अनेक पुरुषोंको काट लेता है ॥ ३३ ॥

ततोऽर्धधरणिको योगः सक्तुपिण्याकाभ्यामुदके प्रणीतो धनुःशतायाममुदकाशयं दूषयति ॥ ३४ ॥ मत्स्यपरम्परा ह्येतेन दष्टाभिमृष्टा वा विषीभवन्ति ॥ ३५ ॥ यश्चैतदुदकं पिबति स्पृशति वा ॥ ३६ ॥

उस कषाय (काढ़े) से आधा धरणिक प्रमाण योग, सत्तू और तिलकुटके साथ जलमें बनाया हुआ; सौधनुष् (धनुष् एक परिमाण होता है, देखोः— अधि. २, अध्या. २० । धरणिक एक तोलका नाम है, देखोः—अधि. २, अध्या. १९) पर्यन्त लम्बे चौड़े जलाशयको दूषित करदेता है ॥ ३४ ॥ इसके

दूषित होनेसे वहांकी मछलियां, लगातार एक दूसरेको काटने और स्पर्श करनेसे विषयुक्त होजाती हैं। (सूत्रके 'विषीभवन्ति' पदके स्थानपर कहीं २ 'विषीभवति' ऐसा एकवचनान्त पाठ भी है) ॥ ३५ ॥ और जो इस जलको पीता है, अथवा स्पर्श करता है, वह भी विषयुक्त होजाता है ॥ ३६ ॥

रक्तश्वेतसर्षपैर्गोधा त्रिपक्षमुष्ट्रिकायां भूमौ निखातायां निहिता वध्येनोद्धृता यावत्पश्यति तावन्मारयति ॥ ३७ ॥ कृष्णसर्पो वा ॥ ३८ ॥

लाल और सफेद सरसोंके साथ एक गोधा (गोह) को, तीन पक्ष अर्थात् पैंतालिस दिनतक, ऊंटोंसे युक्त (अर्थात् जहांपर ऊंट आदि बंधते हों, ऐसी) भूमिमें एक गढ़ा खोदकर, घड़े आदिमें बन्द करके रक्खें; (अथवा 'उष्ट्रिका' शब्दका ही अर्थ मृद्भाण्ड करना चाहिये)। नियत अवधिके बाद किसी वध्य पुरुषके द्वारा उसे निकलवावे; वह निकालनेवाला जबतक उसे देखता है, उतने ही में वह गोधा, उस पुरुषको मारदेती है। तात्पर्य यह है, कि उसके देखते ही पुरुष मरजाता है ॥ ३७ ॥ गोह की तरह काला सांप भी, इसी तरह गाड़कर उखाड़ा जावे, तो वह भी पुरुषको मारदेता है। अर्थात् उसके भी देखनेसे पुरुष तत्काल ही मरजाता है ॥ ३८ ॥

विद्युत्प्रदग्धोऽङ्गारोऽज्वालो वा विद्युत्प्रदग्धैः काष्ठैर्गृहीतश्चानुवासितः कृत्तिकासु भरणीषु वा रौद्रेण कर्मणाभिहुतोऽग्निः प्रणीतश्च निष्प्रतीकारो दहति ॥ ३९ ॥

अथवा बिजलीसे जले हुए ज्वाला (लपट) रहित अंगारेकी (अर्थात् दहकते हुए अंगारेमें प्रविष्ट हुई २) अग्निको, बिजलीसेही जली हुई लकड़ियोंके द्वारा लेकर उसे खूब बढ़ाया जावे ; अर्थात् उस आगको बिजलीकी जली लकड़ियोंमें ही लगाकर सुलगाया जावे ; और कृत्तिका अथवा भरणी नक्षत्रमें, रौद्रकर्मके द्वारा (रुद्र देवताको लक्ष्य करके विशेष कर्मके द्वारा) उस अग्निमें हवन किया जावे। इसप्रकार बनाई हुई इस आगका प्रतीकार नहीं होसकता। अर्थात् शत्रुके दुर्ग आदिमें लगाये जानेपर, बिना किसी प्रतीकारके, यह उसको जला देती है ॥ ३९ ॥

कर्मारादग्निमाहृत्य क्षौद्रेण जुहुयात्पृथक् ।
सुरया शौण्डिकादग्निं भार्गायोऽग्निं घृतेन च ॥ ४० ॥

अब चार श्लोकोंसे एक और योगका निरूपण करते हैं;—कुम्हारके यहांसे आग लेकर, पृथक् (अर्थात् आगे बताई जानेवाली आगोंसे पृथक्

लाकर) ही, शहदसे उसमें हवन करे; इसीप्रकार शराब बेचनेवालेके घरसे आग लेकर, उसमें शराबसे हवन करे ; तथा कुहारके यहांसे आग लेकर उसमें भार्गी (भारंगी नामकी औषधि) तथा भूसे हवन करे ॥ ४० ॥

माल्येन चैकपत्न्यग्निं पुंश्चल्यग्निं च सर्षपैः ।
दध्ना च सूतिकास्वग्निमाहिताग्निं च तण्डुलैः ॥ ४१ ॥

पतिव्रता स्त्रीके पाससे लाई हुई अग्निको, माल्य (फूलोंकी माला) से हवन करे । व्यभिचारिणी स्त्रीके पाससे लाई हुई आगमें सरसोंसे हवन करे । सूतिकागृह (जच्चाघर) में विद्यमान अग्निको लाकर, उसमें दहीसे हवन करे । अग्निहोत्रीके घरसे लाई हुई आगमें चावलोंसे हवन करे ॥ ४१ ॥

चण्डालाग्निं च मांसेन चिताग्निं मानुषेण च ।
समस्तान्वस्तवसया मानुषेण ध्रुवेण च ॥ ४२ ॥

चंडालके यहांसे लाई हुई आगमें मांससे हवन करे ; चिताकी अग्निमें मनुष्यसे हवन करे । फिर इन सब अग्नियोंको इकट्ठा करके, इनमें बकरेकी मजा (चर्बी), मनुष्य और ध्रुव (सूखी लकड़ी, या सालवनकी लकड़ी । गणपति शास्त्रीने 'ध्रुव' का अर्थ 'वट' अर्थात् बरगद या बड़ किया है) से हवन करे ॥ ४२ ॥

जुहुयादग्निमन्त्रेण राजवृक्षस्य दारुभिः ।
एष निष्प्रतिकारोऽग्निर्द्विषतां नेत्रमोहनः ॥ ४३ ॥

तथा अमलतासकी लकड़ियोंसे, अग्निकी स्तुति करनेवाले मन्त्रोंके द्वारा इस अग्निमें हवन करे । इस अग्निका प्रतीकार नहीं होसकता । अर्थात् शत्रुके दुर्ग आदिमें लगाई हुई इस आगका प्रतीकार करनेके लिये, शत्रु सर्वथा असमर्थ होता है । यह अग्नि न केवल दुर्ग आदिकोही जलाता है; किन्तु शत्रुओंको उसके देखने मात्रसे, मूढ़ भी बना देता है । अर्थात् उसके देखनेपर शत्रुकी विवेकदृष्टि नष्ट होजाती है ॥ ४३ ॥

अदिते नमस्ते ॥ ४४ ॥ अनुमते नमस्ते ॥ ४५ ॥ सरस्वति नमस्ते ॥ ४६ ॥ सवितर्नमस्ते ॥ ४७ ॥ अग्नये स्वाहा ॥४८॥ सोमाय स्वाहा ॥४९॥ भूः स्वाहा ॥५०॥ भुवः स्वाहा ॥५१॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशेऽधिकरणे परघातप्रयोगः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

आदितः षट्चत्वारिंशदुत्तरशतः ॥ १४६ ॥

हवन करनेके लिये इन मन्त्रोंका उपयोग करना चाहिये ॥ ४४-५१ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

दूसरा अध्याय

१७८ प्रकरण

प्रलम्भनमें अद्भुतोत्पादन

औषध तथा मन्त्रोंके प्रयोगके द्वारा, भूखप्यासके नष्ट करने या आकृति आदिके बदल लेनेसे शत्रुको ठगना 'प्रलम्भन' कहाता है। इसके दो भेद है, अद्भुतोत्पादन और भैषज्यमन्त्रप्रयोग। इसीको लेकर यह प्रकरण, दो अध्यायोंमें विभक्त करदिया है। अब इस पहिले अध्यायमें अद्भुतोत्पादनका निरूपण किया जायगा।

शिरीषोदुम्बरशमीचूर्णं सर्पिषा संहृत्यार्धमासिकः क्षुद्योगः ॥ १ ॥ कशेरुकोत्पलकन्देक्षुमूलविसदूर्वाक्षीरघृतमण्डासिद्धो मासिकः ॥ २ ॥

शिरीष (सिरस), उदुम्बर (गूलर), और शमी (छोंकरा), इनके चूर्णको घीके साथ मिलाकर खानेसे, पन्द्रह दिनतक भूख नहीं लगती ॥ १ ॥ कशेरुक (कसेरु, यह मीठा, छोटासा कन्द होता है, जंगली तालाबोंके किनारे अधिकतर पैदा होता है), कमलकी जड़, गन्नेकी जड़, कमलकी डंडी (विस=भिस=में) दूब घास, दूध, घी तथा मांड, इन सब चीजोंको मिलाकर तैयार किया हुआ योग, खालेनेपर एक महीनेतक भूख नहीं लगने देता ॥ २ ॥

माषयवकुलुत्थदर्भमूलचूर्णं वा क्षीरघृताभ्याम् ॥ ३ ॥ वल्लीक्षीरघृतं वा समसिद्धं, सालपृश्निपर्णीमूलकल्कं पयसा पीत्वा ॥४॥ पयो वा तत्सिद्धं मधुघृताभ्यामशित्वा मासमुपवसति ॥ ५ ॥

उड़द, जौ, कुलथी और दाभकी जड़, इन चीजोंको दूध घीके साथ मिलाकर पीलेनेपर एक महीनेतक पुरुष, उपवास करसकता है ॥ ३ ॥ अथवा अजमोद, दूध और घीको बराबर २ मिलाकर पीलेनेपर भी एक महीनेतक भूख नहीं लगती। इसीप्रकार सालपर्णी और पृश्निपर्णी (इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध ओषधि विशेष, हिन्दीमें इनको यथाक्रम सालवन और पिठवन कहाजाता है। गणपति शास्त्रीने 'साल' शब्दको पृथक् और पृश्निपर्णीको पृथक् मानकर, सालका अर्थ अर्जुन, और पृश्निपर्णीका अर्थ लाङ्गली किया है ; लाङ्गलीके दो अर्थ हैं—जलपीपल और नारियल) की जड़के कल्कको दूधसे पीकर भी एक महीनेतक भूख नहीं लगती ॥ ४ ॥ अथवा सालपर्णी और पृश्निपर्णीके साथ

दूधको पकाकर, शहद और घीके साथ मिलाकर खालेनेसे भी, एक महीनेतक उपवास करसकता है ॥ ५ ॥

श्वेतबस्तमूत्रे सप्तरात्रोषितैः सिद्धार्थकैः सिद्धं तैलं कटुकालाबौ मासार्धमासस्थितं चतुष्पदद्विपदानां विरूपकरणम् ॥ ६ ॥ तक्रयवभक्षस्य सप्तरात्रादूर्ध्वं श्वेतगर्दभस्य लण्डयवैः सिद्धं गौरसर्षपतैलं विरूपकरणम् ॥ ७ ॥

सफेद बकरेके पेशाबमें सात राततक रक्खी हुई सरसोंसे निकाला हुआ तेल, कडवी तूंबीमें एक महीना या पन्द्रह दिनतक रक्खा जावे, तदनन्तर उस तेलको जिन चौपायों या दुपायोंपर लगाया जायगा, उनकी आकृति अर्थात् रंग रूपमें भेद पड़जायगा । यह विरूपकरण योग होता है ॥ ६ ॥ इसीप्रकार मठा (छाछ) और जौ खानेवाले आदमीके, सात दिनके बाद (अर्थात् सात दिनतक मठा और जो खानेपर, तदनन्तर) सफेद गधेके लेंड (लीदके गोलेसे)और जौके साथ पकाये हुए सफेद सरसोंके तेलको लगाने या खानेसे, आकारमें भेद पड़जाता है ॥ ७ ॥

एतयोरन्यतरस्य मूत्रलण्डरससिद्धं सिद्धार्थतैलमर्कतूलपतङ्गचूर्णप्रतिवापं श्वेतीकरणम् ॥ ८ ॥ श्वेतकुक्कुटाजगरलण्डयोगः श्वेतीकरणम् ॥ ९ ॥

सफेद बकरा और सफेद गधा, इन दोनोंमेंसे किसी एकके, पेशाब और लेंडके रसके साथ पकाया हुआ सरसोंका तेल ; आक, पारसपीपल, और धानके चूर्णके साथ मिलाया जाकर, श्वेतीकरण योग बनजाता है । अर्थात् इस प्रकारसे तैयार किया हुआ तेल, लगानेवाले या खानेवालेको सफेद बनादेता है । ॥ ८ ॥ सफेद मुर्गा और अजगर सांप इन दोनोंकी विष्ठाको मिलाकर तैयार किया हुआ योग भी, सफेद बनादेता है ॥ ९ ॥

श्वेतबस्तमूत्रे श्वेतसर्षपाः सप्तरात्रोषितास्तक्रमर्कक्षीरमर्कतूल कटुकमत्स्यविलङ्गाश्च, एष पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥१०॥ समुद्रमण्डूकीशङ्खसुधाकदलीक्षारतक्रयोगः श्वेतीकरणम् ॥ ११ ॥

सफ़ेद बकरेके पेशाबमें, सात रात्रि पर्यन्त सफ़ेद सरसोंको रक्खा जावे, तदनन्तर पन्द्रह दिनतक, उस सरसोंको मठा, अर्कक्षीर (आकका दूध), आक, पारसपीपल, पटोल (कडवा परवल), मत्स्य, तथा वायविडंग, इन सब चीजोंके साथ मिलाकर रक्खा जावे, इसके बाद तैयार कियाहुआ यह

योग भी सफ़ेद करनेवाला होता है ॥ १० ॥ समुद्रकी मेंडकी, शंख, सुधा (=मूर्वा=मरोरफली), कदली (केला), क्षार (जवाखार) और मठा (छाछ), इन सब चीजोंका योग भी सफ़ेद करनेवाला होता है ॥ ११ ॥

कदल्यवल्गुजक्षाररससंयुक्ताः सुरायुक्तास्तक्रार्कतूलस्नुहि-लवणं धान्याम्लं च पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम् ॥ १२ ॥ कटुकालाबौ वल्लीगते नगरमर्धमासस्थितं गौरसर्षपपिष्टं रोम्णां श्वेतीकरणम् ॥ १३ ॥

केली, बावची जवाखार, पारद, और कोई कठिन खट्टी चीज (फल मूल आदि), इन सब वस्तुओंको शराबमें भिगो दियाजावे; तदनन्तर छाछ, आक, पारसपीपल, सेंढ, नमक और कांजीको उसमें मिलाकर पन्द्रह दिनतक रक्खा रहने दियाजावे। इसतरह बनाया हुआ यह योग भी सफ़ेद करनेवाला होता है ॥ १२ ॥ बेलमें लगीहुई कड़वीतूंबीमें, पन्द्रह दिनतक सोंठको रखदियाजावे, बादमें निकालकर सफ़ेद सरसों (बंगा सरसों) के साथ उसे पीसलिया जावे, यहभी श्वेतीकरण योग होता है ॥ १३ ॥

अर्कतूलोऽर्जुने कीटः श्वेता च गृहगोलिका ।
एतेन पिष्टेनाभ्यक्ताः केशाः स्युः शङ्खपाण्डराः ॥ १४ ॥

आक, पारसपीपल, अर्जुनवृक्षपर उत्पन्न होनेवाला एक प्रकारका कीड़ा, और सफ़ेद छपकली, इन सब वस्तुओंको पीसकर यदि बालोंपर लगाया जावे, तो बाल, शंखके समान सफ़ेद होजाते हैं ॥ १४ ॥

गोमयेन तिन्दुकारिष्टकल्केन वा मर्दिताङ्गस्य भल्लातकरसानुलिप्तस्य मासिकः कुष्ठयोगः ॥ १५ ॥ कृष्णसर्पमुखे गृहगोलिकामुखे वा सप्तरात्रोषिता गुञ्जाः कुष्ठयोगः ॥ १६ ॥ शुकपित्ताण्डरसाभ्यङ्गः कुष्ठयोगः ॥ १७ ॥ कुष्ठस्य प्रियालकल्ककषायः प्रतीकारः १८ ॥

गोबर अथवा तिन्दुक (टेंभुरना=छोटा तेंदुआ) और नीमके कल्कसे अंगोंका मर्दन करनेके बाद भिलावा और पारेको मिलाकर देहपर लगालेने वाले पुरुषको एक महीने तक कोढ़ होजाता है ॥ १५ ॥ काले सांपके मुंहमें अथवा छपकलीके मुंहमें, सात रात तक रक्खीहुई चोंटली (रत्ती) भी कुष्ठयोग होता है; अर्थात् इसको फिर देहपर लगानेसे कोढ़ होजाता है ॥ १६ ॥ तोतेके पित्त तथा अण्डेके रससे, शरीरपर मालिश करनेपर कुष्ठ होजाता है

॥ १७ ॥ चिरौंजीके कल्कसे बनाया हुआ काढ़ा, कुष्ठका प्रतीकार होता है ॥ १८ ॥

कुक्कुटकोशातकीशतावरीमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति ॥ १९ ॥ वटकषायस्नातः सहचरकल्कादिग्धः कृष्णो भवति ॥ २० ॥ शकुनकङ्गुतैलयुक्ता हरितालमनःशिलाः श्यामीकरणम् ॥२१॥ खद्योतचूर्णं सर्षपतैलयुक्तं रात्रौ ज्वलति ॥२२॥

मुर्गी, तथा कड़वी तोरई या परवल और शतावरीकी जड़को खाता हुआ पुरुष, एक महीनेमें गौरवर्ण होजाता है ॥ १९ ॥ बरगद (बड़) के काढ़ेसे नहायाहुआ, तथा पियाबांसके कल्ककी मालिश करके, पुरुष काला होजाता है । (इस सूत्रके ' सहचर ' शब्दकी व्याख्या करतेहुए, गणपति शास्त्रीने ' अव्यथा ' और ' कुरवक ' को पर्यायवाची लिखदिया है । परन्तु अव्यथा हरड़को कहते हैं, और 'कुरवक' कुरंटे या पियाबांसेका नाम है ॥२०॥ गिद्ध (पक्षी) और कांगनीके तेलसे युक्त हड़ताल और मनसिल भी 'श्यामीकरण' योग है । अर्थात् हड़ताल और मनसिलको गिद्ध तथा कांगनीके तेलमें मिलाकर लगानेसे, पुरुष काला होजाता है ॥ २१ ॥ खद्योत (जुगनू=पटबीजना) का चूर्ण, सरसोंके तेलके साथ मिलादेनेपर, रातमें जलने लगता है ॥ २२ ॥

खद्योतगण्डूपदचूर्णं समुद्रजन्तूनां भृङ्गकपालानां खदिरकर्णिकाराणां पुष्पचूर्णं वा शकुनकङ्गुतैलयुक्तं तेजनचूर्णम् पारिभद्रकत्वङ्मषी मण्डूकवसया युक्ता गात्रप्रज्वालनमग्निना ॥ २३ ॥

जुगनू और गेंडुए (यह लम्बा २ कीड़ा वर्षा ऋतुमें होता है) का चूर्ण, समुद्रके इसीतरहके छोटे २ जानवरोंका चूर्ण, भृङ्ग (मस्तकचूड) नामक पक्षीके सिरकी हड्डियोंका चूर्ण, खैर और कनेरके फूलोंका चूर्ण गिद्ध (पक्षी) और कांगनीके तेलसे युक्त बांसका चूर्ण, मेंडककी चर्बीसे युक्त नीमकी छालकी स्याही, इन सब वस्तुओंमें से प्रत्येक, अग्निके द्वारा शरीरके चमकाने या जलानेके समय काम आती है । अर्थात् इन औषधोंको देहपर मलकर, देहमें बिना ही किसी पीड़ाके अग्नि प्रज्वालन किया जासकता है ॥ २३ ॥

पारिभद्रकत्वग्वज्रकदलीतिलकल्कप्रदिग्धं शरीरमग्निना ज्वलति ॥२४॥ पीलुत्वङ्मषीमयः पिण्डो हस्ते ज्वलति ॥२५॥ मण्डूकवसादिग्धोऽग्निना ज्वलति ॥ २६ ॥ तेन प्रदिग्धमङ्गं

कुशाम्रफलतैलसिक्तं समुद्रमण्डूकीफेनकसर्जरसचूर्णयुक्तं वा ज्वल-ति ॥ २७ ॥

नीमकी छाल, थोहर, कदली और तिलके कल्कसे लिपटाहुआ शरीर अग्निके संसर्गसे जलने लगता है। अर्थात् बिना ही किसी कष्टके अग्निकी तरह चमकने लगता है ॥ २४ ॥ पीलु वृक्षकी छालकी स्याहीका बनाहुआ गोला, बिना ही अग्नि संसर्गके, हाथमें जलने लगता है ॥ २५ ॥ मेंडककी चर्बीसे सनाहुआ वही गोला, अग्निके संसर्गसे जलने लगता है ॥ २६ ॥ उस गोलेसे सनाहुआ अंग, कुशके तैल और आम्रफल (आम) के तैलसे गीला कियाहुआ, अथवा समुद्रकी मेंडकी, समुद्रझाग, और राल, इनके चूर्णसे युक्त हुआ २, अग्निका संसर्ग होनेपर जलने लगता है ॥ २७ ॥

मण्डूकवसासिद्धेन पयसा कुलीरादीनां वसया समभागं तैलं सिद्धमभ्यङ्गो गात्राणामग्निप्रज्वालनम् ॥ २८ ॥ मण्डूकवसादिग्धोऽग्निना ज्वलति ॥ २९ ॥

मेंडककी चर्बीके साथ पकेहुए दूध, तथा कैंकड़े आदिकी चर्बीसे, समभागमें बराबर २ मिलाहुआ तेल (अर्थात् उस दूध और चर्बीसे तुल्य परिमाणमें मिलाहुआ तेल), शरीरपर मालिश कियाहुआ, अग्निके समान प्रज्वलित करदेता है। अर्थात् इस तेलकी मालिश करलेनेसे देह अग्निके समान दीप्त होजाती है ॥ २८ ॥ मेंडककी चर्बीसे सनाहुआ पुरुष, अग्निके संसर्गसे जलने लगता है ॥ २९ ॥

वेणुमूलशैवललिप्तमङ्गं मण्डूकवसादिग्धमग्निना ज्वलति ॥३०॥ पारिभद्रकप्रतिबलावञ्जुलवज्रकदलीमूलकल्केन मण्डूकवसादिग्धेन तैलेनाभ्यक्तपादोऽङ्गारेषु गच्छति ॥ ३१ ॥

बांसकी जड़ और सिरवालसे लिप्त अंग, तथा मेंडककी चर्बीसे युक्त अंगवाला पुरुष अग्निके संसर्गसे जलने लगता है ॥ ३० ॥ नीम, खरेंटी, वञ्जुल (तिवस या तेंदुआ, बेंत, अथवा अशोक; वञ्जुल शब्दके ये तीनों अर्थ हैं), थोहर और कदली, इन सब वृक्षोंकी जड़का कल्क बनाकर, उसमें मेंडककी चर्बीके साथ तेल मिलाकर, उस तैलकी पैरोंमें मालिश करके पुरुष, अंगारोंके ऊपर चल सकता है ॥ ३१ ॥

उपोदका प्रतिबला वञ्जुलः पारिभद्रकः।
एतेषां मूलकल्केन मण्डूकवसया सह ॥ ३२ ॥

साधयेत्तैलमेतेन पादावभ्यज्य निर्मलौ ।
अङ्गारराशौ विचरेद्यथा कुसुमसंचये ॥ ३३ ॥

पोदीना, खरेंटी, वञ्जुल (तेंदुआ, बेंत अथवा अशोक), नीम, इन सब वृक्षोंकी जड़का कल्क बनाकर, तथा इनके साथ मेंडककी चर्बी मिलाकर, इन सब चीजोंमें तैलको सिद्ध किया जावे, अर्थात् इन वस्तुओंमें तैलको मिलाकर पकाया जावे । निर्मल धूले हुए पैरोंको इस तैलसे मालिश करके पुरुष अंगारोंके ढेरपर उसी तरह घूम सकता है, जैसे कि फूलोंके ढेरपर ॥३२-३३॥

हंसक्रौञ्चमयूराणामन्येषां वा महाशकुनीनामुदकप्लवानां पुच्छेषु बद्धा नलदीपिका रात्रावुल्कादर्शनम् ॥ ३४ ॥ वैद्युतं भस्माग्निशमनम् ॥ ३५ ॥

हंस, क्रौञ्च (कुंज), और मयूरों (मोरोंकी), अथवा अन्य जलमें घूमने वाले बतख आदि बड़े २ पक्षियोंकी पूंछोंमें बांधी हुई नलदीपिका (नरसलका नाम 'नल' है, उस पर लगाई हुई छोटीसी, दीपिका=बत्ती) रातमें उल्काके समान दीखती है । अर्थात् रातमें दूरसे यह मनुष्योंको भयभीत कर देती है; ये समझते हैं, कि कोई भयंकर राक्षस आदिही इस कृत्यको कर रहे हैं (एक लकड़ीके सिरेमें आग लगाकर, उस लकड़ीको इधर उधर घुमाने या हिलानेसे आगकी जो शकल होजाती है; उसीको अलात या उल्का कहते हैं) ॥ ३४ ॥ बिजलीसे जली हुई लकड़ीकी राख, अग्निको शान्त करने वाली होती है ॥ ३५ ॥

स्त्रीपुष्पपायिता माषा व्रजकुलीमूलमण्डूकवसामिश्रं चुल्ल्यां दीप्तायामपाचनम् ॥ ३६ ॥ चुल्लीशोधनं प्रतीकारः ॥ ३७ ॥

स्त्रीरजसे मिले हुए उड़द; और मेंडककी चर्बीसे मिली हुई, गोष्ठ (गौओंके रहनेकी जगह) में उत्पन्न होने वाली बड़ी कटेहलीकी जड़, इस हालतमें ये दोनों चीजें, चूल्हेके अच्छी तरह जलने परभी नहीं पकतीं । अर्थात् इन चीजोंके नीचे चाहे जितनी आग लगाई जाय, इनमें पाक नहीं होता ॥ ३६ ॥ चूल्हेसे उतारकर इनको साफ़ करदेनाही, इस पाकप्रतिबन्धका प्रतीकार है ॥ ३७ ॥

पीलुमयो मणिरग्निगर्भः सुवर्चलामूलग्रन्थिः सूत्रग्रन्थिर्वा पिचुपरिवेष्टितो मुखादग्निधूमोत्सर्गः ॥ ३८ ॥ कुशाम्रफलतैल-सिक्तोऽग्निर्वर्षप्रवातेषु ज्वलति ॥ ३९ ॥

पीलुकी लकड़ीसे बनाया हुआ मटका अग्निगर्भ होता है; (अर्थात् इसमें अग्निका अंश अधिक होनेसे, बाहरकी थोड़ी आगका संसर्ग भी, इसपर तत्कालही प्रभाव करदेता है !), अलसीकी जड़की गांठ, अथवा अलसीके सूतों की गांठ, रुईसे लिपटी हुई, मुंहसे आग और धुआं छोड़नेका साधन होती है ॥ ३८ ॥ कुश (एक प्रकारकी घास, जिसके आसन आदि बनाये जाते हैं) आम्रफल (आम), और तेलके सहारेसे जलाई हुई आग, आंधी और वर्षामें भी जलती रहती है ॥ ३९ ॥

समुद्रफेनकस्तैलयुक्तो ऽम्भासि प्लवमानो ज्वलति ॥ ४० ॥ प्लवङ्गमानामास्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितो ऽग्निर्नोदकेन शाम्यत्यु दकेन च ज्वलति ॥ ४१ ॥

समुद्रझाग, तेलसे युक्त हुआ २, पानीमें तैरता हुआ भी जलता रहता है ॥४०॥ बन्दरकी हाड्डियोंमें, विचित्र वर्णके बांससे निर्मथन करके उत्पन्नकी हुई अग्नि, जलसे शान्त नहीं होती, प्रत्युत जलसे और भी जलने लगती है ॥४१॥

शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुरुषस्य वामपार्श्वपर्शुकास्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितोऽग्निर्यत्र त्रिरपसव्यं गच्छति न चात्रा- न्योऽग्निर्ज्वलति ॥ ४२ ॥

हथियार (तलवार भाले आदि) से मारेहुए, या जिसके देहमें शूली आदिका प्रवेश कियागया हो, ऐसे पुरुषके, बाईं ओरकी पसलीकी हाड्डियोंमें विचित्र वर्णके बांससे निर्मथन करके निकाली हुई अग्नि; अथवा स्त्री या पुरुषकी हाड्डियोंमें मनुष्यकी पसलीसे निर्मथन करके पैदा कीहुई अग्नि; जहांपर तीनबार बाईं ओरको घुमादी जाती है, वहांपर दूसरी अग्निका प्रभाव नहीं होसकता; अर्थात् और कोई आग उस जगह नहीं लग सकती । (इसका उपयोग 'आत्मरक्षितक' प्रकरणमें बताया गया है । देखो-अधि० १, अध्या० २१) ॥ ४२ ॥

**चुचुन्दरी खञ्जरीटः खारकीटश्च पिष्यते ।
अश्वमूत्रेण संसृष्टा निगलानां तु भञ्जनम् ॥ ४३ ॥**

छछूंदर, खञ्जन (कबूतरकी बराबर, नरमा कपासकेसे रंगका एक पक्षी. प्रायः जलके किनारे रम्य जंगलोंमें रहता है), और खारकीट (ऊसर भूमिमें उत्पन्न होने वाला एक प्रकारका कीड़ा), इनको घोड़ेके पेशाबके साथ अलहदा २ पीसलिया जावे, फिर इनको मिला लिया जावे, इनका यह मिश्रण घोड़े या मनुष्य आदिको बांधने वाली संकलों को तोड़ देता है ॥ ४३ ॥

अयस्कान्तो वा पाषाणः ॥ ४४ ॥

अथवा अयस्कान्त नामक पाषाण (मणि) भी संकलोंको तोड़ने वाला होता है ॥ ४४ ॥

कुलीराण्डदर्दुरखारकीटवसाप्रदेहेन द्विगुणो दारकगर्भः कङ्कभासपार्श्वोत्पलोदकपिष्टश्चतुष्पदद्विपदानां पादलेपः, उलूकगृध्रवसाभ्यामुष्ट्रचर्मोपानहावभ्यज्य वटपत्रैः प्रतिच्छाद्य पञ्चाशद्योजनान्यश्रान्तो गच्छति ॥ ४५ ॥

केंकड़े के अण्डे और मेंडक तथा खारकीटकी चर्बी से बढ़ाए हुए, अच्छीतरह घनताको प्राप्त हुए २ सूकरगर्भको, कंक (इसी नामसे प्रसिद्ध एक पक्षी), और गिद्धकी पसलियों तथा कमलके जलसे पीसकर, चौपायों या दुपायोंके पैरोंमें उसका लेप कर लिया जावे; और उल्लू तथा गिद्धकी चर्बीसे, ऊंटके चमड़की बनीहुई जूतियोंको चुपड़कर, तथा बड़के पत्तोंमे ढककर, उन जूतियोंको पहनकर, पैरोंमें उपर्युक्त लेप किया हुआ पुरुष, पचास योजन तक (एक योजन=चारकोस) बिना थकावट के चला जाता है ॥ ४५ ॥

श्येनकङ्ककाकगृध्रहंसक्रौञ्चवीचिरल्लानां मज्जानो रेतांसि वा योजनशताय ॥ ४६ ॥ सिंहव्याघ्रद्वीपिकाकोलूकानां मज्जानो रेतांसि वा सार्ववर्णिकानि गर्भपतनान्युष्ट्रिकायामभिषूय श्मशाने प्रेतशिशून्वा तत्समुत्थितं मेदो योजनशताय ॥ ४७ ॥

बाज, कंक, कौआ, गिद्ध, हंस, कुंज, वीचिरल्ल (एक प्राणी, जिसकी पीठ पर लहरों की तरह कम्बल की सी रेखाएं होती हैं, इन प्राणियोंकी चर्बी और रेतस (वीर्य) को मिलाकर, पूर्ववत् पैरों में लेप किया जावे, तथा जूतियों पर चुपड़ा जावे, इससे, पुरुष सौ योजन तक बिना थकावट के जा सकता है ॥ ४६ ॥ सिंह, बघेरा, गेंडा, कौआ और उल्लू, इनकी चर्बी और रेतस्; अथवा सब ही वर्णोंके गिरे हुए गर्भोंको मिट्टीके किसी पात्रमें अभिषव करके, अथवा मरे हुए छोटे बच्चोंको श्मशान भूमिमें ही अभिषव करके, उनसे उत्पन्न हुआ २ अर्थात् उनके शरीरसे निकाला हुआ मेदस् (शरीरकी मज्जा नामक धातु), इन दोनों ही वस्तुओंको पैर आदिमें लेप करके चलने वाला पुरुष, बिना थकावट के सौ योजन तक चला जासकता है। (४५-४७ इन तीन सूत्रोंका अर्थ बहुत अस्पष्ट है। मूल पाठ में भी भिन्न २

पुस्तकों में बहुत भेद है। इसलिये और भी अर्थका ठीक निश्चय नहीं होता। ४५ वें सूत्रमें, शामशास्त्री आदि की सम्पादित पुस्तकों में 'नारकगर्भः' ऐसा पाठ है, परन्तु गणपति शास्त्री की सम्पादित पुस्तकमें 'दारकगर्भः' पाठ है। शामशास्त्री तो यहां पर प्रायः विचारणीय सब ही शब्दोंके आगे यह (?) सन्देहद्योतक चिन्ह लगा गये हैं। आपने अपनी सम्पादित मूल पुस्तक में 'नारकगर्भः' पाठ रखकर भी इंग्लिश अनुवादमें 'नारक' शब्दके आगे संदेह चिन्ह लगाकर, आगे A Donkey (=गधा) लिखा हुआ है, न मालूम यह अर्थ आप किस शब्द का कररहे हैं, मालूम ऐसा होता है, कि कहीं आप 'गर्भ' का अर्थ 'गर्दभ' समझ रहे हैं। इसी तरह सूत्रोंकी पूर्वापरके साथ योजना भी बहुत उलट पुलट की है। ४७ वें सूत्र में तो गर्भवती ऊंटणीको भूलकर, बहुत बड़ी अर्थ सम्बन्धी गड़बड़ की है। उस जगह का पाठ आपकी मूल पुस्तक में इस प्रकार है—'सप्तपर्णिकानि गर्भवातान्युष्ट्रिकायासन्निष्टूय'। इन वाक्यों में से वह अर्थ न मालूम आपने किस दिव्यशैलीके आधार पर निकाला है इसी सूत्रके लिङ्गव्यात्र आदि लम्बेसे पदका अर्थ करना आप बिलकुल ही भूल गये हैं। गणपति शास्त्रीके भी अर्थ कुछ निश्चयात्मक प्रतीत नहीं होते। ४५ वें सूत्रमें 'उत्पल' का अर्थ 'मत्स्य' किया है, फिर उसके आगे के 'उदक' शब्दका समन्वय न मालूम क्या होगा। ४७ वें सूत्रमें जहां शामशास्त्रीने ऊंटनी भूली है, वहांका मूलपाठ गणपति शास्त्रीकी पुस्तक में इस प्रकार है:—सार्ववर्णिकानि गर्भपतनान्युष्ट्रिकायामभिषूय'। हमने भी इसी पाठके अनुसार सूत्र का अर्थ कर दिया है, पर आर्थिक वास्तविकता का कुछ निश्चय नहीं हुआ। इसी तरह ४५वें सूत्रमें 'दारकगर्भः' का अर्थ गणपति शास्त्री ने 'सूकरगर्भः' कर दिया है, पर इससे भी अर्थ स्पष्ट नहीं खुलता। तात्पर्य यह है, कि इन तीनों ही सूत्रों में, व्याख्याकारों और मूल सम्पादकोंके अनेक स्खलन दोख रहे हैं। विचारशील विद्वान् पाठक, स्वयं ही गोता लगाकर इसमें से कुछ रहस्य ढूंढने का यत्न करें) ॥ ४७ ॥

अनिष्टैरद्भुतोत्पातैः परस्योद्वेगमाचरेत् ।
आराज्यायेति निर्वादः समानः कोप उच्यते ॥ ४८ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे प्रलम्भने अद्भुतोत्पादनं द्वितीयो ऽध्यायः ॥२॥

आदितः सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतः ॥ १४७ ॥

इसप्रकार आश्चर्यचकित करने वाले इन अद्भुत, तथा अनिष्टकारक उत्पातों से विजिगीषु, शत्रुको अच्छीतरह बेचैन करे। अर्थात् उसको खूब

भयभीत बनावे, जिससे उसके प्रदेशमें अराजकता फैल जावे। इसप्रकार का व्यापार, अनिष्टकारक तथा कलङ्कका हेतु होनेपर भी, परस्पर राजाओं के द्वेषभाव के बढ़नेपर करना ही पड़ता है; इसीलिये इसका यहांपर निरूपण कर दिया गया है ॥ ४७ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त।

तीसरा अध्याय।

१७८ प्रकरण।

प्रलम्भनमें भैषज्यमन्त्रयोग।

{ शत्रु को धोखा देने के लिये, इस प्रकरण में भैषज्य और मन्त्रों के योग का निरूपण किया जायगा ॥

मार्जारोष्ट्रवृकवराहश्वाविद्वागुलीनप्तृकाकोलूकानामन्येषां वा निशाचराणां सत्त्वानामेकस्य द्वयोर्बहूनां वा दक्षिणानि वामानि वाक्षीणि गृहीत्वा द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥१॥ ततो दक्षिणं वामेन वामं दक्षिणेन समभ्यज्य रात्रौ तमसि च पश्यति ॥२॥

पहिले भैषज्ययोग का कथन किया जाता है:—बिलाव, ऊंट, भेड़िया, सूअर, सेही, बगली, नप्ता (एक प्रकार का पक्षी) कौआ और उल्लू, अथवा रात्रिमें विचारण करने वाले अन्य प्राणियों में से, एक दो या बहुतों की दाईं बाईं आंखों का लेकर, उनका पृथक् २ दो जगह चूर्ण बना लेवे ॥ १ ॥ तदनन्तर बाईं आंखों के चूर्णसे दाहिनी आंखको आंजकर, और दाईं आंखों के चूर्णसे बाईं आंखको आंजकर, रातमें अन्धकारके समय भी पुरुष, प्रत्येक वस्तु को देख सकता है ॥ २ ॥

एकाम्लकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिवा।
एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौ रूपाणि पश्यति ॥ ३ ॥

एक बढ़ल (या बड़हल, यह एक प्रसिद्ध फल, गेरुए से रंगका मीठा होता है), सूअर की आंख, जुगनू, और काला शारिवा (इसी नाम से प्रसिद्ध एक औषधि), इन सब चीजों को मिलाकर आंख में लगाने से पुरुष, रात में भी रूपों को अच्छी तरह देख सकता है ॥ ३ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्ये शस्त्रहतस्यशूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरः-कपाले मृत्तिकायां यवानावास्याविक्षीरेण सेचयेत् ॥ ४ ॥ ततो यवविरूढमालामाबद्ध्य नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ५ ॥

तीन रात्रि पर्यन्त उपवास रक्खा हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्रसे युक्त काल में हथियार से मारे हुए, अथवा शूलप्रोत पुरुषके (जिसके शरीर में शूल का प्रवेश किया गया हो, ऐसे) सिर की हड्डी में मट्टी भरके उसमें जौ बोकर, उन्हें भेड़के दूध से सींचे ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन उपजे हुए जौओं की माला को गले में बांधकर, छाया और रूप से रहित होकर विचरण करता है। अर्थात् उसकी छाया और रूप किसी पुरुष को नहीं दीखते, तथा वह सबको देख लेता है ॥ ५ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण श्वमार्जारोलूकवागुलीनां दक्षिणानि वामानि चाक्षीणि द्विधा चूर्णं कारयेत् ॥ ६ ॥ ततो यथास्वमभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ७ ॥

अथवा तीन रात्रि पर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्रसे युक्त कालमें, कुत्ता बिलाव, उल्लू और बागुली (एक प्रकारका पक्षी संभवतः बगली का यह नाम हो),इन चारों जानवरोंकी दाईं और बाईं आंखोंको पृथक् २ दो जगह चूर्ण कराये ॥ ६ ॥ तदनन्तर दाईं आंख के चूर्ण को दाईं आंख,और बाईं आंखके चूर्णको बाईं आंख में लगाकर, छाया और रूपसे रहित होकर विचरण करता है ॥ ७ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण पुरुषघातिनः काण्डकस्य शलाकामञ्जनीं च कारयेत् ॥ ८ ॥ ततोऽन्यतमेनाक्षिचूर्णेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ ९ ॥

अथवा तीन रात्रि पर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्रसे युक्त कालमें, पुरुषको मारने वाले बाणके लोहेकी एक सुरमा डालनेकी सलाई और एक सुरमादानी बनवावे ॥ ८ ॥ तदनन्तर कुत्ता, बिलाव, उल्लू और वागुली, इन चारोंमेंसे किसी एककी दाईं बाईं आंखोंका पृथक् २ चूर्ण बनाकर उसी सलाई और सुरमेदानीके द्वारा उसे आंखोंमें आंजकर वह पुरुष, छाया और रूपसे रहित होकर विचरण करता है ॥ ९ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण कालायसीमञ्जनीं शलाकां च कारयेत् ॥ १० ॥ ततो निशाचराणां सत्त्वानामन्यतमस्य शिरः

कपालमञ्जनेन पूरयित्वा मृतायाः स्त्रिया योनौ प्रवेश्य दाहयेत् ॥११॥ तदञ्जनं पुष्येणोद्धृत्य तस्यामञ्जन्यां निदध्यात् ॥१२॥ तेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १३ ॥

अथवा तीन रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्त कालमें, फ़ौलाद (लोहे) की एक सुरमादानी और सलाई बनवावे ॥ १० ॥ तदनन्तर, रातमें घूमने वाले जानवरोंमेंसे किसी एक की खोपड़ीको अञ्जनसे भरकर, उसे मरीहुई स्त्री की योनिमें प्रविष्ट करके जला देवे ॥ ११ ॥ बादमें पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमें उस अञ्जनको वहांसे उठावे, और उस लोहेकी सुरमेदानीमें रख देवे ॥ १२ ॥ उस अञ्जनको, उसी पूर्वोक्त सलाईसे आंखोंमें आंजकर पुरुष, छाया और रूपसे रहित होकर सर्वत्र विचरण करता है ॥१३॥

यत्र ब्राह्मणमाहिताग्निं दग्धं दह्यमानं वा पश्येत्तत्र त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण स्वयंमृतस्य वाससा प्रसेवं कृत्वा चिताभस्मना पूरयित्वा तमाबध्य नष्टच्छायारूपश्चरति ॥ १४ ॥

अथवा जहांपर आहिताग्नि (अग्निहोत्री) ब्राह्मणको जला हुआ या जलता हुआ देखे, वहांपर तीन रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमें, स्वयं मरेहुए किसी मनुष्यके वस्त्रसे एक पोटली (थैली-सी) बनाकर, उसको उसी मनुष्यकी चिताकी राखसे भरलेवे, और उस पोटलीको अपने शरीरमें किसी जगह बांधलेवे; ऐसा करनेसे वह पुरुष, छाया और रूपसे रहित होकर सर्वत्र विचरण करता है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणस्य प्रेतकार्ये या गौः मार्यते तस्या अस्थिमज्जाचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पशूनामन्तर्धानम् ॥ १५ ॥ सर्पदष्टस्य भस्मना पूर्णा प्रचलाकभस्त्रा मृगाणामन्तर्धानम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणके प्रेतकार्य अर्थात् श्राद्धमें जो गाय मारी जाती है, उसकी हड्डी और मज्जाके चूर्णसे, सांपकी कांचलीको भर दिया जावे; यह पशुओंके अन्तर्धान करनेका योग है। अर्थात् उस चूर्णसे भरी हुई सांपकी कांचलीका संसर्ग होनेपर पशु, किसीको भी नहीं दीखता (इस सूत्रमें 'या गौः मार्यते तस्या अस्थि' के स्थानपर किसी पुस्तकमें 'यो गौ मार्यते तस्यास्थि ' ऐसा पुल्लिङ्ग पाठ भी है) ॥ १५ ॥ सर्पसे काटेहुए किसी जानवरकी राखसे, मोरपंखकी बनाई हुई थैलीको भरदिया जावे, यह योग सभी जंगली पशुओंके अन्तर्धानके लिये है ॥ १६ ॥

उलूकवागुलीपुच्छपुरीषजान्वस्थिचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पक्षिणामन्तर्धानम् ॥ १७ ॥ इत्यष्टावन्तर्धानयोगाः ॥ १८ ॥

उल्लू और वागुलीकी पूंछ, विष्टा, जानु (घोंटू, टांग) और हड्डियोंके चूर्णसे, सांपकी कैंचलीको भर दिया जावे; यह योग सभी पक्षियोंके अन्तर्धानके लिये होता है। अर्थात् उस चूर्णसे भरीहुई सांपकी कैंचलीका संसर्ग होनेपर, वह पक्षी किसीको भी नहीं दीखता ॥ १७ ॥ यहांतक अन्तर्धानके लिये आठ योगोंका निरूपण कर दिया गया ॥ १८ ॥

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम् ।
भण्डीरपाकं नरकं निकुम्भं कुम्भमेव च ॥ १९ ॥
देवलं नारदं वन्दे वन्दे सावर्णिगालवम् ।
एतेषामनुयोगेन कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २० ॥

यथा स्वपन्त्यजगराः स्वपन्त्यपि चमूखलाः ।
तथा स्वपन्तु पुरुषा ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ २१ ॥

भण्डकानां सहस्रेण रथनेमिशतेन च ।
इमं गृहं प्रवेक्ष्यामि तूष्णीमासन्तु भाण्डकाः ॥ २२ ॥

नमस्कृत्वा च मनवे बध्वा शुनकफेलकाः ।
ये देवा देवलोकेषु मानुषेषु च ब्राह्मणाः ॥ २३ ॥

अद्ध्ययनपारगाः सिद्धा ये च कैलासतापसाः ।
एतेभ्यः सर्वसिद्धेभ्यः कृतं ते स्वापनं महत् ॥ २४ ॥

अतिगच्छति च मय्यपगच्छन्तु संहताः ॥ २५ ॥
अलिते पलिते मनवे स्वाहा ॥ २६ ॥

अब इसके आगे सबको सुला देनेके चार योगोंका निरूपण किया जायगा; इन योगोंमें मन्त्रोंका भी प्रयोग करना पड़ता है; १९ से २६ संख्या तक आठ मन्त्र यहां बतलाये गये हैं, जिनमें पहिला मन्त्र 'बलिं वैरोचनं वन्दे, से प्रारम्भ होता है; और आठवां मन्त्र 'अलिते पलिते मनवे स्वाहा' पर समाप्त होजाता है। इन मन्त्रोंके अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हैं, और इनका यहां उपयोग भी केवल पाठ मात्रमेंही पर्यवसित होजाता है; ये आठों मन्त्र पहिले दो योगोंके लिये साधारण हैं, अर्थात् निम्न प्रतिपादित दोनों योगोंमें इन्हीं मन्त्रोंका उप-

योग होना चाहिये । २४वें श्लोकमें 'एतेभ्यः' के स्थानपर 'एते च' और २६ वें मन्त्रमें 'पलिते' के स्थानपर 'वलिते' पाठान्तर है ॥ १९—२६ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ २७ ॥ त्रिरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां श्वपाकीहस्ताद्विलखावलेखनं क्रीणीयात् ॥ २८ ॥ तन्माषैः सह कण्डोलिकायां कृत्वासङ्कीर्णे आदहने निखानयेत् ॥ २९ ॥ द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य कुमार्या पेषयित्वा गुलिकाः कारयेत् ॥ ३० ॥ तत एकां गुलिकामभिमन्त्रयित्वा यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ३१ ॥

इस मन्त्र समूहका प्रयोग इसतरह समझना चाहिये ॥ २७ ॥ तीन रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्त, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, किसी चाण्डालीके हाथसे चूहेका एक टुकड़ा खरीदलेवे ॥ २८ ॥ उसको उड़दोंके साथ एक छोटीसी पिटारीमें रखकर, खुले विस्तृत श्मशानमें गढ़ा खोदकर वहां इसे गाड़ देवे ॥ २९ ॥ दूसरी चतुर्दशीमें (अर्थात् जिस चतुर्दशीमें गाड़ा था, उससे अगली चतुर्दशीमें) वहांसे इसे उखाड़कर, किसी कुमारी से इसको पिसवावे, और इसकी गोली बनवा लेवे ॥ ३० ॥ तदनन्तर एक गोलीको मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके, जहांपर इस उक्त मन्त्रसमूहको पढ़ता हुआ गोलीको फैंक देता है, वहां वह पुरुष, सबको सुला देता है । अर्थात् उस स्थानमें विद्यमान सब ही प्राणी, उस मन्त्रयुक्त गोलीके प्रभावसे सोजाते हैं । यहांतक पहिले योगका निरूपण किया गया ॥३१॥

एतेनैव कल्पेन श्वाविधः शल्यकं त्रिकालं त्रिश्वेतमसङ्कीर्णे आदहने निखानयेत् ॥ ३२ ॥ द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य दहनभस्मना सह यत्रैतेन मन्त्रेण क्षिपति तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥३३॥

पूर्वोक्त प्रकारके अनुसारही (अर्थात् नियत समयतक उपवास करके पुष्ययुक्त कृष्ण चतुर्दशीमें), चाण्डालीके हाथसे, तीन जगहसे काली और तीन जगहसे सफेद सेहीके कांटे खरीदे; और उसे खुले विस्तृत श्मशानके मैदानमें पूर्ववत्ही गढ़ा खोदकर गाड़ देवे ॥ ३२ ॥ उससे अगली चतुर्दशीमें उसे उखाड़कर, श्मशानकी राखके साथ जहां उसको मन्त्रपूर्वक फैंक देता है, वहीं सबको सुला देता है । यह दूसरे योगका निरूपण किया गया ॥३३॥

सुवर्णपुष्पीं ब्रह्माणीं ब्रह्माणं च कुशध्वजम् ।
सर्वाश्च देवता वन्दे वन्दे सर्वांश्च तापसान् ॥ ३४ ॥

वशं मे ब्राह्मणा यान्तु भूमिपालाश्च क्षत्रियाः ।
वशं वैश्याश्च शूद्राश्च वशतां यान्तु मे सदा ॥ ३५ ॥
स्वाहा आमिले किमिले वयुजारे प्रयोगे फक्के वयुश्वे विहाले दन्तकटके स्वाहा ॥ ३६ ॥

सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ।
श्वाविधः शल्यकं चैतत्त्रिश्वेतं ब्रह्मनिर्मितम् ॥ ३७ ॥
प्रसुप्ताः सर्वसिद्धा हि एतत्ते स्वापनं कृतम् ।
यावद्ग्रामस्य सीमान्तः सूर्यस्योद्गमनादिति ॥ ३८ ॥
स्वाहा ॥ ३९ ॥

पहिले और दूसरे योगमें समानही मन्त्रोंका उपयोग होता है । तीसरे योगके लिये मन्त्र भिन्न हैं, वे मन्त्र ३४ वीं संख्यासे लगाकर ३९ वीं संख्या तक समझने चाहियें । इन मन्त्रोंका प्रारम्भ 'सुवर्णपुष्पीं ब्रह्माणीं' और समाप्ति ' सूर्यस्योद्गमनादिति स्वाहा ' है । अर्थ सबके स्पष्ट हैं; यहां इनका उपयोग, केवल इनके पाठमात्रसे है । ३६ वीं संख्याके मन्त्रवाक्यमें 'वयु-जारे' के स्थानपर 'वसुजारे' या 'वयुचारे'; और 'वयुश्वे' के स्थानपर 'वयुह्वे' या 'धुट्टे' तथा 'कटके' के स्थानपर 'कट्टके' पाठान्तर हैं ॥ ३४-३९ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४० ॥ श्वाविधः शल्यकानि त्रिश्वेतानि सप्तरात्रोषितः कृष्णचतुर्दश्यां खादिराभिः समिधाभिरग्निमेतेन मन्त्रेणाष्टशतसंपातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ४१ ॥ तत एकमेतेन मन्त्रेण ग्रामद्वारि गृहद्वारि वा यत्र निखन्यते तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ४२ ॥

इस मन्त्रसमूहका प्रयोग इसप्रकार समझना चाहिये–॥ ४० ॥ पूर्ववतही तीन जगहसे सफेद सेहीके कांटेको श्मशान भूमिमें गाड़ देवे । सात रात पर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, कृष्णापक्षकी चतुर्दशीमें खैर आदि वृक्षोंकी समिधाओंसे, इस मन्त्रसमूहके द्वारा; शहद और घी मिलाकर उसकी एकसौ आठ वार अग्निमें आहुति देवे ॥ ४१ ॥ इस कृत्यके अनन्तर श्मशानमें गड़े हुए कांटोंको उखाड़कर, उनमेंसे एक कांटा लेकर, इस मन्त्रसमूहके द्वारा उसको जहांकहीं, किसी ग्राम या घरके दरवाजेपर गाड़ देता है, वहींपर सबको सुला देता है। यह तीसरे योगका निरूपण करदिया गया ॥ ४२ ॥

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम् ।
निकुम्भं नरकं कुम्भं तन्तुकच्छं महासुरम् ॥ ४३ ॥
अर्मालवं प्रमीलं च मण्डोलूकं घटोद्बलम् ।
कृष्णकंसोपचारं च पौलोमीं च यशस्विनीम् ॥ ४४ ॥

अभिमन्त्रय्य गृह्णामि सिद्धार्थं शवसारिकाम् ।
जयतु जयति च नमः शलकभूतेभ्यः स्वाहा ॥ ४५ ॥
सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्रामे कुतूहलाः ॥ ४६ ॥

सुखं स्वपन्तु सिद्धार्था यमर्थं मार्गयामहे ।
यावदस्तमयादुदयो यावदर्थं फलं मम ॥ ४७ ॥
इति स्वाहा ॥ ४८ ॥

अब चौथे योगका निरूपण किया जाता है । इसमें उपयोग करनेके लिये 'बलिं वैरोचनं वन्दे' से लगाकर 'यावदर्थं फलं मम । इति स्वाहा' तक मन्त्र निर्दिष्ट हैं । इनमें ४४ वीं संख्याके मन्त्रमें 'घटोद्बलम्' के स्थानपर 'घटोबलम्'; ४५ वीं संख्याके मन्त्रमें 'अभिमन्त्रय्य' के स्थानपर 'अभिमन्त्रयित्वा' और 'शवसारिकाम्' के स्थानपर 'शवशारिकाम्' ये पाठान्तर हैं ॥ ४३–४८ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ४९ ॥ चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यामसंकीर्ण आदहने बलिं कृत्वा एतेन मन्त्रेण शवशारिकां गृहीत्वा पोत्रीपोट्टलिकां बध्नीयात् ॥ ५० ॥ तन्मध्ये श्वाविधः शल्यकेन विध्वा यत्रैतेन मन्त्रेण निखन्यते तत्सर्वं प्रस्वापयति ॥ ५१ ॥

इस मन्त्रसमूहका प्रयोग, इसप्रकार समझना चाहिये:—॥ ४९ ॥ चार रात्रिपर्यन्त उपवास रखता हुआ पुरुष, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, विस्तृत खुले श्मशानके मैदानमें बलि देकर, इस मन्त्रसमूहके द्वारा एक मरी हुई मैनाको लेकर, छोटेसे कपड़ेमें उसकी पोटली बांध लेवे ॥ ५० ॥ उसके बीचमें सेहीका एक कांटा बींधकर, जहांकहीं भी इस मन्त्रसमूहको पढ़ता हुआ, उसे गाड़ देता है, वहांपर सबको सुला देता है । यहांतक सुला देनेके चारों योगोंका, मन्त्रनिर्देशपूर्वक वर्णन करदिया गया ॥ ५१ ॥

उपैमि शरणं चाग्निं दैवतानि दिशो दश ।
अपयान्तु च सर्वाणि वशतां यान्तु मे सदा ॥ ५२ ॥
स्वाहा ॥ ५३ ॥

अब इसके आगे दरवाजा खोलदेनेके योगका निरूपण करते हैं, ५२ और ५३ संख्यासे, उसके मन्त्रका निर्देश किया गया है ॥ ५२–५३ ॥

एतस्य प्रयोगः—॥ ५४ ॥ त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शर्करा एकविंशतिसंपातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात् ॥ ५५ ॥ ततो गन्धमाल्येन पूजयित्वा निखानयेत् ॥ ५६ ॥ द्वितीयेन पुष्येणोद्धृत्यैकां शर्करामभिमन्त्र्य कवाटमाहन्यात् ॥ ५७ ॥ अभ्यन्तरं चतसृणां शर्कराणां द्वारमपाव्रियते ॥ ५८ ॥

इस मन्त्रका प्रयोग निम्नलिखित रीतिसे समझना चाहिये:—॥५४॥ तीन रात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक, पुष्यनक्षत्रके योगमें बहुतसी कंकड़ियोंको लेकर (=शर्कराः । इस शब्दका अर्थ गणपति शास्त्रीने खोपड़ी भी किया है), उनके ऊपर अग्निमें, शहद और घीसे इक्कीसवार आहुति डालकर हवन करे ॥ ५५ ॥ तदनन्तर, गन्ध और मालाओंसे उनकी (कंकड़ियों, या खोपड़ियोंकी) पूजा करके, एक गढ़ा खोदकर उसमें उन्हें गाड़देवे ॥ ५६ ॥ जब दूसरीवार पुष्यनक्षत्रका योग होवे, तो उन्हें उखाड़कर, उनमेंसे एक कंकड़ीको, मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके किवाड़पर मारे । अर्थात् मन्त्रपूर्वक उस कंकड़ीको, किवाड़ोंपर आघात करे ॥ ५७ ॥ उस आघातसे चार कंकड़ियोंकी बराबर जगहमें, किवाड़में छेद होजायगा । इसीतरह सम्पूर्ण द्वारको, चुपचाप किवाड़ तोड़कर खोला जासकता है ॥ ५८ ॥

चतुर्भक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां भग्नस्य पुरुषस्यास्थ्ना ऋषभं कारयेत् ॥ ५९ ॥ अभिमन्त्रयेच्चैतेन ॥ ६० ॥ द्विगोयुक्तं गोयानमाहृतं भवति ॥ ६१ ॥ ततः परमाकाशे विक्रामति ॥ ६२ ॥

इसी मन्त्रका एक और भी प्रयोग बताते हैं:—चार रात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक रहता हुआ पुरुष, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, टूटे हुए पुरुषकी हड्डीसे एक बैलकी मूर्ति बनवावे । (किसी २ पुस्तकमें 'चतुर्भक्तोपवासी' के स्थानपर 'चतुर्भक्तोपवासी' भी पाठ है । अर्थ दोनोंका एकही है) ॥ ५९ ॥ इस उपर्युक्त मन्त्रके द्वारा, उस मूर्त्तिका अभिमन्त्रण करे । अर्थात् उपर्युक्त विधिसे होम पूजा आदि करके, उसको सिद्ध करे ॥ ६० ॥ ऐसा करनेसे दो बैलोंसे युक्त

एक बैल गाड़ी वहां उपस्थित होजाती है ॥ ६१ ॥ तदनन्तर उसके द्वारा पुरुष, परम आकाशमें घूम सकता है; और सर्वत्र प्रवेश करसकता है; अर्थात् उसे द्वार आदि, कहीं बाधा नहीं दे सकते ॥ ६२ ॥

सदारत्रिरविः सगण्डपरिघाति सर्वं भणाति ॥ ६३ ॥ चण्डालीकुम्बीतुम्भकटुकसारीघः सनारीभगो ऽसि स्वाहा ॥६४॥

अब एक मन्त्र ताला खोलने, और सुला देने, इन दोनों कामोंमें आनेवाला बताते हैं, यह मन्त्र ६३ और ६४ संख्यासे बताया गया है । ६४ वीं संख्याके वाक्यमें 'कुम्बीतुम्भ' के स्थानपर 'कुम्बीत्तम्ब' ऐसा पाठान्तर भी है ॥ ६३-६४ ॥

तालोद्घाटनं प्रस्वापनं च ॥ ६५ ॥

इस मन्त्रका प्रयोग ठीक उसी तरह करना चाहिये, जैसाकि दरवाजा खोलनेके मन्त्रका पहिला प्रयोग बतलाया गया है । इसी रीतिसे इस मन्त्रके द्वारा ताला भी खोला जासकता है, और लोगोंको सुलाया भी जासकता है ॥ ६५ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरः-कपाले मृत्तिकायां तुवरीरा वासोदकेन सेचयेत् ॥६६॥ जातानां पुष्येणैव गृहीत्वा रज्जुकां वर्तयेत् ॥ ६७ ॥ ततः सज्यानां धनुषां यन्त्राणां च पुरस्ताच्छेदनं ज्याच्छेदनं करोति ॥ ६८ ॥

अब धनुषकी रस्सी काट देनेका योग बतलाते हैं:—तीन रात्रिपर्यन्त उपवासपूर्वक रहता हुआ पुरुष, पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमें, हथियारसे मारे हुए, या शूलप्रोत (जिसके शरीरमें लोहेकी शलाका, या सूली आदिका प्रवेश हुआ हो, ऐसे) पुरुषकी खोपड़ीमें मट्टी भरकर उसमें थोर या अरहर बोदेवे और जलसे उसको सींचता रहे ॥ ६६ ॥ जब वह अङ्कुरित होजावे तो, पुष्यनक्षत्रसे युक्तकालमेंही उसे उखाड़कर उनकी रस्सी बटवावे ॥ ६७ ॥ उस रस्सीके द्वारा वह पुरुष, डोरी सहित धनुषोंका, और अन्य यन्त्रोंका भी सामनेसे छेदन करसकता है; तथा धनुषकी डोरीका भी छेदन करसकता है ॥ ६८ ॥

उदकाहिभस्त्रामुच्छ्वासमृत्तिकया स्त्रियाः पुरुषस्य वा पूरयेत् ॥ ६९ ॥ नासिकाबन्धनं मुखग्रहश्च ॥ ७० ॥ वराहबस्तिमुच्छ्वासमृत्तिकया पूरयित्वा मर्कटस्नायुना बध्नीयात् ॥ ७१ ॥ आनाहकारणम् ॥ ७२ ॥ कृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रहताया गोः कपि-

लायाः पित्तेन राजवृक्षमयीममित्रप्रतिमां अञ्ज्यात् ॥ ७३ ॥ अन्धीकरणम् ॥ ७४ ॥

जलके सांपकी कैंचुलीको, किसी स्त्री या पुरुषकी चिताके ऊपरकी मिट्टीसे भर देवे ॥ ६९ ॥ यह योग नासिका और मुखका निरोध करनेवाला होता है ॥ ७० ॥ इसीतरह सूअरकी वस्तीमें चिताके ऊपरकी मिट्टी भरकर उसे किसी बन्दरकी नाड़ीसे बांध दिया जावे ॥ ७१ ॥ यह योग मलके रोकनेवाला होता है ॥ ७२ ॥ कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें, हथियारसे मारी हुई कपिला गायके पित्तसे, अमलतासकी लकड़ीसे बनी हुई शत्रुकी प्रतिमाको आंजे । अर्थात् उस प्रतिमाकी आंखमें, उस पित्तको अंजनकी तरह लगावे ॥ ७३ ॥ शत्रुको अन्धा बना देनेके लिये यह योग है, अर्थात् ऐसा करनेसे शत्रु अन्धा हो जाता है ॥ ७४ ॥

चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां बलिं कृत्वा शूलप्रोतस्य पुरुषस्यास्थ्ना कीलकान्कारयेत् ॥ ७५ ॥ एतेषामेकः पुरीषे मूत्रे वा निखात आनाहं करोति ॥ ७६ ॥ पादेऽस्यासने वा निखातः शोषेण मारयति ॥ ७७ ॥ आपणे क्षेत्रे गृहे वा वृत्तिच्छेदं करोति ॥७८॥ एतेन कल्पेन विद्युद्दग्धस्य वृक्षस्य कीलका व्याख्याताः ॥ ७९ ॥

चार रात्रिपर्यन्त उपवास-पूर्वक रहता हुआ पुरुष, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें विधिपूर्वक बलि देकर, शूलप्रोत पुरुषकी हड्डीसे बहुतसी कीलें बनवावे ॥ ७५ ॥ इनमेंसे एक कील, जिसके पाखाने या पेशाबमें गाड़ देता है, उसी का पाखाना बन्द हो जाता है ॥ ७६ ॥ यदि किसीके पैर अथवा आसनमें इस कीलको गाड़ देता है, तो वह पुरुष सूख २ कर मर जाता है ॥ ७७ ॥ जिसकी दूकान खेत या घरमें यह कील गाड़ दी जाती है, उसकी आजीविका को नष्ट कर देती है ॥ ७८ ॥ इसीप्रकार बिजलीसे जले हुए वृक्षकी बनाई हुई कीलोंका भी व्याख्यान समझ लेना चाहिये ॥ ७९ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः ।
कपिरोम मनुष्यास्थि बध्वा मृतकवाससा ॥ ८० ॥
निखन्येत गृहे यस्य पिष्ट्वा वा यं प्रपाययेत् ।
सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते ॥ ८१ ॥

दक्खिनकी ओर होनेवाला पुनर्नवा (इसी नामसे प्रसिद्ध एक बूटी) और जिसका फल कौओंके लिए बहुत मीठा लगनेवाला हो, ऐसा नींम ('काकमधु' के स्थानपर कहीं २ 'कामसधु' भी पाठ है), बन्दरके बाल और मनुष्यकी हड्डी; इन सब चीजोंको, मृतक पुरुषके कपड़ेसे बांधकर; ॥ ८० ॥ जिसके घरमें गाड़ दिया जाता है, अथवा जिसको पीसकर पिला दिया जाता है, ('प्रपाययेत्' की जगह किसी पुस्तकमें 'पदं नयेत्' भी पाठ है) तो वह पुरुष, अपने पुत्र स्त्री और धनके सहित, तीन पक्ष अर्थात् डेढ़ महीना समयको भी पार नहीं कर सकता। तात्पर्य यह है, कि इतने समयके अन्दर २, वह अपने पुत्र स्त्री और धन सहित नष्ट हो जाता है ॥ ८१ ॥

पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः ।
स्वयंगुप्ता मनुष्यास्थि पदे यस्य निखन्यते ॥ ८२ ॥
द्वारे गृहस्य सेनाया ग्रामस्य नगरस्य वा ।
सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते ॥ ८३ ॥

दक्खिनकी ओर होनेवाला पुनर्नवा, काकमधु, नींम, धमासा (=स्वयंगुप्ता=कच्छुरा, हिन्दी नाम धमासा है), और मनुष्यकी हड्डी, इन सब चीजों को जिसके स्थानपर गाड़ दिया जाता है ॥ ८२ ॥ अथवा जिस किसी घर, सेना, गांव या नगरके दरवाजेपर गाड़ दिया जाता है,वहांका निवासी पुरुष अपने पुत्र स्त्री और धनके सहित डेढ़ महीनेके अन्दर २ अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ८३ ॥

अजमर्कटरोमाणि मार्जारनकुलस्य च ।
ब्राह्मणानां श्वपाकानां काकोलूकस्य चाहरेत् ॥ ८४ ॥
एतेन विष्ठावक्षुण्णा सद्य उत्सादकारिका ।

बकरा, बन्दर, बिलाव, नेवला, ब्राह्मण, चाण्डाल, कौआ और उल्लू इन सब प्राणियोंके रोम अर्थात् बालोंको इकट्ठा करे ॥ ८४ ॥ फिर जिस पुरुषको मारना हो, उसकी विष्ठाको, इन सब बालोंके साथ पीस लिया जावे, उस पिसी हुई चीजको स्पर्श कराते ही वह पुरुष तत्काल मर जाता है।

प्रेतनिर्मालिकाकिण्वं रोमाणि नकुलस्य च ॥ ८५ ॥
वृश्चिकाल्यहिकृत्तिश्च पदे यस्य निखन्यते ।
भवत्यपुरुषः सद्यो यावत्तन्नापनीयते ॥ ८६ ॥

मुर्देपर डाली हुई माला, सुराबीज, और नेवलेके बाल ॥ ८५ ॥

तथा बिच्छू, भौंरा और सांप, इन तीनों जानवरोंकी खाल, इन सब चीजोंको मिलाकर जिसके स्थानपर गाड़ दिया जाता है, वह पुरुष तत्कालही अपुरुष हो जाता है, जबतक कि उन गाड़ी हुई चीजोंको वहांसे हटाया न जावे। (अपुरुष होनेका तात्पर्य यही मालूम होता है, कि वह अपने आपको पुरुषसम्बन्धी कार्योंके करनेसें असमर्थ समझने लगता है) ॥ ८६ ॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्तिकायां गुञ्जा आवास्योदकेन च सेचयेत् ॥८७॥ जातानाममावास्यायां पौर्णमास्यां वा पुष्ययोगिन्यां गुञ्जावल्लीर्ग्राहयित्वा मण्डलिकानि कारयेत् ॥ ८८ ॥ तेष्वन्नपानभाजनानि न्यस्तानि न क्षीयन्ते ॥ ८९ ॥

तीन रात्रि पर्यन्त उपवास पूर्वक रहता हुआ पुरुष, पुष्य नक्षत्र से युक्त समयमें, हथियार से मारे हुए अथवा शूलप्रोत पुरुष की खोपड़ी में मट्टी भरकर, उसमें गुञ्जा (चौटली=रत्ती) बोदेवे, और उन्हें जलसे बराबर सींचता रहे ॥ ८७ ॥ जब वह उत्पन्न होजावें, तब पुष्यनक्षत्र से युक्त अमावस्या अथवा पौर्णमासी में गुञ्जा की उन बेलों को उखड़वाकर, उनके द्वारा चारों ओर गोल घेरे बनवावे ॥ ८८ ॥ उन घेरोंके बीचमें रक्खे हुए, खाने पीनेके पात्र, क्षीणताको प्राप्त नहीं होते ॥ ८९ ॥

रात्रिप्रेक्षायां प्रवृत्तायां प्रदीपाग्निषु मृतधेनोः स्तनानुत्कृत्य दाहयेत् ॥ ९० ॥ दग्धान्वृषमूत्रेण पेषयित्वा नवकुम्भमन्तर्लेपयेत् ॥ ९१ ॥ तं ग्राममपसव्यं परिणीय यत्तत्र न्यस्तं नवनीतमेषां तत्सर्वमागच्छतीति ॥ ९२ ॥

रातको तमाशा होनेके समयमें, प्रदीप की आगों पर, मरी हुई गाय के थनों को काटकर जलावे ॥ ९० ॥ जले हुए अर्थात् भुने हुए उन थनों को, बैलके पेशाबके साथ पीसकर, एक नये घड़ेके भीतर चारों ओर लीप देवे ॥ ९१ ॥ उस घड़े को बाईं ओर से उस गांव की परिक्रमा कराके जहां रख देता है; ग्रामीण पुरुषों का सब मक्खन, वहीं पर (अर्थात् उस घड़े में) आजाता है (!) ॥ ९२ ॥

कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां शुनो लग्नकस्य योनौ कालायसीं मुद्रिकां प्रेषयेत् ॥९३॥ तां स्वयं पतितां गृह्णीयात् ॥९४॥ तया वृक्षफलान्याकारितान्यागच्छन्ति ॥ ९५ ॥

पुष्य नक्षत्र से युक्त, कृष्णपक्ष की चतुर्दशीमें, कामासक्त कुत्ती की योनि में (सूत्र में 'शुनः' शब्द पुल्लिङ्ग निर्देश किया गया है, परन्तु योनि शब्दके निर्देश से यहां लिंगकी अविवक्षा ही समझनी चाहिये), लोहे की बनी हुई एक मुद्रिका (अंगूठी सी) लगा देवे ॥ ९३ ॥ जब वह अपने आप वहां से निकलकर गिर पड़े, तो उसे लेलेवे ॥ ९४ ॥ उसके द्वारा वृक्षोंके फल, बुलाए जानेपर, आजाते हैं ॥ ९५ ॥

मन्त्रभैषज्यसंयुक्ता योगा मायाकृताश्च ये ।
उपहन्यादमित्रांस्तैः स्वजनं चाभिपालयेत् ॥ ९६ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे प्रलम्भने भैषज्यमन्त्रयोगः तृतीयो ऽध्यायः ॥ ३ ॥ आदितो ऽष्टचत्वारिंशच्छतः ॥ १४८ ॥

मन्त्र और ओषधियों से युक्त, जिन योगों का निरूपण किया गया है, और मायासे युक्त जिन योगोंका निरूपण किया गया है; (अपने शरीर को जलाना, अंगारों के ढेर पर चलना; इत्यादि प्रयोगोंको ही मायाकृत योग समझना चाहिये)। उन सब योगों से शत्रुका नाश करे, और स्वजनों की परिपालना करे ॥ ९६ ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरणमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥

चौथा अध्याय ।

१७९ प्रकरण

शत्रुके द्वारा अपनी सेनापर कियेगये घातक प्रयोगों का प्रतीकार ।

{ शत्रुका नाश करनेके लिये जिन उपायों को पीछे बताया गया है, यदि शत्रुही, विजिगीषुके नाशके लिये उन उपायों का प्रयोग करने लगे, तब ऐसी अवस्थामें विजिगीषुको उनका क्या प्रतीकार करना चाहिये? इन्हीं सब बातों का इस प्रकरणमें निरूपण किया जायगा ।

स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविषगराणां प्रतीकारे श्लेष्मातकक-पित्थदन्तिदन्तशठगोजीशिरीषपाटलीबलास्योनाकपुनर्नवाश्वेता-

वरणकाथयुक्तं चन्दनसालावृकीलोहितयुक्तं तेजनोदकं राजोपभोग्यानां गुह्यप्रक्षालनं स्त्रीणां सेनायाश्च विषप्रतीकारः ॥ १ ॥

शत्रुके द्वारा प्रयुक्त किये गये, जलादि दूषक तथा विष आदि प्रयोगों का अपने पक्षमें प्रतीकार करने की अभिलाषा होने पर; विषके प्रतीकारके लिये निम्नलिखित तेजनोदक का उपयोग करे । वह इसप्रकार बनाना चाहिये :—लहसोड़ा, कैथ, जमालगोटा, जंभीरी नींबू, गोभी, सिरस, काली पांढरी या पाटल, खरैंटी, सोनापाठा, पुनर्नवा, शराब और वरना नामक वृक्ष, इन सब चीजों का क्वाथ बनाया जावे, और चन्दन तथा शालावृकी (इस शब्दके तीन अर्थ हैं, बन्दरी, गीदड़ी और कुत्ती; इन तीनोंमें से किसी एक का खून लेना चाहिये) का खून एक जगह मिलाकर रक्खा जावे, उस क्वाथ और इस रक्तसे मिला हुआ तेजनोदक (तेजन, बांस को कहते हैं, उसके पानीमें इन सब चीजोंको हल करना होता है, इसीलिये यह तेजनोदक कहाता है), राजाके उपभोगमें आने वाली स्त्रियोंके गुह्यस्थानों को साफ करने वाला, तथा सेना सम्बन्धी अर्थात् सेनामें प्रयुक्त किये हुए विषका प्रतीकार करने वाला होता है ॥ १ ॥

पृषतनकुलनीलकण्ठगोधापित्तयुक्तं मषीराजिचूर्णं सिन्दुवारितवरणवारुणीतण्डुलीयकशतपर्वाग्रपिण्डीतकयोगो मदनदोषहरः ॥ २ ॥ सृगालविन्नामदनासिन्दुवारितवरणवारणवल्लीमूलकषायाणामन्यतमस्य समस्तानां वा क्षीरयुक्तं पानं मदनदोषहरम् ॥ ३ ॥

चीतल(एक प्रकारका मृग,जिसके ऊपर दागसे होते हैं), नेवला,मोर और गोह, इन सब जानवरोंके पित्तासे युक्त, काले संभालू और राईका चूर्ण ; उन्मादक द्रव्योंसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंको अपहरण करनेवाला होता है । तथा संभालू, वरना, दूबघास, चौलाई, बांसका अग्रभाग और मैनफल, इन सब चीजोंका योग भी उन्मादकद्रव्यजन्य दोषोंका अपहरण करनेवाला होता है ॥ २ ॥ सृगालविन्ना (एक औषधिका नाम है), धतूरा, संभालू, वरना, और गजपीपल, इन पांचों चीजोंकी जड़ोंको मिलाकर, या पृथक् २ एक २ काही काढ़ा, दूधके साथ पीलेनेसे, उन्मादकद्रव्यजन्य दोषोंका अपहरण करनेवाला होता है ॥ ३ ॥

कैडर्यपूतितिलतैलमुन्मादहरं नस्तःकर्म ॥ ४ ॥ प्रियङ्गुनक्तमालयोगः कुष्ठहरः ॥५॥ कुष्ठलोध्रयोगः पाकशोषघ्नः ॥ ६ ॥ कट्फलद्रवन्तीविलङ्गचूर्णं नस्तःकर्म शिरोरोगहरम् ॥ ७ ॥

कायफल, कांटेदार करंजुआ और तिल; इन चीजोंका तेल, नासिकाके द्वारा उपयुक्त किया हुआ, उन्माद अर्थात् चित्तविभ्रमको हरण करनेवाला होता है । ॥ ४ ॥ प्रियगु (मेंहदी या कांगनी) और नक्तमाल (करंजुआ), इन दोनोंका योग कुष्ठको नष्ट करनेवाला होता है ॥ ५ ॥ कूट और लोध, इन दोनोंका योग, पाक (पकना, बाल आदिका सफेद होजाना) तथा शोष (क्षयरोग) का नष्ट करनेवाला होता है ॥ ६ ॥ कायफल, द्रवन्ती (मूषापर्णी नामकी एक बूंटी), और वायविडंग, इन तीनों चीजोंका चूर्ण, नासिकाके द्वारा उपयुक्त किया हुआ, सिरके रोगोंको नष्ट करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

प्रियङ्गुमञ्जिष्ठतगरलाक्षारसमधुकहरिद्राक्षौद्रयोगो रज्जूदकविषप्रहारपतननिःसंज्ञानां पुनः प्रत्यानयनाय ॥ ८ ॥ मनुष्याणामक्षमात्रं गवाश्वानां द्विगुणं चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम् ॥९॥

मेंहदी या कांगनी, मंजीठ, तगर, लाक्षा, (लाख), महुआ, हलदी, और शहद, इन सब चीजोंका योग ; रस्सी, दूषितजल, विष, प्रहार, तथा ऊपरसे गिरने के कारण बेहोश हुए २ पुरुषोंको फिर होशमें लानेके लिये, अत्यन्त उपयुक्त होता है ॥ ८ ॥ प्रतीकारके लिये दी जानेवाली ओषधियोंकी मात्रा, मनुष्यके लिये केवल एक अक्ष (सोलह माषकका एक अक्ष होता है । माषक तोलके लिये, देखो-अधि० २, अध्या० १९) होनी चाहिये । गाय और घोड़ोंके लिये मनुष्यसे दुगनी, तथा हाथी और ऊंटोंके लिये चौगुनी होनी चाहिये ॥९॥

रुक्मगर्भश्चैषां मणिः सर्वविषहरः ॥ १० ॥ जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः ॥ ११ ॥

आठवें सूत्रमें बेहोशीको दूर करनेवाला जो योग बताया गया है, उसको यदि सोनेके पत्तरके बीचमें रखकर तावीज बना लियाजाय, तो उस तावीजको धारण करनेसे सब तरहके विषोंका प्रतीकार होता है ॥ १० ॥ गुडूची (गिलोय), सफेद संभालू या चोरबेल, काली पांडरी, पुष्प (औषधि विशेष), और अमरबेल, इन सब चीजोंका तावीज (=मणि); अथवा सेंहजने या नोमके पेड़पर पैदा हुए २ पीपलका तावीज, सब तरहके विषोंको अपहरण करनेवाला होता है ॥ ११ ॥

तूर्याणां तैः प्रलिप्तानां शब्दो विषविनाशनः ।
लिप्तध्वजं पताकां वा दृष्ट्वा भवति निर्विषः ॥ १२ ॥

एतैः कृत्वा प्रतीकारं स्वसैन्यानामथात्मनः ।
आमित्रेषु प्रयुञ्जीत विषधूमाम्बुदूषणान् ॥ १३ ॥

इत्यौपनिषदिके चतुर्दशे ऽधिकरणे स्वबलोपघातप्रतीकारः चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥ आदित एकोनपञ्चाशच्छतः ॥ १४९ ॥ एतावता कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्यौ-पनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणं समाप्तम् ॥ १४ ॥

जीवन्ती (गिलोय) आदि औषधियोंसे पोते हुए (लिबड़े हुए) बाजों का शब्द, विषको नष्ट करने वाला होता है । इसीप्रकार इन औषधियों से लिप्त शिखरवाली झंडीको देखकर भी विषका प्रभाव नहीं रहता ॥ १२ ॥ इन औषधियोंके द्वारा, अपनी सेना और अपने आपकी रक्षा करके, विजिगीषु, विष धूम और जलदूषणों का सदा शत्रुओंमें ही प्रयोग करे ॥ १३ ॥

औपनिषादिक चतुर्दश अधिकरणमें चौथा अध्याय समाप्त ॥

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण समाप्त ।

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरण।

पहिला अध्याय।

१८० प्रकरण।

तन्त्रयुक्ति।

प्रकृतमें 'तन्त्र' का अर्थ 'अर्थशास्त्र' है। इस शास्त्रमें अर्थके निर्णयके लिये उपयोगी युक्तियों का, लक्षण और उदाहरण निरूपण, इस प्रकरणमें किया जायगा॥

मनुष्याणां वृत्तिरर्थः ॥१॥ मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः ॥२॥ तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति ॥ ३ ॥ तद्द्वात्रिंशद्युक्तियुक्तम् ॥ ४ ॥ अधिकरणं विधानं योगः पदार्थो हेत्वर्थ उद्देशो निर्देश उपदेशोऽपदेशोऽतिदेशः प्रदेश उपमानमर्थापत्तिः संशयः प्रसङ्गो विपर्ययो वाक्यशेषोऽनुमतं व्याख्यानं निर्वचनं निदर्शनमपवर्गः स्वसंज्ञा पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष एकान्तोऽनागतावेक्षणमतिक्रान्तावेक्षणं नियोगो विकल्पः समुच्चय ऊह्यमिति ॥ ५ ॥

मनुष्योंके व्यवहार या जीविकाको 'अर्थ' कहते हैं ॥ १ ॥ मनुष्यों से युक्त भूमिका भी नाम 'अर्थ' है ॥ २ ॥ इस भूमिको प्राप्त करने और रक्षा करनेके उपायोंका निरूपण करने वाला शास्त्र 'अर्थशास्त्र' कहाता है ॥ ३ ॥ वह बत्तीस प्रकारकी युक्तियों से युक्त है ॥ ४ ॥ वे युक्तियां ये हैं:— अधिकरण, विधान, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, उद्देश, निर्देश, उपदेश, अपदेश, अतिदेश, प्रदेश, उपमान, अर्थापत्ति, संशय, प्रसंग, विपर्यय, वाक्यशेष, अनुमत, व्याख्यान, निर्वचन, निदर्शन, अपवर्ग, स्वसंज्ञा, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, एकान्त, अनागतावेक्षण, अतिक्रान्तावेक्षण, नियोग, विकल्प, समुच्चय, और ऊह्य ॥ ५ ॥

यमर्थमधिकृत्योच्यते तदाधिकरणम् ॥ ६ ॥ पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्तावितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतमिति ॥ ७ ॥

जिस अर्थका अधिकार करके कथन किया जाय, उसे अधिकरण कहते हैं ॥ ६ ॥ जैसे सबसे पहिले सूत्रमें पृथिवीके लाभ का कथन करके, सम्पूर्ण शास्त्रको एक अधिकरण बताया गया है । इसीप्रकार प्रधानतया उन २ अर्थोंका निरूपण करने से, विनयाधिकारिक, अध्यक्षप्रचार आदि अधिकरण हैं । इस सूत्रका अर्थ देखनेके लिये, देखो, अधि० १, अध्या० १, सूत्र० १ ॥ (आगे सब युक्तियोंके लक्षणोंके साथ २ उदाहरण बतानेके लिये, हम केवल उन २ स्थलोंका पता लिखते जायेंगे, पाठक, उनको वहीं से देख लेवें ॥ ७ ॥

शास्त्रस्य प्रकरणानुपूर्वी विधानम् ॥ ८ ॥ विद्यासमुद्देशो वृद्धसंयोग इन्द्रियजयो ऽमात्योत्पत्तिरित्येवमादिकमिति ॥ ९ ॥

प्रकरणानुसार शास्त्रकी आनुपूर्वी का कथन करना 'विधान' कहाता है ॥ ८ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. १, सू. ३–६ ॥ ९ ॥

वाक्ययोजना योगः ॥ १० ॥ चतुर्वर्णाश्रमो लोक इति ॥ ११ ॥

वाक्यों की योजनाको 'योग' कहते हैं ॥ १० ॥ देखो—अधि. १, अध्या. ४, सू. १९ ॥ ११ ॥

पदावधिकः पदार्थः ॥ १२ ॥ 'मूलहर' इति पदम् ॥१३॥ यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहर इत्यर्थ ॥ १४ ॥

केवल पदके अर्थको 'पदार्थ' कहते हैं ॥ १२ ॥ जैसे 'मूलहर' यह एक पद है ॥१३॥ इसका अर्थ, 'पदार्थ' होगा; इसके जाननेके लिये, देखो—अधि. २, अध्या. ९, सू. २४ ॥ १४ ॥

हेतुरर्थसाधको हेत्वर्थः ॥ १५ ॥ अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति ॥ १६ ॥

अर्थको सिद्ध करने वाला हेतु ही 'हेत्वर्थ' कहाता है ॥ १५ ॥ देखो अधि. १, अध्या. ७, सू. ११ ॥ १६ ॥

समासवाक्यमुद्देशः ॥ १७ ॥ विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजय इति ॥ १८ ॥

संक्षिप्त वाक्य का कहना 'उद्देश' कहा जाता है ॥ १७ ॥ देखो— अधि. १, अध्या. ६, सू. १ ॥ १८ ॥

व्यासवाक्यं निर्देशः ॥ १९ ॥ कर्ण त्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजय इति ॥ २० ॥

विस्तृत वाक्यका कथन करना 'निर्देश' कहाता है ॥ १९ ॥ देखो— अधि. १, अध्या. ६, सू. २ ॥ २० ॥

एवं वर्तितव्यमित्युपदेशः ॥ २१ ॥ धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत न निःसुखः स्यादिति ॥ २२ ॥

'इस प्रकार वर्तना चाहिये' ऐसे कथनको 'उपदेश' कहते हैं ॥ २१ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. ७, सू० ६,७ ॥ २२ ॥

एवमसावाहेत्यपदेशः ॥२३॥ मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः ॥ २४ ॥ षोडशेति बार्हस्पत्याः ॥ २५ ॥ विंशतिमित्यौशनसाः ॥ २६ ॥ यथासामर्थ्यमिति कौटल्य इति ॥ २७ ॥

'अमुक पुरुषने इस विषयमें यह कहा है' ऐसा कथन करना 'अपदेश' कहाता है ॥ २३ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. १५, सू. ५२–५५ ॥ २४–२७ ॥

उक्तेन साधनमतिदेशः ॥ २८ ॥ दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातमिति ॥ २९ ॥

कही हुई बातसे न कही हुई बातको भी सिद्ध करदेना 'अतिदेश' कहाता है ॥ २८ ॥ देखो–अधि. ३, अध्या. १६, सू. १ ॥ २९ ॥

वक्तव्येन साधनं प्रदेशः ॥ ३० ॥ सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्याम इति ॥ ३१ ॥

आगे कही जानेवाली बातसे, न कही गई बातको सिद्ध करना 'प्रदेश' कहाता है ॥ ३० ॥ देखो—अधि. ७, अध्या. १४, सू २४ ॥ ३१ ॥

दृष्टेनादृष्टस्य साधनमुपमानम्॥ ३२ ॥ निवृत्तपरिहारान्पितेवानुगृह्णीयादिति ॥ ३३ ॥

देखी हुई वस्तुसे, न देखी हुई वस्तुको सिद्ध करना 'उपमान' कहाता है ॥ ३२ ॥ देखो–अधि. २, अध्या. १, सू. २० ॥ ३३ ॥

यदनुक्तमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः ॥ ३४ ॥ लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसंपन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयेत ॥३५॥नाप्रियहितद्वारेणाश्रयेतेत्यर्थादापन्नं भवतीति ॥ ३६ ॥

न कही हुई बात, जो अर्थसे आपन्न (प्राप्त) होजाय, उसे 'अर्थापत्ति' कहते हैं ॥ ३४ ॥ देखो–अधि. ५, अध्या. ४ सू. १ ॥ ३५ ॥ अर्थात् अप्रिय और अहित पुरुषके द्वारा, राजाका आश्रय न लेवे, यह वहां अर्थापत्ति से जाना जाता है ॥ ३६ ॥

उभयतोहेतुमानर्थः संशयः । ३७ ॥ क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति ॥ ३८ ॥

किसी अर्थमें दोनों (विरुद्ध) पक्षके हेतुओंका होना 'संशय' कहाता है ॥ ३७ ॥ देखो–अधि. ७, अध्या. ५, सू. १८ ॥ ३८ ॥

प्रकरणान्तरेण समानो ऽर्थः प्रसङ्गः ॥ ३९ ॥ कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेणेति ॥ ४० ॥

दूसरे प्रकरणके साथ अर्थकी समानता होना 'प्रसङ्ग' कहाता है ॥ ३९ ॥ देखो–अधि. १, अध्या. ११, सू. १३ ॥ ४० ॥

प्रतिलोमेन साधनं विपर्ययः ॥ ४१ ॥ विपरीतमतुष्टस्येति ॥ ४२ ॥

कही हुई बातके वैपरीत्यसे किसी वस्तुका निर्देश करना 'विपर्यय' कहाता है ॥ ४१ ॥ देखो–अधि. १, अध्या. १६, सू. १४ ॥ ४२ ॥

येन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः ॥ ४३ ॥ छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशश्चेति ॥ ४४ ॥ तत्र शकुनेरिति वाक्यशेषः ॥ ४५ ॥

जिसके द्वारा वाक्यकी समाप्ति हो, वह 'वाक्यशेष कहाता है ॥ ४३ ॥ देखो–अधि. ८, अध्या. १, सू. ९ ॥ ४४ ॥ वहांपर सामर्थ्यसे प्राप्त (=अध्याहृत) 'शकुनि' पद वाक्यशेष है ॥ ४५ ॥

परवाक्यमप्रतिषिद्धमनुमतम् ॥ ४६ ॥ पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभाग इति ॥ ४७ ॥

प्रतिषेध न किया हुआ दूसरेका वाक्य 'अनुमत' कहाता है ॥ ४६ ॥ देखो–अधि. १०, अध्या. ६, सू. १ ॥ ४७ ॥

अतिशयवर्णना व्याख्यानम् ॥ ४८ ॥ विशेषतश्च संघानां संघधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः ॥ ४९ ॥ तन्निमित्तो विनाश इत्यसत्परिग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तन्त्रदौर्बल्यादिति ॥ ५० ॥

सिद्ध किये हुए अर्थका, अत्यधिक युक्तियोंसे विस्तारपूर्वक समर्थन करना 'व्याख्यान' कहाता है ॥ ४८ ॥ देखो—अधि. ८, अध्या.३, सू. ६८,६९ ॥ ४९–५० ॥

गुणतः शब्दनिष्पत्तिर्निर्वचनम् ॥ ५१ ॥ व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनमिति ॥ ५२ ॥

गुणके द्वारा (अर्थान्वयपूर्वक) किसी शब्दकी सिद्धि करना 'निर्वचन' कहाता है ॥ ५१ ॥ देखो–अधि. ८, अध्या. १, सू. ४ ॥ ५२ ॥

दृष्टान्तो दृष्टान्तयुक्तो निदर्शनम् ॥ ५३ ॥ विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैतीति ॥ ५४ ॥

दृष्टान्त सहित दृष्टान्तका निर्देश करना 'निदर्शन' कहाता है ॥ ५३ ॥ देखो–अधि. ७, अध्या. ३, सू. ४ ॥ ५४ ॥

अभिप्लुतव्यपकर्षणमपवर्गः ॥ ५५ ॥ नित्यमासन्नमरिबलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरकोपशङ्काया इति ॥ ५६ ॥

किसी विधिको सामान्यतया व्यापक रूपसे कहते २, उसके विषयका संकोच करदेना 'अपवर्ग' कहाता है ॥ ५५ ॥ देखो–अधि. ९, अध्या. २, सू. २३ ॥ ५६ ॥

परैरसंज्ञितः शब्दः स्वसंज्ञा ॥ ५७ ॥ प्रथमा प्रकृतिस्तस्य भूम्यन्तरा द्वितीया भूम्येकान्तरा तृतीयेति ॥ ५८ ॥

दूसरोंसे संकेत न कियाहुआ शब्द, 'स्वसंज्ञा' कहाता है ॥ ५७ ॥ देखो–अधि. ६, अध्या. २, सू. ॥ ५८ ॥

प्रतिषेद्धव्यं वाक्यं पूर्वपक्षः ॥ ५९ ॥ स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति ॥ ६० ॥

प्रतिषेध किया जानेवाला वाक्य 'पूर्वपक्ष' कहाता है ॥ ५९ ॥ देखो–अधि. ८, अध्या. १, सू, ७ ॥ ६० ॥

तस्य निर्णयनवाक्यमुत्तरपक्षः ॥६१॥ तदायत्तत्वात् ॥६२॥ तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति ॥ ६३ ॥

उस पूर्वपक्षका निर्णय करनेवाला वाक्य 'उत्तरपक्ष' कहाता है ॥६१॥ देखो—अधि. ८, अध्या. १, सू, १८ ॥ ६२ ॥—॥ ६३ ॥

सर्वत्रायत्तमेकान्तः ॥ ६४ ॥ तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीतेति ॥ ६५ ॥

जो अर्थ किसी देश या कालमें न छोड़ा जासके, उसे 'एकान्त' कहते है ॥ ६४ ॥ देखो—अधि. १, अध्या. १९, सू. ५ ॥ ६५ ॥

पश्चादेवं विहितमित्यनागतावेक्षणम् ॥ ६६ ॥ तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्याम इति ॥ ६७ ॥

'पीछेसे इसप्रकारका विधान किया जायगा' ऐसा कथन करना 'अनागतावेक्षण' कहाता है ॥ ६६ ॥ देखो—अधि. २, अध्या. १३, सू. ३१ ॥ ६७ ॥

पुरस्तादेवं विहितमित्यतिक्रान्तावेक्षणम् ॥ ६८ ॥ अमात्यसंपदुक्ता पुरस्तादिति ॥ ६९ ॥

'इस बातका पहिले निरूपण करदिया गया है' ऐसा कथन करना 'अतिक्रान्तावेक्षण' कहाता है ॥६८॥ देखो—अधि. ६, अध्या. १, सू. ७ ॥६९॥

एवं नान्यथेति नियोगः ॥ ७० ॥ तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं चेति ॥ ७१ ॥

'अमुक कार्य इसीतरह करना चाहिये, अन्यथा नहीं' ऐसा कथन करना 'नियोग' कहाता है ॥७०॥ देखो—अधि. १, अध्या. १७, सू. ३५॥७१॥

अनेन वानेन वेति विकल्पः ॥ ७२ ॥ दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाता इति ॥ ७३ ॥

'अमुक कार्य इसतरह किया जासकता है, अथवा इसतरह' ऐसा कथन करना 'विकल्प' कहाता है ॥ ७२ ॥ देखो—अधि, ३, अध्या. ५, सू. ९ ॥ ७३ ॥

अनेन चानेन चेति समुच्चयः ॥ ७४ ॥ स्वयं (यं) जातः पितृबन्धूनां च दायाद इति ॥ ७५ ॥

'अमुक कार्य इसतरह भी होसकता है, और इसतरह भी' ऐसा कथन करना 'समुच्चय' कहाता है ॥ ७४ ॥ देखो—अधि. ३, अध्या. ७ सू. १३ ॥७५॥

अनुक्तकरणमूह्यम् ॥ ७६ ॥ यथावद्दाता प्रतिगृहीता च नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुरिति ॥ ७७ ॥

न कहीहुई बातका करलेना 'ऊह्य' कहाता है ॥ ७६ ॥ देखो—अधि. ३, अध्या. १६, सू. ४ ॥ ७७ ॥

एवं शास्त्रमिदं युक्तमेताभिस्तन्त्रयुक्तिभिः ।
अवाप्तौ पालने चोक्तं लोकस्यास्य परस्य च ॥ ७८ ॥
धर्ममर्थं च कामं च प्रवर्तयति पाति च ।
अधर्मानर्थविद्वेषानिदं शास्त्रं निहन्ति च ॥ ७९ ॥
येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥ ८० ॥

इति तन्त्रयुक्तौ पञ्चदशेऽधिकरणे तन्त्रयुक्तयः प्रथमो ऽध्यायः ॥ १ ॥
आदितः पञ्चाशच्छततमो ऽध्यायः ॥ १५० ॥ एतावता
कौटलीयस्यार्थशास्त्रस्य तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशम-
धिकरणं समाप्तम् ॥ १५ ॥

इसप्रकार यह शास्त्र, इन तन्त्रयुक्तियोंसे युक्त है । इस लोक और परलोककी प्राप्ति तथा रक्षा करनेमें यही शास्त्र साधन बताया गया है ॥७८॥ क्योंकि यह अर्थशास्त्र, धर्म अर्थ और कामको प्रवृत्त करता है, तथा उनकी रक्षा करता है । और अर्थके साथ विरोध रखनेवाले अधर्मोंको नष्ट करता है ॥ ७९ ॥ जिसने शास्त्र, शस्त्र और नन्दराजाके अधीन हुई २ भूमिका क्रोधके कारण बहुत जल्दी उद्धार करदिया; उसी विष्णुगुप्त कौटल्यने इस शास्त्रको बनाया है ॥ ८० ॥

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरणमें पहिला अध्याय समाप्त ।

तन्त्रयुक्ति पञ्चदश अधिकरण समाप्त

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम् ।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च ॥

कौटलीय अर्थशास्त्र समाप्त

चाणक्य प्रणीत सूत्र

सुखस्य मूलं धर्मः ॥ १ ॥ धर्मस्य मूलमर्थः ॥ २ ॥ अर्थस्य मूलं राज्यम् ॥ ३ ॥ राज्यमूलमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः ॥ ५ ॥ विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा ॥ ६ ॥ वृद्धसेवाया विज्ञानम् ॥ ७ ॥ विज्ञानेनात्मानं संपादयेत् ॥ ८ ॥ संपादितात्मा जितात्मा भवति ॥ ९ ॥ जितात्मा सर्वार्थैस्संयुज्येत ॥ १० ॥ अर्थसंपत्प्रकृतिसंपदं करोति ॥ ११ ॥ प्रकृतिसंपदा ह्यनायकमपि राज्यं नीयते ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोपस्सर्वकोपेभ्योः गरीयान् ॥ १३ ॥

सुखका मूल (कारण) धर्म है ॥ १ ॥ धर्मका मूल, अर्थ है ॥ २ ॥ अर्थका मूल राज्य है ॥ ३ ॥ इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनाही राज्यका मूल है ॥ ४ ॥ इन्द्रियोंके विजयका मूल, विनय है ॥ ५ ॥ वृद्धोंकी सेवा करना, विनयका मूल है ॥ ६ ॥ वृद्धोंकी सेवाका मूल, विज्ञान है ॥ ७ ॥ इसलिये पुरुष, विज्ञानसे अपने आपको संपन्न बनावे ॥ ८ ॥ जो पुरुष विज्ञानसे संपन्न होता है, वह अपने ऊपर काबू पासकता है ॥ ९ ॥ अपने ऊपर काबू रखनेवाला पुरुष, सब अर्थोंसे संयुक्त होजाता है ॥ १० ॥ अर्थसम्पत्ति, प्रकृतिसम्पत्ति (अमात्य, सेना, मित्र आदि सम्पत्ति) को उत्पन्न करनेवाली होती है ॥ ११ ॥ प्रकृतिसंपत्तिके द्वारा, नेतारहित राज्यका भी संचालन किया जासकता है ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोप, सब कोपोंसे बलवान् होता है ॥ १३ ॥

अविनीतस्वामिलाभादस्वामिलाभः श्रेयान् ॥ १४ ॥ संपाद्यात्मानमन्विच्छेत्सहायवान् ॥ १५ ॥ नासहायस्य मन्त्रनिश्चयः ॥ १६ ॥ नैकं चक्रं परिभ्रमयति ॥ १७ ॥ सहायस्समसुखदुःखः ॥ १८ ॥

विनयहीन स्वामीके लाभसे, स्वामीका लाभ न होनाही अच्छा है ॥ १४ ॥ अपने आपको शक्तिसम्पन्न बनाकर, फिर सहायकोंकी इच्छा करे

(सूत्रमें 'सहायवान्' के स्थानपर 'सहायकान्' पाठ संगत मालूम होता है)
(सूत्रमें 'सहायवान्' के स्थानपर 'सहायकान्' पाठ संगत मालूम होता है) ॥ १५ ॥ क्योंकि सहायकहीन राजाके मन्त्रका, कभी निश्चय नहीं होसकता ॥ १६ ॥ एक पहिया कभी गाड़ीको घुमा नहीं सकता ॥ १७ ॥ सहायक वही होता है, जो अपने सुख और दुःखमें बराबर साथी रहे ॥ १८ ॥

मानी प्रतिमानिनमात्मनि द्वितीयं मन्त्रमुत्पादयेत् ॥१९॥ अविनीतं स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत ॥ २० ॥ श्रुतवन्तमुपधाशुद्धं मन्त्रिणं कुर्वीत ॥ २१ ॥ मन्त्रमूलास्सर्वारम्भाः ॥ २२ ॥ मन्त्ररक्षणे कार्यसिद्धिर्भवति ॥ २३ ॥ मन्त्रविस्रावी कार्यं नाशयति ॥ २४ ॥ प्रमादात् द्विषतां वशमुपयास्यति ॥ २५ ॥ सर्वद्वारेभ्यो मन्त्रो रक्षितव्यः ॥ २६ ॥ मन्त्रसंपदा राज्यं वर्धते ॥ २७ ॥ श्रेष्ठतमां मन्त्रगुप्तिमाहुः ॥ २८ ॥ कार्यान्धस्य प्रदीपो मन्त्रः ॥ २९ ॥ मन्त्रचक्षुषा परच्छिद्राण्यवलोकयन्ति ॥ ३० ॥

मानी पुरुष, अपने समान दूसरे मानी पुरुषकोही अपना सलाहकार बनावे ॥ १९ ॥ विनयहीन पुरुषको, केवल स्नेहके कारण, कभी मन्त्र (सलाह करने) में सम्मिलित न करे ॥ २० ॥ विद्वान् तथा सब तरहसे परीक्षा किये हुए शुद्ध हृदय पुरुषको, मन्त्री बनावे ॥ २१ ॥ सब कार्य, मन्त्रपरही निर्भर होते हैं ॥ २२ ॥ मन्त्रकी रक्षा करनेमें कार्यकी सिद्धि होती है ॥ २३ ॥ मन्त्रको फोड़ देनेवाला पुरुष, कार्यको नष्ट करदेता है ॥ २४ ॥ प्रमादसे शत्रुओंके वशमें चला जाता है ॥ २५ ॥ इसलिये सब ओरसे, मन्त्रकी अवश्य रक्षा करना चाहिये ॥ २६ ॥ मन्त्रसंपत्तिसे (अर्थात मन्त्रके सुरक्षित रहनेसे) राज्य बढ़ता है ॥ २७ ॥ मन्त्रको गुप्त रखना सबसे श्रेष्ठ बात कही गई है ॥ २८ ॥ कार्यके (कर्त्तव्याकर्त्तव्यके) विषयमें अन्धे हुए २ पुरुषके लिये, मन्त्र प्रदीप होता है ॥ २९ ॥ मन्त्ररूपी चक्षुसेही, पुरुष, शत्रुके दोषोंको देखपाते हैं ॥ ३० ॥

मन्त्रकाले न मत्सरः कर्तव्यः ॥ ३१ ॥ त्रयाणामेकवाक्ये संप्रत्ययः ॥ ३२ ॥ कार्याकार्यतत्त्वार्थदर्शिनो मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥ षट्कर्णाद्भिद्यते मन्त्रः ॥ ३४ ॥

मन्त्रके समयमें किसीसे डाह नहीं करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ तीन पुरुषोंकी एक सम्मति होनेपरही, किसी अर्थका निश्चय किया जासकता है ॥ ३२ ॥ कार्य और अकार्यके वास्तविक अर्थको देखनेवालेही मन्त्री होते हैं

॥ ३३ ॥ छः कानोंसे मन्त्र फूट जाता है, अर्थात् छः कानोंमें जातेही मन्त्र, प्रकट होजाता है ॥ ३४ ॥

आपत्सु स्नेहसंयुक्तं मित्रम् ॥ ३५ ॥ मित्रसंग्रहणे बलं संपद्यते ॥ ३६ ॥ बलवानलब्धलाभे प्रयतते ॥ ३७ ॥ अलब्धलाभो नालसस्य ॥ ३८ ॥ अलसस्य लब्धमपि रक्षितुं न शक्यते ॥ ३९ ॥ स चालसस्य रक्षितं विवर्धते ॥ ४० ॥ न भृत्यान् प्रेषयति ॥ ४१ ॥

जो पुरुष आपत्तिकालमें भी, स्नेह पूर्वक अपने साथ रहे, वही मित्र कहाता है ॥ ३५ ॥ मित्रों का संग्रह कर लेने पर अपना बल बढ़ जाता है ॥ ३६ ॥ बलवान् पुरुष, अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता है ॥ ३७ ॥ आलसी पुरुष को कभी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं होसकती ॥ ३८ ॥ आलसी को, अपनी प्राप्त वस्तु की रक्षा करनी भी अशक्य होजाती है ॥३९॥ आलसी पुरुष का, रक्षित (रक्षा किया हुआ) भी अर्थ कभी वृद्धि को प्राप्त नहीं होता । (मूल पुस्तक में ' स चालसस्य ' पाठ छपा हुआ है, परन्तु यह पाठ असंगत मालूम होता है; ' न चालसस्य ' पाठ होना चाहिये ॥४०॥ वृद्धि को प्राप्त न होनेके कारण ही, आलसी पुरुष अपने भृत्यों तक को भी धन वितरण नहीं कर सकता ॥ ४१ ॥

अलब्धलाभादिचतुष्टयं राज्यतन्त्रम् ॥ ४२ ॥ राज्यतन्त्रायत्तं नीतिशास्त्रम् ॥४३॥ राज्यतन्त्रेष्वायत्तौ तन्त्रावापौ ॥४४॥ तन्त्रं स्वविषयकृत्येष्वायत्तम् ॥ ४५ ॥ आवापो मण्डलनिविष्टः ॥ ४६ ॥ सन्धिविग्रहयोर्निर्मण्डलः ॥ ४७ ॥

अलब्धलाभ आदि चारों वस्तु (अलब्धलाभ, लब्ध परिक्षण, रक्षित विवर्धन, और वर्धित का भृत्योंमें वितरण) ही राज्य तन्त्र हैं, अर्थात् राज्यकी परिस्थिति यही है, इन्हींका नाम राज्यसत्ता है ॥ ४२ ॥ राज्य तन्त्र (=राज्यसत्ता या राज्य परिस्थिति) का आधार, नीति शास्त्र ही होता है ॥ ४३ ॥ तन्त्र और आवाप, राज्यसत्ता के ही अधीन होते हैं ॥ ४४ ॥ अपने देशके कार्यों में ही तन्त्र, आयत्त है । अर्थात् अपने देशमें, सामदान आदि उपायों का प्रयोग करने में तन्त्र (राज्यकी सत्ता) का निर्भर है ॥ ४५ ॥ मण्डल (बारह प्रकार के राज मण्डल) में निविष्ट (प्रयुक्त=प्रयोग किये गये) साम आदि को ही आवाप कहते हैं ॥ ४६ ॥ मण्डल, सन्धि और विग्रह का कारण

होता है; अर्थात् सन्धि और विग्रह का होना, मण्डल (राज समूह) पर ही
निर्भर होता है। (सन्धि विग्रह यहां उपलक्षण मात्र हैं, यान, आसन,
संश्रय, द्वैधीभाव, इन शेष चार गुणों का भी ग्रहण करलेना चाहिये) ॥४७॥

नीतिशास्त्रानुगो राजा ॥४८॥ अनन्तरप्रकृतिश्शत्रुः ॥४९॥
एकान्तरितं मित्रमिष्यते ॥५०॥ हेतुतश्शत्रुमित्रे भविष्यतः ॥५१॥
हीयमानस्सन्धिं कुर्वीत ॥ ५२ ॥ तेजो हि संधानहेतुस्तदर्थानाम्
॥ ५३ ॥ नातप्तलोहो लोहेन संधीयते ॥ ५४ ॥

नीति शास्त्रके अनुसार कार्य करने वाला, राजा होता है अर्थात्
राजा, उसी को कहा जासकता है, जो नीतिशास्त्रके अनुसार कार्य
करे ॥ ४८ ॥ अपने देशके, साथ लगे हुए (=अनन्तर=अव्यवहित) देशमें
राज्य करने वाला राजा, मित्र होता है ॥ ५० ॥ शत्रु और मित्र, किसी
कारणसे ही बन जाते हैं ॥ ५१ ॥ क्षीण शक्ति होता हुआ पुरुष, सन्धि कर
लेवे ॥ ५२ ॥ उन २ अर्थोंके जोड़ने का कारण, तेज ही होता है ॥ ५३ ॥
बिना तपा हुआ लोहा, लोहेके साथ जुड़ नहीं सकता ॥ ५४ ॥

बलवान् हीनेन विगृह्णीयात् ॥५५॥ न ज्यायसा समेन वा
॥ ५६ ॥ गजपादयुद्धमिव बलवद्विग्रहः । ५७ ॥ आमपात्रमा-
मेन सह विनश्यति ॥ ५८ ॥ अरिप्रयत्नमभिसमीक्षेत ॥ ५९ ॥
संधायैकतो वा ॥ ६० ॥

बलवान् राजा, हीन (दुर्बल) के साथ विग्रह (झगड़ा) कर देवे ॥५५॥
अपने बड़े या बराबर वालेके साथ कभी झगड़ा न करे ॥ ५६ ॥ बलवान्के
साथ लड़ाई करना, हाथी (हाथी सवार) और पैदल की लड़ाईके समान
होता है ॥ ५७ ॥ कच्चा बर्त्तन, कच्चे बर्त्तनकेसाथ भिड़कर टूट जाताहै, इसलिये
बराबर वालेके साथ भी लड़ाई नहीं करनी चाहिये ॥ ५८ ॥ शत्रुके प्रयत्नका
सदा, अच्छा तरह निरीक्षण करता रहे ॥ ५९ ॥ अथवा एक ओर से सन्धि
करके रहे। अर्थात् अनेक शत्रु होने पर एक शत्रुसे सन्धि कर लेवे ॥ ६० ॥

अमित्रविरोधादात्मरक्षामावसेत् ॥ ६१ ॥ शक्तिहीनो बल-
वन्तमाश्रयेत् ॥ ६२ ॥ दुर्बलाश्रयो दुःखमावहति ॥ ६३ ॥
अग्निवद्राजानमाश्रयेत् ॥ ६४ ॥ राज्ञः प्रतिकूलं नाचरेत् ॥ ६५ ॥

उद्धतवेषधरो न भवेत् ॥ ६६ ॥ न देवचरितं चरेत् ॥ ६७ ॥ द्वयोरपीर्ष्यतोः द्वैधीभावं कुर्वीत ॥ ६८ ॥

शत्रुके द्वारा किये जाने वाले विरोधसे, अपने आपकी रक्षा करे ॥६१॥ शक्तिहीन राजा, बलवान् का आश्रय लेलेवे ॥ ६२ ॥ दुर्बलका आश्रय लेने वाला राजा, सदा दुःख उठाता है ॥ ६३॥ अग्निके समान ही राजा का आश्रय लेवे । अर्थात् आगके समीप जिस तरह पुरुष रहता है, उसी तरह राजाके समीप रहे ॥ ६४ ॥ राजाके प्रतिकूल, कदापि आचरण न करे ॥ ६५ ॥ उद्धत वेषको कभी धारण न करे; अर्थात् सदा सौम्यवेष ही रक्खे ॥ ६६ ॥ देवताओंके चरित की नकल न उतारे ॥ ६७ ॥ परस्पर ईर्ष्या रखने वाले दो राजाओं में, फूट डाल देवे ॥ ६८ ॥

न व्यसनपरस्य कार्यावाप्तिः ॥ ६९ ॥ इन्द्रियवशवर्ती चतुरङ्गवानपि विनश्यति ॥७०॥ नास्ति कार्यं द्यूतप्रवृत्तस्य ॥७१॥ मृगयापरस्य धर्मार्थौ विनश्यतः ॥ ७२ ॥ अर्थेषणा न व्यसनेषु गण्यते ॥ ७३ ॥ न कामासक्तस्य कार्यानुष्ठानम् ॥ ७४ ॥ अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यात्सर्वजनद्वेष्यो भवति ॥७६॥ अर्थतोषिणं श्रीः परित्यजति ॥७७॥

व्यसनोंमें फंसे हुए राजाकी कार्यसिद्धि कभी नहीं होती ॥ ६९ ॥ इन्द्रियोंके वशमें हुआ २ राजा, चतुरंग सेनाके होने पर भी नष्ट होजाता है ॥ ७० ॥ जुएमें लगे हुए राजा का कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ ७१ ॥ शिकारमें ही तत्पर रहने वाले राजा के धर्म और अर्थ नष्ट होजाते हैं ॥ ७२ ॥ अर्थकी अभिलाषाको व्यसनोंमें नहीं गिना जाता ॥ ७३ ॥ कामासक्त (कामी) राजा के कार्य, कभी नहीं किये जाते ॥ ७४ ॥ वाणी की कठोरता, अग्निके जलाने से भी बढ़कर होती है ॥ ७५ ॥ दण्डकी कठोरतासे, राजा, सब जनता का द्वेष्य होजाता है ॥ ७६ ॥ अर्थके विषयमें सन्तोष रखने वाले राजाको लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ ७७ ॥

अमित्रो दण्डनीत्यामायत्तः ॥ ७८ ॥ दण्डनीतिमधितिष्ठन् प्रजास्संरक्षति ॥ ७९ ॥ दण्डस्संपदा योजयति ॥ ८० ॥ दण्डाभावे मन्त्रिवर्गाभावः ॥८१॥ न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति ॥८२॥ दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम् ॥ ८३ ॥ आत्मनि रक्षिते सर्वं

रक्षितं भवति ॥ ८४ । आत्मायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ८५ ॥ दण्डो हि विज्ञाने प्रणीयते ॥ ८६ ॥

शत्रुकी अधीनता दण्डनीति पर ही निर्भर है ॥ ७८ ॥ दण्डनीतिका ही आश्रय लेता हुआ राजा, सम्पूर्ण प्रजाओंकी रक्षा करता है ॥ ७९ ॥ दण्ड, संपत्तिसे युक्त करदेता है । अर्थात् संपत्ति का बढ़ना, दण्ड नीति पर ही निर्भर है ॥ ८० ॥ दण्डकी शक्ति न रहने पर, मन्त्रिसमूह का अभाव होजाता है । अर्थात् वे लोग नियममें नहीं रहते ॥ ८१ ॥ दण्डके होने पर वे लोग, न करने योग्य कार्योंको नहीं करते ॥ ८२ ॥ अपनी रक्षाभी दण्डनीति पर निर्भर रहती है ॥ ८३ । अपनी रक्षा होने पर, सबकी रक्षा की जासकती है ॥ ८४ ॥ वृद्धि और विनाश, अपने ही ऊपर निर्भर होते हैं ॥ ८५ ॥ अच्छीतरह सोच विचार करलेने पर ही दण्ड का प्रयोग किया जाना चाहिये ॥ ८६ ॥

दुर्बलोपि राजा नावमन्तव्यः ॥ ८७ ॥ नास्त्यग्नेर्दौर्बल्यम् ॥ ८८ ॥ दण्डे प्रतीयते वृत्तिः ॥ ८९ ॥ वृत्तिमूलमर्थलाभः ॥ ९० ॥ अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥ ९१ ॥ अर्थमूलं कार्यम् ॥९२॥ यदल्पप्रयत्नात्कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ९३ ॥ उपायपूर्वं न दुष्करं स्यात् ॥ ९४ ॥ अनुपायपूर्वं कार्यं कृतमपि नश्यति ॥ ९५ ॥ कार्यार्थिनामुपाय एव सहायः ॥ ९६ ॥ कार्यं पुरुषकारेण लक्ष्यं संपद्यते ॥ ९७ ॥ पुरुषकारमनुवर्तते दैवम् ॥ ९८ ॥ दैवं विनाऽतिप्रयत्नं करोति यत्तद्विफलम् ॥ ९९ ॥

राजाको दुर्बल समझकर, कभी उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये ॥ ८७ ॥ अग्नि, कभी दुर्बल नहीं होती ॥ ८८ ॥ व्यवहार, दण्डके आधारपर ही जाना जाता है ॥ ८९ ॥ अर्थकी प्राप्ति, व्यवहारमूलक होती है ॥ ९० ॥ धर्म और काम, अर्थमूलक होते हैं ॥ ९१ ॥ कार्यही अर्थका मूल होता है ॥ ९२ ॥ क्योंकि थोड़ा भी प्रयत्न करनेसे कार्यकी सिद्धि होजाती है ॥ ९३ ॥ उपायपूर्वक किया जाता हुआ कोई भी कार्य, कठिन मालूम नहीं होता ॥९४॥ जो कार्य, उपायसे नहीं किया जाता, वह किया कराया भी नष्ट होजाता है ॥ ९५ ॥ कार्यमें सफलता चाहनेवालोंके लिये, उपायही परम सहायक होता है ॥ ९६ ॥ कोई भी कार्य, पुरुषार्थके द्वाराही लक्ष्य बनसकता है ॥ ९७ ॥

दैव भी पुरुषार्थके पीछे २ चलता है ॥ ९८ ॥ दैवके विना, अत्यन्त प्रयत्नसे किया हुआ कार्य भी विफल होजाता है ॥ ९९ ॥

असमाहितस्य वृत्तिर्न विद्यते ॥ १०० ॥ पूर्वं निश्चित्य पश्चात्कार्यमारभेत् ॥ १०१ ॥ कार्यान्तरे दीर्घसूत्रता न कर्तव्या ॥ १०२ न चलचित्तस्य कार्यावाप्तिः ॥ १०३ ॥ हस्तगतावमाननात्कार्यव्यतिक्रमो भवति ॥ १०४ ॥ दोषवर्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ॥ १०५ ॥ दुरनुबन्धं कार्यं नारभेत ॥ १०६॥

असावधान रहते हुए पुरुषका कोई भी व्यवहार नहीं चल सकता ॥ १०० ॥ पहिले निश्चय करके, फिर कार्यका आरम्भ करे । १०१ । दूसरे कार्यके करनेमें दीर्घसूत्रता न करनी चाहिये ॥ १०२ ॥ चञ्चलचित्त पुरुषको, कभी कार्यसिद्धि नहीं होती ॥ १०३ ॥ हाथमें आई हुई वस्तुका तिरस्कार करदेनेसे, काम बिगड़ जाता है ॥ १०४ ॥ ऐसे कार्य, संसारमें बहुत दुर्लभ हैं, जो दोषोंसे सर्वथा रहित हों ॥ १०५ ॥ दुःख या कठिनताओंसे भरे हुए कार्योंका आरम्भ न करे ॥ १०६ ॥

कालवित् कार्यं साधयेत् ॥ १०७ ॥ कालातिक्रमात्काल एव फलं पिबति ॥ १०८ ॥ क्षणं प्रति कालविक्षेपं न कुर्यात्सर्वकृत्येषु ॥१०९॥ देशफलविभागौ ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥११०॥ दैवहीनं कार्यं सुसाधमपि दुस्साधं भवति ॥ १११ ॥

समयको पहिचाननेवाला पुरुष, अपने कार्यको सिद्ध करे, तात्पर्य यह है, कि वही पुरुष अपने कार्यको सिद्ध करसकता है, जो समयकी गति या परिस्थितिको खूब पहिचानता है ॥ १०७ ॥ कार्यके उचित कालके चूक जानेसे, कालही, उस कार्यके फलको पीजाता है ॥ १०८ ॥ इसलिये सबही कामोंमें एक क्षण भी कालविक्षेप न करे ॥ १०९ ॥ देश और फलका विवेचन करकेही कार्यका आरम्भ करे ॥ ११० । आसान भी काम, दैवके विपरीत होनेपर कठिन होजाता है ॥ १११ ॥

नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत ॥ ११२ ॥ परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिरं तिष्ठति ॥ ११३ ॥ सर्वाश्च संपदः सर्वोपायेन परिग्रहेत् ॥ ११४ ॥ भाग्यवन्तमपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥११५॥ ज्ञानानुमानैश्च परीक्षा कर्तव्या ॥ ११६ ॥

नीतिज्ञ पुरुष, देश और कालका अच्छीतरह विचार करे ॥ ११२ ॥ विचारपूर्वक कार्य करनेवाले पुरुषके पास, लक्ष्मी चिरकालतक निवास करती है ॥ ११३ ॥ सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका, सबही उपायोंसे (साम, दान, दण्ड भेद ये चार उपाय होते हैं) संग्रह करे ॥ ११४ ॥ भाग्यशाली भी, अपरीक्ष्यकारी (बिना विचारेही काम करनेवाले) राजाको, लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ ११५ ॥ प्रत्येक वस्तुकी परीक्षा, प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणोंसे करनी चाहिये ॥ ११६ ॥

यो यस्मिन् कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेव योजयेत् ॥११७॥ दुस्साधमपि सुसाध्यं करोत्युपायज्ञः ॥ ११८ ॥ अज्ञानिना कृतमपि न बहुमन्तव्यम् ॥ ११९ ॥ यादृच्छिकत्वात् कृमिरपि रूपान्तराणि करोति ॥ १२० ॥ सिद्धस्यैव कार्यस्य प्रकाशनं कर्तव्यम् ॥ १२१ ॥ ज्ञानवतामपि दैवमानुषदोषात्कार्याणि दुष्यन्ति ॥ १२२ ॥

जो जिस कार्यके करनेमें चतुर हो, उसको उसी कार्यपर लगाना चाहिये ॥ ११७ ॥ उपायोंका जाननेवाला पुरुष, कठिन कामोंको भी सीधा बना लेता है ॥ ११८ ॥ अज्ञानीके द्वारा किये गये, कार्यको बहुत नहीं मानना चाहिये ॥ ११९ ॥ क्योंकि कीड़ा भी यदृच्छासेही, अनेक रूप रूपान्तरोंको बना देता है ॥ १२० ॥ सिद्ध हुए २ कार्यकाही प्रकाश किया जाना चाहिये ॥ १२१ ॥ ज्ञानी पुरुषोंके भी कार्य, दैवदोष या मानुष दोषोंसे दूषित होजाते हैं, अर्थात् सफल नहीं होपाते ॥ १२२ ॥

दैवं शान्तिकर्मणा प्रतिषेद्धव्यम् ॥ १२३ ॥ मानुषीं कार्यविपत्तिं कौशलेन विनिवारयेत् ॥ १२४ ॥ कार्यविपत्तौ दोषान् वर्णयन्ति बालिशाः ॥१२५॥ कार्यार्थिना दाक्षिण्यं न कर्तव्यम् ॥ १२६ ॥ क्षीरार्थी वत्सो मातुरूधः प्रतिहन्ति ॥ १२७ ॥ अप्रयत्नात्कार्यविपत्तिर्भवेत् ॥ १२८ ॥ न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धिः ॥ १२९ ॥

शान्तिकर्मके द्वारा, दैवका प्रतीकार करना चाहिये ॥ १२३ ॥ और अपने कार्योंमें, जो विपत्तियां, मनुष्यके द्वारा प्राप्त हों, उनका निवारण (प्रतीकार) अपने कौशल अर्थात् चातुर्यसे करे ॥ १२४ ॥ कार्यके समय

विपत्ति आनेपर, मूर्ख पुरुषही, उनमें दोषोंका वर्णन करते हैं ॥ १२५ ॥ जो पुरुष, अपने कार्यमें सफलता चाहे, उसे सर्वथा सरल न होना चाहिये ॥ १२६ ॥ बछड़ा भी जब दूध चाहता है, अपनी माताके अयन (ऐन=ऊधस्) में आघात करता है ॥ १२७ ॥ प्रयत्न न करनेसे, अवश्यही कार्योंमें विपत्ति या विघ्न आजाता है ॥ १२८ ॥ दैवकोही प्रमाण माननेवाले पुरुषकी कार्यसिद्धि कभी नहीं होती ॥ १२९ ॥

कार्यबाह्यो न पोषयत्याश्रितान् ॥ १३० ॥ यः कार्यं न पश्यति सोऽन्धः ॥ १३१ ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमानैः कार्याणि परीक्षेत ॥ १३२ ॥ अपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥ १३३ ॥ परीक्ष्य तार्या विपत्तिः ॥ १३४ ॥ स्वशक्तिं ज्ञात्वा कार्यमारभेत ॥१३५॥ स्वजनं तर्पयित्वा यश्शेषभोजी सोऽमृतभोजी ॥१३६॥ सर्वानुष्ठानादायमुखानि वर्धन्ते ॥ १३७ ॥ नास्ति भीरोः कार्यचिन्ता ॥ १३८ ॥

कार्यसे पृथक् रहनेवाला पुरुष, अपने आश्रित व्यक्तियोंका कदापि पालन पोषण नहीं करसकता ॥ १३० ॥ जो अपने कार्यको नहीं देखता, वही अन्धा है ॥ १३१ ॥ प्रत्यक्ष, परोक्ष (शब्द) और अनुमान प्रमाणोंसे कार्योंकी परीक्षा करे ॥ १३२ ॥ बिना विचारे काम करनेवाले पुरुषको लक्ष्मी छोड़ देती है ॥ १३३ ॥ अच्छीतरह विवेकपूर्वक विपत्तिको पार करे ॥ १३४ ॥ अपनी शक्तिको समझकर, कार्यको आरम्भ करे ॥ १३५ ॥ अपने आदमियों को तृप्त कराके, जो शेष अन्न खानेवाला होता, वही अमृतभोजी (अमृत खानेवाला) समझना चाहिये ॥ १३६ ॥ सब तरहके उचित कार्योंके करनेसे, आमदनीके रास्ते बढ़ जाते हैं ॥ १३७ ॥ भीरु (=अपरिश्रमी=कामचोर) पुरुषको, अपने कार्योंकी कोई चिन्ता नहीं होती ॥ १३८ ॥

स्वामिनश्शीलं ज्ञात्वा कार्यार्थी कार्यं साधयेत् ॥ १३९ ॥ धेनोश्शीलज्ञः क्षीरं भुङ्क्ते ॥ १४० ॥ क्षुद्रे गुह्यप्रकाशनमात्मवान्न कुर्यात् ॥१४१॥ आश्रितैरप्यवमन्यते मृदुस्वभावः ॥१४२॥ तीक्ष्णदण्डस्सर्वैरुद्वेजनीयो भवति ॥ १४३ ॥ यथार्हदण्डकारी स्यात् ॥ १४४ ॥

कार्य करनेकी इच्छा रखनेवाला पुरुष, अपने स्वामीके स्वभावको

जानकरही, कार्यको सिद्ध करे, या कार्यको सफल बनावे ॥ १३९ ॥ जो पुरुष, गायके स्वभावसे परिचित होता है, वही उसके दूधका उपभोग करता है ॥ १४० ॥ आत्मवान् (अपनी कुछ हैसियत रखनेवाला) पुरुष, छोटे विचार रखनेवाले आदमीपर, अपने छिपे भेदोंको प्रकट न करे ॥ १४१ ॥ जो राजा सरल स्वभावका हो. उसका, उसके आश्रित पुरुषभी तिरस्कार कर देतेहैं ॥ १४२ ॥ और जो राजा, तीव्र स्वभावका होता है, उससे सभी पुरुष उद्विग्न (खिन्न=बेचैन) रहते हैं ॥ १४३ ॥ इसलिये राजाको, उचित दण्ड देने वालाही होना चाहिये ॥ १४४ ॥

अल्पसारं श्रुतवन्तमपि न बहुमन्यते लोकः ॥ १४५ ॥ अतिभारः पुरुषमवसादयति ॥१४६॥ यस्संसदि परदोषं शंसति स स्वदोषबहुत्वं प्रख्यापयति ॥ १४७ ॥ आत्मानमेव नाशयत्यनात्मवतां कोपः ॥ १४८ ॥ नास्त्यप्राप्यं सत्यवताम् ॥ १४९ ॥ साहसेन न कार्यसिद्धिर्भवति ॥ १५० ॥ व्यसनार्तो विस्मरत्यप्रवेशेन ॥ १५१ ॥

शास्त्रपारगामी भी दुर्बल राजाको, जनता बहुत नहीं मानती ॥१४५॥ अधिक भार, पुरुषको खिन्न करदेता है ॥ १४६ ॥ जो पुरुष, सभामें दूसरेके दोषका कथन करता है, वह अपनेही दोषोंकी अधिकताको प्रसिद्ध करता है ॥ १४७ ॥ अपने आपको वशमें न रखनेवाले पुरुषोंका क्रोध, स्वयं उनकोही नष्ट करदेता है ॥ १४८ ॥ सत्यका आचरण करनेवाले पुरुषोंके लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं होती ॥ १५० ॥ विपद्ग्रस्त पुरुष, विपत्तियोंके टलजानेपर, उन्हें भूल जाता है ॥ १५१ ॥

नास्त्यनन्तरायः कालविक्षेपे ॥ १५२ ॥ असंशयविनाशात्संशयविनाशश्श्रेयान् ॥ १५३ ॥ अपरधनानि निक्षेप्तुः केवलं स्वार्थम् ॥ १५४ ॥ दानं धर्मः ॥ १५५ ॥ नार्यागतोऽर्थवद्विपरीतोऽनर्थभावः ॥ १५६ ॥ यो धर्मार्थौ न विवर्धयति स कामः ॥ १५७ ॥ तद्विपरीतोऽनर्थसेवी ॥ १५८ ॥

समय चूकजानेपर, कार्योंमें अवश्यही विघ्न, उपस्थित होजाते हैं ॥ १५२ ॥ संदेह रहित विनाशसे (अर्थात् अवश्यम्भावी विनाशसे) संदिग्ध विनाश (जिस विनाशमें सन्देह हो, ऐसा विनाश) अच्छा होता है ॥ १५३ ॥ दूसरेके धनोंको अमानत रखनेवाले पुरुषका केवल स्वार्थही प्रयोजन होता है

॥ १५४ ॥ दान देना धर्म है ॥ १५५ ॥ वैश्यवृत्तिसे किया हुआ यह धर्म, सफल नहीं होता । तथा दान धर्मका न करना, तो सर्वथाही अनर्थका हेतु होता है ॥ १५६ ॥ 'काम' वही होता है, जोकि धर्म और अर्थको नहीं घटाता ॥ १५७ ॥ धर्म और अर्थके घटानेवाले अथवा न बढ़ने देनेवाले 'काम' का सेवन करना तो, अनर्थकाही सेवन करता है ॥ १५८ ॥

ऋजुस्वभावपरो जनेषु दुर्लभः ॥ १५९ ॥ अवमानेनागतमैश्वर्यमवमन्यते साधुः ॥ १६० ॥ बहूनपि गुणानेकदोषो ग्रसति ॥ १६१ ॥ महात्मना परेण साहसं न कर्तव्यम् ॥ १६२ ॥ कदाचिदपि चारित्रं न लङ्घयेत् ॥ १६३ ॥ क्षुधाऽऽर्तो न तृणं चरति सिंहः ॥ १६४ ॥ प्राणादपि प्रत्ययो रक्षितव्यः ॥१६५॥ पिशुनश्श्रोता पुत्रदारैरपि त्यज्यते ॥ १६६ ॥

मनुष्योंमें, सर्वथा सरल स्वभावका पुरुष, दुर्लभ होता है ॥ १५९ ॥ तिरस्कारपूर्वक आये हुए ऐश्वर्यको, सज्जन पुरुष, तिरस्कृत करदेते हैं । अर्थात् उसे नहीं अपनाते ॥ १६० ॥ बहुतसे गुणोंको भी, अकेलाही दोष खाजाता है ॥ १६१ ॥ महात्मा (श्रेष्ठ धर्मात्मा) शत्रुके साथ, युद्ध नहीं करना चाहिये ॥ १६२ ॥ चरित्र (सदाचार) का कभी उल्लङ्घन न करे ॥ १६३ ॥ भूखा भी सिंह, कभी तिनके नहीं चरता ॥ १६४ ॥ प्राण देकर भी अपने विश्वासकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १६५ ॥ चुगली करनेवाले और सुननेवाले पुरुषको, उसके स्त्रीपुत्रादि भी छोड़ देते हैं ॥ १६६ ॥

बालादप्यर्थजातं शृणुयात् ॥ १६७ ॥ सत्यमप्यश्रद्धेयं न वदेत् ॥ १६८ ॥ नाल्पदोषाद्बहुगुणास्त्यज्यन्ते ॥ १६९ ॥ विपश्चित्स्वपि सुलभा दोषाः ॥ १७० ॥ नास्ति रत्नमखण्डितम् ॥ १७१ ॥ मर्यादातीतं न कदाचिदपि विश्वसेत् ॥ १७२ ॥ अप्रिये कृतं प्रियमपि द्वेष्यं भवति ॥ १७३ ॥ नमन्त्यपि तुलाकोटिः कूपोदकक्षयं करोति ॥ १७४ ॥

बालकसे भी उचित बातको सुनलेवे ॥ १६७ ॥ विश्वासके अयोग्य सत्य भी न बोले ॥ १६८ ॥ थोड़ेसे दोषसे, बहुतसे गुणोंको छोड़ा नहीं जाता ॥ १६९ ॥ विद्वानोंमें भी दोषका होजाना आसान है ॥ १७० ॥ जैसे कोई भी रत्न अखण्डित नहीं होता ॥ १७१ ॥ कभी भी मर्यादासे अधिक विश्वास

न करे ॥ १७२ ॥ अप्रियपुरुष (शत्रु) के सम्बन्धमें किया हुआ प्रिय कार्य (उस शत्रुके अनुकूल) भी द्वेष्य (प्रतिकूल) ही समझा जाता है ॥ १७३ ॥ झुकती हुई भी ढींकली, कुएके जलका क्षय करदेती है ॥ १७४ ॥

सतां मतं नातिक्रमेत् ॥ १७५ ॥ गुणवदाश्रयान्निर्गुणोपि गुणी भवति ॥१७६॥ क्षीराश्रितं जलं क्षीरमेव भवति ॥१७७॥ मृत्पिण्डोपि पाटलिगन्धमुत्पादयति ॥ १७८ ॥ रजतं कनकसंगात्कनकं भवति ॥१७९॥ उपकर्तर्यपकर्तुमिच्छत्यबुधः॥१८०॥ न पापकर्मणामाक्रोशभयम् ॥ १८१ ॥

श्रेष्ठ पुरुषोंके मन्तव्यका अतिक्रमण न करे ॥ १७५ ॥ गुणी पुरुषका आश्रय लेनेसे, गुणहीन भी गुणी होजाता है ॥ १७६ ॥ दूधके आश्रित (अर्थात् दूधमें मिला हुआ) जल भी, दूधही होजाता है ॥ १७७ ॥ मट्टीका ढेला भी, पाटली (एक प्रकारका फूल) के गन्धको उत्पन्न करता है ॥ १७८ ॥ चांदी भी, सोनेके साथ मिलनेसे सोना होजाती है ॥ १७९ ॥ बुद्धिहीन पुरुष, उपकार करनेवालेपर भी, अपकारही करना चाहता है ॥ १८० ॥ पाप कर्म करनेवाले पुरुषोंको निन्दा का भय नहीं होता ॥ १८१ ॥

उत्साहवतां शत्रवोपि वशीभवन्ति ॥ १८२ ॥ विक्रमधना राजानः ॥ १८३ ॥ नास्त्यलसस्यैहिकामुष्मिकम् ॥१८४॥ निरुत्साहाद्दैवं पतति ॥ १८५ ॥ मत्स्यार्थीव जलमुपयुज्यार्थं गृह्णीयात् ॥ १८६ । अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ १८७ ॥ विषं विषमेव सार्वकालम् ॥ १८८ ॥

उत्साही राजाओंके, शत्रु भी, वशमें होजाते हैं ॥ १८२ ॥ राजाओंका मुख्यधन विक्रम (बहादुरी) ही होता है ॥ १८३ ॥ आलसी व्यक्तिको, न ऐहलौकिक और न पारलौकिकही सुख मिलता है ॥ १८४ ॥ उत्साहहीन होनेसे भाग्य भी गिर जाता है ॥ १८५ ॥ मछियारा जैसे जलको, इसी प्रकार पुरुष उपयोग करके अर्थको ग्रहण करे । अथवा उपयोगमें आनेके योग्य अर्थको ग्रहण करे ॥ १८६ ॥ अविश्वस्त पुरुषोंपर कभी विश्वास न करना चाहिये ॥ १८७ ॥ क्योंकि विष प्रत्येक समयमें विषही रहता है ॥ १८८ ॥

अर्थसमादाने वैरिणां सङ्ग एव न कर्तव्यः ॥ १८९ ॥ अर्थसिद्धौ वैरिणं न विश्वसेत ॥ १९० ॥ अर्थाधीन एव नियत-